29

शिक्षण तथा जीवन सफलता की कुञ्जी.

"मस्तिष्क विद्या"

मस्तक के अन्दर की अन्तर जवनिकाएँ अथवा हृदयप्रदेश

मस्तिष्क का मध्य से कटा हुआ दर्शन.

वि० सं० २०१४
ई० सं० १९५७
दयानंदाब्द
१३३
सृ० सं०
१,९७,२९,४९०५७

नं० १ से १४
मस्तक का
विटलाओं
N अनु मस्तिष्क
M कोरपस
केलोझम,
O ब्रह्महृदय,
२५०
सुन्दर चित्र
सात रुपये

--लेखिका--

श्री चंचल बहिन माणिकलाल पाठक,
प्रधाना, आर्यसमाज टंकारा (सौराष्ट्र)

—प्रकाशक—
विश्वम्भर वैदिक पुस्तकालय गुरुकुल झज्जर, रोहतक (पंजाब.)

श्री पं. इन्द्रजी विद्यावाचस्पति को सप्रेम भेट. १०-६-३२

लेखिका - चंचल बहिन की ओर से।

ओ३म्

शिक्षण तथा जीवन सफलता की कुञ्जी.

"मस्तिष्क विद्या"

वि० सं० २०१४
ई० सं० १९५७
दयानंदाब्द
१३३
सृ० सं०
१,९७,२९,४९०५७

प्रथमवार
प्रति—११००
सुन्दर चित्र
२५०

सात रुपये

लेखिका—श्री चंचल बहिन माणिकलाल पाठक
प्रधाना आर्यसमाज टंकारा (सौराष्ट्र)

प्रकाशक—श्री ब्र० भगवान् देव जी आचार्य गुरुकुल झज्जर, रोहतक पंजाब.

—लेखिका—

चंचलबहिन माणिकलाल पाठक

प्रधाना आर्य समाज टंकारा (सौराष्ट्र)

ओ३म् परमात्मा को नमः

प्रस्तावना

मस्तिष्क विद्या अथवा मानसशास्त्र जिसको अंग्रेजी में Phrenology and physiognomy कहने में आतेहै, उसका उदय युरोप में १८ वीं सदी में हुवा। हमारे देश में इस विषय के ग्रन्थ पूर्व समय में हस्ती धराते होंगे, वह सर्वथा सम्भवित है, परन्तु दुर्भाग्य से अब उसके सम्बन्धमें हमको कुछ जानकारी नहीं।

सिद्धार्थं सिद्ध सम्बन्धं श्रोतु श्रोता प्रवर्त्तते।
शास्त्रादौतेन वक्तव्यः सम्बन्धः सप्रयोजनः॥

श्रोता तथा पाठकवर्ग की अभिरुचि, उत्कंठा और जीज्ञासा हमेशा सिद्ध हुआ विषय को तथा उसके सम्बन्धको प्रयोजन सहित प्रत्येक शास्त्रकी शुरुआत (आरंभ) में ही जानने तत्पर होते हैं। इतने लिये आरम्भ में ही प्रत्येक शास्त्र का विषय, उसका वक्ता और वांचको साथका परस्पर सम्बन्ध; विषयका या ग्रन्थ का प्रयोजन और तद् तद् विषयको समझने अथवा जाननेके अधिकारी आदिका निरूपण संक्षेप में करना चाहिये।

विषय—मनुष्यकी अन्दर बसी हुई समग्र शारीरिक, मानसिक और अध्यात्मिक शक्तियों इसी रीतिसे उसके शुभाशुभ कार्य या प्रवृत्तियों की यथावत् विवेचना करनी वह यह ग्रंथ का मुख्य विषय है।

शरीर—इन्द्रिय और आत्मा वह दो मुख्य पदार्थोंके संयोगसे मनुष्य बने हुये हैं। वह दोनों साथ सम्बन्ध रखने वाली मानसिक वृत्तियोंकी यथावंत् आलोचना कर उन्होंके प्रत्येक अवयवका तथा उसके यथायोग्य कार्य का निरुपण कर मनुष्यकी अन्दर मुख्यता कार्यकर्त्ता जो मनुष्य का अन्तरगत मन अथवा आतमा है, उसका तथा उसकी शक्तियोंका विवेचनकर मनोविज्ञान अथवा मानस शास्त्रका ज्ञान देना वह यह ग्रन्थका विषय है।

प्रयोजन—उपरोक्त मानस शास्त्र का ज्ञान जन समूह में फैलाकर, मनुष्य की सम्पूर्ण शक्तियोंको योग्य मार्ग दर्शाकर; मनुष्य जीवन का यथार्थ आनन्द और सुख प्राप्त कराकर आलोक और परलोक के यथार्थ ज्ञानकी प्राप्ती द्वारा और जीवनकी सुधारणा द्वारा समग्र विश्वके पदार्थों का यथावत उपयोग करने सीखाकर परब्रह्म परमात्मा वैसे ही परम सुख और आनन्द जो जीवन का अन्तिम उद्देश है उसको योग्य रीति से प्राप्त कराने में सहायभूत होना वह यह ग्रन्थ का मुख्य प्रयोजन है।

मनुष्य ये परम पुरुष परमात्मा की सर्वोत्तम कृति है। उसकी सम्पूर्ण रचना, समग्र प्रदेशो और शक्तियों के कार्य का मनुष्य समाजको ज्ञान देने का, मनुष्यके महान कर्तव्य और विश्वके समग्र पदार्थों

की अन्दरका उन्होंका श्रेष्टतम स्थान दर्शाकर मनुष्यको परमात्माके परम सखा रूप बनानेके महान प्रयत्न में मस्तक विद्या अपना अनुपम धर्म बजाते हैं ।

अधिकारी—विश्वकी अन्दरके प्रत्येक स्त्री, पुरुष, बालक; युवान, गरीब, धनी, राजा, प्रजा और जिन्होको दुनियाके प्रत्येक विषयो समझनेके लिए परमात्माने परम करुणासे मन और इन्द्रियादि साधनों दे दियेहै वैसी दरेक व्यक्ति यह ग्रन्थके विषयको पढनेके; सुननेके या प्रत्यक्ष अनुभवमें लेने के कुदरती रीति से ही अधिकारी है। मात्र वह अधि.ार का यथावत् उपयोग करने सिखाने की ही जरूरत है । और वह सिखाना वह यह ग्रन्थ का विषय है ।

सम्बन्ध---यह ग्रन्थ और उसकी अन्दरके विषयका प्रतिपादक और प्रतिपाद्य सम्बन्ध है । अधिकारी अथवा वांचक और ग्रन्थ का ज्ञाता और ज्ञेय सम्बन्ध है ।

अत्रे प्रश्न यह उपस्थित होता है कि---मस्तिष्क शास्त्र इतने क्या ? यह शास्त्र क्या सिखाते है ? उसके मुख्य मुख्य किस किस सिद्धान्तो है ? वह विषयकी सत्यताके लिए कुछ प्रमाण, पुरावा या साबिती है ? उपरोकन सर्व प्रश्नो कोई भी नया विषयको आरंभ करने वाला प्रत्येक विचारवंत व्यक्तिके मनमें होनाही चाहिये और होवे वह बिलकुल स्वभाविक है । मैंने उसके प्रत्युत्तर भी क्रमवार इस ग्रन्थमें यथाशक्ति देने का प्रयत्न किया है ।

प्रश्न—मस्तिष्क शास्त्र इतने क्या ? मस्तिष्क विद्या वह शिक्षण और सफलताकी कुञ्जी कैसी रीति से बनती है ? उत्तर---

१. मनुष्यका मस्तिष्क की तलाशी कर अन्दर बसी हुई समग्र शक्तियोंकी यथार्थ स्थिति, हाव-भाव और वर्तनमें मनुष्यका अन्तर्गत मन कैसे प्रकार का है वह मस्तकके बाह्य विभागो को तलाशीकर स्पष्टता से जानने की विद्या को मस्तिष्क शास्त्र कहने में आता है ।

२. यह मस्तिष्क विद्या द्वारा मनुष्यकी भिन्न---भिन्न शक्तियों कितने प्रमाणमें विकसित है वह जान सकाते है, और कौन कौन शक्तियों न्यून-कम है उसका निर्णय हो सकता है ।

३. कम शक्तियोंको विकसानेका उपायों (इलाजों) दर्शाकर अमुक रीतिसे वर्तने से कितनेक अंश में तत्तद शक्ति में सुधारणा कर सकाती है । इसी रीति से अत्यन्त प्रबल या उग्र गतिवाली वृत्तियों को यथावत् दर्शाकर निग्रह में रखने का सीखातेहै ।

४. स्त्री, पुरुष, बालक और युवानकी प्रत्येक दशा के गुणं, कर्म, स्वभाव, या धर्मो यथावत् समझाने में यह विद्या अनेक रीतिसे सहायभूत होती है ।

५. मनुष्यकी सर्व शक्तियों या वृत्तियोंके स्थान मनुष्वके मस्तिष्कके अमुक अमुक चोकस प्रदेशोमें स्थित है । उसकी तलाशी कर यथावत् अनुभव करने और तदनुकूल मनुष्य मात्रकी सुधारणा करनी या योग्य वर्तन दिखाने में सहायभूत होना वह यह विद्याका महान उपयोग है ।

६. मनुष्यके मनका स्वभाविक रुख, स्वभाविक इच्छा, भावना या रुचि किस और है वह यह विद्या द्वारा अधिक अंश में जानकर उसका आवश्यक लाभ ले सकाते हैं ।

७. कोई एक मनुष्य में दया तो कोई एक में न्याय, कोई में बुद्धि शक्तियों का प्राबल्य तो कोई में चित्रकला का प्राविण्य और कोई में याद शक्ति या विचार शक्ति की न्यूनता तो कोई में तर्क और तुलना शक्ति का प्राबल्य होता है। कितने एक मनुष्यों स्वभाव से ही शान्त, दान्त, धीर, गंभीर और नीति तथा धर्मयुक्त वर्तन वाले होते हैं। जब कितने एक बिलकुल स्वार्थी, लोभी, छल, कपट युक्त और नीति धर्म तथा आत्मनिष्ठा के भाव से रहित होते हैं। ऐसे अनेकानेक भिन्न भिन्न आचार विचार और वर्तन वाले, मनुष्यों के मन की यथावत् परीक्षा कर, उन्हों को उनकी शक्तिनुसार योग्य कार्य सौंपना। अथवा उनकी ओर से अमुक कार्य यथायोग्य रीति से उनकी शक्ति की तलाशी कर कराना। वह यह विद्या का महत्वपूर्ण उपयोग है।

आत्म कोष में सत्य, धर्म, दया, परोपकार, नीति, बुद्धि, भक्ति, न्याय, निग्रह, सदाचार, शौर्य, सौजन्य, स्वमान, स्नेह आदि सद्गुणों रूप दैवी संपत्ति, सामर्थ्य के जवाहिरात चमकते हैं या काम, क्रोध, लोभ, मोह मद माया आदि दुर्गुणों रूप पशु वृत्तिओं के भयानक स्वरूप छुपाये हुए हैं? वह मस्तिष्क विद्या के ज्ञान चक्षु से देखते दिखाते हैं। जो देखने जाननेसे अपने में दैवी शक्तियों का साम्राज्य है या आसुरी प्राबल्य का प्रभाव है वह समझाते हैं। इससे मनुष्य अपने जीवन की उन्नति और सुधारणा कर सकते हैं। अच्छी शक्तिओं के उपयोग से जीवन में सुख, सगवड और आनन्द मिलते हैं। आत्म कल्याण तथा परमात्मा की प्राप्ति हो सकती है।

इस रीति से मस्तक विद्या (मनोविज्ञान) रूप कूंची से आत्म भंडार खोलने इसमें के अलौकिक द्रव्य के उपयोग से जीवन सफल बनते हैं। और शिक्षण में भी अनेक रीत का योग्य मार्ग दर्शन मिलने से शिक्षण भी सरल और सफल बनते हैं।

मस्तिष्क शास्त्र के नीचे दर्शाये हुए खास मुख्य सिद्धान्तों है, उस पर ध्यान देने की सबसे प्रथम आवश्यकता है।

१ मनुष्य का मन भिन्न भिन्न प्रकार की अनेक स्वाभाविक शक्तियों से युक्त है। उसमें की दरेक शक्ति अपना कार्य करते समय अमुक ही प्रकार की चोकस असर ग्रहण करती है। जैसे कि आँख देखनें का, कान सुनने का, जिह्वा स्वाद लेने का, नाक सुवास लेने का और त्वचा स्पर्श ग्रहण करने का, इसी रीति से कार्य शक्ति कार्य पूर्ण करने का, संगीत शक्ति गाने का और गणित शक्ति गिननें का ही कार्य करती है। ऊपर प्रमाणें प्रत्येक शक्ति अपना अपना नियत कार्य करती है। एक शक्ति का कार्य दूसरो शक्ति करने के लिए किसी भी समय तत्पर नहीं होती। ऐतिहासिक विषय की जानकारी इकट्ठी करने या देने के लिए इतिहास शक्ति ही कार्य करती है। मनुष्य का अन्तरगत मन अनेक शक्तियों के भंडार रूप है। और वह शक्तियों मनुष्य जितने प्रकार के भिन्न भिन्न कार्यों करते हैं उतनी शक्तियों में विभक्त हैं।

२. ऐसी प्रत्येक मानसिक शक्ति या वृत्ति को प्रकट करने के लिए और अनुकूल कार्य ग्रहण करने के लिए अलग अलग मानस अवयवों की मनुष्य के मस्तिष्क में रचना करने में आई हुई है। जिसको

मस्तिष्क शास्त्र की भाषा में मानसिक अवयवों (Phrenocentres) कहने में आते हैं। जितने प्रकार की मन की मूल शक्तियों हैं इतने ही वह शक्तियों को प्रकट करने वाले या तद् तद् विषय को ग्रहण करने वाले मस्तिष्क की अन्दर मानस अवयव के विभाग हैं।

३. मन की जो जो शक्ति या वृत्ति, मनुष्य जीवन में जितने अंश में कार्य कर रही होती है, तद् तद् शक्ति को प्रकट करने वाले मस्तिष्क के तद् तद् अवयय वाले स्थानों भी उतने ही न्यूनाधिक प्रमाण में विकसित मालुम पडते है। दृष्टान्त से समझें जिस व्यक्ति दया या परोपकार वृत्ति के लिए खास प्रसिद्ध होती है, उसका परोपकार वृत्ति का अवयव उतने ही प्रमाण में विकसित होना ही चाहिए। परन्तु जिस मनुष्य स्वभाव से क्रूर और शूर होंगे, उसका दया का अवयव बिलकुल न्यून और शौर्य का अवयव या स्थान पूर्ण रीति से विकसित दिखायेंगे। जब परोपकारी मनुष्य में स्वार्थ वृत्ति के अवयव की लगभग खामी (न्यूनता) दिखायेंगे। जिन मनुष्य के कपाल का ऊपर का भाग विस्तृत, ऊंचा और लगभग चोरस दिखाता होगा, वह मनुष्य तर्क शक्ति, तुलना शक्ति सम्पन्न ही बनेगा। किन्तु जिसके कपाल का मध्य भाग बैठा या दबा हुआ होगा वह ऐतिहासिक घटनाओं या तारीखों यथावत् याद नहीं रख सके। परन्तु जिसका मध्य कपाल का भाग ऊंचा भरा हुआ होगा तथा कपाल का ऊपर का भाग बैठा, नमित हुआ होगा, वैसे व्यक्ति मनन शक्ति और तुलना शक्ति की न्यूनता वाले और इतिहास शक्ति तथा वार्ता वृत्तान्त के शौकीन ही बनेगा।

४. इसी अनुसार मस्तिष्क के भिन्न भिन्न प्रदेशों की वृद्धि ह्रास को तथा पृथक् पृथक् ऊंचा, नीचा स्थल और मस्तिष्क की लम्बाई, चौड़ाई आदि की तलाशी कर मस्तिष्क के अवलोकन से मनोन्तर्गत खास भावनाओं, वृत्तियों या इच्छाओं को सम्पूर्ण रीति से जान सकाते हैं। जब ऐसा ज्ञान प्राप्त करने में मस्तिष्क के अवयवों का मानस शास्त्रानुसार ज्ञान अमल्य सहाय देते हैं, इतना ही नहीं परन्तु कौन शक्ति कितने प्रमाण में न्यून वा अधिक है और अमुक संजोगों तथा अमुक समय में वह वृत्ति कैसे प्रकार का रूख धारण करेगी अथवा कैसी रीति का वर्ताव करने प्रेरायेंगी वह विषय का निर्णय भी इस मानव अवयवों के यथार्थ ज्ञान और अभ्यास द्वारा यथावत् हो सकते हैं। इससे भी आगे बढ़े तो मनुष्य अमुक प्रकार की क्रिया किस कारण करते हैं अथवा ऐसे करने में उसका सत्य और आन्तरिय उद्देश क्या है अथवा क्या होना चाहिए, वह विषय का निर्णय भी यथावत् यह विद्या द्वारा हो सकता है।

५. दुनियां में अनेक बार ऐसा बनता है कि मनुष्य के मन में एक होगा और किया में कुछ दूसरा ही दर्शाते है। प्रत्येक मनुष्य मन, वाणी और क्रिया में समानता रखने वाले महात्मा या महान मनुष्य नहीं होते, वैसे हो सकते भी नहीं। दृष्टान्त रूप में अनेक मनुष्य एक ही प्रकार का समान दान पुण्य करने वाले होंगे, तो भी वह प्रत्येक के दान देने का उद्देश अलग अलग होते हैं। अमुक व्यक्ति जब सिर्फ दया की भावना से ही प्रेराइ विचार किये बिना अमुक रकम का दान दे देते हैं। तब दूसरा थयायोग्य विचार कर योग्य पात्र को योग्य समय पर मदद मिले और अपनी कीर्ति का गान भी होवे ऐसे उद्देश

से उतनी रकम का दान करते हैं। जब तीसरा पुरुष दया या कीर्ति को कुछ भी परवाह नहीं करते केवल वह मनुष्य के बडबडान से थककर जल्दी से जेब में से कुछ पैसे रुपये निकाल कर दे देते हैं। और पीड़ा दूर हुई ऐसा समझते हैं। जब चौथी व्यक्ति मात्र लोकाचार को आधिन होकर वैसे करने प्रवर्तते हैं।

इसी अनुसार दान नहीं देने वाले अनेक व्यक्तिओं भी अनेक उद्देश से एक ही प्रकार के कार्य में प्रवृत्त हुवे देखने में आते हैं। दृष्टान्त रूप में—

१. एक मनुष्य का पास दान देने पैसे नहीं, इसलिए नहीं दे सकता।

२. जब दूसरे की पास पैसे हैं और दान देने की वृत्ति भी है किन्तु वह योग्य पात्र को देखकर ही दान करने इच्छते हैं।

३. जब तीसरे को पास धन है किन्तु दान देने को वृत्ति ही नहीं।

४. जब चौथे मनुष्य दान देने समर्थ है, परन्तु पात्रापात्र का विचार करने जरा भी समर्थ नहीं, तो भी कीर्ति की इच्छा से देने को ललचाते हैं। किन्तु जहाँ कीर्ति का सम्भय न होगा वहां दान नहीं देता।

५. जब पांचवां मनुष्य लोभी, लालची और कृपण है जिससे उसको देने का विचार ही नहीं होता।

ऐसी रीति से एक ही प्रकार का कार्य करने में अनेक व्यक्तियों के अनेक आन्तरीय उद्देशों होते हैं। जिसको साधारण मनुष्यों किसी भी समय यथावत् जान सकते नहीं। परन्तु इस मस्तिष्क शास्त्रानुसार वह सब प्रवृत्तियों का यथावत् निर्णय हो सकता है।

६. एक वात्सल्य प्रेम पूर्ण माता ने दुष्काल के असह्य दुःखों के लिए जब अपना छोटा बालक का भी पोषण करने आप समर्थ नहीं ऐसा जान लिया तब अपने बच्चों को पानी में डूबाने कर मार डाला उसका उद्देश ऐसा करने में भूख (क्षुधा) के दुःख से दुःखी होता इसमें से बचाने का था! उसमें वात्सल्य भाव की न्यूनता या संहारक शक्ति की प्रबलता नहीं थी। सिर्फ वह बालक का दुख कमी करने का उद्देश से ही उसको डूबा कर मरण को शरण किया। उसमें क्रूरता का कुछ माग न था। किन्तु कायदा कानून इस घटना के सत्य को किसो समय नहीं स्वोकार सके। जब यह मस्तिष्क शास्त्र द्वारा मनुष्य की अमुक प्रकार की प्रवृत्ति होने का मूल कारण जो मन है उसके उंडा प्रदेश में प्रवेश कर उसके सचमुच गुह्य उद्देश की खोज कर सकाती है। विचार के मूल प्रदेश में पहुंच सकाते हैं और मनुष्य कों स्वाभाविक वृत्तियों को तथा मानसिक रुख को यथावत् जान सकाते हैं। जिममें वाह्य क्रिया या कार्य पर विशेष आधार रखने की आवश्यकता नहीं रहती।

७. मनुष्य की वाह्य क्रिया का मूल स्वरूप, विचारने का उद्भव स्थान, संकल्प की मूल उत्पत्ति और आन्तर हेतु को भी जानने का महान कार्य यह विद्या द्वारा सुनिश्चित हो सकते।

८. मस्तिष्क विद्या के सब सिद्धान्तों कुदरत सृष्टि क्रम और मनुष्य स्वभाव के समग्रनियमानुसार. सत्य और यथावत् व्यव स्थित है। प्रत्यक्षादि प्रमाणों से पूर्ण रीति से सिद्ध कर सके वैसे है। शब्द

प्रमाण की उसमें बिलकुल आवश्यकता ही नहीं। युक्ति, तर्क या मनुष्य की साधारण समझ शक्ति से सहज स्वीकार हो सके वैसे और महा नास्तिक, कठोर मस्तक के हेतुवादी को भी सप्रमाण समझा सके इतने सरल, बुद्धिगम्य और प्रत्यक्ष परिचय देने वाले हैं। बालक वृद्ध, युवानों और युवतियों कुदरत के अन्य सर्व सिद्धान्तों की तरह, बहुत हो सरलता से यह विषय का ज्ञान सम्पादन कर सके वैसे वह सरल है। निष्पक्षपात दिल से और सत्य जानने की जीज्ञासा से किसी भी व्यक्ति उसको जानकर स्वीकार कर सके वैसे है।

आकारैरिङ्गितैश्चेष्टया गत्या भाषणे न च।
नेत्र वक्त्रविकारेण लक्ष्यतेऽन्तरगतं मनः॥

मस्तिष्क विद्या का इतिहास और आद्य प्रवर्तको।

डा० गॉल, स्परझीयम, ज्योर्जकोम्ब और ओ० एस० फाउलर।

इस विषय के सबसे प्रथम अभ्यास का आरम्भ डाक्टर फ्रान्सीस जोसफ गाँल ने किया था। इन का जन्म जर्मनी के उक्त परगना (प्रान्त) के टोफेनब्रन नाम के ग्राम में ता० ६ मार्च १७५७ के दिन हुआ था। इनका पिता वह गांव का बड़ा व्यापारी और नगर का मुखिया था। डॉ० गॉल ने वैद्यक शास्त्र का अच्छी रीति से अभ्यास किया था। युनिवर्सिटी का अभ्यास पूरा किया, तत्पश्चात गाल वियेना गये। वियेना में एक पागल हाउस में वह डाक्टर का काम काज (कारबार) करता था। अपने समय का एक अत्यन्त सुप्रसिद्ध, अग्रगण्य और राजसभा में तथा अनेक संस्थाओं में माननीय पुरुष में इनकी गिनती थी। प्रत्यक्ष अनुभव और अवलोकन द्वारा यह मस्तक विद्या के सत्य स्वरूप को धीरे-धीरे समझने में वह विजयी हुआ। अपने भाई, बहिन और सहाध्यायिओं के चेहरा और लक्षणों तथा गुणों का अभ्यास कर धीरे धीरे इस विद्या के सिद्धान्तों की शोध (खोज) करने लगे और अन्त में उस में वह विजयी हुआ। भला और बुरा, दयालु और निर्दय झगड़ालू और शान्त, अभिमानी और अभिमानहीना आदि विविध स्वभाव के और वर्तन के मनुष्यों की उन्हों का सिर देख कर परीक्षा करने की उसने आदत डाली, अभ्यास किया। और परिणाम में खास-खास गुणों वाले व्यक्ति के मस्तक के अमुक अमुक चोकस प्रदेशों विकसित होते हैं, ऐसा स्पष्ट उसके अनुभव में आया। बल्कि मनुष्य के मस्तक तथा खोपड़ी को इसी रीति से मनुष्य के आचार, विचार और वर्तन को खास सम्बन्ध है, ऐसा उसने निश्चय किया। मस्तक तथा खोपड़ी (सिर की हड्डी) की सारूप्यता का निर्णय भी अपने आप कितने ही मरा हुआ मनुष्य का मस्तक चीर फाड़ कर पूरा ध्यान से तलाशी कर देख कर लिया। लगभग ३० वर्ष तक ऐसी रीति से अवलोकन किया, और पश्चात् १७९६ में वह विषय पर विद्वान् वर्ग में व्याख्यानों देने का आरम्भ किया। १८०५ में डॉ० गोल को जर्मन डॉ० स्परझीयम का मिलाप हुआ और वे दोनों ने साथ मिल कर युरोप के अनेक स्थलों में इस मस्तिष्क विद्या पर व्याख्यानों देने का आरम्भ किया।

होलेंड, प्रशीया, स्वीटझरलेंड, जर्मनी आदि स्थलों में घूम कर वे १८०७ में पेरीस पहुंचे, १८०९ में

स्परझीयम और डा० गाँल ने "The Anatomy and physiology of the Brain" with observation on the possibility of ascertaining severalintellectual and moral dispositions of man and animals by tne configuration of their beads, नाम का महान ग्रन्थ, जिस का मूल्य १००० (एक हजार) फ्रान्क है, वह सचित्र प्रसिद्ध किया। डा० गॉल ने ता० २२ अगस्त १८२८ के दिन प्राणत्याग कर दिया। अपनी जीवित अवस्था में पेरीस में अनेक पागल मनुष्यों के और जानवरों के मस्तकों की उसने तलाशी की थी। उसके मृत्यु पहिले १८१४ में उसका शिष्य स्परझीयम इंग्लेंड गया था, जहाँ उसने अनेक व्याख्यानों इस मस्तक विद्या पर दिया था। बाद में उसको अमरीका ने भी निमन्त्रण दिया था। वहाँ और अन्य स्थल पर डो० स्पर-झीयम ने मनुष्य के मस्तिष्क पर अनेक भाषणों दिये थे। उसने "Physiognomy Insanity A natomy of the Brain, Natural laws of man, Education founded on tne nature of man" आदि पुस्तकें लिखे हुए हैं। वह १८३२ के नवम्बर ता० १० यह क्षणभंगुर दुनिया छोड़कर चले गय। तद्पश्चात् स्काटलेंड का ज्योर्ज कोम्ब नाम का प्रसिद्ध धारा शास्त्री जो स्परझीयक का शिष्य था, उसने यह मस्तक विद्या पर लिखने का आरम्भ किया। उसने (Constitution of man) नाम का अति सुन्दर ग्रन्थ लिखा है, जिस की लाखों कापियों थोड़ा समय में बिक गई थी। उसके भाई एन्ड्र-कोम्ब ने भी मस्तक विद्या के सम्बन्ध में बहुत ही पुस्तकें लिखे हैं। भी० कोम्ब ने भी अमरीका में व्याख्यानों के लिये आमन्त्रण होने से जाना पड़ा था। वहाँ जाने के पीछे युनाइटेड स्टेटस में उसने बहुत ही व्याख्यान दिये। जो सुनने के लिए वह समय के बड़ा बुद्धिशाली और विद्वान लोकों को ठठ्ठ मिलती थी। स्परझीयम के मृत्यु पश्चात् कोम्ब और स्परझीयम के ग्रन्थों, अमरिका में प्रसिद्ध करने में आये और उस समय से मस्तक विद्या का प्रचार अमरिका में भी बढ़ने लगे। फाउलर ब्रधर्स, वो इस समय वहाँ की आमहर्स्ट कालेज में पढ़ते थे उन्होंने इस विद्या के महत्व से आकर्षाई उसके प्रचार को प्रगति देने का आरम्भ किया। ओ० एस० फाउलरने इस मस्तक विद्या पर "Human science." और "Sexual science." नाम के दो बड़े ग्रन्थ लिखे हैं। और एल० एन० फाउलर इंग्लेंड में फ्रेनोलोजीस्ट नाम से अत्यन्त प्रसिद्ध था। वे दोनों भाईयों ने मस्तक परीक्षा का ही कार्य वर्षो तक, लगभग पचहत्तर वर्ष किया है। वे दोनों ने इस विद्या को बहुत ही प्रगति दी है।

इंग्लेंड और अमरीका में इस विद्या का अधिक अच्छा प्रचार दिनप्रतिदिन बढ़ता ही रहा है। फाउलरवेल्स, नेलसन सीझर आदि कम्पनियों ने इस विषय पर अति विस्तृत साहित्य प्रकाश में रखे हैं। तब हमारे वहाँ उसके मुकाबिल कुछ भी नहीं दिखता।

ई० स० बीसमी सदी का आरम्भ में बम्बई प्रान्त में श्री चतुर्भुज भारद्वाज नाम के गृहस्थ मस्तक परीक्षा का कार्य करता था, और कितने एक प्रतिष्ठित प्रशंसकों की ओर से यह विद्या की कदर में उनको कितने ही पुरस्कार और सुवर्ण का मेडल (पदक) मिले थे। ई० स० १९१३ में बम्बई में श्री

गिरधरलाल मेहता की इस मस्तक शास्त्री की साथ भेंट हुई, वह मस्तक परीक्षक की प्रेरणा पर से श्री गिरधरलाल जी ने ऊपर विवरण द्वारा दिखाये हुए प्रसिद्ध मस्तिष्क शास्त्रीओं के ग्रन्थों का अभ्यास किया और उस पर से अपने "मानवशास्त्र" नाम का ग्रन्थ गुजराती में ई० स० १९१६ में प्रसिद्ध किया था। तद्पश्चात् ४० वर्ष के बाद इस गुजराती ग्रन्थ का अभ्यास और आधार पर से इस में सुधार, वृद्धि और योग्य संस्करण कर मेरा भारत निवासी भाई, बहिनों की सेवा में मैं मस्तक विद्याको हिन्दी भाषामें रखती हूं। यह सिवाय दूसरा कोई ग्रन्थ इतनी समझ देने वाला प्रकाश में आया हो ऐसे श्री गिरधरलाल जी के और मेरे जानने देखने में नहीं आये।

डा० गॉल, स्परझीयम ज्योर्ज कोम्ब और ओ० एस० फाउलर आदि मस्तिष्क ज्ञान के अन्वेषकों ने मनुष्य जाति पर बड़ा भारी उपकार किया है। इस लिये मैं हृदय से वे सब का धन्यवाद करती हूं।

मस्तकविद्या अथवा मानसशास्त्र अनुपम और अद्वितीयहै। हम हमारा गुण, स्वभाव और चरित्र्यविषय में अनेक रीति से अज्ञात है। हमारे आत्माके अनेक उपयोगी कमरा और उसमें बैठे हुए देवताओंको हम जानते नहीं। वह सबका दर्शन मस्तक विद्या करा देती है। इनका प्रत्यक्ष प्रमाण मस्तक विद्या का ग्रन्थ पढ़ने वाले पाठक गण को अवश्य मिल जायगा।

मानसशास्त्र धर्म, नीति, सदाचार सिखाते हैं और मनुष्यका वर्ताव दिखाकर मानवता लातेहै और मानवता में देवका दैवत देकर देव बनाते है। इतना इनकी अन्दर सामर्थ्य है।

मस्तिष्क विद्याके यह ग्रन्थके शब्द शब्दमें से विविधि प्रकारके ज्ञान युक्त रसके झरणे बह रहे हैं। उनका रसास्वाद सद्गुण सम्पन्न बुद्धिशाली सदभागी पवित्र आत्मा ही पढकर लेयेंगे। पढने में जैसे जैसे आगे बढ़ेगा वैसे वैसे अधिकाधिक आनन्द मिलेगा।

मनुष्यमात्र भूलको पात्र है और ऐसे गहन विषय में अनेक कारणों से गलती होना वह सम्भावित है परन्तु सुज्ञ वांचक वर्ग "यत्सारभूतं तदुपासनीयं" ऐसा समझकर दोषोका त्यागकर, गुण ग्रहण करेगा ऐसी मेरी नम्र प्रार्थना है।

अन्त में यह मस्तक विद्याका ग्रन्थजन समूहकी शारीरिक, आत्मिक तथा सामाजिक गति, स्थिति और कृति आदिको सुधारनेमें तथा मनुष्यके मूल स्वरूप या शक्तिको स्पष्ट करनेमें सहायभूत होयेंगे तो मेरा प्रयत्न सफल हुआ समझूंगी।

चंचलबहिन मणिकलाल पाठक
प्रधाना आर्यसमाज टंकारा (सौराष्ट्र)

मस्तिष्क विद्या के आद्य अन्वेषकों

डा० फ्रान्सीस जोसफ गॉल

डॉ० स्परझीयम

डा० फ्रान्सीस जोसफ गॉल को मिला हुआ पदक

आ० एस० फाउलर
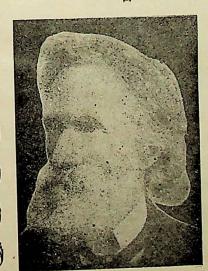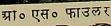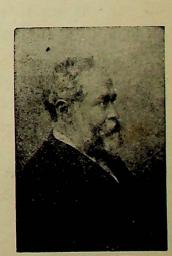
माथ्यू विलयम्स

A STRONG CONVICTION

" L beg to state that my Phrenology is the old phrenology of Gall and his scienltific followers the study of which l commenced more than half a century ago and have continued ever since with ever increasing conviction of the solid truth of the great natural laws it has revealed, and of its Pre-eminence as the highest and most important of all the sciences, bing the only philosophy of mind that rests upon a strictly inductive basis,.

"L believe that its general acceptance will contribute as much to the moral and social progress of man as theinductive study of the physical sciences has contrbuted to his physical power and progress, and therefore the best service L can possibly render to my follow-creatures is to devout the rest of my life to the work."

W. MATTIEU WILLIAMS
AUTHOR OF
"VINDICATION OF PHRENOLOGY"

दृढ़ विश्वास

मैं निवेदन करना चाहता हूं कि मेरा मस्तिष्क विज्ञान वही प्राचीन मस्तिष्क विज्ञान है जो 'गोल' और उसके वैज्ञानिक अनुयायिओं का था। इसका अध्ययन मैंने ५० वर्ष से भी पूर्व आरम्भ किया था और तभी से यह चालू है। मुझे अधिकाधिक विश्वास होता जाता है कि इसके द्वारा प्रकट किये गये महान और नैसर्गिक नियम सत्य हैं, समस्त विज्ञानों में यह विज्ञान सर्वोत्तम एवं सर्वाधिक महत्व पूर्ण है, तथा यही एक ऐसा मनोविज्ञान है जो अनेक उदाहरणों द्वारा सामान्य नियम को निर्धारित करने के नियम पर पूर्णतया आश्रित है।

मेरा विश्वास है कि इसके जन साधारण द्वारा अपनाये जाने से मानव की नैतिक और सामाजिक उन्नति में उतनी ही प्रगति होगी जितनी की पदार्थ विज्ञान के अध्ययन से उसकी भौतिक शक्ति और उन्नति के रूप में हुई है।

अतैव, सर्वोत्तम सेवा जो मैं अपने साथी प्राणधारियों की कर सकता हूं वह सम्भवत: अपने शेष जीवन को इस विज्ञान के प्रति कार्य करके ही कर सकता हूं।

डबल्यू मैथियू विलिम्स
'मस्तिष्क विज्ञान की सम्पुष्टि' का लेखक

डॉ० गॉ० ने पशु पक्षियों का भी सिर की तलाशी कर उन के अन्दर की उनकी शक्तियां को न्यूनाधिकता दिखाई है और इस के अनुसार ही उनका वर्ताव का वर्णन किया है। तत्तद् अवयव का स्थान मनुष्य के अनुसार ही है।
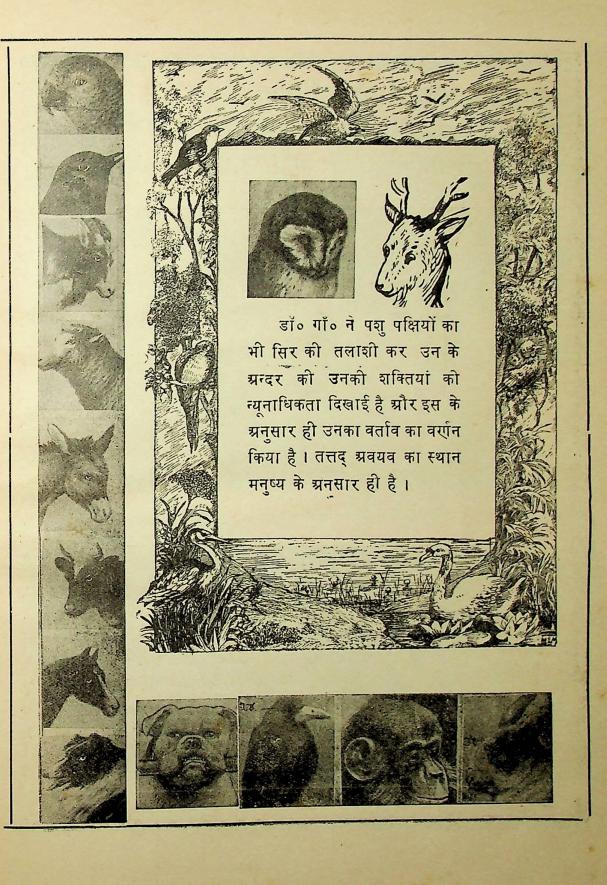
मानसिक शक्तियाँ का अतियोग अथवा हीन योग का कारण से मनुष्य का स्वभाव-वर्तन विकृत हो जाता है। उन्माद आदि होने से जीवन दुःखमय बनता है।

संशयोत्पादक
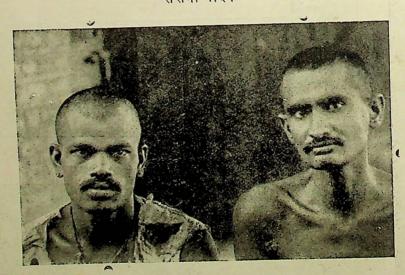
Maniac

पागल—बुद्धि की सम्पूर्ण न्यूनता (दोनो के कपाल का. मुकाविला करना) बुद्धि की प्रबलता.

बुद्धि की प्रबलता

औदास्यभाव. भक्ति का अतियोग.
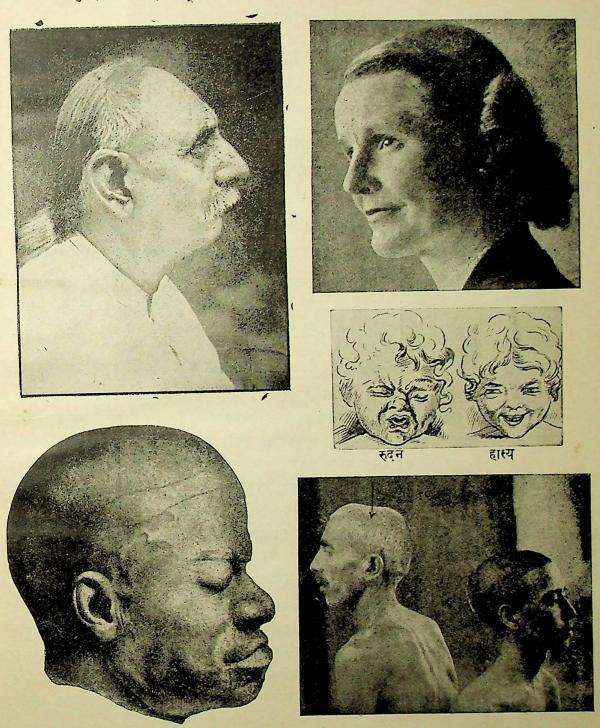
ओ३म्

प्रकाशकीय वक्तव्य

महर्षि दयानन्द सरस्वती की महनीया जन्मभूमि के दर्शनों की चिरपोषित लालसा को तृप्त करने के लिये जब अपने दस साथियों सहित मैं टंकारा पहुंचा तो उसका एक तात्कालिक आनुषङ्गिक फल मुझे यह प्राप्त हुआ कि परम तपस्विनी बहिन चंचलदेवी जी के मुझे दर्शन हुए। उनके पवित्र जीवन, व्रतानुष्ठान, ऋषिभक्ति तथा तपोनिष्ठा को देख कर मैं गद्‌गद् हो गया। २३ वर्ष पहले समस्त संसार से नाता तोड़ कर उन्होंने इस पवित्र भूमि में पदार्पण किया था, मन में केवल एक साध थी-ऋषिभूमि की गोद में बैठकर अध्यात्म-साधना करते हुए उसके अजर उपकार के प्रति अंशत आनृण्य-प्राप्ति। उस समय तक दयानन्द-भास्कर के उदय का यह क्षितिज आर्यों की दृष्टि से प्राय: ओझल था। सचमुच यह कैसी विडम्बना थी कि देश-विदेश में हजारों शाखा-प्रशाखाओं से प्रसृत आर्यसमाज के जन्मदाता आचार्य की वसति में आर्यसमाज का स्थान और प्रचार भी न हो। ऐसी दशा देख कर चंचल बहिन का ममता-मसृण मातृ-हृदय इस क्षोभ को सहन न कर सका और फलस्वरूप टंकारा को ही उन्होंने अपनी आराधना-स्थली के रूप में स्वीकार किया। इन २३ वर्षों में उन्होंने कन्या-शिक्षण, धर्मोपदेश आदि कार्यों के अतिरिक्त टंकारा में निजी उद्यम से धन संग्रह करके आर्यसमाज मन्दिर के साथ-साथ पुस्तकालय, अतिथिगृह, व्याख्यान भवन आदि सुन्दर भवनों का निर्माण कराया है।

ई० सं० १९२६ में भारत के अग्रगण्य आर्यों ने टंकारा ही महर्षि का जन्म स्थान है, ऐसा निर्णय कर वहां बड़ा भारी जलसा किया। भारत के कोने-कोने से आर्य महाशय एकत्र हुए और महर्षि के कार्य एवं वेद धर्म पर अनेक व्याख्यानों द्वारा जनता में अच्छी जागृति प्रकट की थी। ऐसा इतिहास पूज्य बहिन जी ने मुझे सुनाया। परन्तु उनके उत्साह ने महर्षि के नाम और कार्य पर कुछ स्थायी स्वरूप स्थापित किया हो, ऐसा मेरे देखने में नहीं आया। मैंने तो जो देखा वह सब श्री चंचल बहिन, श्री शान्ता बहिन और पूज्या चंचल बहिन के कथनानुसार श्री गिरधरलाल जी मेहता इन तीनों मूर्तियों का कार्य है।

श्री चंचल बहिन ने कहा कि इन से दो साल पूर्व सन् १९३२ में श्री गिरधरलाल गोविन्द जी मेहता कच्छ निवासी सेठ राघव जी पुरुषोत्तम लोहाना द्वारा स्थापित कन्या-ब्रह्मचर्याश्रम का संचालन कर रहे थे, उन्हीं की प्रेरणा पर बहिन जी ने वहाँ पहुंच कर उनके सहयोग से सब काम प्रारम्भ किया । दोनों देवियों ने अत्यन्त भारी परिश्रम उठाया है । धन एकत्र करने के निमित्त भारत के अनेक प्रदेशों में घूमी हैं, अपनी ओर से भी यथाशक्ति धन की सहायता दी है, इसी रीति से टंकारा में समाज-मन्दिर आदि भवनों निर्माण में अपना तन, मन और धन से सम्पूर्ण सहयोग दिया है ।

पू० चंचलबहिन का अतिथि-सत्कार भी अनुपम है, जो कोई भी आर्य ऋषि की जन्म-भूमि का दर्शन करने जाता है, वही उनके अतिथ्य का गुणगान करता आता है । मैं भी इसका अपवाद कैसे हो सकता हूं ?

इस गुणमाला के बीच उनका विद्यामणि विशेष रूप से चमत्कारक है। प्रथम दर्शन के समय ही जब उन्होंने मेरे साथियों के मस्तकों का निरीक्षण करके उनके गुण, वृत्ति, स्वभाव तथा चरित्र आदि का निरूपण करना आरम्भ किया तो मैं स्तब्ध रह गया। कम से कम मेरे लिये तो यह एक सर्वथा अपूर्व एवं विलक्षण विज्ञान था । किसी अन्य से सुनता तो सम्भवतः मैं इसकी सत्यता पर विश्वास न कर पाता, परन्तु प्रत्यक्ष को कल्पना कहने का साहस कौन कर सकता है ? तभी मुझे लगा कि ऐसी अद्भुत एवं लोकोपयोगी विद्या यदि इस विदुषी बहिन के जराजीर्ण तथा रोगक्षीण शरीर के साथ ही प्रयाण कर गयी तो राष्ट्र एवं संसार की भारी क्षति होगी । अतः मैंने संकल्प करके बहिन जी से इस के प्रकाशन का अनुरोध किया । उन्होंने इसे स्वीकार किया, जिस के फलस्वरूप उनकी यह अनुपम कृति विज्ञानानुरागी जनों के हाथों तक पहुंच पायी है ।

लेखिका का मन्तव्य है कि "मस्तक मनुष्य के मन की सर्व शक्तियों और वृत्तियों को प्रदर्शित करने का मुख्य साधन है । श्रोत्र, त्वक्, चक्षु और नासिका आदि इन्द्रियों के अनुसार मनुष्य के मन की भिन्न-भिन्न शक्तियों, वृत्तियों, भावों तथा इच्छाओं के लक्षण दर्शाने वाले मनुष्य के मस्तक में भी पृथक्-पृथक् मानस अवयव हैं, जिन का अपना-अपना पृथक्-पृथक् मानस व्यापार का कार्य करने के लिये निर्माण हुआ है ।" उदाहरण के लिये मनुष्य की संयम, धैर्य तथा निग्रह आदि वृत्तियों के दर्शाने वाले ऐसे अवयव मस्तक में विद्यमान हैं जिन्हें देख कर इस विद्या का विज्ञाता पुरुष किसी भी बालक के सम्बन्ध में अपनी सम्मति बता सकता है । यही सिद्धान्त परोपकार अथवा स्वार्थ की वृत्ति, क्षुधा-बुभुक्षा वृत्ति, ब्राह्मण-वैश्य वृत्ति आदि सभी बातों पर लागू होता है । उनका कहना है कि प्रत्येक वृत्ति के द्योतक कुछ विशेष मानस अवयव हैं, ऐसे मानस अवयवों के नाम, स्थान, कार्य, संवृद्धि, क्षय तथा शिक्षा का विकास करने के लिये उनकी यथायोग्य, विकृत आदि अवस्थाओं का निर्णय करना यह मस्तक विद्या का सब से बड़ा और महत्त्वपूर्ण कार्य है । वह तो यहाँ तक दावा करतो हैं कि इस विद्या के द्वारा मतिभ्रम, उन्माद, ईर्ष्या, वैर आदि विकारों की सफल चिकित्सा भी साध्य है। इन्हीं सिद्धान्तों को आधार मान कर इस पुस्तक में मस्तक विद्या का तात्त्विक प्रतिपादन किया गया है । लेखिका के

ज्ञान का आधार न केवल एकदेशीय अपितु इस विषय के निष्णात कई पाश्चात्य विद्वानों के भी ग्रन्थ हैं। प्रत्येक वृत्ति का निरूपण करते समय साथ में विभिन्न मस्तकों के ऐसे चित्र भी पुस्तक में स्थान-स्थान पर दिये गये हैं, जिन से पाठक को विषय हृदयङ्गम करने में सहायता मिलती है। सारा विषय इतना विस्तृत किया गया है कि मनुष्यों की जितनी भी सम्भावित वृत्तियां हैं, सभी पर सुन्दर प्रकाश पड़ गया है। अंग्रेजी आदि विदेशी भाषाओं में इस विषय पर ग्रन्थ हैं, परन्तु राष्ट्रभाषा हिन्दी में तो अपने ढंग का यह सर्वप्रथम पुस्तक है। विषय, विवेचन, शैली तथा मौलिकता आदि सभी दृष्टियों से पुस्तक बहुत उपयोगी सिद्ध होगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

चंचल बहिन का शरीर वार्धक तथा व्याधि के कारण अत्यन्त कृश हो गया है, वर्षों से प्रायः उनकी ऐसी अवस्था रहतो है कि वे चल-फिर भी नहीं सकतीं। इस विकट परिस्थिति में भी उनका साहस अदम्य है, जिसका ज्वलन्त प्रमाण यह पुस्तक स्वयं है। इसके लेखन के अतिरिक्त प्रकाशन में भी उन्होंने असीम कष्ट उठाया है। गत वर्ष छपवाने के लिए लेख और ब्लाक मेरे पास भेज दिये थे मैंने वह प्रेस वालों को दिये; परन्तु इसकी रचनानुसार ब्लाक आदि रखने में, प्रूफ शुद्ध करने में गड़बड़ हो गईं, इसलिये बहिनजी को स्वयं यहाँ तक आना पड़ा। गत वर्ष आई थीं तो काम पूरा न हुआ, यहाँ की शीत ऋतु सह न सकने से चली गईं, फिर आगई दो वर्ष कई-कई मास देहली में ठहरना पड़ा। देहलो का जलवायु उनके बिगड़े स्वास्थ्य के लिये तो और भी कष्टप्रद रहा, परन्तु उन्होंने अपने संकल्प की पूर्ति में इस प्रकार की बाधाओं की कदापि चिन्ता नहीं की। इनके साथ ही इनकी सहचरी बहिन शान्ता देवी का उत्साह एवं सेवाभाव भी अति स्तुत्य है। शान्ता जी भी चंचल बहिन के साथ ही छाया की भांति लगी हुई उनकी सेवा-शुश्रूषा सहोदर भगिनी की भावना से करती हैं। टंकारा के सारे कार्यों में उनका पूरा सहयोग है। यदि शान्ता जी इस प्रकार अनन्य भाव से चंचल बहिन का साहचर्य एवं सेवा-शुश्रूषा न निभातीं तो इस प्रकार के कार्यों की सिद्धि की सम्भावना ही न रह जाती। अतः लेखिका के साथ-साथ बहिन शान्ता जी का सहयोग भी इस पवित्र कार्य में स्मरणीय है। मैं इन दोनों तपस्विनी देवियों के प्रति सश्रद्ध नतमस्तक हूं जिन्होंने धार्मिक तथा सामाजिक कार्यों के साथ साहित्यिक क्षेत्र में भी ऐसा ठोस कार्य किया है। उनकी यह साहित्यिक कृति सर्वथा अपूर्व एवं अभिनन्दनीय है। आशा है विद्या-व्यसनी सज्जन इस नये विज्ञान के परिचय के लिये इस पुस्तक को अवश्य उपादेय समझेंगे और इस दिशा में और अधिक अनुसन्धान समार के समक्ष प्रस्तुत करने में सफल होंगे।

दिनांक ३१-१०-५७ — भगवान् देव आचार्य

आभार प्रदर्शन

गुणी जन गुण का सत्कार करते हैं, ज्ञानी जन ज्ञान का आदर करते हैं और ज्ञानी जनों पर परमात्मा की कृपा दृष्टि होती है। मेरे मस्तक विद्या के ग्रंथ को प्रकाशित करने का कार्य मैंने ईश्वर के विश्वास पर छोड़ दिया। ईश्वर को कृपा से अथवा प्रेरणा से इस ग्रन्थ को प्रकाशित करने का कार्य गुरुकुल झज्जर के प्राणस्वरूप आचार्य श्री भगवान् देवजी ने अपने ऊपर ले लिया। मावसशास्त्र सदृश कल्याणकारी ज्ञान को जनता के हृदय तक पहुंचाने का पवित्र कार्य अपने सत्यनिष्ठ भक्त आचार्य श्री भगवान्देव जी द्वारा करवाकर परमात्मा ने इनको यश और पुण्य का भागी बना दिया और इनके द्वारा मेरे व्रत को भी पूर्ण करवा दिया। यह सब सर्वदृष्टा, सर्वज्ञ परमात्मा की अलौकिक योजना का ही फल है। गुण और ज्ञान का मूल्यांकन सर्वज्ञ पिता परमात्मा ने गुण और ज्ञान की रक्षा करने वाले आचार्य श्री भगवान् देवजी के द्वारा करवाया है।

त्यागी और तपस्वी आचार्य भगवान् देवजी ने मस्तिष्क विद्या सम्बन्धी मेरे लेख को छपवाकर प्रसिद्ध न किया होता तो अत्युपयोगी ज्ञान जनता तक न पहुंच कर अन्धकार में ही विलीन हो जाता, क्योंकि इस जीवन में मैं उसको पुस्तकाकार देने में असमर्थ थी। इसलिए मैं पूज्य आचार्य जी का जितना आभार मानूं उतना थोड़ा है। मेरा अन्तःकरण बार बार आचार्य भगवान् देवजी का अभिनन्दन करता है और आशीर्वाद देता है। मैं पूर्ण भक्ति भाव से वन्दना करती हूं, दोनों हाथ जोड़कर मस्तक नमाती हूं।

श्री आचार्य जी को इस मस्तक विद्या का रस कैसे लगा? श्री आचार्य देव अपने साथिओं को साथ दो समय टंकारा पधारे थे। पहिल पांच मूर्ति पधारे थे, फिर अपना गुरुकुल के नो ब्रह्मचारी और एक नित्यानन्द नाम के सन्यासी महाराज की साथ टंकारा पधारे थे। उस समय मैंने वे सबका मस्तक देखकर इनका चरित्र कैसा है वह सुनाया था और मस्तक विद्या सम्बन्ध का साहित्य दिखाया था। यह सब जानकर इनकी बुद्धि शक्ति ने शीघ्र ग्रहण कर लिया कि अवश्य इस मानसशास्त्र जानने जैसा और सीखने और सीखाने जैसा है। ऐसा दिल में बैठने से मस्तक विद्या पर का मेरा लेख अपना सुधारक में दिया और इस शास्त्र हिन्दी भाषा में पुस्तकाकार में रखने को अपनी इच्छा प्रकट की। इनका फल स्वरूप यह अमूल्य ज्ञान हमारी राष्ट्र भाषा हिन्दी में रखने मैं भाग्यशाली बन सकी। इससे मैं हृदय से पूज्य आचार्य भगवान् देवजी का धन्यवाद करती हूं।

टंकारा हमारे गुरुदेव महर्षि दयानन्दजी की जन्म भूमि के कारण यात्रा का एक बड़ा स्थान बन गया है। इसलिए वहां मेरे घर पर अनेक यात्रीओं आते ही रहते हैं। इसमें जो ज्ञानी और गुणी जन है, वह ज्ञान, गुण और कार्य का मूल्य करते हैं। पूज्य आचार्य देव ने मेरी सेवा की कदर की, वह इनका आत्मा की योग्यता दिखाते हैं। सब कीमत जानने वाले जौहरी नहीं होते। परमात्मा पूज्य आचार्य भगवान् देव जी को अत्यधिक सत्यनिष्ठा, न्याय परायणता, गुण ज्ञान और सेवार्थी की कदर

करने की शक्ति, धर्म, बल, बुद्धि, यश, सुन्दर स्वास्थ्य और दीर्घ आयुष देवे ऐसा मेरा अन्तर का आशीर्वाद और प्रभु से प्रार्थना है।

व्यवस्थापक श्री ब्र० वेदव्रत जी भाष्याचार्य उक्त आचार्य जी द्वारा संचालित गुरुकुल का योग्य संचालन अपनी कुशलता से कर रहे हैं। इन्होंने मेरे मस्तक विद्या के लेख का आरम्भ का थोड़ा प्रकरण को शुद्ध हिन्दी स्वरूप देने में मुझे सहायता दी है अतः मैं भाई श्री वेदव्रतजी का प्रेम पूर्वक आभार मानती हूं।

ऐसे उत्साही अध्यापक तथा व्यवस्थापक के हाथों में गुरुकुल का संचालन है यही गुरुकुल के भावी स्थिरत्व और अभ्युदय का लक्षण है।

श्री गिरधरलाल गोविन्दजी मेहता

मस्तक विद्या के अन्वेषक डा० फ्रान्सीस जोसफ गॉल के अंग्रेजी पुस्तकों के आधार पर श्री गिरधरलाल गोविन्दजी मेहता ने गुजराती में "मानवशास्त्र" नाम से प्रकाशिन किया। उस मानव शास्त्र ग्रन्थ के आधार पर विशेष अनुभव से उसमें सुधार और वृद्धि तथा योग्य संस्करण करके मानस शक्तियों को बतलाने के लिए लगभग प्रत्येक पृष्ट पर चित्र देकर सुन्दर स्वरूप बनाकर हिन्दी तथा गुजराती में लिखने की प्रेरणा मुझे मिली। अतः मैं मुरब्बी भाइ श्री गिरधरलाल गोविन्दजी मेहता का पूज्य भाव से हृदय से आभार मानती हूं। परमात्मा उनकी दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करें।

डा० फ्रान्सीस जोसफ गॉल

मानसशास्त्र अथवा मस्तक विद्या मानसिक गुणों को प्रदर्शित करने वाली, अनेक प्रमाणों से सिद्ध हुई विद्या है, जो जीवन सुधारने के लिए तथा शिक्षण की सफलता के लिए अत्यन्त उपयोगी है। अपना गुण, दोष, स्वभाव, आचरण और चरित्र कैसा है, यह केवल पांच मिनट में बतलाया जा सकता है। ऐसा ज्ञान इस पुस्तक में दिया है। यह सब प्रताप महात्मा डा० गॉल का ही हैं।

मानसशास्त्र जैसे अनुपम और अद्वितोय ज्ञान को देकर हमारे मनुष्य जोवन को सफल बनाने का मार्ग दिखलाने वाले महात्मा डा० गॉल की ओर मेरा मस्तक पूर्ण भक्ति भाव से झुक जाता है।

परमात्मा इस महान आत्मा को शान्ति देवे और मनुष्य समाज इस महात्मा के दिये हुए दिव्य ज्ञान मानसशास्त्र को अपनावे।

श्री शान्ता बहिनशाह मेरी साथ अडतीस सालसे रहती है, और मेरा जीवन की साथ इनका जीवन ओतप्रोत हो गया है; इनका सहयोग से मैं मानसशास्त्र जैसा गहन विषय लिखने और प्रसिद्ध करने भाग्यशाली वनी हूं इससे मैं शान्ता बहिन का धन्यवाद करती हूं और प्रेम पूर्वक आभार मानती हूं। परमात्मा से प्रार्थना करती हूं कि इनको वल, बुद्धि, यश, सुन्दर स्वास्थ्य और दीर्घ आयुष देवे।

श्री पण्डित रामचन्द्रजी देहलवी ने तथा श्री जगन्नाथजी ने, श्र। नन्दकिशोर खन्ना जी ने, श्री रघुवीरसिंह शास्त्री जी ने और श्री रूपलाल जी ने मेरा पुस्तक की सत्यता, उपयो गिता अपनी सम्मति देकर सिद्ध कर दिखाई है, इससे मैं वह सब महानुभावोंका मेरा आत्मा में पूरा भक्ति भावसे सन्मान करती हूं और आभार मानती हूं।

सीताराम बाजार आर्य समाजके गत सालके प्रधान श्री रूपलाल जी, मंत्री श्री देशराजजी तथा उपमंत्री श्री जगन्नाथजी ने मुझे गत साल समाज मन्दिर में ठहरनेकी व्यवस्था कर दी थी और अन्य कितने ही प्रकार की आवश्यक सहायता भी दी थी। वे तीनों महानुभावों धार्मिक वृत्ति वाले, बुद्धिमान, उदार, सौजन्यशील, मनुष्यकी योग्यता समझने वाले और गुण, ज्ञानकी कदर करने वाले हैं। उन्होंने मुझे पिछली साल अच्छी सहायता दी थी और अब समय भी मेरी जरूरत पूरते ही रहे हैं,आवश्यकता की सम्भाल रखते ही रहेहै। इससे मैं वे तीनों बन्धुओंका पुराभवित भावसे आदर करती हूं तथा हृदयसे आभार मानती हूं।

अब समयका प्रधान ईश्वरदास, मंत्री श्री नन्दकिशोरदास जी खन्ना तथा स्त्री समाजकी प्रधाना श्री अंगुरा देवी, उपप्रधाना श्री मोहनदेवी और मन्त्राणी श्री सत्यवतीदेवी, जिन्होंने कर्तव्य ज्ञानसे मेरा कर्तव्यको समझकर, अपनी धर्म भावना तथा सज्जनता दिखाई मुझे इस समय भी समाज मन्दिर में रहनेको स्थान दिया इससे में वे बन्धु भगिनीओंका धन्यवाद करती हूं और हृदय से आभार मानती हूं।

मस्तिष्क शास्त्र को प्रकाशित करनेमें धनकी अत्यन्त ही आवश्यकता रहती है। जिस की पूरती में मोरबी (सौराष्ट्र) निबासी श्रीमगनलाल सोमैयाने रु० ५००) की सहायता दी है और राजनांदगांव निवासी श्री जमना बहिन ने रु० १५०) दिये हैं वे दोनों भाई, बहिन का मैं सन्मान कीं साथ आभार मानती हूं और धन्वाद करती हूं।

मेरठ निवासी विश्वम्भर सहाय प्रेमी, सम्पादक पंचायती राज जीन्होंने मुझ चार ब्लाक का उपयोग करने दिये है। इससे मैं इनका आभार मानती हूं और प्रेम से धन्यवाद करती हूं।

ऊपर के सब महानुभावों को परमात्मा वल, बुद्धि, धर्म, नीति, न्याय, यश, सुन्दर स्वास्थ्य और दीर्घ आयुषदेवे ऐसी मैं परम कृपालु परमात्मा पिता को प्रार्थना करती हूं।

मस्तक विद्या के ग्रन्थ में धनकी सहायता

श्री मगनलाल त्रीभोवनदास सोमैया

श्री मगनलाल त्रीभोवनदास सोमैया मोरबी (सौराष्ट्र)

आपने मेरी एक पुस्तीका "प्रेरणाका प्रभाव और संकल्प बलकी सिद्धि" छपाने में रु० ५००) पांचसो की सहायता दी थी और अब मस्तिष्क विद्या के पुस्तक को प्रकाश में रखने के लिए पुन: पांचसो रुपये देने की उदारता दिखाई है। इस पर से उत्तम साहित्य प्रत्येका आपका अनुराग और सद्भावना प्रत्यक्ष होते हैं। आपने लोक कल्याण के मार्ग में हजारों रुपये का दान दिये हैं और देते ही रहते हो।

आपकी अन्दर दूसरे भी कितनेक प्रशंसाके पात्रगुण हैं:—आपका घर सरकारी अधिकारीओं से, कांग्रेसी कार्यकरों से, सम्बन्धी, स्नेही जनो से, विद्यार्थी और मददाभिलासीओं से सर्वदा भरा हुआ रहता है और किसी भी समय देखे तो सोमैया भाई अतिथि मण्डलसे घेराये हुए और उन्हों का आदर सत्कार करने में लगा रहा दीखते हैं। चिज वस्तु लाने रखने के लिये आज्ञा पर आज्ञा देते रहतेहै, भोजन गृह चलता ही रहता है और भोजन पाने वाले की पंगत लगी हुई रहती है। आपकी धर्म पत्नी भी आपकी भावनाकों अनुकूल है। ऐसे आपका सदन आनन्दोत्सव से सारा दिन गर्जते ही देखने में आता है। आपको मैं धन्यवाद देती हूं।

श्रीमती जमना बहिन (श्री बाबुलाल पोपटलाल मानेक की धर्मपत्नी) ने मस्तक विद्या प्रकाशन में रु० १५०) देढसो दिये हैं। मैं इनका हृदयसे धन्यवाद करती हूं।

स्वराज प्राप्ति के लिये अपना सर्वस्व का त्याग करने वाले तपस्वीओं

देश भक्त श्री दादाभाई नवरोजी

परोपकारी महात्मा गोखलेजी

श्री महाराजा सयाजीराव गायकवाड
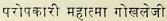
अपने सारा राज्य में शिक्षा फरजियात की और अच्छुत जाति का उद्धार किया
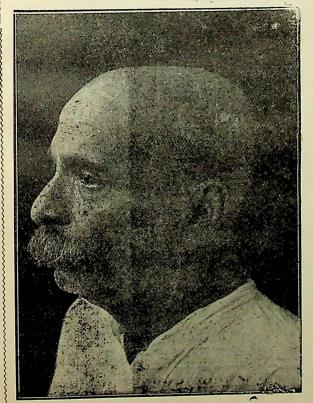
पू० लोकमान्य तिलक महाराज।

आप लोकमान्य इतने लिये के स्वराज प्राप्ति में सामान्य जन समाज को तैयार करने की आपने घोषणा की। स्वराज मेरा जन्मसिद्ध हक है और वह मैं प्राप्त करूंगा ऐसी रणभेरी आपने बजा दी। आजादी के सैनिकोंके लिये आप ध्रुव तारकसम था। केसरी पत्र द्वारा अंग्रेजी शासनकी नीति आपने प्रजा को समझादी। स्वराज प्राप्ति के लिये स्वार्थ त्याग, स्वाश्रय, परिश्रम और विदेशी शासन सामे बहिष्कार आदि शस्त्र आपने दिया। राष्ट्र का उद्धारके कारण में आपने आपका सर्वस्व का त्याग कर दिया। आपने स्वातन्त्र्य प्राप्ति तथा उसकी रक्षा और लोगों में सुख समृद्धि की स्थापना के लिये ऐक्य (संगठन) का पाठ पढ़ाया।

स्वराज शासको सच्चे संरक्षकों बने.
महात्मा गांधी जी की आज्ञा को अनुसरें.
प्रजा के रामराज्य के स्वप्नों सिद्ध करें.

पू० राष्ट्रपिता महात्मा गांधी

श्री प्रधान मन्त्री जवाहरलाल नेहरू

राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद

आजाद हिन्द फौज के प्रणेता
वीर सुभाषचन्द्र बोझ
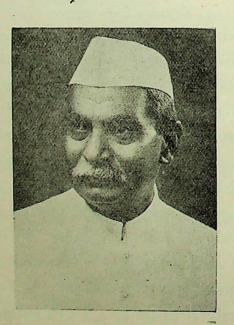
प्रसिद्ध विद्वानों की संमतियां

श्री पं० रामचन्द्र देहलवी जी की सम्मति

श्री पं० रामचन्द्र देहलवी

श्रीमती चंचलबहिन जो आर्य समाज टंकारा (सौराष्ट्र) की प्रधाना हैं, वे "मस्तक विद्या" पर एक ग्रन्थ लिख रहीं हैं, और जिसका प्रकाशन पूज्य आचार्य श्री ब्र० भगवान् देवजी गुरुकुल झज्जर (रोहतक) ने अपने ऊपर लिया हुआ है, वे जब आकर आर्य समाज सीताराम बाजार में, जहाँ एक लम्बे काल से मैं ठहरा हुआ हूं, ठहरी तो उस समय उनसे मिलने का अवसर प्राप्त हुआ।

यह जानकर कि वे मस्तक विद्या में विशेषज्ञ है, मैंने स्वयं अपनी परीक्षा कराना चाहा। उनसे कहने पर उन्होंने समाज के भवन में बैठकर और मुझे सामने बिठा कर मेरे मस्तक को अपने हाथ की अंगुलियों से टटोलना आरंभ किया, और मेरे गुण कर्म और स्वभाव को वर्णन करने लगे। जो कुछ उन्होंने बताया वह सब सत्य था, परन्तु मित्र मंडली ने कहा कि हमको पूरा विश्वास नहीं है क्योंकि आप एक प्रसिद्ध पुरुष हैं आपके सम्बन्ध में पहले से ही वे सब कुछ जानती होंगी। इस पर बहिन ने आचार्य भगवान् देवजी का प्रमाण दिया कि उनके सामने कई अपरिचित पुरुषों की परीक्षा की और वह सब सत्य निकली।

संक्षेप में यह कि बहिनजी "मस्तक विद्या पर" एक ग्रन्थ लिख रही है जो अभी अधूरा है, मैंने उसे देखा है। आपने बड़ा प्रयत्न से यह ग्रन्थ लिखा है। शारीरिक अवस्था दुर्बल और क्षीण होने पर भी अनथक रूप से इसको पूर्ण करने में संलग्न हैं। मैं तो बड़े आश्चर्य में हूं कि इस अवस्था और कमजोरी में इतना परिश्रम! ग्रन्थ के तैयार हो जाने पर उसको पढ़ने से कई कई बातों की जानकारी होगी वह मुझे विश्वास है। मैं इनके प्रयत्न की सफलता को हृदय से चाहता हूं। कमजोर इतनी है कि मुझे हर समय भय लगता है कि कहीं इस ग्रन्थ की तैयारी से पूर्व चल न बसे। परन्तु मृत्यु भी इनकी कर्तव्य परायण, आत्मनिष्ठ, सुदृढ़ सूरत और शुष्क शरीर को देखकर निकट नहीं आती हैं।

आर्य समाज, बाजार सीताराम दिल्ली
ता० ११-९-५७

रामचन्द्र देहलवी
आर्योपदेशक

मस्तक विद्या का ग्रन्थ पू० पंडित जी को पूरा पढ़ने का समय मिला होते तो वे ग्रन्थ की योग्यता तथा उपयोगिता के सम्बन्ध में इससे भी अधिक, विस्तृत और असरकारक लिख सकते और उन्हों की भावना भी ऐसी थी, परन्तु पुस्तक पूर्ण होने पहिले ही आप देश का गौरव की रक्षा के लिये राष्ट्र भाषा आन्दोलन में जूझ पड़े, और सरकार के अतिथि बन गये। सरकार के सन्मान में से मुक्ति पाकर और हिन्दी भाषा स्वातन्त्र का विजय फल लेकर आ जाये पीछे मस्तिष्क विद्या को पूर्ण भावना से पढ़कर न्याय देने का अपना धर्म का पालन करेंगे ऐसी मुझे आशा है। लेखिका:—

श्री जगन्नाथ जी बी० ए० एल एल बी०, जे० डी०, प्रभाकर सिद्धान्त शास्त्री अपनी सम्मति देते हैं:---श्रीमती चंचल बहिन पाठक का 'मस्तिष्क विज्ञान' की विदुषि के रूप में सबसे प्रथम परिचय मुझे पूज्यपाद आचार्य भगवान् देव जी द्वारा मिला। आचार्य जी ने मुझे कहा था कि वे किसी भी मनुष्य का सिर देखकर उसका चरित्र एवं स्वभाव बता देती है ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि एक चतुर वैद्य किसी की नब्ज देखकर उसके रोग का निदान करता है। मुझे विश्वास न हुआ। किन्तु जब बहिन जी ने मेरा एवं मेरे बच्चों का, मेरे पिता जी और मेरे भाई का सिर देखकर उनका स्वभाव आदि ठीक बता दिया तो मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। स्वभाविक रूप में मुझे इस विद्या के जानने की

अधिक अभिलाषा हुई और इस पुस्तक की पाण्डु लिपी लेकर पढ़ डाली, इस पुस्तक में मस्तिष्क विज्ञान को सरल भाषा में पुरे विस्तार से समझाया गया है। यह ज्ञान साधारण एवं विद्वानों के लिये बड़ी उपयोगी हैं और बहुत हद तक उन्हें मस्तिष्क विद्या का परिचय करा सकेगी। यह इस विषय के भावी लेखकों का अति मात्रा में पथ प्रदर्शन भी कर सकेगी। किन्तु पूर्ण विद्या तो बहिन जी सरीखों के चरणों में बैठकर ही प्राप्त की जा सकती है। इसके तैयार करने में बहिन जी ने कठोर तप किया है। कहाँ टंकारा कहां देहली। इस पुस्तक के छपाने प्रूफ देखने आदि की व्यवस्था के लिए उन्हें दक्षिण पश्चिम के इस सुदूर ग्राम से कई बार देहली आना पड़ा! ७० वर्ष की इस वृद्धावस्था में भी मैंने बहिनजी को प्रातः से रात्रि के १०, ११ बजे तक इस कार्य में लगे हुए देखा है। देहली में इनके ठहरने का व्यय, उत्तम कागज छपाई आदि को देखते हुए पुस्तक का मूल्य भी कम है आशा है इस पुस्तक का सम्पूर्ण रूप से स्वागत होगा। ता० ३-११-५७ जगन्नाथजी

मन्त्री श्री नन्दकिशोरजी खन्ना
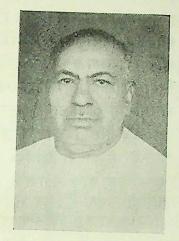
आर्य समाज बाजर सीताराम देहली के मन्त्री श्री की सम्मति।

गत मास के आरंभ में मुझे आर्य समाज टंकारा (सौराष्ट्र) की प्रधाना श्री चंचल बहिन जी से मिलने का शुभ अवसर प्राप्त हुआ। आप टंकारा से देहली पधारी और आर्य समाज बाजार सीताराम में ठहरी। आने और ठहरने का अभिप्राय पूछने पर ज्ञात हुआ कि आप "मस्तक विद्या" पर एक ग्रन्थ लिखकर उसे छपवाने के लिए देहली पधारी है। पुस्तक का विषय अत्यन्त गम्भीर है और बहिन चंचलता की वृद्ध अवस्था को देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि इतनी बड़ी आयु में आपने इतने गम्भीर विषय पर ऐसा ग्रन्थ लिखने का साहस कैसे किया! ग्रन्थ को एक नजर से देखने पर यह प्रतीत होता है कि इस ग्रन्थ में मनुष्यके अन्दर बसी हुई समग्र शारीरिक मानसिक तथा अध्यात्मिक शक्तियों—इसी रीति से उसके शुभाशुभ कार्य या प्रवृतियों की यथावत विवेचना करनी यह इस ग्रन्थ का विषय है और मानसशास्त्र का ज्ञान जन समूह में फैलाकर मनुष्य की सम्पूर्ण शक्तियों को योग्य मार्ग दर्शाकर मनुष्य जीवन का यथार्थ आनन्द और सुख प्राप्त कराकर लोक और परलोक के यथार्थ ज्ञानकी प्राप्ती द्वारा और जीवनकी सुधारणा द्वारा समग्र विश्वके पदार्थों का यथावत उपयोग और परम सुख और आनन्द जो जीवन का अन्तिम उद्देश्य है। उसको योग्य रीति से प्राप्त करने में सहायक हो इस ग्रन्थ का मुख्य प्रयोजन प्रतीत होता है। मैं श्री चंचल बहिन को इस ग्रन्थके लिखने पर बधाई देता हूं और आशा करता हूं कि जिस प्रयोजन की भावनासे उन्होंने इस ग्रन्थको इतने परिश्रम तथा विद्वता से उल्लेख किया है के आशा पूरी होगी अथवा यह मस्तक विद्या का ग्रन्थ जन समूह की शारीरिक, आत्मिक तथा सामाजिक गति, स्थिति और कृति आदि को सुधारने में तथा मनुष्यके मूल स्वरूप या शक्ति को स्पष्ट करने में सहायभूत होंगे मैं श्री चंचल बहिनजी को फिर वधाई देता हूं और इस ग्रन्थ को इतनी सुयोग्यतासे उल्लेख करने की अत्यन्त प्रशंसा करता हूं और उनकी चिर आयु की भगवानसे प्रार्थना करता हूं।

ता० ४-११-५७

नन्दकिशोर खन्ना
मन्त्री आर्य समाज बाजार सीताराम देहली

राष्ट्रभाषा स्वातन्त्र्य समिति के मन्त्री श्री रघुवीरसिंह शास्त्रीकी सम्मतिः—

"मानव के मानसिक गुण और प्रवृत्तियों का मस्तक के किस स्थान से उद्भव होता है अर्थात् मानव भिन्न भिन्न जो-जो कार्य व्यवहार करता है, वह मस्तक के किस स्थान द्वारा करता है, यह उसके मस्तक को देखकर केवल पांच मिनट में जाना जा सकता है।" इस स्थापना के साथ यह ग्रन्थ लिखा गया है। आपाततः (प्रथमदर्शन) सुनने मात्रसे मस्तक-विद्या की यथार्थता का विश्वास दुष्कर है,

परन्तु इसकी आधार लेखिका ने शरीर-विज्ञान के इस सिद्धान्त पर खड़ी की है कि मनुष्य की मानसिक शक्तियों के घटक विशिष्ट अवयवों को लेकर ही मस्तिष्क का निर्माण हुआ है, उदाहरण के रूप में निग्रह वृत्ति, प्रेमभाव, दया, हास्य वृत्ति, तर्कशक्ति, यशोभिलाष आदि सभी वृत्तियों के प्रदर्शक विशिष्ट अवयव मस्तक में हैं, जिन्हें देखकर इस विद्या का पारंगत मनुष्य बड़ी सरलता से इन लक्षणों अथवा वृत्तियों को बता सकता है। ग्रन्थ के आरम्भ में ही मानसिक वृत्तियों (शक्तियों) का वर्गीकरण करके उन्हें ६ वर्गों में विभक्त किया गया है और फिर प्रत्येक वर्ग की वृत्तियों का विभाजन करके ४४ संख्या में समाकलन किया गया है। सारे ग्रन्थ में इन छः वर्गों की ४४ वृत्तियों का एक-एक करके सविस्तर व्याख्यान किया गया है। किस वृत्ति या गुण का मस्तिष्क में कौनसा आश्रयभूत अवयव है, यह साथ ही विभिन्न चित्रों द्वारा प्रदर्शित किया गया है। इसका यह लाभ बताया गया है कि इससे मनुष्य को तत्तद् वृत्ति या गुण के विकास में भारी सहायता मिल सकती है। इस प्रकार सारे विषय को एक दार्शनिक अथवा वैज्ञानिक रूप में उपस्थित करने में लेखिका को बड़ी सफलता मिली है।

लेखिका का सारा ही जीवन धर्मप्रचार की धुन, परोपकार, सात्त्विक वृत्ति तथा तप-त्याग की गरिमापूर्ण गाथा है। उन्होंने अपने जीवन का आरम्भ में ही एक विशिष्ट लक्ष्य निर्धारित करके संकल्पानुसार कार्य किया और आज तो जब वह जीवन-यात्रा के अन्तिम छोर पर खड़ी हैं तो उनके संकल्प को परम परिणति होती दीख रही है। उनकी प्रस्तुत कृति हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में अपूर्व देन ही गिनी जायगी। हिन्दी के पाठकों के लिये यह विषय सर्वथा नया होते हुए भी इस ग्रन्थ ने दुसह नहीं रहने दिया, सारा ही विवेचन बड़ा सरल तथा रोचक है। वार्धक तथा व्याधि जनित शारीरिक असामर्थ्य की अवस्था में भी लेखिका का अदम्य साहस इसके प्रकाशन में सफल हो सका, इसके लिये सारा हिन्दी जगत् उनका कृतज्ञ है।

रघुवीरसिंह शास्त्री

देहली--- दिनाङ्क ५-११-५७

रिटायर्ड प्रिंसिपल श्री रुपलाल जी की सम्मति

'मस्तिष्क विद्या' ग्रन्थ मनोविज्ञान पर एक अत्युत्तम प्रयास है। इसके द्वारा मनुष्य के गुण कर्म स्वभाव और चरित्र की आसानी से परीक्षा की जा सकती है।

इस ग्रन्थ की लेखिका चंचल बहिन पाठक एक विदुषी, और अनुभवी देवी हैं जिन्होंने इस पुस्तक में पश्चिम मनोविज्ञान के आधार पर यह दर्शाने का प्रयत्न किया है कि मस्तक मनुष्य के मन की सर्व शक्तियों और वृत्तियों को प्रकट करने का साधन है। इस पुस्तक में स्थान २ पर वेद, उपनिषद, चरक स्मृति, आदि अनेक ग्रन्थों से प्रमाण देकर अपने विषय को सिद्ध किया गया है। मस्तिक विद्या (Psychology) को समझने के लिये इस पुस्तक में नये २ विचार भी उपस्थित किये गये हैं जो साधारण और स्कालर्स दोनों के ज्ञान को बढ़ाते हैं। पुस्तक की लिखाई छपाई बहुत सुन्दर हैं और अनेक चित्रों से इसकी उपयोगिता और भी बढ़ गई है। ऐसे अनूपम ग्रन्थ को रचने के लिए लेखिका को धन्यवाद।

रूपलाल
रिटायर्ड प्रिंसिपल कमशील
हायर सेंकन्डरी स्कूल देहली

हमारे आत्मा का सामर्थ्य
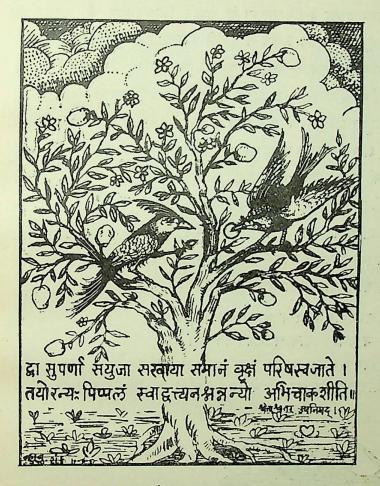
त्रैतवाद

अहा ! कितना अद्‌भुत ! कितना आश्चर्यजनक ! कितना गहन ! और कितना गंभीर ! हम कौन हैं ! कहाँ से आये ? कहाँ जायेंगे ! प्रेरणा जैसी शक्ति हमारे अन्दर है। वह किसने दी ! किसी ने नहीं दी। यह आत्मा का गुण है। और आत्मा स्वयम्, स्वतंत्र, स्वयंभू, अनादि और अनन्त है। जीव, ईश्वर और प्रकृति ये तीनों तत्व अनादि और अनन्त हैं। तीनों तत्वों की मान्यता को हम त्रैतवाद कहते हैं। किन्तु अत्यन्त आश्चर्य जनक और विचारने, समझने जैसी घटना तो यही है के हम किसी के बिना उत्पन्न किये बने कैसे ! प्रत्यक्ष हुए कैसे ! और तीनों अलग अलग शक्ति और स्वरूप वाले कैसे ! जीव, ईश्वर दोनों चेतन और प्रकृति जड़ ! जीव कर्म करने में स्वतन्त्र, फल प्राप्ति में ईश्वर के आधीन ! प्रकृति तो बिचारी सेविका ! ईश्वर सबसे बड़े और समर्थ ! सब स्थान इनका ही घर ! सब सारे अपरिमित ब्रह्माँड के वह एक ही स्वामी ! इतनी बड़ी भिन्नता कैसे ? क्या इस भिन्नता में अन्याय नहीं लगता ! यह अन्याय करने वाला कौन है ! यही प्रश्न विचारने, सोचने और समझने योग्य है। यही गहन, गंभीर, अद्‌भुत और आश्चर्यजनक है। इसको वेद भी नेति नेति कहते हैं। हम अनादि और अनन्त कहने से आगे कुछ नहीं बोल सकते। हमारे विचार और वाणी चुप हो

जाते हैं। तो भी हम हैं और रहेंगे और अनेकानेक शुभ अशुभ कार्य करते ही रहेंगे, और सुख, दुःख, आनन्द भोगते ही रहेंगे।

मानस शास्त्रानुसार जीव, ईश्वर के गुण की समीक्षा—

परमात्मा सर्व विद् है, सर्व विद् के कारण सर्वज्ञ और सर्व शक्तिमान् है। इसलिए वह सब जीवों को सुखी करने वाला और कल्याण करने वाला है। परमात्मा के अन्दर जितना गुण है, इतना ही गुण जीव के अन्दर भी है, जो इतना गुण जीव की अन्दर न हो तो परमात्मा के गुण को हम समझते कैसे? कारण गुण ही गुण को समझता है। तथाहि जिसके अन्दर संगीत शक्ति विकसित हो वही मनुष्य संगीत ज्ञान को समझता है। जिसके अन्दर बुद्धि शक्ति संस्कारी हो, वही मनुष्य तत्व ज्ञान को समझता है और ग्रहण करता है। तद्वत् जो गुण और जितना गुण परमात्मा के अन्दर है यही सब गुण हमारे अन्दर भी होना चाहिए और अवश्य है भी। फर्क भी है। वह सर्व व्यापक, सर्व शक्तिमान् सर्व रचना करने वाला, सबके कर्म को जानने वाला और जीवों को इनके कर्मानुसार फल देने वाला है। जीवात्मा अल्पज्ञ, एक देशीय और कर्म करने में स्वतंत्र है, साथ प्रकृति का भोक्ता भी है। परमात्मा सृष्टि की रचना करने में प्रकृति का उपयोग करते हैं, परन्तु अपने आप इसका उपभोग नहीं करते, वह तो निर्लेप है। जीवात्मा मर्यादित शक्ति वाला है तो भी परमात्मा को और कुदरत को समझ सकने योग्य गुण, सामर्थ्य वाला तो अवश्य है भी सही।

ओंम् नमः शम्भवाय च मयोभवा च नमः शङ्कराय च
मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च।

कल्याण और सुख के भण्डार ईश्वर के लिये नमस्कार हो आनन्दमय और मङ्गलस्वरूप के लिये नमस्कार हो। अत्यन्त सुखस्वरूप और आनन्ददाता प्रभु के लिये बारम्बार नमस्कार होवे।

आर्य जाति के धर्म और संस्कार संस्कृति के
संरक्षकों

श्री छत्रपति शिवाजी महाराज

श्री महाराणा प्रतापसिंह

छत्रपति शिवाजी

शिरोमणि देशभक्त महाराणा प्रताप

आर्यो जागो, खड़े हो जाओ, अपना पराक्रम दिखा दो.

आपके पूर्वज आप को क्या आदेश देते हैं ? कहते हैं—

सारी दुनियाके ऊपर आपका ही राज्य था। आपही दुनियाको राह दिखाने वाले पथदर्शक हो। जगत्के उद्धारक भी आप हो। अपने ब्रह्मत्व और वीर्यत्व को बतला दो। शौर्य के बिना नीति को संभाल नहीं रहतो। बल विना संरक्षण नहीं होता। "बलं सर्वत्र पूज्यते" संगठन साधो। क्षत्रिय धर्म संभालो। स्वधर्म, स्वजाति, स्वदेश, स्वभाषा, (राष्ट्रभाषा) स्वमान, सतिओंके शील (सतीत्व) और बालकों का रक्षण करो। अपने शिक्षण और संस्कार को सुधारो। आपके नीतिमय संस्कार सौन्दर्ययुक्त कलामय संस्कृति और अध्यात्म ज्ञानको अपना लो। अपने सताने वाले को अपने

प्रभाव से और मार के हटादो। सत्यनिष्ठ, धर्मनिष्ठ, न्यायनिष्ठ बनो। आपके इतिहास को उज्ज्वल रखो। बलवान् बनो और विजयको वरो।

मैं अकेला क्या कर सकूं ! ऐसो निर्बलता कभी मत दिखाओ।

यह मत कहो कि जगमें, कर सकता क्या अकेला;
लाखों में वार करता है शूरमा अकेला। १

राणा प्रताप विजयी, स्वाधीनता के पूजारी;
सन्मान से जीना यह सिखला गया अकेला। २

नेता सुभास, बाबू, इम्फाल मोरचे पर;
आजाद हिन्द करना, सिखला गया अकेला। ३

जगत् सब विरोधी, उस पर ऋषि दयानन्द;
वैदिक धर्म का झंडा, लहरा गया गया अकेला। ४

योगेश कृष्णचन्द्र, गीता प्रचार करके;
यह आतमा अमर है, सिखला गया अकेला। ५

यह मत कहो कि जग में, कर सकता क्या अकेला।

पूज्य महर्षि दयानन्द

श्री सुभाषचन्द्र बोष

सच्ची शिक्षा

—:०:—

आजकल की शिक्षा वास्तविक नहीं है, मानवता लाने वाली नहीं नैतिक नहीं, स्वाश्रयी नहीं किन्तु स्वच्छन्दी बनाने वाली और भृत्यो तथा बेकारों का मण्डल-सैन्य खड़ा करने वाली है। ऐसे अनेक रीति के प्रहार शिक्षा के नाम पर चारों ओर से हो रहे हैं। बड़े बड़े अग्रगामी प्रधानों, सदगृहस्थों या समझदार वर्ग और जिसको अज्ञात कहते हैं, वैसे सब ही ऐसे बोलते हैं कि—अब समय की शिक्षा इतने कुछ नहीं। इसे सुधारना चाहिये।

राष्ट्रपति डा० राजेंन्द्रप्रसाद
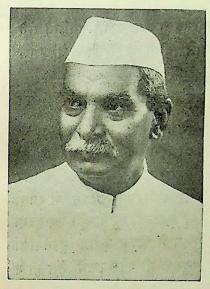
माननीय राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद जी तो हमेशाँ कहते हैं के शिक्षा सुधारनी चाहिये। धर मूल में से उसमें परिवर्तन करना चाहिये। ऐसे सब सभा, सोसाइटी में सब जगह आप अनेक विध आदेश देते ही रहते हैं। परन्तु शिक्षा कैंसी किस रीति की चाहिये ऐसा इनके स्वरूप की रूप रेखा देकर मार्गदर्शन अभी तक किसी ने भी नहीं कराया। जो मार्ग दर्शन मैंने मस्तिष्क विद्या द्वारा अनेक रीति से दिया है और यहाँ संक्षेप में जरासा बता देती हूं। सम्पूर्ण समझ तो मेरी पुस्तक "सच्ची शिक्षा" पढ़ने से मिलेउी। (जो प्रभु कृपा हो तो प्रकाश में आयेगी) यहां पर पुस्तक बड़ी हो जाने के कारण विस्तृत विवेचन नहीं हो सकता।

विदेशों में शिक्षा सुधार के सम्बन्ध में कितने ही रीति के अन्वेषण हो रहे हैं। उनमें उन के मन्तव्यानुसार एक बड़ा अच्छा अन्वेषण यह भी है कि--शाला में बच्चे क्या सीखते, क्या पढ़ते, कैसे खेलते, एक दूसरे के साथ कैसा व्यवहार करते इसी रीति से बालक के सब प्रकार के वर्ताव पर ध्यान रखकर इनको नोट करते हैं। ऐसा अन्वेषण वर्षों तक के अवलोकन से अध्यापक करते हो रहते हैं। अन्त में हिसाब निकालते हैं कि यह विद्यार्थी इस कार्य के योग्य है और इनका चरित्र इस प्रकार का है। मैंने इस पुस्तक में जो ज्ञान दिखाये हैं वे तो बालक युवा वृद्ध किसी भी मनुष्य के सिर को देखकर सिर्फ पाँच मिनट में, उस मनुष्य का स्वभाव, शक्ति, चरित्र, योग्यता इस प्रकार की है और वह ऐसा ही कार्य करेगा, ऐसा सत्वर--तुरन्त समझा देते हैं। विचारिये पाठकगण किसकी परीक्षा उत्तम और अपनाने योग्य है। इसका निर्णय आप स्वयम् कर लीजिये।

मस्तक विद्या मनुष्य जीवन को उत्कृष्ट बनाने में मार्ग दर्शन कराती है और नीचे गिरे हुए जीवन को सुधारने के लिये, ऊपर लाने के लिये भी पथ प्रदर्शक बनती है।

माननीय राष्ट्रपति श्री राजेन्द्र बाबू मेरे इस ग्रन्थ को जो पढें और मुझे मुलाकात देने की (मिलने की) कृपा करें तो शिक्षा सम्बन्ध में उनकी चिर पोषित भावना को अवश्य संतोष मिलेगा ऐसा मेरा विश्वास है।

मैंने शीर्षक में ही बताया है कि "मस्तिष्क विद्या" शिक्षण और जीवन सफलता की कुंजी है। इनकी प्रतीति वाँचक वृंद को पुस्तक पढ़ने से हो जायगी। शिक्षण दाताओं के लिये तो मस्तिष्क विद्या का यह ग्रन्थ एक सच्चा भास्कर रूप बनेगा। किन्तु इतना तो अवश्य है कि इनके साथ मेधा रूपी हृदय के नयन मिलने चाहियें। शिक्षकों आचार्यों और माता पिता के लिये अति आवश्यक ज्ञान है।

शिक्षा का संक्षिप्त स्वरूप

शिक्षा इतनी चर्चा की पात्र क्यों बन रही है? कारण कि उसके देने वाले और लेने वाले में आवश्यक संपत्ति नहीं। निम्नलिखित वित्त—वस्तु की कमी है।

१. शिष्टाचार नहीं। संस्कार नहीं, सदाचार नहीं।

२. सच्ची समझ नहीं होने से कया देना और किस रीति से देना इनका ज्ञान नहीं, इसलिये लेने वाले तो जैसी वस्तु मिले वैसी ही ले लेते हैं इस कारण लेने वाले दोषी नहीं किन्तु देने वाले अपराधी हैं।

३. पहिला शिक्षा दाता तो माता पिता हैं और दूसरा है विद्या गुरु शाला के अध्यापकों। अब शिक्षा सम्बन्ध में माता पिता को तो बिलकुल गिनती होती ही नहीं। अकेले अध्यापकों के सिर पर दोषारोपण करने में आता है वह बड़ी गलती है। उदाहरण रूप में दीपक में तेल पूरनेवाला दूसरा हो और उसमें तेल ही न भरा हो तो पीछे सुलगाने वाले से दीपक प्रज्जवलित न होवे और प्रकाश न देवे तो उसमें सुलगाने वाले का या दियासलाई का जरा भी दोष नहीं। दोष दीपक में तेल भरने वालों का है कि उन्होंने उसमें तेल नहीं भरा। इसी रीति से बालक में माता पिता ने जैसे संस्कार डाले होंगे वैसे ही वर्तन बालक दिखायेंगे।

माता ने अपने बालको को शिक्षा देनी चाहिये

४. आजकल मनुष्योंमें धर्म, नीति, सत्य, सदाचार, सेवा और सहानुभूति की भावना नहीं, निस्वार्थ वृत्ति और ब्रह्मचर्य का पालन नहीं।

५. बेकारी बढ़ती जाती है, कारण प्रजोत्पत्ति में कोई नीति नियम नहीं। विषय वासना और व्यभिचार अत्यन्त बढ़ रहे हैं।

५. झूठ, छल, प्रपंच, चोरी ये तो रोजके भोजन जैसे हो रहे हैं। इन सब असिष्टो को दूर करने के लिये इसी शिक्षा माता का उसकी योग्यतानुसार पूजन होनेकी आवश्यकता है।

शिक्षा कोई ऐसी वस्तु नहीं है कि जो अपने आप सुधर सके और अपने आप बिगड सके। हम स्वयम् ही अच्छे बुरे संस्कार वाले बनते हैं और उसे अच्छी या बुरी उपमा देते रहते हैं।

सब कहते हैं कि शिक्षामें घर मूलसे सुधार होने की आवश्यकता है। किन्तु वह धर मूल से सुधार क्या ? कैसी रीतिका ? कैसी रीति से करना ? इसके लिये अब तक किसी ने योग्य पद्धति पूर्वक का, प्रमाणिक मार्ग दर्शन नहीं दिया। किसी भी वस्तुका अनिष्ट तत्व बारम्बार दर्शाकर उसका अपमान किया करना वह तो अरण्य रुदन करने जैसा है। इससे कोई लाभ नहीं, इसलिये उसमें सुधार कौन रीति से करना इसे उचित रीतिसे समझानेसे और उसका आचरण करने से आवश्यक लाभ मिलता है।

शिक्षाके विषय में आवश्यक सुधार और उसके शक्ति सम्पन्नता के शानदार साधनोंका यथायोग्य समझ–योग्य मार्ग दर्शन देनेका मैंने प्रयास किया है। उसको शिक्षादाता, शिक्षा शुभचिंतक और अन्य जन समझकर सत्कार करेंगे। मेरे दिये हुए मार्ग दर्शनका आदर कर उसको आचारमें रखेंगे तो आजकल की शिक्षा अरुचि, घृणा के स्थान पर सम्मानका पात्र बनेगी और मनुष्य जाति जो मानवता खो बैठी है, और अनेक विध दुःखोंसे त्राहिमान पुकार रही है, वह सब शान्त होकर सुखके स्वास लेगी। मनुष्य मनुष्यों में से देव बनकर सुखानन्द प्राप्त करेंगे।

शिक्षा कैसी होनी चाहिये ! ध्यान में रखने योग्य मुख्य (Points) संकेतः—

शिक्षा की व्याख्या

शिक्षा अर्थात् संस्कार। अच्छी रीति से क्रिया करना इसका नाम संस्कार है। शारीरिक और मानसिक शक्तियोंको क्रिया द्वारा तथा शिक्षण द्वारा विकसाना, कसना, योग्य रीतिसे क्रियामें रखना इसका नाम है शिक्षा।

शरीर और मस्तिष्कके सब अवयवोंको उसके अनुरूप कार्य और ज्ञान देकर बनाना—तैयार करना कि जीवनमें जो जो कार्य करनेका प्रसंग आजाय, वह सब कार्य वह कर सके। किसी भी प्रकार के, कैसे भी कठोर, कठिन, कष्टप्रद, अप्रिय, अहितकारी, संहारक आदि प्रतिकूल और उचित, प्रिय, हितकारी; सुखप्रद, आनन्ददायक आदि अनुकूल प्रसंगोंमें भी अपनी योग्यता, मानवता को संभाल रख अपने धर्मका यथावत् पालन करने को शक्तिमान बन सके वैसा शारीरिक और मानसिक सामर्थ्य देवे उसका नाम है शिक्षा।

शिक्षा ऐसी होनी चाहिये कि जो स्त्रियोंको घरका सब व्यवहार चलानेका, बच्चोंके पालन पोषण करनेका, उसको संस्कारी बनानेका और कुटुम्बकी सेवा सुश्रुषा करनेका धर्म समझादे। पुरुषको नीति के रास्ते धन प्राप्त कर कुटुम्बका पालन पोषण करनेका धर्म समझादे और अन्य मनुष्यसमाज तथा देशके प्रति उसके धर्मको समझाकर सच्चो मानवता सिखादे। सच्ची मानवता लादे।

मनुष्य अपनी जातको (अपने को) स्वतन्त्र, स्वमानशील और स्वाश्रयी बनाकर सरलता से अपने कुटुम्बके रक्षणपोषण की जिम्मेवारी ले सके, उसके साथ एक नागरिक के रूप में समाजको और देश को भी उपयोगी बना सके, सत्य मार्ग पर अपनी उन्नति साधनेके साथ दूसरोंके जीवन सुधारने में तत्पर रहे वैसी शिक्षा मनुष्यमात्र को मिलनी चाहिये।

अमुक पदवी प्राप्त करने के लिए तत्सम्बन्धी विषयोंसे जानकार होना अतएव उतनेही विषयोंका ज्ञान देना, उतने में ही शिक्षा पूर्ण नहीं होती। किन्तु मनुष्य का जीवन जिन जिन संयोगों और जिन जिन प्रसंगों में से गुजरे उन सबको सफल रीति से पूर्ण कर सके तथा जन समाज के एक सदस्य रूप से सबके साथ सद्भावसे और सभ्यतासे वर्ताव कर सके ऐसी योग्यता लाने के लिये उसको सब प्रकार की शिक्षा देनी चाहिये। अर्थात् जीवन व्यवहार में सफल रीतिसे पार पडने के लिये मनुष्यको आवश्यक ऐसा समस्त शिक्षणमिलना चाहिये। शिक्षा केवल अक्षर ज्ञान नहीं, पुस्तकों का कंठस्थ ज्ञान नहीं, पदवियों का मान नहीं। किन्तु शारीरिक और मानसिक सब इन्द्रियोंका विकास जो ज्ञान द्वारा, जो क्रिया द्वारा जो उपदेश अथवा शिक्षण द्वारा होसके उसका नाम शिक्षा है वही शिक्षा कहने योग्य है।

शिक्षाका मूल—

शिक्षा के सुधार के लिये उसके मूल तक पहुंचना पड़ेगा। उसके मूल में सुधार होंगे-मूल शुधारेगा तब ही उसका सारा शरीर पलटकर वह अपने वास्तविक स्वरूप में आयेगी। शिक्षा का मूल है वालक का घर अर्थात् उसके जन्मदाता माता पिता।

शिक्षा का श्रीगणेश—शिक्षाका आरम्भ प्राथमिक शाला में से ही होता है ऐसा नहीं। उसका आरम्भ तो बालक के शरीर को बांधने वाले उसके माता पिता के रज वीर्यसे होता है। जैसा माता पिता का रज वीर्य होता है वैसे बालकके शरीर और मस्तक का स्वरूप स्वभाव बनते हैं। अर्थात् माता पिता के अच्छे वा बुरे जैसे संस्कार होंगे, माता पिता का जैसा स्वास्थ्य और गुण संस्कार होगा वैसे ही प्रकृति का अतएव वैसे ही दैवी या आसुरी गुण, स्वभाव वाला बच्चा जन्म लेता है। उसमें जन्म लेने वाले बालकके पूर्व जन्मके संस्कार भी होते हैं। ऐसे उत्पन्न हुए मानवको मानवता की शिक्षा का प्रथम सोपान माता के गर्भ में से ही चित्रित होता है। अतएव शिक्षाका आरम्भ जन्म देने वाले माता पिताके संस्कार और जन्म लेने वाले बालक पूर्व जन्मके संस्कार दोनोंके मिलने से उसके गर्भाधान से ही होता है।

माता पिता के रज वीर्य में शुद्धि या अशुद्धि से स्थापित हुए संस्कार के गुणावगुण अनुसार और पीछे गर्भ में नौ मास में मिले हुए संस्कार अनुसार मनुष्यके शरीर और मस्तक की रचना होती है।

अर्थात् शरीर सशक्त या निर्बल वनता है, आचरण में शूरवीर या डरपोक, भक्त, दयालु, परोपकारी, चोर; व्यभिचारी; खूनो, व्यसनी, सदाचारी, सत्यनिष्ठ, न्यायनिष्ठ, मेधा, स्मृति । सौजन्य शीलता, सभ्यता, विनय, विवेक, नम्रता, मधुरता आदि गुणों को दिखाने वाले बनते हैं और उनके अनेक दृष्टान्त इतिहास के पृष्ठ पर चढ़े हुए हैं ।

शिक्षाके प्रवाह की शुद्धिके लिये उसके मूल तक जाना चाहिये । अर्थात् उन जन्म देने वाले माता पिता को अपने बालक को अच्छा सद्गुणी और सफल देखना हो तो उनको स्वयम् वैसा बनना चाहिये ।

जो मनुष्यका जन्मस्थान सुधरेगा तो शाला की शिक्षा को सफलता अवश्य मिलेगी ।

आदर्श प्रजा बनाने के लिये मार्ग दर्शक नकशा ।

सच्ची शिक्षाका सारा शास्त्र तो यहाँ पर मैं दे नहीं सकती । इसलिये मार्गदर्शक नकशे का दर्शन यहाँ पर नहीं मिल सकेगा । ऐसे तो कितने ही उपयोगी विषय छोड़ देने पड़े हैं । परमात्मा की कृपा होगी तो अलग पुस्तक रूप में प्रकाश में आजायेगी ।

सुशीला सुपुत्री श्री चन्द्रमोहनजी

सुषमा सुपुत्री श्री देशराजजी

सुज्ञ सद्गृहस्थों ! आपने बड़ा प्रेमसे बालकको आमन्त्रण देकर पैदा किये हैं । आपके निमन्त्रणसेही बालकों आपके घर पर आयेहैं । तो आप समझपूर्वक प्रभुका भौतिक स्वरूपका उनकी योग्यतानुसार सत्कार करो । वे भौतिक शक्तिकी साथ आध्यात्मिक सामर्थ्य प्राप्त कर परमात्माके सामीप्य में पहुँचने के लिये आपका सहारा चाहते हैं । वे देनेका मातापिता का तथा आचार्य देवोंका प्रथम धर्म है ।

विषय सूची

मुद्रक—सम्राट् प्रेस, पहाड़ी धीरज, देहली

—वांचक महानुभावों से मेरी प्रार्थना—

मेरी जन्मभूमि गुजरात है और सारा जीवन इसी प्रदेश में बिता है, अतः कहीं कहीं मेरे शब्दों तथा वाक्यों का विन्यास ऐसा बनना स्वाभाविक है जो खडी बोली हिन्दीके पाठकों को कुछ विलक्षण लगे, आशा है पाठक उसके लिये क्षमा करेंगे।

ईश्वर की कृपा हो तो मेरा तो अभिलाष हैं कि मैं इसकी दूसरी प्रति निकाल दूँ। परन्तु मेरे पास धन नहीं है और जीवनका भी अन्त आ रहा है। कोई सद्गृहस्थ धनकी सहायता देवे और परमात्मा थोड़ा जीवन देवे तब ही भावना पूरी हो जाय। ऐसा करना तो प्रभु पिताके हाथ हैं। तो भी परमात्मा से प्रार्थना करती हूं कि मेरे अभिलाषको किसी अन्य योग्य अधिकारी जन द्वारा पूर्ण करें।

मस्तक विद्या के प्रकाशन का —अधिकार—

शिक्षण और जीवन सफलता की कुञ्जी "मस्तिष्क विद्या" मानस शास्त्र, मानव शास्त्र, मनोविज्ञान इन सब नाम से सूचित होता मस्तिष्क विद्याका प्रकाशनका अधिकार लेखिका श्री चंचल बहिन मणिकलाल पाठक को स्वाधीन है। श्री चंचल बहिन का स्वर्गवास होनेके पश्चात् इनका सब अधिकार श्री ब्र० भगवान् देव आचार्य गुरुकुल झज्जर, रोहतक (पंजाब)के आधीन और बम्बई वाले श्रीमन्त सेठ श्री प्रतापसिंहजी शूरजी वल्लभदासजी जो ज्ञानी, धनी और उच्च कोटिके साहित्य को कदर करने वाले है, इसलिए इनके आधीन रहेगा। मेरा जीवन दरमियान में भी वह दोनों महानुभावों मुझे सूचित करके मस्तक विद्याका दूसरा संस्करण प्रसिद्ध कर सकेंगे।

लेखिका—चंचलबहिन माणिकलाल पाठक
प्रधाना आर्यसमाज टंकारा (सौराष्ट्र)

मस्तक विद्याका ग्रन्थ मिलने का पता—

१. श्री ब्र० भगवान्देव आचार्य गुरुकुल झज्जर रोहतक (पंजाब)
२. श्री व्यवस्थापक सम्राट् प्रेस, पहाड़ी धीरज देहली।
३. लेखिका श्री चंचल बहिन मणिकलाल पाठक
   प्रधाना आर्यसमाज टंकारा (सौराष्ट्र)
४. मन्त्री आर्यसमाज बाजार सीताराम देहली।

सम्राट् प्रेस के मालिक महानुभाव.

श्री जगदेवसिंह जी सिद्धान्ती

श्री रघुवीरसिंह जी शास्त्री
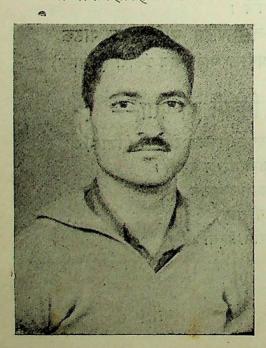
श्री नारायणसिंह जी शास्त्री

श्री चन्द्रमोहन जी शास्त्री

श्री सम्राट् प्रेस के मालिक महानुभावों के गुण का दर्शन.

श्री जगदेवसिंह सिद्धान्ती

आप के अन्दर धार्मिक वृत्ति, बुद्धि, स्मृति वक्तृत्व शक्ति, परकल्याण की भावना, सत्य और न्यायपरायणता आदि गुण अच्छा होने के कारण आप धर्म प्रचार और नीतिबोध के द्वारा जनता को अपनी ओर आकर्षित कर सकते हो। और सर्वदा जनता की सेवा में संलग्न रहते हो। अब राष्ट्रभाषा स्वातन्त्य के कारण से सरकार की जेल अपना महल बन रहा है। आप सरकार का आतिथ्य सत्कार का आस्वाद ले रहे हैं।

श्री नारायणसिंह शास्त्री

आप के अन्दर बुद्धि, स्मृति, कार्यशक्ति वात्सल्य प्रेम, वैश्यवृत्ति और वक्तृत्व शक्ति आदि गुण अच्छे होने के कारण आपने शास्त्री की पदवी प्राप्त की है, और प्रेस का संचालन अच्छी रीति से कर रहे हो।

श्री रघुवीरसिंह शास्त्री

आप के अन्दर बुद्धि, स्मृति, वक्तृत्व शक्ति और धार्मिक वृत्ति अच्छी होने से दूसरे की साथ सभ्यता से वर्ताव रखते हो। आप की व्याख्यान देने की और लेखन की शैली बड़ी सुन्दर है।

श्री चन्द्रमोहन शास्त्री

आप के अन्दर बुद्धि, स्मृति, सौजन्य गृहभावना, स्थैर्य, धैर्य आदि गुण अच्छे होने के कारण आप की प्रकृति शान्त है और एक मूक सेवक की तरह आप प्रेस का संचालन कर रहे हो।

मानस शास्त्र द्वारा समीक्षा

यह चारों महाशयों ने शिक्षा की पदवी एक समान ही प्राप्त की है। किन्तु इनके साथ अन्य मानसिक गुण मिलने से चारों का जीवन मार्ग और व्यवहार में वर्ताव अलग अलग हो गये हैं। इसी रीति से गुरुकुल के ब्रह्मचारी और कालेज, युनिवर्सिटी के विद्यार्थी एक ही स्थान पर रह कर, एक ही आचार्य की ओर से एक ही प्रकार का शिक्षण लेते हैं तो भी इनका आचार, विचार, वाणी, वर्तन अलग अलग दिखाते हैं। कोई दैवी वर्ताव दिखाते तो कोई मानुसी और कोई आसुरी बताते हैं। इन का कारण क्या ? इतनी भिन्नता कैसे ! यह सब बातें मस्तिष्क विद्या बहुत ही सरलता से समझाते हैं और मनुष्य का जीवन उत्कृष्ट बनाने में सम्पूर्ण सहायभूत बनते हैं।

ज्ञान के प्रचारक और गुरुकुल के संचालक

तपस्वी नेता

धर्म देश और जाति के सच्चे सेवक
धर्म वीर स्वामी श्रद्धानन्द जी

तपस्वी श्री ब्र० भगवान्देव आचार्य

पूज्य स्वामीजी का जीवन वृतान्त इनके आगे का पृष्ठ पर देखें।
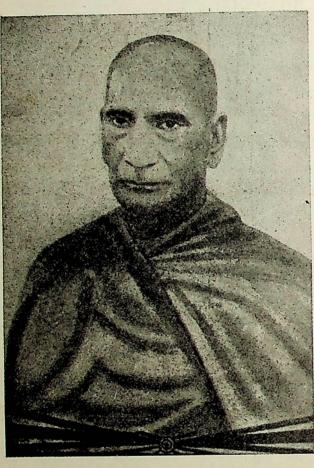
मानस शास्त्रानुसार समीक्षा

यानसिक गुणों ही मनुष्य को मानव, दानव और देव बनाते हैं। जिस की अन्दर धार्मिक वृत्तियाँ, बुद्धि, शक्तियाँ, उद्योग, आत्मनिष्ठा, अध्यात्मज्ञान, औदार्य, नीति, न्याय, दृढ़ता, स्वमान, सौजन्य, सौन्दर्य, दया, परोपकार आदि सत्वगुण की प्रबलता और गृहसांसारिक भावनाओं की सामान्य परिस्थिति होती है, वैसे मनुष्य उपरदर्शन जैसे त्यागी और तपस्वी बनते हैं और जनता का कल्याण करते हैं।

ऐसे आदर्श पवित्र विभूति संसार में बहुत ही कम दर्शन देती है।

आप झज्जर गुरुकुल के आचार्य और आत्मा हैं। आपके ही आधार पर गुरुकुल का जीवन और स्थिरत्व निर्भय है। आप पूज्य दयानन्द की पद्धति अनुसार शिक्षण दे रहे हो। आप ने आप की सारी सम्पति हजारों की नकद और जमीन जागीर गुरुकुल को दे दी है। आप का जीवन भी गुरुकुल को अर्पण कर दिया है। गुरुकुल के स्थाई निभाव के कारण आप बड़ी सख्त सर्दी, जलता अंगार जैसी गिरती गर्मी और वर्षा की परवाह नहीं करते। खुल्ला पाँव और कम कपड़े में जनता के सम्पर्क और सहानुभूति की प्राप्ति अर्थे भ्रमण करते रहते हो। आप ने गुरुकुल को एक आदर्श गुरुकुल बनाया है।

आप बुद्धिमान्, चरित्रशील, धार्मिक वृत्ति वाले हो। सत्य, न्याय, नीति आप का मुद्रा लेख बन गया है। आपका आचार यिचार; सादगी, पवित्र जीवन त्याग और तप दूसरों के लिये उज्ज्वल दृष्टान्त रूप बन रहे हैं।

धर्मवीर स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज

आपके हृदयोगार--"इस कलियुगमें मोक्षकी इच्छा नहीं, मैं तो केवल चोला बदलना चाहता हूं और चाहता हूं भारत वर्षमें ही पुनः उत्पन्न होकर इसकी सेवा करना और शुद्धिके अधूरे कामको पूरा करना।"

स्वामी श्रद्धानन्द का जन्म फाल्गुन कृष्ण १३ सम्वत् १९१३ जालन्धर जिलेके तलवन ग्राम में श्री नानकचन्द जी के घर हुआ था।

संवत् १९४१ वकालतके विद्यार्थी मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) आर्यसमाजके सभासद बने और ४२ वर्ष पश्चात् सम्वत् १९८३ में वही मुंशीराम स्वामी श्रद्धानन्दके चोले में रक्त प्यासे अब्दुल रसीद की प्यास बुझाते बुझाते ईश्वर शरण में पहुंच गये। इन २८ वर्षों में धर्म देश और जाति की सेवा में संलग्न रहे। वे जिस लगन और उत्साहसे आर्यसमाज के सभासद बने उसे देखकर ही उस समयके आर्यसमाज के नेता श्री० साईदास कह उठे थे—"आर्यसमाज में यह नई स्प्रिट आई है; देखें यह आर्य-समाजको तारती है या डुबो देती है।" एक अनुभवी सार्वजनिक कार्यकर्ताके ये शब्द इस बातके प्रमाण हैं कि उनका जीवन प्रारंभ से ही आकर्षक एवं अनुपम था।

सं० १९३६ में ऋषि के दिव्य दर्शनोंसे प्रभावित होकर भी आर्यसमाज के सभासद बनने और आर्यसमाजी कहलाने का अधिकार उन्होंने तभी स्वीकार किया जबकि ऋषिके 'सत्यार्थ प्रकाश' का एक सीमा तक मननकर उस पर आचरण करनेका दृढ़ निश्चय कर लिया अमेरिकाके तत्वदर्शी डेविड के शब्दों में वे आर्यसमाजको भूमण्डलकी समस्त सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक गन्दगी का भस्म सात करने वाली अग्नि मानकर चले थे। अन्त तक भी वें उसे वैसा ही मानते रहे। ४२ वर्ष तक चहुंमुखी प्रवृत्तियाँ में घूमते घामतेभी वे वस्तुतः एक खूंटे से बंधे थे। वह था वैदिक धर्म, सत्य सनातन वेद-प्रतिपादित धर्म। वे आर्यसमाज में रहे तो, कांग्रेस में गए तो, हिन्दू महासभाके मंच पर बैठे तो, जामामस्जिद के मैम्बर खड़े हुए तो जहाँ गये, उठे या बैठे वेदको या वेदकी आज्ञाओंको साथ लिये रहे। उन पर चलने और सबको चलानेका आग्रह करते रहे।

दिल्लीकी जामामस्जिद में वेदमन्त्रों द्वारा व्याख्यान—हिन्दू मुस्लिम एकताका उपदेश पवित्र वेद-वाणी में दिया। दिल्लीके घंटाघर पर संगीनोंके सामने अपनी छाती धर दी। आपने कांगड़ी गुरुकुल की स्थापना की। गुरुकुलके लिए धन संग्रह आपने किया और जंगलमें लड़कों को भेजनेका प्रश्न उठा तो सबसे पहिले अपना दोनों पुत्र भी आपने अर्पित किये। संवत् १९५९ में अपना पुस्तकालय १९६४ में 'सद्धर्म प्रचारक प्रेस' तथा सं० १९६८ में अपनी जालन्धर में बनी कोठी भी गुरुकुल को भेंट करदी।

आपने सन १९०७ में ही एक बार लिखा था—'यदि अग्नि और खड्ग की धार पर चलने वाले दस आर्य भी निकल आवे तो राजा और प्रजा दोनों को होश में ला सकते है। आचार भ्रष्ट देशभक्त नहीं हो सकता।" राजनीतिक जगत् को एक ऐसे नेता की आवश्यकता है जो सत्यके आधार पर राजा और प्रजा दोनोंको त्रुटियोंको इंगित करने में संकोच न करे। स्वामी जी महाराज अग्नि और खड्ग की धार पर चलने वाले आर्योंमें से एक थे, यह उन्होंने अपने इस प्रथम आगमनसे ही कर दिखाया था।

७ मार्च १९१९ को दिल्ली में पहली राजनीतिक सभा में भाषण देते हुए १८ हजार की भीड़में आपने कहा था—यह आन्दोलन राजनीतिक की अपेक्षा धार्मिक अधिक है। और सत्याग्रह के उन

दिनोंकी दिल्ली तो स्वामी श्रद्धानन्द की नगरी थी। वह इसका बेताज बादशाह था। ३० मार्च से १८ अप्रैल तक दिल्ली में रामराज्य का दृश्य रहा। शहर में एक भी ताला नहीं टूटा, एक भी मार-पीट नहीं हुई, एक भी जेब नहीं कतरी गई, गोहत्या भी सर्वदा वन्द रही और पुलिस व फौज की छाया तक भी कहीं दिखाई नहीं पड़ी।

आपने दलितोद्धार; शुद्धि और संगठन किया। वि० सं० १९८० में आपने आगरा शुद्धि सभाकी स्थापना कर शुद्धिको अखिल भारतीय प्रश्न बनाया और मलकानों की शुद्धि में विराट् सफलता प्राप्त की। सारे भारत में शुद्धि सभा की शाखाओं का जाल बिछ गया। गाँव के गांव अपनी बिरादरी में जा मिले।

व्यक्तिगत सदाचार को ऊँचा रखने की प्रबल कामना से ही वे राजनीति की दृष्टि से भी असत्य कहना अथवा सत्यको छिपाना पाप समझते थे। स्वामीजी महाराज जैसे कल्याणकारी कार्यों करनेकी परमात्मा सब मनुष्योंको सदबुद्धि देवे।

स्वामीजी की जीवनी का विशेष अध्ययन करनेके लिये स्वामीजी की निजकी लिखी आत्मकथा "कल्याणमार्गका पथिक" नाम पुस्तक अवश्य पढें।

आ० पंडित इन्द्रजी विद्या वाचस्पति (सुपुत्र लाला मुन्शारामजी) भूतपूर्व प्रधान सार्वदेशीक आर्य प्रतिनिधि सभा तथा राजसभा के सदस्य। आंपकी अन्दर बुद्धि, स्मृति, धार्मिक वृत्ति, दृढ़ता, उद्योग, आत्मनिष्ठा, कर्तव्य परायणता, दया, परोपकार, स्नेह, सौजन्य, सरलता आदि सत्वगुण विशेष रीतिसे संस्कारी हैं। आप कांगडी गुरुकुलका अधिष्ठाता हो। आपका सुसंचालन से गुरुकुल अपनी अनुपम प्रभा दिखा रहे हैं। आप अच्छे वक्ता और लेखक हो। अब आपने आर्यसमाजका इतिहास लिखकर सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा तीन भाग में प्रकाशित किया है। आपका चरित्र शुद्ध-निर्मल होने से दूसरे को अनुकरण करने योग्य है।
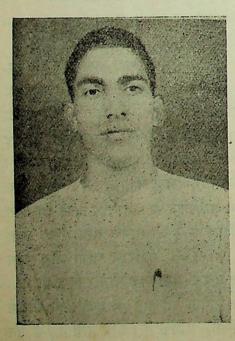
श्री ब्र० वेदव्रत भाष्याचार्य, आप गुरुकुल झज्जर के अध्यापक तथा व्यवस्थापक हो। आप गुरुकुलसंचालन कार्यमें श्री आचार्यजीको अच्छी रीति से सहयोग दे रहे हो और इनकी अनुपस्थिति में भी आप गुरुकुलका संचालनका अच्छी रीतिसे करते रहते हो। कार्यकर्ताओंका सुन्दर संगठन यही गुरुकुल के भावी स्थिरत्व और अभ्युदयका लक्षण है।

देशभक्त स्वराजके संरक्षक राजर्षि नेता

य

स्व० नायब प्रधान श्री वल्लभभाई पटेल

भूतपूर्व सिंचाई मंत्री श्री शेरसिंहजी
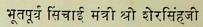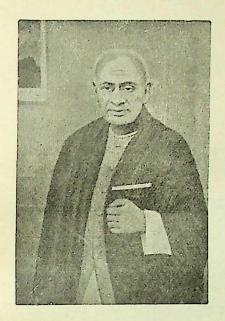
भारत देशके ७०० सातसो विभक्त राज्यों को एक सूत्रमें पिरोने वाले बलवीर पुरुष श्री वल्लवभाई पटेल की अब तक अत्यन्त आवश्यकता है ।

नेताओं की निर्बल नीति से देश खण्डित तो हो गया था । किन्तु अब भाषाके कारण देशकी एकता संगठन टूटरहा है और देश का अनेक टुकड़ामें विभाजन हो रहा है। तदुपरान्त दूसरी अनेक रीतिसे प्रजा त्राहिमान पुकार रही है । ऐसा आपकी और राष्ट्रपिता महात्मा गांधीजी की उपस्थिति होती तो कभी नहीं बनता । प्रजाको समान दृष्टि से देख और न्यायोचित सबके साथ वन्धु भाव से एक सरीखा वर्ताव करें वही राजा और नेता का सच्चा धर्म है। ऐसी राज्य व्यवस्था ही कुदरती है । यही व्यवस्थाही रामराज्य कहलाती है ।

प्रो० शेरसिंहजी एम. एल. ए. भूतपूर्व सिंचाई मन्त्री पंजाब और भूतपूर्व प्रधान गुरुकुल झज्जर आपकी अन्दर ब्रह्मत्व और क्षत्रीयत्व का समन्वय होनेसे आप विद्याके अनुरागी और सत्य, धर्म, जातिय स्वमान संस्कृतिका रक्षण करनेमें आपके प्राण की भी परवाह नहींकरते । स्वदेशका गौरवकी रक्षाके और भाषा स्वातन्त्र्यके कारण जेल को अपना महल बना रहे हो ।श्री कैरोको आपने ही पंजाबके प्रधान मन्त्री बनाये। वह उपकार के बदले में कैरोने आपकी स्वतंत्रता आपका मंत्री पद छीन लिया । आपकी जबान बंधकर दी। आपकी संस्कारी भाषा हिन्दी पर कुठाराघात कर आपको बन्दी बनवा दिया । ऐसा उलटा विपरित आचरण मानसिक गुणों की भिन्नता के कारण है । यही भिन्न आचरणके कारण मस्तिष्क विद्या स्पष्ट रूपमें समझा देती है और जीवन को शुद्धसात्वीक सबके लिये सुखरूप बनानेमें संपूर्ण, रीतिसे पथप्रदर्शक बनाती है ।

ओ३म्

"तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु"

अर्थात् "वह मेरा मन कल्याणकारि सङ्कल्पयुक्त हो" इस महान पवित्र और गंभीर भाव पूर्ण प्रार्थना युक्त यजुर्वेद के चौंतीसवें अध्याय के यह अतीव मधुर षड् मन्त्र हैं, जिसमें मन के यथार्थ स्वरुप और गुण, कर्म, स्वभाव का यथार्थ वर्णन आया हुआ है। प्राणधारि समग्र जीव जगत की सब प्रवृत्तियों का मनही एक मुख्य कारण है। सङ्कल्प, विचार, बुद्धि, तर्क, तुलना, प्रेरणा, विज्ञान, भक्ति, श्रद्धा, प्रेम, विनय, उद्योग, जिजीविषा, क्षुधा, पिपासा, संगीत, सौजन्य, दया, परोपकार, सत्यनिष्ठा, नीति, न्याय, स्व-मान, यशोभिलाष आदि सब भाव, वृत्तियों और क्रियाओं का आधार यह एक मनही है। इस मन की विशुद्धि ही अन्य सर्व शुभ प्रवृत्तियों का कारण है। इसलिये यह मङ्गलमय प्रार्थना हमें हमेशा करनी चाहिये।

शिक्षण / जीवन

सफलता की कुञ्जी

"मस्तक-विद्या"

मस्तक विद्या बीसवीं सदी में अद्वितीय और अनुपम विद्या है। इसके द्वारा मनुष्य के गुण, कर्म स्वभाव और चारित्र्य आदि की यथावत् परीक्षा हो सकती हैं।

मनुष्य का मन—मन अनेक प्रकार की शक्तियों, सामर्थ्यों, भावों, प्रीति और विचारों से युक्त है।
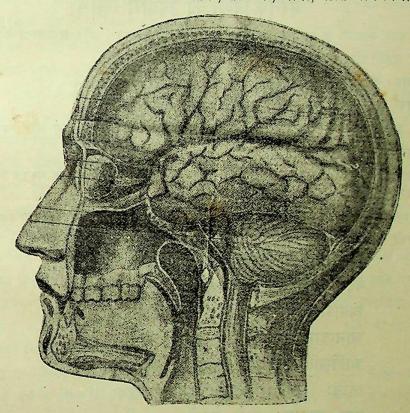
मस्तक—यह मनुष्य के मन की सर्व शक्तियों, और वृत्तियों को प्रदर्शित करने का मुख्य प्राकृतिक साधन है।

मानस अवयव—मनुष्य के मन की भिन्न-भिन्न शक्तियां, वृत्तियों, इच्छा, भाव, चाहना, वा सभी प्रकार के लक्षण दर्शाने वाली श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, और नासिका आदि इन्द्रियों के अनुसार मनुष्य के मस्तक में भी, पृथक्-पृथक् मानस अवयव हैं। जिनका अपना अपना पृथक्-पृथक् मानस व्यापार का कार्य करने के लिए निर्माण हुआ है।

ऐसे मानस अवयवों के नाम, स्थान, कार्य और संवृद्धि तथा क्षय और शिक्षा का विकसित करना, इसी रीति से उनकी यथायोग्य या विकृत आदि अवस्थाओं का निर्णय करना यह मस्तक विद्या का सबसे बड़ा आवश्यक और अति महत्त्व का कार्य हैं।

इस विद्या द्वारा मनुष्य के मानसिक व्याधि, विकार जैसे स्मृति, भ्रम, अतिहास्य, अतिरोदन, भय क्रोध, लज्जा, शील, मर्यादा, मद, मोह, त्रिदोष, औदास्य, ईर्ष्या, वैर, घृणा आदि अनेक दर्दों का निदान और चिकित्सा वा सुधार करने का प्रयास हो सकता हैं। ऐसा इसी समय के सुधारक देश के अनेक विद्वान् डाक्टर भी प्रमाण पूर्वक मानते हैं। इससे इस विद्या का लाभ मनुष्य समाज के कल्याणार्थ अनेक रीति से, अनेक प्रसंगों पर होने के योग्य हैं।

मस्तक विद्या का उपयोग (लाभ)

१. स्त्री, पुरुष और बालकों के स्वभाव वा गुण, चारित्र्य की योग्यता, और अयोग्यता की परीक्षा
२. बालकों की प्रकृति और शिक्षा का निर्णय।
३. लग्न (विवाह) के योग्य स्त्री, पुरुषों के गुण, कर्म, स्वभाव की परीक्षा।
४. नौकर, सेवक, क्लर्क आदि की मस्तक-परीक्षा द्वारा स्वीकृति।
५. शुद्धाचारी, दुराचारी और धर्मात्मा वा पापात्मा आदि मनुष्य के गुण, कर्म और स्वभाव (प्रकृति) का निश्चय केवल पांच मिनट में हो सकता है।
६. योग्य व्यक्ति का योग्य स्थान पर उपयोग करना आदि अनेक रीति से इस मस्तक विद्या का लाभ मिल सकता है।

हमारे शास्त्र भी संक्षेप, साराँश और सूत्र रूप में मनुष्य की विविध प्रवृत्तियों का स्थान दिव्य कोष मस्तक है, इसकी साक्षी देते हैं।

प्राणाः प्राणभृतां यत्र स्थिताः सर्वेन्द्रियाणि च।
यदुत्तमाङ्गमङ्गानां शिरस्तदभिधीयते॥ (चरक)
प्रियाऽप्रियाणि बहुला स्वप्नं संसाधितेन्द्रियः।
आनन्दानुग्रो नन्दांश्च कस्माद् वहति पुरुषः॥९॥
आर्तिरवर्तिर्निर्ऋतिः कुतोनु पुरुषेऽमतिः।
ऋद्धिः समृद्धिर्व्यृद्धिमतिरुदितयः कुतः॥१०॥
तद्वा अथर्वणः शिरो देवकोशः समुब्जितः।
तत्प्राणो अभिरक्षति शिरो अन्नमथो मनः॥२७॥
(अथर्ववेद का० १०, सू० २)

आकृतिर्गुणान् कथयति।
आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषणेन च।
नेत्रवक्त्रविकारेण लक्ष्यतेऽन्तर्गतं मनः॥ (मनु०)

उदीरितोऽर्थः पशुनापि गृह्यते,
हयाश्च नागाश्च वहन्ति नोदिताः।
अनुक्तमप्यूहति पण्डितो जनः
परेङ्गितज्ञानफला हि बुद्धयः ॥ (पंचतन्त्र)

मस्तक विद्या और मुखसामुद्रिक शास्त्र का विषय गहन और अतिविस्तृत और बड़ा तेजस्वी भी हैं। किन्तु सामान्य जन समुदाय को ऐसे विषयों का विस्तृत वाचन (पठन) करने का समय न मिलने से मनुष्य चारित्र्य की शिक्षा के कार्य के साथ मस्तक-विद्या का कितना गाढ, पूर्ण, सम्बन्ध है, यही यहां तत्त्व रूप में दिखाने का प्रयत्न किया जायेगा।

मनुष्य अपने जीवन में बालकपन से ही अनेकविध विचार करता है नाना प्रकार की प्रवृत्तियां रखता है, विविध भावना और मनोधर्म, मनोज्ञान दर्शाता है।

इन सब विचार, भावना, प्रेम, क्रोध, सभ्यता, शिष्टाचार, समझ, पागलपन, मूर्खता और अनेक प्रकार की प्रवृत्तियों का उदभव स्थान मनुष्य का मस्तक ही है, साधारणतया ऐसा सभी मानते हैं। किन्तु भिन्न-भिन्न विचार, भिन्न-भिन्न लक्षण, भिन्न-भिन्न भावना और भिन्न भिन्न प्रवृत्तियां होती हैं वे मस्तिष्क के किस-किस स्थान से होती हैं ? जन साधारण इससे अवगत नहीं। भिन्न-भिन्न विचार प्रवृत्ति और कार्य इन सभी को मस्तिष्क एक ही रूप में करता है ? ऐसा मानना ईश्वरीय व्यवस्था की दृष्टि से उचित नहीं है। क्योंकि विश्व में सब प्रकार की व्यवस्था है। उसी के अनुसार हमारे शरीर की रचना (निर्माण) में भी व्यवस्था है।

चलने के लिये चरण, पदार्थ पकड़ने के लिये हस्त, दर्शन के लिये चक्षु, सुनने के लिये कान, श्वास, प्रश्वास के लिये नासिका, स्पर्श ज्ञान के लिये त्वचा, वाणी व्यक्त करने के लिये और रसास्वाद लेने के लिये जिह्वा, ये सब अंग बाह्य जगत् के पदार्थों के साथ सम्बन्ध रखने वाले मस्तिष्क के बाह्य करण है। इनकी क्रिया का सम्बन्ध तो मस्तक से सम्बन्ध रखता हुआ आन्तरिक अंगों के साथ है। इसलिये वे अंग अच्छी या विकृत स्थिति के अनुसार ही कार्य करते हैं।

उदाहरणार्थ—देखने का कार्य करने वाला मस्तक का आन्तरिक अंग यदि विकृत हो तो आंख के गोलक देखने में वैसे के वैसे होते हुये भी देखने का कार्य नहीं कर सकते, बल्कि दर्शन शक्ति के अङ्ग के द्वारा दर्शन तन्तु देखने का ही कार्य करता है, वह सुनने का कार्य नहीं कर सकता। इसी प्रकार श्रवण करने वाला अंग सुनने का ही कार्य करता हैं, वह देखने का कार्य नहीं कर सकता। इसी भान्ति शरीरस्थ अन्तरङ्ग अवयव—भोजन को पचाने वाला और उसका रुधिर बनाने वाला तथा रक्त को शरीर के प्रत्येक अवयव में पहुंचाने वाला, समस्त ही अंग जठराग्नि, हृदय, फुफ्फुस, यकृत, प्लीहा, आन्त्र आदि पृथक्-पृथक् अपने-अपने कार्य के लिये नियत हैं।

समस्त शरीर समग्र रूप में सब कार्य करता है, ऐसा विचार भी हमें कभी नहीं आता, और ऐसे विचार की आवश्यकता भी नहीं है। तब फिर अनेकविध विचार, भान्ति-भान्ति की भावना, विविध

गुण या शक्तियां और नाना प्रकार की प्रवृत्तियां जो मस्तिष्क द्वारा होती हैं, यह तो हम जानते हैं। वह समस्त मस्तक एक रूप में करेगा यह किसी भी रीति से सम्भाविन्न हैं ? बुद्धिगम्य हैं ? किन्तु विचार कर इसको समझने का प्रयास विशाल मानव समुदाय ने आज तक किया ही नहीं । ऐसे अत्यन्त उपयोगी आवश्यक विषय का ज्ञान मैंने इस स्थान पर दिखाया हैं ।

मनुष्य के आन्तरिक गुण अथवा शक्तियों को यथाविधि जनाने का प्रयोजन यह है कि उनका हमारे जीवन की प्रत्येक प्रवृत्ति और शिक्षा के साथ गाढा सम्बन्ध है । ये गुण तथा शक्तियां मनुष्यों को संचित संस्कार के अनुसार जन्म से ही मिलती हैं और इन्हीं के अनुसार मनुष्य अपने जीवन में शुभाशुभ प्रवृत्ति और उच्च, नीच, उत्तम वा अधम कार्य करते हैं । अपने न्यूनाधिक गुण के अनुसार ये बचपन से ही प्रवृत्तियाँ करते हैं ।

कोई भोजन अच्छी तरह स्वाद लेकर खाता है । तो कोई प्रवाही पदार्थ की अभिलाषा रखता है । कोई खेलने कूदने में, तो कोई चित्रकला में, कोई गाने बजाने में तो कोई गणित-गिनती में चतुर होता है । कोई खुशमिजाज (हंसमुख) हैं तब कोई रंजिस (खिन्नस्वभाव) कोई विनयशील है तो कोई असभ्य, कोई गंवार, शठ, कोई निर्भय है तो कोई भीरू (डरपोक) । कोई सरल स्वभाव का, कोई विशेष ढोंगी (कपटी), कोई क्रोधी तो कोई शान्त, कोई उदार (दाता) तब कोई अनुदार (स्वार्थी) । कोई स्नेहयुक्त तो कोई रुक्ष स्वभाव, कोई दयालु, कोई निर्दयी और हिंसक (खूनी) कोई बुद्धि जीवी, कोई मूढ, कोई सत्याचरणी तो कोई असत्याचरणी । इस भांति अनेक प्रकार की भावना, बुद्धिशक्तियों की विविध प्रकार की न्यूनाधिकता युवत अनेक प्रकार की भिन्नतायें मनुष्य स्वभाव के अन्दर देखने में आती हैं। इनका मुख्य कारण मस्तक के अन्दर मानसिक अवयवों का न्यूनाधिक अस्तित्व ही है, यह सर्वथा निर्विवाद है ।

मनुष्य के विविध विचारों और वृत्तियों तथा भिन्न-भिन्न कार्यों और प्रवृत्तों को प्रकट करने के लिये मस्तक के अन्दर इतने ही प्रकार के पृथक्-पृथक् स्थानों की रचना कलावित प्रभु पिताने यथोचित रूप में की है । जो स्थान जिस गुण के लिये नियत किया है, वह उसी स्थान से उद्भूत होता है ।

अद्यावधि (आजतक) मनुष्य यह भी नहीं जानते कि अपने अन्दर कैसे, किस भान्ति के गुण अथवा शक्तियों और भावनाओं ने निवास किया है और उनका विशिष्ट स्वभाव अथवा लक्षण क्या है ? वे अपना विशिष्ट कर्तव्य मस्तिष्क के किस स्थान में से करते हैं ? मनुष्यके जीवन सम्बन्धी इस अत्यन्त आवश्यक ज्ञान को 'मस्तक विद्या' के गवेषक (खोजी) जर्मनी के डा० महाशय फ्रान्सीस जोसफ गोल ने उचित स्वरूप में देकर मनुष्य जाति पर महान् उपकार वा कृपा की है ।

मस्तक विद्या का अन्वेषक

डा० फ्रान्सीस जोसफ गोल

मनुष्य एक दूसरे से भिन्न प्रवृत्तियां करते हैं, एक दूसर से भिन्न वर्ताव और भावनाओं को दर्शाते हैं इसका कारण उनके संचित संस्कारों के अनुसार प्राप्त गुण हैं और उन गुणो को प्रदर्शित करने वाला मस्तक में स्थित तत्स्थान का विकास वा ह्रास है।

मानव के मानसिक गुण और प्रवृत्तियों का मस्तक के किस स्थान से उद्भव होता है अर्थात् मानव भिन्न-भिन्न जो जो कार्य व्यवहार करता है, वह मस्तक के किस स्थान द्वारा करता है यह उसके मस्तक को देखकर केवल पांच मिनट में जाना जा सकता है।

पूज्य महात्मा डा० गोल द्वारा प्रदर्शित मानस शास्त्र का ज्ञान शिक्षा में संपूर्ण मार्गदर्शन करवाता है, शिक्षा सम्बन्धी अनेक विध झंझटों को दूर कर देता है। जीवन की समस्त प्रवृत्तियों के मूल को बतलाता है। मनुष्य में कैसा सत्व है और वह उसके जीवन में कैसा प्रभाव डालेगा इत्यादि मानव के वास्तविक स्वरूप को दर्शन कराता है। ऐसा मानसशास्त्र के ज्ञान को निम्न लिखित भाष्य में दिया है।

शिक्षा दाता (ज्ञान देने वाला गुरु) ने अनेक के मस्तिष्क का धड़तर, संस्कार कार्य करने का होने से उनके लिये मानसिक शक्तियों और इनके कार्यों का ज्ञान प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक है।

मस्तक विज्ञान विना जगत् में अन्धेरा है।
मस्तक रचना के ज्ञान के अतिरिक्त विश्व में अन्धेरा।

प्राणाः प्राणभृतां यत्र स्थिताः सर्वेन्द्रियाणि च।
यदुत्तमाङ्गमङ्गानां शिरस्तदभिधीयते ॥

—चरक.

मानसशास्त्रानुसार मुख्य मानसिक शक्तियों के नाम निम्नलिखित अनुक्रम में दिये हैं। मस्तक के अन्दर का उनका स्थान दिखलाने के लिये साथ में ब्लोक भी दिया है तत्पश्चात् प्रत्येक शक्तियों के कर्तव्यों का वर्णन किया जायेगा।
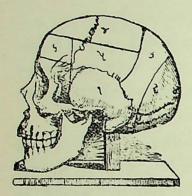
१ से ६ तक के विभाग मानस शक्तियों के समूहों को दर्शाते हैं

१. आत्मरक्षक वृत्तियों के प्रदेश
२. घर सांसारिक वृत्तियों के प्रदेश
३. उत्कर्षक वृत्तियों के प्रदेश
४. धार्मिक वृत्तियों के प्रदेश
५. प्रावीण्य प्रदायक वृत्तियों के प्रदेश
६. अवलोकन और बुद्धि शक्तियों के प्रदेश

त्रिविध शक्तियों के प्रदेशो

अग्र भाग बुद्धि शक्तियों को दर्शाते हैं
मध्यभाग कार्य शक्तियों को दर्शाते हैं।
पिछला भाग प्राण शक्तियों और 'भावनाओं को दर्शाते हैं।

ऊर्ध्वं तिष्ठन्ति सत्वस्था, मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः;
जघन्य गुण वृत्तिस्था; अधोतिष्ठन्ति तामसाः।
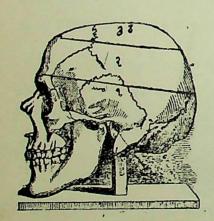
१. तमो गुण की प्रकृति का प्रदेश
२. रजो गुण की प्रकृति का प्रदेश
३. सत्व गुण की प्रकृति का प्रदेश

सत्वादि प्रकृति के प्रदेशों

१—आत्म रक्षक वृत्तियां

१ जिजीविषा

२ बुभुक्षा

३ पिपासा

४ वित्तैषरणा

५ निग्रह वृत्ति

६ उद्योग शक्ति

७ शौर्य शक्ति

२—गृह सांसारिक वृत्तियाँ

८ प्रेम भाव

९ दाम्पत्य स्नेह

१० वात्सल्य स्नेह

११ गृहनिवासेच्छा

१२ मैत्रीभाव

१३ तत्परायरणता

३—उत्कर्षक वृत्तियां

१४ सावधता

१५ यशोभिलाष

१६ स्वमान

१७ दृढ़ता वा धैर्य

४—नैतिक और धार्मिक वृत्तियां

१८ भक्ति भाव

१९ अध्यात्मरति

२० आशा

२१ आत्मनिष्ठा

२२ दया परोपकार
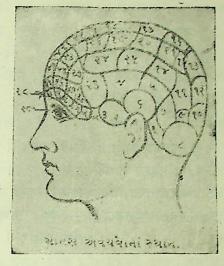
मस्तक के बाजुके दर्शन
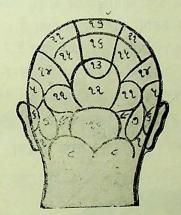
पीछे के भाग का दर्शन
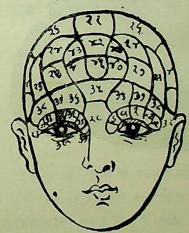
आगे के भाग का दर्शन

५—प्राविण्य प्रदायक शक्तियां

२३ कला कौशल

२४ सौन्दर्य प्रेम

२५ औदार्य भाव

२६ अनुकरण शक्ति

२७ हास्य वृत्ति

६—अवलोकन शक्तियां

२८ अवलोकन

२९ आकृति ज्ञान

३० कद ज्ञान

३१ भार ज्ञान

३२ रंग ज्ञान

३३ व्यवस्था ज्ञान

३४ गरिणत ज्ञान

३५ स्थल ज्ञान

७—बुद्धि और मनन शक्तियां

३६ इतिहास शक्ति

३७ ताल, समय ज्ञान

३८ संगीत शक्ति

३९ वक्तृत्व शक्ति

४० तर्क शक्ति

४१ तुलना शक्ति

४२ प्रेरणा शक्ति

४३ सौजन्य शक्ति

४४ निद्रा वृत्ति

यहाँ दिये हुए मानसिक शक्तियों के नामों को देखकर मस्तक विद्या की अज्ञानता के कारण कोई ऐसा न समझे कि अमुक थोड़े गुणों के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न शब्द लिख डाले हैं। ऐसा मानने की भूल न करें। ये अमुक थोड़े गुण के लिये अधिक शब्द नहीं हैं, किन्तु इस दिखलाई हुई नामावली में सब भिन्न-भिन्न गुण हैं और इनका प्रत्येक का अपना अनुपम, अनोखा व्यक्तित्व हैं। एक-दूसरे से विभिन्न विशिष्ट प्रकार का इनका कार्य है।

यह सब संक्षेप में किन्तु यथाविधि समझाया जायेगा और साथ ही ये गुण अथवा शक्ति की प्रवृत्ति मस्तक के कौन से भाग में से उद्‌भव होती है, किस स्थान में ठहर कर अपने कार्य को करती हैं, अपनी प्रभुता, दीप्ति और तेज को मनुष्य के जीवन-व्यवहार में फैलाती (बिछाती) है, उसका स्थान भी चित्र द्वारा दिखलाया है। और उसका आवश्यकीय विवरण भी दिया है।

हम सामान्य रीति से इतना अवश्य जानते हैं कि—"मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना" प्रत्येक मनुष्य के शिर में मति (बुद्धि) भिन्न-भिन्न है। बड़े शिर वाला व्यक्ति संसार में अपना मार्ग सफलता से समाप्त करता है। व्यवहार में निपुण, अभिज्ञ, चतुर, निर्भय और कार्य कुशल होता है। तथा छोटे शिर वाला व्यक्ति बहुत से विषयों में, अधिकांश कार्यों में पीछे हटने वाला, निर्बल और शक्तिहीन होता है। बड़े तथा विस्तृत कपाल वाला मनुष्य बुद्धिजीवी और मेधावी होता है। यह सब लोकोक्ति, अवलोकन और अनुभव द्वारा लोगों की जिह्वा पर घूमती रहती है। इसमें तथ्य हैं।

मनुष्य की अच्छी वा बुरी, सबल वा निर्बल, शक्ति सम्पन्न वा शक्तिहीन प्रवृत्तियां उसके मस्तक की रचना के (छोटे बड़े परिणाम के) अनुसार होती हैं। लगभग ऐसा सामान्य रीति से सभी समझते हैं। इन्हीं वस्तुओं को मैंने उचित और स्पष्ट रूप से यहाँ दिखाया है।

मस्तक के अन्दर की गुंचला (गुच्छा) रूप प्राण ग्रंथियां

वायीं तरफ के गुंचलां

(Conbolutions)

F. 1-4 अग्रलोब की ग्रन्थियां

T. 1-3 कानपटी के चारों ओर की ग्रन्थियां

P. 1-3 पार्श्व लोब की ग्रन्थियां

O. 1-3 पश्चिम लोब की ग्रन्थियाँ

मानसिक शक्तियों का स्थान मस्तक के अन्दर के गुंचला (गुच्छे) में आया हुआ है। और गुच्छे के उस स्थान की संवृद्धि वा संकोच के अनुसार ही ऊपर की खोपड़ी शिर की (हड्डी) का भाग भरा हुआ परिपूर्ण वा सिकुड़ा हुआ होता है। यदि वह गुण अथवा शक्ति भली भाँति विकसित होगी।

तो उसका स्थान भरा हुआ, आगे बढ़ा हुआ होता है, यदि वह शक्ति असंस्कारी, अविकसित, अपने धर्म का यथाविधि पालन न करती हो तो यह स्थान संकुचित, बैठा हुआ अर्थात् नीचे दबा हुआ होता है। यह देखते ही ज्ञान हो जाता है कि इस मनुष्य की अमुक शक्ति का अवयव विकसित (पूर्ण) अथवा अविकसित (न्यून) है। इसलिये वह अपने जीवन व्यवहार में अमुक रीति के आचरण को ही बतलाता है।

मानसिक शक्तियों को मनुष्य समझे वा नहीं भी समझे किन्तु वह तो उनके स्वभाव अनुसार प्रत्येक मनुष्य में अपना प्रभाव सर्वदा बताती रहती हैं। इसलिये माता-पिता तथा ज्ञानदाता गुरु जो यथाविधि उसको समझेंगे और शिक्षा द्वारा विकसित बनाने का प्रयास (प्रयत्न) करेंगे तो यह सब शक्तियां अपने प्रकाश, अपने सत्व को, अपने धर्म को विशेष रूप में बताकर मानव जीवन को योग्य रीति से उन्नत बनायेंगी।

भूमिका रूप में इतना आवश्यक ज्ञान देने के पश्चात् अब पृथक्-पृथक् प्रत्येक शक्ति के गुण धर्म और उसके कार्य तथा मस्तक के अन्दर उसके स्थान को दर्शाया जाता है।

આત્મરક્ષકવૃત્તિઓ
मानस शास्त्र
प्रथम प्रकरण
आत्मरक्षक वृत्तियाँ
१. जिजीविषा
२. बुभुक्षा
३. पिपासा
४. वित्तैषणा
५. निग्रह (गोपनेच्छा)
६. उद्योग
७. शौर्य (बल)
"आहार निद्रा भय मैथुनञ्च,
सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम्॥"
(भर्तृहरिः)

* प्राणैषणा *
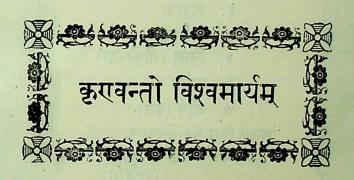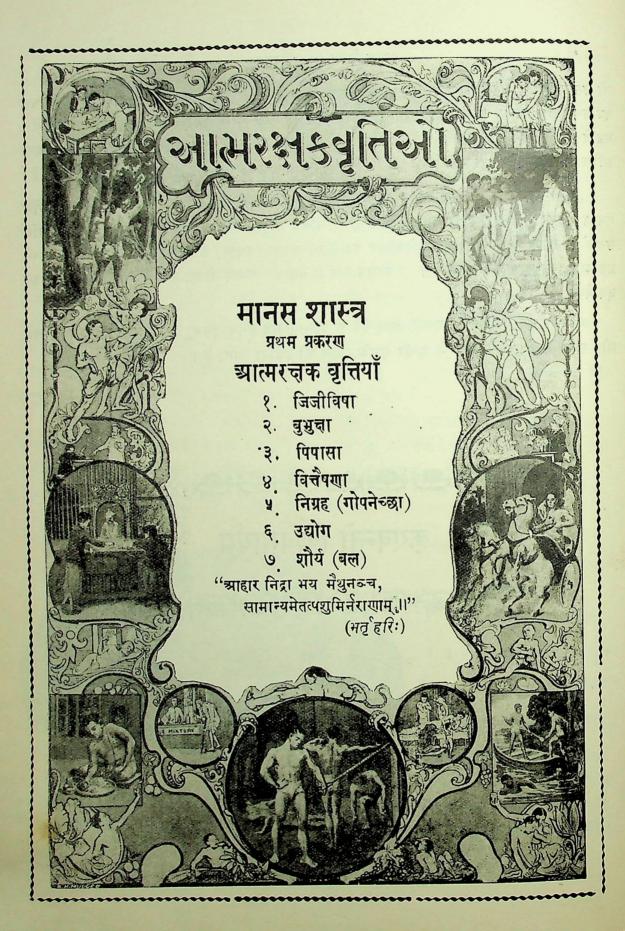
इह खलु पुरुषेणानुपहतसत्त्व बुद्धि पौरुष पराक्रमेण हितमिह चामुष्मिश्च लोके समनुपश्यता तिस्र एषणाः पर्य्येष्टव्या भवंति ॥

तद्यथा–प्राणैषणा धनैषणा परलोकैषणेति । आसान्तु खल्वेषणानां प्राणैषणा तावत्पूर्वतरमापद्यते कस्मात् प्राणपरित्यागे हि सर्वपरित्यागः ।

तस्यानुपालनं स्वस्थस्यस्वस्थवृत्तिरातुरस्य विकारप्रशमने अप्रमादस्तदुभयमेतदत्र वक्ष्यते । तद्यथोक्तमनुवर्तमानः प्राणानुपालनाद्दीर्घमायुरवाप्नोति ॥

चरक.

इस संसार में जिन मनुष्यों में सत्त्व, बुद्धि, पुरुषार्थ, पराक्रमादि गुण विद्यमान हैं वे इस लोक तथापरलोक तथा परलोक के हित के लिये तीन प्रकार की एषणाओं की खोज करें। जैसे कि प्राणै-षणा, धनैषणा और परलोकैषणा अर्थात् मोक्ष की इच्छा। इन एषणाओं में सर्वप्रथम प्राणैषणा मानी जाती है। क्योंकि प्राण का परित्याग हो जाने से सब पदार्थो का स्वयमेव परित्याग हो जाता है। इस प्राणैषणा की रक्षा स्वस्थ मनुष्य स्वस्थ वृत्ति की रक्षा करने में तथा रोगग्रस्त मनुष्य अपने विचारों का शमन करने से कर सकते हैं। इस प्रकरण में इस विषय का वर्णन किया गया है तदनुसार प्राण का यथार्थ पालन करने वाले स्त्री-पुरुष दीर्घायु प्राप्त करते हैं।

प्राणैषणा (जिजीविषा)

नं० १ जिजीविषा

जिजीविषा—प्राण की एषणा; दीर्घकाल तक जीवित रहने की इच्छा, जीवन को सर्वदा चलता हुआ रखने का लोभ, दुःख का प्रतीकार करके शरीर का रक्षण करना, इत्यादि भावों का, इस प्राणैषणा शक्ति के अन्दर समावेश होता है ।

इस शक्ति का कार्य दुःख अथवा अनेक प्रकार के रोगों का दृढ़ता से सामना करके अपने जीवन को दीर्घकाल तक चालू रखना है । शरीर का रक्षण करना यह जिजीविषाका, जीवन को बढ़ाने की इच्छा का महत्त्वपूर्ण कार्य है ।

जिजीविषाको पुष्ट करने वाली प्रवृत्तियाँ--स्वास्थ्य की रक्षा के लिए शास्त्र, औषधि, औषधालय तथा उसके निष्णात संचालक, सेवक इत्यादि ।

स्थान—मस्तिष्क शास्त्रानुसार इस शक्ति के उचित स्थान का निर्णय यथावत् हुआ है । कान के पिछले भाग में मस्तिष्क की तलहटी में ब्रह्मरन्ध्र (**F0ramen-Megnum**) में जहाँ मनुष्य के उपस्थित समग्र मस्तिष्क का और शरीर के सम्पूर्ण अवयवों का संयुक्त सम्बन्ध जुड़ा हुआ है । इसी स्थान में इस प्राणैषणा शक्ति की अवयव रूपप्राण ग्रन्थि (**Medula oblongata**) का बहुत ही सम्भाल कर सावधानी से स्थापन और संरक्षण किया है ।

अहो ! परमात्मा की कृपा की कोई सीमा है ? कैसी कैसी सुन्दर मस्तक की रचना की है ? मानव जाति सहस्रों वर्षों तक परिश्रम करे तब भी मस्तक के एक भाग की वा एक तन्तु की रचना यथावत् नहीं कर सकती । हे प्रभो ! आपको हमारा सहस्रों बार नमस्कार है ।

२. क्षुधा अथवा बुभुक्षा

APPETITE OR ALIMENTIVENESS

शय्या वस्त्रं चन्दनं चारु हास्यं, वीणा वाणी सुन्दरी या च नारी ।
न रोचन्ते क्षुत्पिपासातुराणां, सर्वारम्भास्तण्डुलप्रस्थमूलाः ॥
नास्ति क्षुधा समं दुःखं नास्ति रोगः क्षुधासमः ।
नास्त्याहारसमं सौख्यं नास्ति भोगः क्षुधासमः ॥

बुभुक्षा अथवा क्षुधा वृत्ति—जिस प्रकार शरीर में प्रत्येक अङ्ग वा अवयव आवश्यक है उसी प्रकार मनुष्य के जीवन को चालू रखने के लिए पार्थिव पदार्थों के द्वारा अङ्ग-प्रत्यङ्ग को पुष्ट करना भी आवश्यक है। क्योंकि बिना शरीर के जीवात्मा किसी भी प्रकार का कार्य करने में असमर्थ है। शरीर को हृष्ट-पुष्ट करने वाले आवश्यक पदार्थों की पूर्ति करना यह प्रकृति का सर्वप्रथम आवश्यक कर्त्तव्य है। ऐसे पदार्थों को हम भोज्य पदार्थों के रूप में पहिचानते हैं। इन भोज्य पदार्थों की प्राणी मात्र को एक समान आवश्यकता होती है। क्योंकि "अन्नं हि प्राणिनां प्राणाः" अन्न ही प्राणिमात्र के प्राण हैं।

क्षुधा वृत्ति—खाद्याभिरुचि, सुस्वाद, अन्नाभिलाष, पाचनशक्ति आदि क्षुधापरक भावों का इस वृत्ति में समावेश है। क्षुधा वृत्ति का सदुपयोग (शरीर को) सशक्त और दृढ़ बनाता है और इसका अतियोग स्वास्थ्य को विकृत कर देता है।

सहायक प्रवृत्तियां–शरीर को सजीव रखने के लिए प्राणिमात्र को आहार की आवश्यकता रहती है। वह भोजन प्राप्ति के लिए अन्न, फल उत्पादन के लिए कृषि कार्य, निष्णात कृषक, साधन सामग्री इत्यादि।

इस तरह प्रत्येक मानसिकगुण के साथ उसके धर्म के पोषक, उसके अनुरूप अनेक विध सहायक कार्य उपस्थित हुवे हैं।

नं० २,३ क्षुधा पिपासा
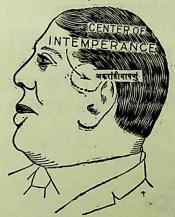
अमिताहारी
क्षुधा, पिपासा का अतियोग

फीजी टापू का मनुष्याहारि चीफटन

क्षुधा तथा पिपासा वृत्ति का स्थान—मस्तिष्क के नीचे ,ब्रह्मरन्ध्र के निकट, कान के अग्र प्रदेश के सन्मुख,किन्तु अन्दर के भाग में दोनों ओर आया हुआ है । पिपासा वृति का मस्तिष्क के अवयव का स्थान क्षुधावृति के स्थानके अग्र भाग में ही आया हुआ है । चित्र में देखिये,कान के अग्र भाग में दोनों ओर।

३. पिपासा—जलाभिलाष, स्नान करना, धोना, तैरना, वहाण (नौकादि) चलाना और दुग्धपान, तक्रपान, फलादि के रस पीने की वृति, इच्छा होना इत्यादि प्रवाही पदार्थों के ग्रहण की इच्छा का उद्-भव होना यह इस पिपास वृति का कार्य है । इस वृत्ति के अतियोग अथवा व्यर्थ दुरुपयोग से अति पिपासा व्याधियों का कारण बननी हैं। मद्यपान, धूम्रपान, चाय, काफी, सोड़ा, लेमन, शर्बत, इत्यादि के अतिपान से शारीरिक मानसिक रोगजन्य दुःख उत्पन्न होते हैं ।

क्षुधा वृत्ति—जिनमें क्षुधा वृत्ति प्रवल प्रमाण में होती है, उन लोगों का अधिक समय खाने पीने के पदार्थों को एकत्रित करने में और भोज्य पदार्थों को बहुत ही सुन्दर रीति से सरस बनाने में व्यतीत होता है । ऐसे लोगों के लिये सर्वदा अच्छे अच्छे भोजन मिलने चाहियें । भोजन करते समय ये लोग बहुत आनन्द और स्वाद से भोजन खाते हैं । वैश्य वृति की अधिकता से खान-पान के अनेक पदार्थ ऋतु अनुसार संग्रह करके भण्डार में भर रखते हैं और थावश्यकतानुसार उपभोग करते हैं ।

सग्रह करने की वृत्ति की साधारण स्थिति में आगामी काल का विचार किये बिना ही "तुरन्त दान महा कल्याण" मानकर उपस्थित खान-पान के आनन्द में प्रवृत्त हो जाते हैं । ऐसे मनुष्यों में यदि स्नेहवृत्ति का प्राबल्य हो तो वे सर्वदा मित्रमण्डल के साथ बैठकर भोजन करना पसन्द करते हैं, उनको एकाकी भोजन करने मैं प्रसन्नता नहीं होती । गृह भावना की प्रबलता से घर में ठहर कर भोजन करने की इच्छा करते हैं, ह टल आदि में उनको आनन्द नहीं आता । वात्सल्य वृत्ति के प्राबल्य से स्त्री–पुरुष, बालक और पशु, पक्षी आदि को उदार भावना से खिलाते पिलाते हैं । जिनमें यह शक्ति साधारण प्रमाण में होती है वे भोज्य पदार्थों का साधारण उपभोग करते हैं ।

पिपासा वृत्ति—जिनमें पिपासा वृति पूर्ण प्रमाण में होती है वे अच्छी रीति से जलपान करते हैं । तैरने की इच्छा रखते हैं अवलोकन शक्ति तथा भूगोल ज्ञान की प्रवलता से समुद्र प्रवास करना, जलपोत (जहाज) का शासक बनना, नौका चलाना आदि बहुत पसन्द करते हैं । जल अधिक पीते हैं, नहाने धोने से प्रसन्न रहते हैं । जिन लोगों में यह शक्ति साधारण है वे प्रवाही पदार्थों का लाभ साधारण लेते हैं और जिनमें यह शक्ति अति न्यून होती है वे प्रवाही पदार्थों की अपेक्षा धन पदार्थों को अधिक चाहते हैं । जल बहुत ही कम पीते हैं । धर्म समझकर नहाते धोते हैं, नहाने धोने की इच्छा से नहीं । तैरने की तो कभी इच्छा भी नहीं होती ।

वैश्य वृत्ति

नं० ४ वैश्यवृत्ति

नं ४ वि-तेषणा.

४. वैश्यवृत्ति (वित्तैषणा) हुन्नर, उद्योग, व्यापार, खेती, वाड़ी, योग=प्राप्ति, क्षेम=प्राप्त किये हुए पदार्थों की संवृद्धि, धनैषणा, सूद लेना देना आदि सब प्रकार के अर्थ सम्बन्धी व्यापारों का समग्र रूप से वर्ताव करना यह वैश्यवृत्ति वा धनैषणा के धर्म को बतलाता है। प्राणैषणा, क्षुधा, पिपासा की रक्षा, पोषण के लिए तथा जीवन की अन्य आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिये धनोपार्जन किसी के अधिकार को हानि पहुंचाये बिना अपने आवश्यक साधनों न्याय और नीति से प्राप्त करना चाहिए, यही धर्मयुक्त है।

स्थान—इस वृत्ति का स्थान क्षुधा वृत्ति के अवयव के ऊपर कला-कौशल वृत्ति के अवयव की पंक्ति में, पीछे के भाग में, कान के ऊपर के प्रदेश में आया हुआ है। यदि यह शक्ति विकसित हो तो ललाट का पिछला भाग गोल तथा भरा हुआ दिखलाई देता है। इस अवयव की न्यूनता वाला मस्तिष्क उक्त स्थान में चपटा और बैठा हुआ प्रतीत होता है।

उपयोग—मालमत्ता, मिलकियत, साधन, संपत्ति वा स्थिर अस्थिर, अचल चल पदार्थों का स्वामित्व रखने की इच्छा इस वृत्ति का मुख्य उद्देश्य हैं। क्षुधावृत्ति के समीप ही इसको उपस्थिति ऋतु ऋतु में उत्पन्न होने वाले भोग्य पदार्थों का संग्रह कर रखने का तथा आवश्यकतानुसार भावी उपभोग में लेने का बोधक संकेत है।

कला कौशल के स्थान के पीछे ही आया हुआ इसका स्थान अनेक प्रकार के यन्त्र वा हस्त कौशल के उपयोगी कार्य करके विविध प्रकार के हुन्नर उद्योग आदि के द्वारा धनादि ऐश्वर्य को प्राप्ति करने का सूचक है।

पिछले भाग में आया हुआ गोपन वृत्ति का स्थान समग्र संरक्षक वृत्तियों के बीच में आवश्यक स्थान में आ रहा है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि मनुष्य को अपने धन धान्यादि पदार्थों को भली भांति सुरक्षित और गुप्त रीति से संग्रह करके गुप्त स्थान में भावी उपयोग के लिये सुरक्षित रखने की आवश्यकता है।

कोष्ठ, कोष्ठागार, कोश, कोशागार, खनि, तलघर, गुप्त रीति से धनादि रखने के लिये भूमि में दबाया हुआ प्राचीनकाल का बड़ा ताम्रपात्र, इसी प्रकार वर्तमान काल के कपाट, तिजूरी, बैंक, शर्राफ की दुकान आदि कला कौशल और बुद्धि पूर्ण रचनायें गोपनवृत्ति, संरक्षा और कला-कौशल वृत्ति के संयुक्त कार्य का ही परिणाम हैं।

मनुष्य की भिन्न भिन्न वृत्ति (रुचि) के सन्तोषार्थ विविध साधन साहित्य वा सामग्री सृष्टि के अन्दर स्वाभाविक रीति से विद्यमान हैं। मनुष्यों के रहने के लिये वनाया हुआ घर उनकी निवास की वृत्ति को सन्तोष मिलने का साधन हैं। इसी भांति वात्सल्य वृत्ति के लिये प्रजा (सन्तान), मैत्री भाव के लिये मित्र वर्ग, अवलोकन शक्ति की तृप्ति के लिये दृश्य पदार्थ, रङ्ग ज्ञान की तृप्ति के लिए अनेक प्रकार के रंग। स्वर और संगीत शक्ति को परितृप्त करने के लिये श्रवणेन्द्रिय और सारङ्गी दिलरुषा, वीणा, हारमोनियम, पियानो आदि वाद्य। बुद्धि विकास के लिये अनेक प्रकार के तत्त्व ग्रन्थ, इतिहास और भूगोल शक्ति को तृप्ति के लिये अनेक विध ऐतिहासिक ग्रन्थ और भूगोल तथा खगोल ज्ञान के लिये पृथिवी, आकाश; चित्रपट (नकशा) और पुस्तकें। तर्क और तुलना शक्ति के विकासार्थ न्याय शास्त्र के ग्रन्थ, इत्यादि भिन्न भिन्न प्रकार की वृत्ति को सन्तुष्ट करने के साधन हैं। वैसे ये तदनुकूल गुण वाले व्य'क्त के लिय उपयोगी पदार्थ हैं। अतः अपने परिश्रम से एकत्रित किये हुए समग्र पदार्थों का अपने उपयोग के लिये सेवन करने का प्रत्येक व्यक्ति को स्वाभाविक अधिकार है। साधन सामग्री प्राप्त करने में उद्योग और वैश्यवृत्ति कार्य करती हैं। जिनमें यह वृत्ति प्रबल प्रमाण में होती हैं वे धन तथा अन्य साधन सामग्री प्राप्त करने के लिये पूर्ण बल से कार्य करते हैं। अप्राप्त पदार्थों को प्राप्त करने की प्रवल इच्छा वाला योग वृत्ति युक्त होता है और प्राप्त पदार्थों के रक्षण करने की क्षेम वृत्ति से भी संयुक्त होता है।

श्रीमान् महानुभाव
सेठश्री प्राणलाल देवकरण नानजी
देनाबैङ्क बम्बई

आप वैश्यवृत्ति के धर्म का यथोचित पालन करने वाले तथा वैश्यवृत्ति की प्रवृत्ति (व्यापार, उद्योग, कला कौशल) के सर्वाङ्ग का सञ्चालन करने वाले हैं और सारा भारत में प्रसारित हुई सौसे अधिक देना बैङ्क के स्वामी और सञ्चालक हैं, साथ ही सुविद्या सम्पन्न, उत्तम संस्कारवान् व्यक्ति हैं।

आत्मनिष्ठा के प्राबल्य से और निग्रह वृत्ति की साधारण अवस्था में मनुष्य सर्वदा सच्चा विश्वासपात्र, व्यापार, व्यवहार में सावधान तथा कर्तव्य को जानने वाला होता है। ऐसा व्यक्ति किसी को ठगता वा धोखा नहीं देता। किन्तु यदि आत्मनिष्ठा की न्यूनता हो गोपन वृत्ति की प्रबलता हो तो किसी भी ढंग से, किसी भी प्रयत्न से धन प्राप्ति के पीछे लगा रहता है।

ये वैश्यवृत्ति रूपी महान् वृक्ष की योग तथा क्षेम वृत्ति रूपी दो महान् शाखायें हैं। ये आगे चलकर अनेक शाखा प्रशाखा के रूप में समग्र विश्व के व्यापार व्यवहार में परिणत हो जाते हैं। खान, पान, वेश-भूषा और आनन्द, उल्लास के अनेक प्रकार के आवश्यक साधन, सामग्री मनुष्य समाज की अनेक विध आवश्यकतानुसार पूर्ण करना, देश विदेशों में भेजना, तथा उत्पन्न करना भूमि में बोये हुए बीज द्वारा उत्पन्न करना इत्यादि सभी उद्योग व्यवसाय इस वृत्ति की अनेकानेक शाखायें ही हैं।

५. निग्रह वृत्ति
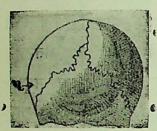
प्रबल निग्रह वृत्ति

५. निग्रह वृत्ति—छुपा रखने की वृत्ति, मर्यादा को अतिक्रमण करने वाली किसी भी वृत्ति को दबाव में रखने के लिए इस संयम शक्ति की आवश्यकता है ।

स्थान—वैश्यवृत्ति के स्थान के पीछे और शौर्य शक्ति के अवयव के ऊपर इस गोपन वा संयम शक्ति का स्थान आया हुआ है ।

मन्द निग्रह वृत्ति

गुप्त रखना, छपाकर रखना यह स्वाभाविक शक्ति का ईश्वरीय सत्ता का भी एक अनोखा विशेष नियम है । उनका मुख्यतया कार्य बहुत ही गुप्त रीति से अविदितावस्था में ही होता है । सभी पदार्थों की संवृद्धि, आवरण (पर्दे) के पीछे हो ढक्कन में गुप्त रीति से होती है । जिसके अन्दर यह शक्ति प्रपूर्ण प्रमाण में होती है वह बहुत ही लुच्चा, ठग और अत्यन्त गम्भीर धीर, समुद्र जैसा गहरा, कभी भी सत्य बात को स्वीकार न करने वाला होता है । जिन में नैतिक बल की अधिकता और संरक्षण वृत्ति की सामान्यता होती है वे नीति के आधार पर अपना कार्य आरम्भ करते हैं किन्तु सत्य अथवा उचित उद्देश्य छुपाने के लिये अधिक गम्भीर बनावट करते हैं ।

निग्रह के अतियोग से असत्य, छल, कपट, चोरी, मन में कुछ और दिखाना कुछ और ही इत्यादि भाव उत्पन्न हो अधर्म के मार्ग में प्रवृत्त करते हैं । जीवन को सम्तुलित (समतोल) रखने के लिए संयम का उपयोग योग्य मार्ग से ले जाने में सहायक बनता है ।
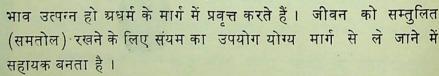
जिनमें इस वृत्ति की न्यूनता होती है वे सादे सीधे निष्कपट, शुद्ध हृदय के जो मन में आये वही कह डालने वाले स्वभाव के, मनके विचार को प्रकट करने वाले सन्देह हीन, भोले और दूसरों के प्रपञ्च में फंसने वाले होते हैं ।

जब 'मधु तिष्ठति जिह्वाग्रे हृदये हालाहलं विषम्" पीछे निन्दा करने वाला और अपनी सम्मुख आये तब अच्छा प्रिय बोलने वाला, मित्र भाव की न्यूनता वाला और छद्म वृत्ति सम्पन्न हैं ।

आत्मरक्षक वृत्तियों के मध्य में आई हुई इस वृत्ति के स्थान की परिस्थिति ऐसा दर्शाती है कि आत्मरक्षक वृत्तियों अथवा पशु वृत्तियों और उनके कार्य को नियन्त्रण में रखना यह इस वृत्ति का अनोखा विशेष आवश्यक कार्य है। क्योंकि इसके नियन्त्रण की मनुष्य समाज में अत्यन्त आवश्यकता हैं। दया, श्रद्धा भक्ति और ज्ञान आदि को छुपाने की आवश्यकता नहीं रहती, किन्तु किस समय अपनी कौनसी युक्ति कला, उपाय वा आभ्यन्तर अभिप्राय को छुपाने की वा नियन्त्रण में (निग्रह में) रखने की आवश्यकता रहती है। योग्यता, प्रवीणता और सावधानता यह सब इसी वृत्ति का परिणाम हैं। ये गुण प्रत्येक व्यक्ति में उचित प्रमाण में होने चाहियें। संयम के बिना जीवन किसी भी प्रकार बार-बार धोखा खाता है, पतित हो जाता है। अतः उचित प्रमाण में निग्रह की अत्यन्त आवश्यकता हैं।

यह शक्ति दूसरी शक्ति पर दबाव रखने का कार्य करती है। इसलिये उशको वश्यता या संयम वृत्ति भी कह सकतें हैं।
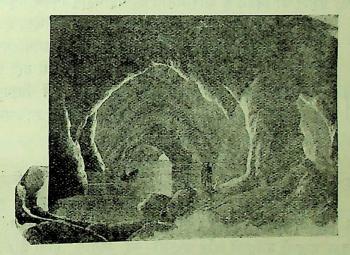
—: कन्दरा :—

निग्रहके कार्यमें सहाय करनेवाले और आश्रय देने वाले एक साधन है।

नं० ६ उद्योग शक्ति अथवा कार्यशक्ति

EXECUTION AND DESTRUCTIVENESS

नं० ६ उद्योग शक्ति

उद्योग शक्ति-कार्य करने की, कार्य को सफल बनाने की वृत्ति, प्रतिकार शक्ति, खाने पीने और दूसरे जीवनोपयोगी आवश्यक पदार्थों के प्राप्त करने की तथा उनको सुरक्षित रखने की शक्ति, आक्रमण करना, मूर्खता, पूजनीयों का सत्कार न करना (बे अदबी दिखलाना) कठोरता चीरने-फाड़ने की वृत्ति इत्यादि सभी क्रियायें उद्योग शक्ति द्वारा ही होती हैं। संयोग और वियोग, सर्जन और विनाश वह प्रकृति का नियम हैं। जो वस्तु संयोग जन्य है उसका निश्चित समय पर वियोग तो अवश्यमेव होना ही है यह सृष्टिकर्ता का अचल नियम हैं। जन्म और मृत्यु, आविर्भाव और तिरोभाव प्रत्येक पदार्थ के लिये नियत हैं। परिवर्तन होना प्रकृति का नियम है और प्रकृति का यह महान् नियम मनुष्य पर भी लगा हुआ हैं। संसार का प्रत्येक पदार्थ सर्वदा के लिये जैसा है वैसा ही रहता तो उसमें सम्पूर्ण आनन्द नहीं रहता। ससार में प्रत्येक पदार्थ सुख देने के लिये बनाया है, दुःख, क्लेश और कष्ट देने के लिये नहीं। यदि हम अपने जीवन को प्रकृति के नियमानुकूल चलावें तो इसमें नित्य, निरन्तर सुख ही मिलता हैं, किन्तु प्रकृति के नियम को तोड़न से, उनकी आज्ञा का उल्लङ्घन करने से दुःख उत्पन्न होता है।

आलस्य प्रमाद की मूर्ति

जोतने योग्य भूमि को मनुष्यों के उपयोग के लिये तैयार करने में असंख्य प्रकार के पदार्थों का विनाश करने की, हटाने की वा प्रतिकार करने की आवश्यकता रहती हैं। जिस प्रदेश में मानव नहीं रहता उसमें वृक्ष, लत्ता,पर्ण, पर्वत तथा जङ्गली प्राणियों और जन्तुओं का निवास होता है। किन्तु मनुष्य के आगमन के साथ मनुष्य वृक्ष, गुल्म, लत्तादिका विनाश कर भूमि को जोतने योग्थ बनाते हैं।

काष्ठ को ईन्धन और भवन निर्माण के उपयोग में लेते हैं। वन्य पशु, प्राणी, जीव, जन्तु वहाँ से भाग कर अन्यत्र अपना निवास स्थान बनाते हैं। यदि विरुद्धता दिखावें, मारने के लिए तैयार हो जावें तो मृत्य की शरण में जाना पड़ता है। पत्थर, पहाड़, टेकड़ा आदि बाधाओं को अपनी आवश्यकतानुसार दूर करके मनुष्य अपने अनुकूल निवास स्थान बनाते हैं।

ऐसी अनेक प्रकार की संहारात्मक वा विनाशात्मक बाधाओं को दूर हटाने वाले कार्य, परिश्रम, धुन और आग्रह से करने की मनुष्य को अपने जीवन में प्रत्येक प्रसङ्ग में आवश्यकता पड़ती है। जीवन-काल में अनेक थिध विपत्तियां, लड़ाई, झगड़ा, विरोध, बाधा और सकटों के सन्मुख टिकना पड़ता है।

इस टिकाव को चिरस्थायी और चालू रखने की आवश्यकता रहती है। इस प्रकार के अनेक प्रत्यवरोधक कार्य करने के लिये मनुष्य के अन्दर स्वाभाविक शक्ति और उस शक्ति को प्रकट करने वाले अवयव मस्तिष्क में परमात्मा ने दिये हैं।

क्षेत्र वा उद्यान में उत्पन्न हुए अन्न तथा फलों को भी अपने जीवन निर्वाहार्थ संरक्षित रखकर पकने पर भोजन के लिये उपयोग करने में प्रकार भेद से विनाश करने की अनेक रीति से आवश्यकता रहती है। ऐसे अनेक कार्य जो शक्ति द्वारा प्रतिक्षण होते रहते हैं, उनको मस्तक विद्या विनाशक शक्ति अथवा संहारेच्छा वा कार्य सफल बनाने की, पूर्ण करने की शक्ति के नाम से बतलाती हैं।

सब प्रकार के अधिकार, नियम और आज्ञा के पीछे कार्य के करने और बल के देने का मुख्य अधिकार, इस संहारात्मक अथवा विनाशत्मक शक्ति का ही है। राजाज्ञा, धर्माज्ञा, मनुष्यकृत वा ईश्वरकृत नियम, विधान सर्वत्र, सर्वदा, सर्वथा उपर्युक्त सिद्धान्त की ही पुष्टि कर रहे हैं और आज्ञा के रूप में कहते हैं कि "यह अच्छा कार्य करो" नहीं करोगे तो शिक्षा पावोगे। यदि किसी का वध करोगे तो फांसी पर चढ़ा देंगे। चोरी करोगे तो दण्ड भरना पड़ेगा और कारागृह (जेल) में जाना होगा। भूख से अधिक भोजन खाओगे तो तुरन्त ही उदर में पीड़ा होकर प्राकृतिक नियम से शिक्षा मिलेगी। अनीति पर चलोगे, कुत्सित आचरण करोगे तो आत्मा की अधोगति होगी। इस प्रकार के अनेक दृष्टान्त केवल यही दर्शाते हैं कि सब प्रकार की सत्ता—अधिकार, नियम वा आज्ञा के पीछे प्रबलता से कार्य करते रहे और मनुष्य इसी रीति से प्राणी वर्ग को नियम पूर्वक चलाने वाली और आगे बढ़ाने वाली कोई एक प्रबल शक्ति और सत्ता है, जिसको हम मस्तक विद्या के अनुसार विनाशक वृत्ति वा कार्य पूर्ण करने की वृत्ति कहते हैं।

शिक्षा, दण्ड वा विधान के नियमों को संस्थापित और सुरक्षित रखने के लिये दूसरा कौनसा उत्तम प्रकार है? कोई भी नहीं। किन्तु ये सब शिक्षात्मक कार्य इस विनाशक वृत्ति द्वारा ही हो रहे हैं। कुदरत (प्रकृति) ऐसे ही मनुष्य एक समान रीति से अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार इस शक्ति का प्रतिक्षण उपयोग कर ही रहे हैं। इसके बिना कोई भी कार्य किंचिन्मात्र भी नहीं हो सकता। सम्पूर्ण विश्व, उसमें रहने वाले मनुष्य, प्राणी वा पशुवर्ग और प्रकृति भी ईश्वरीय नियमानुसार सर्वदा वर्ताव करते रहते हैं। विधान वा नियम के बिना प्रकृति और मनुष्य किसी भी समय जीवित रहने में समर्थ नहीं। विनाशक वृत्ति वा कार्य पूरा करने की शक्ति इन सब नियमों अथवा कानूनों को सुरक्षित रखने की तथा आचरण करवाने की सर्वोत्तम शक्ति हैं।

संक्षेप में इस संहारक शक्ति का कार्य जीवन की प्रगति में अवरोधक कारणों को दूर करना, प्रतिबाधक पदार्थों वा प्राणियों का नाश करना और जीवन को सुरक्षित रखने के लिए अन्तिम और आवश्यक तात्कालिक उपायों का उपयोग करना है। मनुष्य के अन्दर यह वृत्ति स्वाभाविक है। इसका यथा योग्य उपयोग करने में अनेक प्रकार के लाभ समाये हुए हैं और मिथ्या योग तथा अति योग से विविध दुःख, संकट, हानि और विनाशक परिणामों की भयंकर परम्परा जन्म पाती है।
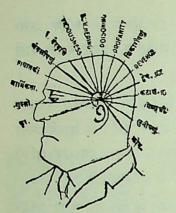
यूरोप के दो विश्वयुद्धों का जो कटु अनुभव हमें मिला है; वह इस संहारक शक्ति के अति उग्र स्वरूप का ही परिणाम है।

महात्मा डा० गोल इस शक्ति के सम्बन्ध में लिखता है कि अपने पिता की हत्या करनेवाले एक हत्यारे की खोपड़ी किसी ने मेरे पास भेजी, वह मैंने निरुपयोगी समझकर एक कोने में रखदी। कुछ काल पश्चात् एक बलवान, कठोर, नृशंस (जालिम) मनुष्य की खोपड़ी मेरे पास पहुंची। जिसने अनेक खून किये थे। मैंने अनेक बार इन दोनों खोपड़ियों को सन्मुख रखकर निरीक्षण किया। इससे मुझे ज्ञात हुआ कि उन दोनों में बहुत अन्तर था, किन्तु कान के ऊपर बाह्य भाग के ठीक ऊपर दोनों खोपड़ियों समान रीति से ऊपर को उभरी हुई दिखाई देती थी। इन दोनों खोपड़ियों की समानता निष्प्रयोजन तो नही होनी चाहिये, किन्तु सकारण ही होगी, ऐसा मैंने निर्णय किया। तदुपरान्त शाकाहारी तथा मांसाहारी प्राणियों का मुकाबला किया। इससे मुझे ज्ञात हुआ कि मांसाहारी प्राणियों की खोपड़ी खूनी मनुष्य की खोपड़ी के समान ही संवृद्ध होती है। इससे मेरे मनमें निश्चय हुआ कि इस प्रकार की खोपड़ी के साथ संहारकवृत्ति का सम्बन्ध है।

(डा० गोल)

डा फाउलर कहता है कि—डा० गोलका इस शक्ति के अस्तित्व के सम्बन्ध में दिया हुआ प्रमाण अवश्य स्पष्ट है। मेरा सब अनुसन्धान भी इसमी सम्पुष्टि करता है। तथाहि–पीटसवर्ग में मैं व्याख्यान दे रहा था, उस समय एक डाक्टर ने कहा कि मेरे पास एक खोपड़ी है, उसका अथलोकन सबके सन्मुख करके बतलाओ। मैंने दूसरे दिन परीक्षा करने की प्रार्थना की। क्योंकि मैं रात-दिन यात्रा करने और दीर्घ व्याख्यान देने से थका हुआ था। उन्होंने कहा कि आप ऐसी परीक्षा से डरते हैं। इस पर मैंने कहा—अच्छा, चलो अपनी खोपड़ी ले आओ। इस पर डाक्टर ने खोपड़ी भेजदी। उसको देखकर मैंने बतलाया कि यह खोपड़ी धन के लोभ से हत्या करने वाले व्यक्ति की है। और उसके अन्दर धनाभिलाष, बदमाशी, लुच्चापन, कामवासना, सहारक शक्ति के अवयथों का क्रमशः वर्णन किया तथा बतला दिया कि इस मनुष्य में नैतिक बल और निग्रह की न्यूनता थी। उसका आचरण मेरे विवरण के ठीक अनुकूल सिद्ध हुआ। अन्य अनेक स्थानों में ऐसे मेरे प्रयोग प्रमाणित हुए।

(डा० फाउलर)
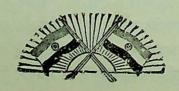
नं० ७ शौर्य शक्ति अथवा बल पराक्रम
FORCE OR COMBATIVENESS

शौर्य शक्ति–बल, पराक्रम, साहस, वीरता, धैर्य, दृढ़ता से कार्य करने की शक्ति निर्भयता, आत्मरक्षण, लड़ाई, झगड़ा, विवाद करने की शक्ति। चलाजा, निकलजा, भागजा में अकेला सब कर लूंगा, सब संभाल लूंगा। इत्यादि आत्मशक्ति के भाव प्रदर्शित करने वाले सब भावों को इस शक्ति से ग्रहण किया जाता है। शौर्यशक्ति सर्व विध विरोधों को हटाकर अपने और अपनी संगति में आने वाले सबको क्षेम, कुशल और स्थिर रखने का कार्य करती हैं। जाति और देश का रक्षण करती हैं।

इस शौर्य शक्ति की न्यूनता से मान (इज्जत) और यश नष्ठ करके अन्य अनेक विपत्तियाँ सहन करते हैं। इस शक्ति के अतियोग वा मिथ्या योग से लड़ाई झगड़ा और आक्रमण करने का स्वभाव हो जाता हैं।

शौर्य शक्ति के मुख्य तीन विभाग हैं—१. साहस, २. युयुत्सा, ३. संरक्षण।

स्थान—इस शक्ति का स्थान कान के ऊपर के गोल भाग के पीछे के भाग में लगभग एक इंच पर आया हुआ हैं।

शक्ति यह कुदरत (प्रकृति) का अनुपम गुण है जिसके द्वारा सब कार्य-उत्पत्ति, अवलम्बन, पोषण, रक्षण और विनाश आदि निरन्तर हो रहे हैं, अव्याहत गति से चल रहे हैं। इस शक्ति के बिना कोई भी प्राणी किसी भी विषय की किसी भी प्रकरण की तथा किसी भी कारण की क्रिया के करने, आनन्द भोगने अथवा अनुभव करने में समर्थ नहीं हो सकता, एक तृण भी इसके बिना नहीं चल सकता। पृथ्वी की गति, सूर्यका प्रकाश, ग्रहोपग्रह का परस्पर एक दूसरे की और आकर्षण। वनस्पतिके अन्दर रसों का चढ़ना, समुद्र के जल का उछलना, सरिता का बहना, वृष्टि का वरसना, ऐसे ही वायु का घूमना इत्यादि कार्य शक्ति के बिना कभी हो ही नहीं सकते।

सृष्टि की स्थिति, वृद्धि, पोषण, संरक्षण और विनाश आदि समग्र कार्य प्रकृति की शक्ति के प्रताप से ही चल रहे हैं। कुदरत (प्रकृति) में अवरोधक शक्तियां भी इसी प्रकार आनन्द और अस्तित्व के लिये आवश्यक हैं।

संवृद्धि भी इस महान् शक्ति के कार्य का दूसरा स्वरूप है। वृक्ष और वनस्पति के अंकुर (मूल) अपनी शक्ति से ही भूमि के पृष्ठ को तोड़फोड़ कर अपना मार्ग ढूढ लेते हैं तथा पोषक द्रव्यों को एकत्रित कर अपनी संवृद्धि करते हैं। इसलिये मनुष्य को भी अपना मार्ग संकट, दुःख, कष्ट, गहनता, विकटता और अशकयता के बीच में से पार उतरने के लिये स्पर्धा; सहनशीलता

और प्रत्यवरोधक बलवाला होना आवश्यक हैं। क्या यह स्पष्ट नहीं है कि अपने शरीर की रचना, योजना और उसके अंग, प्रेत्यंग का कार्य भी इस महतीशक्ति के आश्रम से ही चल रहा हैं।

आत्मरक्षा–स्वरक्षरण तथा अपने आश्रितों के रक्षरण के लिये भी प्राणिमात्र में इस स्पर्धा और रक्षरण करने की शक्ति वा बल की अनेक प्रसगों पर आवश्यकता पड़ती हैं। मनुष्य तथा इतर प्राणियों को भी अपने घर, कुटुम्ब, बाल-बच्चा, धन ऐश्वर्य आदि पदार्थ एवं वेष, भाव, विचार, आचार, सद्वृत्ति आदि स्थितियों और दुःखी, अनाथ, निर्धन, निर्बल तथा सत्यवादी, निरपराध प्राणियों के अधिकार वा स्थिति आदि का रक्षरण करने की अनेक बार आवश्कता पड़ती हैं।

जीवन के लिये कलह–यह भी एक प्रकार का संग्राम ही हैं। और ऐसे जीवन संग्राम में शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक ऐसे सब प्रकार के संग्राम का अनेक रीति से समावेश होता हैं। तथा ऐसे प्रत्येक संग्राम में प्रसंगवश प्रत्येक प्राणी को भाग लेने की आवश्यकता होती हैं। प्रत्येक बालक, स्त्री, पुरुष, युवक अथवा वृद्ध मनुष्य जीवन के इस संग्राम में अपनी शक्ति के अनुसार भाग लेता है और ऐसे प्रत्येक प्रसंग में हमारी प्रतिस्पर्धा अथवा प्रतिकार करने की विधि से भाग लेने की आवश्यकता हैं। स्पर्धा, द्वन्द्वाभिलाष-युयुत्सा, प्रतिकार, लड़ाई, झगड़ा, मारना, पीटना, कूटना, प्रहार, करना आदि सब भाव इस एक ही वृत्ति के भिन्न-भिन्न उद्देश्यों से होने वाले कार्यों के स्वरूप हैं। शान्ति और विशेष सहनशीलता वह वस्तुतः जीवन की योग्यता नहीं मानी जाती। "बलवान् के दो भाग" यह प्राकृतिक नियम है यह सिद्धान्त ऐसा सूचित करता है कि प्रत्येक पदार्थ तथा प्राणी के किसी
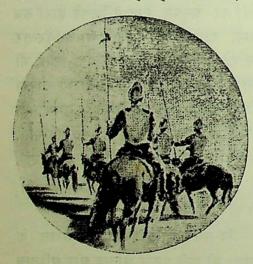
का किसी रूप में कोई न कोई प्रति स्पर्धा करने वाला पदार्थ वा प्राणी है ही। जो प्राणी, मनुष्य वा देश की प्रजा अपने बल पर स्थित रहती है, वही चिरकाल तक अपना अस्तित्व बनाये रखती हैं, और निर्बल तथा पराश्रित प्राणी, प्रजा आदि का विनाश शीघ्र ही हो जाता हैं। अथवा दासत्व स्वीकार कर निर्बल, दीन-हीन होकर रहते हैं।

भय से सब डरते हैं, और प्रकृति में भय के अनेक प्रसग उत्पन्न होते हैं। शोक स्थान सहस्राणि भयस्थान-शतानिच" हमें उनसे सुरक्षित रहना चाहिये।

शूरवीरता से भय को हटाने के लिये उद्यत रहने से उपस्थित भय अनेक प्रसंगों में दूर किये जा सकते हैं। सावधानी की शक्ति ऐसे प्रसङ्गों में अनेक बार सहायता देती हैं, किन्तु सुरक्षित रहना यह अन्य साधन हैं। भीरूता हमें भय का पात्र बना देती हैं, किन्तु वीरता, सावधानी और समझ से सन्मुख खड़ा हो जाने से भय आश्चर्यान्वित होकरभाग जाते हैं अथवा हम भय से बच जाते हैं।

"हाज़िर सो हथियार" समयसूचकता यह एक बहुत ही आवश्यक संरक्षक शक्ति हैं। किस समय जीवन, धनैश्वर्य और जीवन के बचाव के लिए तन और मनकी सम्पूर्ण शक्तियों को एक साथ तत्काल उपयोग में लाने की आवश्यकता पड़ती है। वैसे ही समय पर समयसूचक वृत्ति की सहायता काम आती है। ऐसे अवसर पर मननात्मक और बुद्धयात्मक शक्तियों से क्या उपाय लेना चाहियें इसका शीघ्र निर्णय करनेका और विचारे हुए भय वा विपत्ति के सन्मुख तुरन्त खड़ा रहने की तैयारी करने की आवश्यकता होती है। उसमें प्रत्येक शारीरिक नस नाड़ी और स्नायु मण्डल के इसी प्रकार मानसिक शक्तियों और आध्यात्मिक प्रवृत्तियों के संयुक्त कार्यद्वारा सहसा संरक्षा (बचाव) करने की आवश्यकता पड़ती है। इसके अनुसार समग्र सरक्षक, सवर्धक, स्पर्धात्मक और समयसूचकता, शारीरिकबल, आत्मिकबल, इत्यादि सब शक्तियों के मूल रूप सेनापति का कार्य करने वाली यह युयुत्सावृत्ति वा शौर्यवृत्ति हैं।

बालकों में शौर्यशक्ति का विकास-निर्बल बालकों में इस शक्ति को विकसित करने की विशेष आवश्यकता है। उनको सर्वदा उनकी शक्ति के अनुसार कार्य सौंपना चाहिये तथा कार्य करने का अधिकार देना चाहिए। डरपोक बालकों को स्पर्धा तथा विरोध के सन्मुख ठहरना, विचलित न होना सिखाना चाहिए। मल्लयुद्ध, व्यायाम करवाना, दौड़ना, उछलना, कूदना, शीघ्र चलना आदि करवाना चाहिए। उस समय यदि एक दूसरे को हानि पहुंचावे तो शीघ्र ही अनुग्रह, दया नहीं करनी चाहिए, किन्तु बल पूर्वक सूचना देनी चाहिए। जिन बालकों में शौर्य शक्ति विकसित रूप में नहीं होती वे सोच कर मन में "मैं नहीं कर सकता" मैं नहीं कर सकूंगा" ऐसा विचार कर दुःखी होते रहते हैं। उनको उत्साहित करना चाहिए। "यह कार्य मुझसे नहीं हो सकेगा" बोलने वाले निर्बल बालकों को समझाना चाहिए कि ऐमा कहो कि 'मुझसे क्यों और किस लिए न हो सकेगा! "मैं इस कार्य को करूंगा और अवश्यमेव करूंगा" ऐसा बोलना सिखाना और तदनुसार कार्य कर दिखाने का स्वभाव बनाना, अभ्यास करवाना जाहिये, चिससे उनमें आत्मविश्वास और आत्मश्रद्धा प्रबल हो सके। हताश और निराश होकर ऐसा बालक समय पर कार्य छोड़ दें तो क्रोध नहीं करना, फटकारना भी नहीं और नहीं निन्दा करनीं चाहिये। ऐसे समय समय पर क्षमा करना, किन्तु बालक को स्वाश्रयी बनाने की आवश्यकता ध्यान में रखनी चाहिये।

मानस शास्त्र

द्वितीय प्रकरण

सांसारिक (गृह्यभावनाएं)

A. H. MULLER

सांसारिक अथवा गृह्यभावनायें

The Social and domestic Propensities

❀❀❀

सानन्दं सदनं सुताश्च सुधियः कान्ता मृदु भाषिणी
स्वेच्छापूर्णधनं स्वयोषिति रतिः स्वाज्ञा पराः सेवकाः।
आतिथ्यं विभु चिन्तनं प्रतिदिनं मिष्ठान्नपानं गृहे
साधोर्मैत्र्यम् रोगिता च सततं धन्यो गृहस्थाश्रमः ॥

मनुष्य समाज के साथ सम्बन्ध रखने वाली ऐसी एक भी अच्छी वा बुरी प्रवृत्ति नहीं है कि जिसका सम्बन्ध इन सांसारिक वृत्तियों के साथ न हो। भगवान् मनु महाराज ने कहा है कि—

यथा नदी नदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम्।
एवं गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः॥
यथावायु समाश्रित्य वर्तन्ते सर्व जन्तवः।
एवं गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः॥ (मनुस्मृति)

इनके अन्दर श्रेष्ठ उद्देश्य और महत्वपूर्ण भाव समाया हुआ है। संसार के सब बन्धनों की उत्पत्ति, स्थिति, गति, पालण-पोषण, रक्षण और स्थिरता के एकमात्र आधार ये गृह्य सम्बन्ध ही हैं। इन सम्बन्धोंको दूर करनेसे सृष्टिकी अन्य सब प्रवृत्तियां और साथ ही जगत्का अस्तित्वभी नष्ट हो जायेगा।

इन सब सम्बन्धोंको यथा योग्य रीतिसे, बुद्धिपूर्वक पुष्ट करोगे तो जगत्की अन्य सब प्रवृत्तियां अपना अपना कार्य यथार्थ रूप में करके जगत्के समग्र सुख और शान्तिकी यथावत् रक्षा करेंगी।

प्रत्येक मनुष्यको इस अति-आवश्यक और साँसारिक सब सुखोंके मूलरूप तथा महत्वपूर्ण विषयका बहुतही सूक्ष्मतासे अभ्यास करनेकी विशेष आवश्यकता है।

प्रेम अथवा स्नेह वृत्ति
Love or Amativeness.

प्रबल प्रेमभाव

नं० ८. प्रेम अथवा स्नेहवृत्ति। प्रजोत्पत्ति प्रेम रत्य-भिलाषा, विषयवासना, स्त्रीत्व, पुरुषत्व, प्रजननभाव, स्निग्धता, स्त्री पुरुषका परस्पर स्नेहाकर्षण, प्रेमकी अभिलाषा, प्रिय होनेकी इच्छा आदि स्त्री पुरुषोंकी युवावस्थाके प्रारम्भसे विकसित होनेवाले प्रेम भावोंकी पूर्ति और पुष्टि करने वाले साधनोंका इस वृत्ति में समावेश हो जाता है। इस प्रेमभावका निग्रह पूर्वक बुद्धिसे उपयोग करनेमें ही उचित मान मर्यादा शोभा और गौरव समाया हुआ है।

कम प्रेमभाव

भयंकर काम क्रोध
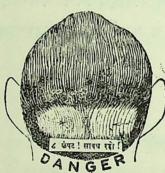
कामवृत्तिका अतियोगही लम्पटता

इस वृत्तिके अतियोगसे अनेक अनिष्ट परिणाम उत्पन्न होते हैं। यथा विषय लोलुपता, कामान्धता, इन्द्रियोंका दास बनना, वेश्यात्व आदि भ्रष्टाचार के कारण अनेक व्याधि और पीड़ाएं हो जाती हैं। अतः स्त्री पुरुषोंको इस काम वृत्तिको बहुत ही समझपूर्वक अपने निग्रहमें रखकर साव-धानतासे आचरण करनेकी आवश्यकता है।

लम्पट पोप
बुद्धि शक्ति कम. काम वासना अधिक

जीवन पर्यन्त अव्यभिचारी वृत्तिसे रहकर स्त्री पुरुष दोनों स्नेहपूर्वक गृहस्थाश्रममें निवास करें, इसीमें स्त्री और पुरुषों के समस्त धर्म तथा कर्तव्योंका समावेश होता है। इस सिद्धान्त को जीवन का मुद्रालेख बनाकर स्त्री पुरुष अपने जीवन को सुखपूर्वक स्नेह एवं आनन्द से व्यतीत करें।

समग्र जीवनपर प्रेमका प्रभाव

स्त्री पुरुष के सर्व मधुर और रसमय सम्बन्ध रूपी फल इस प्रजोत्पत्ति प्रेम रूपी वृक्ष के ऊपर ही फूलते और फलते हैं। विवाहित जीवन, परिणय सम्बन्ध की स्नेह ग्रन्थी, प्रजोत्पादन, प्रजाभिवृद्धि और सांसारिक एवं पारिवारिक माता, पिता, पुत्र, पुत्री, आदि सभी उत्कृष्ट गार्हस्थ्य—सम्बन्ध इस एकही स्नेह सम्बन्धकी स्वर्णमयी, मङ्गलकारी शृंङ्खलासे भली-भाँति संकलित (जुड़े) हुए स्पष्ट दिखलाई दे रहे हैं। स्नेहही समग्र संसारका जीवन है। प्रजोत्पत्तिका महान् अधिकार इस वृत्तिके आधीन है।

सांसारिक सुधारका स्थान कहां ? चित्रमें बाणसे, बताया हुआ स्थान नहीं है; किन्तु चक्रसे बताया हुआ स्थानका निग्रहमें है।

आंख, ओष्ठ और चिबुक (ठोडी) पर प्रेमका प्रभाव

नं० ६ दाम्पत्य धर्म अथवा ऐकान्तिक स्नेह

Lonstancy in Love or union for life

पति पत्नी व्रत

नं० ६ प्रबल दाम्पत्य धम
नं० १० प्रबल वात्सल्य भाव

दाम्पत्य धर्म-पतिव्रत वा पत्नीव्रत, ऐकान्तिक स्नेह, अनन्य भक्ति भाव, अनन्याकाङ्क्षा, सहवास प्रियता, पति पत्नीका अविचल प्रेम-सम्बन्ध आदि शब्द दाम्पत्य वृतिके भावोंको दर्शाते हैं।

नं० ६ न्यून दाम्पत्य भाव।
नं० १० न्यून वात्सल्य भाव।

जिनमें यह वृत्ति अच्छी होती है वे पवित्रतासे अपने दाम्पत्य धर्मका यथोचित पालन करते हैं। मन, वचन और कर्ममें भेद भाव न रखकर मानों दोनों पति पत्नी एक शरीर सदृश ही बन जाते हैं। दूध शक्कर अनुसार मिलकर जीवनके मीठासका अपूर्व आनन्द लेते हैं ऐसे प्रेमी युग्मका संसार (गृहस्थाश्रम) सच्चा स्वर्ग बन जाता है।

प्रेमी दम्पति एक दूसरेके वियोगको सहन नहीं कर सकते। वे अन्योऽन्य के लिए व्याकुल हो जाते हैं एकके विनष्ट हो जानेपर दूसरा भी अपने प्राण त्यागनेके लिए उद्यत हो जाता है।

मन्द वात्सल्य भाव

स्थान—इस वृत्तिका स्थान प्रजोत्पत्ति प्रेमकी शक्तिके स्थान के ऊपर तथा मैत्री भावके स्थानके नीचे और वात्सल्य वृत्तिके दोनों ओर यथायोग्य स्थानमें आया हुआ है।

प्रजोत्पादन में सुन्दर, वीर्यवान् उत्तम संस्कारों वाली प्रजा उत्पन्न करना मुख्य उद्देश्य है। एक की अपेक्षा अनेक स्त्रियोंसे उत्पन्न हुई प्रजा के पालन पोषण और शिक्षणके कार्यमें पृथक् पृथक् व्यय और व्यवस्था करनी पड़ती है। दोनों स्त्रियोंके प्रति समान प्रीति रखना सर्वथा असम्भव है। इसी प्रकार दोनों स्त्रियोंका सद्भावसे मिल जुलकर एक साथ निवास करना भी अशक्य है।

ऐसी अवस्थामें एक ही पुरुषकी शक्ति, साधन और धनादि सामग्रीको अनेक रीतिसे विभक्त कर उपभोग करना पड़ता है। और ऐसा करते हुए ईर्ष्या, द्वेष कलहादि के उत्पन्न होनेके अनेक प्रसङ्ग उपस्थित हो जाते हैं। ऐसी परिस्थिति में परिणामस्वरूप प्रजा भी ऐसी ही उत्पन्न होती है जो बड़ा होने पर उसी भांति कलह प्रिय द्वेषी और निम्न कोटि एवं अनिष्ट संस्कार वाली हो जाती है। अतः एक पतिव्रत और एक पत्नीव्रत का मार्ग अति उत्तम, सीधा, सुख तथा शान्तिप्रद है और ऐसा करना प्राकृतिक तथा ईश्वर की आज्ञा के अनुकूल भी है।

जिनमें यह प्रेम वृत्ति—एकान्तिक स्नेह वृत्ति साधारण होती है वे एक को चाहते हैं, किन्तु अन्य उद्देश्य के आधीन होकर सहजमें दूसरेके साथ भी प्रेमपाश में बंध जाते हैं। वे सर्वदा प्रेमीकी रीतिसे सच्चे दिलसे प्रेम करने योग्य और विश्वास पात्र नहीं रहते।

जिन स्त्री पुरुषों में ऐकान्तिक स्नेहवृत्ति परिपूर्ण रूपमें विकसित होती है वे एकही पुरुष वा स्त्री में अपने प्रेमको स्थापित करते हैं। ऐसे व्यक्ति अन्तःकरणसे स्नेहीको चाहते हैं। उनके दूषण वा अपराधोंकी ओर दृष्टिपात न करते हुए सर्वदा गुणोंका विस्तार कर ग्रहण करते हैं। सर्वदा प्रिय अथवा प्रियाके सङ्ग रहनाही उत्तम समझते हैं। एक साथ मिलकर रहनेमें प्रसन्न होते हैं। अविच्छिन्न प्रेमही उनकी पिपासा होती है। विवाह सम्बन्धकी सत्यपरायणता एवं विश्वास पात्रकी रीतिसे रक्षा करते हैं। मनसा, वाचा, कर्मणा एक सदृश प्रवृत्तियाँ करते हैं। "सहनाववतु, सह नौ भुनक्तु, सहवीर्यं करवावहै" इस मन्त्रानुसार उस प्रेमी युग्म का बर्ताव हो जाता है। यदि किसी कारणसे प्रेम पाश टूट जावे तो हृदय विदीर्ण हो जाता है और इस संसार के कार्यका नहीं रहता अर्थात् संसारमें अन्य कोई प्रेमी दिखलाई नहीं पड़ता, ऐसे जीवनसे वे मरना अधिक अच्छा समझते हैं। विवाह सबन्धी प्रेम ग्रन्थीको एक उत्तम हीरा समझते हैं। ऐसे स्त्री पुरुष प्रेमको निभाने वाले वास्तविक प्रेमपात्रमेंही बहुत सोच विचार कर अपने प्रेमका आधान करें। क्योंकि ऐसे व्यक्ति अपनी प्रिया अथवा प्रियके साथ रहनेमें ही सुख और सन्तोषका अनुभव करते हैं और प्रेम सम्बन्ध जहां तक जुड़ा न होगा वहां तक अस्त व्यस्त अवस्थामें व्यग्र चित्त रहा करते हैं।

विवाह सम्बन्ध करनेके इच्छुक युवती और युवकों के अन्दर की इन शक्तियों की मस्तिष्क शास्त्रानुसार यथायोग्य परीक्षा होने के पश्चात् विवाह सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए तभी अच्छा परिणाम होगा। बहुतसे लोग विवाहसे पूर्व भावी नव-दम्पत्ती की जन्म पत्रिका, जन्म कुण्डली आदि दिखलाते हैं और उनके ग्रहों का मिलान करते हैं। किन्तु वास्तविक रीति

से उनके मस्तककी परीक्षा करवाकर मानसिक गुणों के अनुरूप सादृश्य होनेपर विवाह किया जाय तो वह विवाह सम्बन्ध स्नेह रज्जुसे बन्धा हुआ जीवन को सर्वथा सुखमय बनाने वाला हो सके।

सौभाग्य कांची

संसार की चमक नारी

स्त्री संसार की चमक है,
सज्जन स्त्री संसारकी चमक है,
सुन्दर सेवा स्त्री करती, सुन्दर धरती ही स्नेह,
सुन्दरता संसारमें, नारीही भरती है,
सज्जन स्त्री संसारकी चमक है। १

देती जन्म जगत्को, पालती पूर्ण प्रीत,
इनकाही नाम आधारसे,
कहाती ईश्वरी अम्बा उचित
सज्जन स्त्री संसारकी चमक है। २

मीठी बोली मन हरती, हटाती सब परिताप,
आपद्में धैर्य धरती,
धीर देतीयें नर कोही आप।
सज्जन स्त्री संसारकी चमक है। ३

गृहिणी घरका स्तम्भ है,
घरका गृहिणीही मान,
गृहिणी घरका भूषण है,
घर गृहिणी बिना श्मशान।
सज्जन स्त्री संसारकी चमक है। ४

धन धन नारी नामको, प्रेमो परम अपार,
पालती प्रेमसे सबको,
ये तो आद्य शक्ति सुधार।
सज्जन स्त्री संसारकी चमक है। ५

स्नेह और सौजन्यकी देवियां

हम स्नेह और सौजन्यकी देवियां हैं,
हम स्वर्ग संसारको बनाती हैं; हम स्नेह और सौजन्यकी देवियां हैं। १
हम शांति और आनन्द सर्वत्र प्रसारती हैं,
हम हास्यमेंतो तेजकी अम्बरमणि हैं। हम स्नेह और सौजन्यकी देवियां हैं। २
हम वाणीसे स्वर्ग सुधा फैलाती हैं,
हम नेत्रमें से प्रेमकी धारा वहाती हैं। हम स्नेह और सौजन्य की देवियां हैं। ३
हम धात्री संसार की कहलाती हैं
हम वीर अनेक गोदमें भुलाती हैं। हम स्नेह और सौजन्यकी देवियां हैं। ४
हम हृदय से अमृत धारा भरती हैं,
अमृत पिलाके पुत्रको वढ़ाती हैं। हम स्नेह और सौजन्यकी देविया हैं। ५
हम विश्वके संताप सब मिटाती हैं,
तप्त मानवोंको छाया शीतल देती हैं। हम स्नेह और सौजन्यकी देवियां हैं। ६
हम हास्यसे ही शोभता संसार ऐसे हैं,
हम विश्वमें सौन्दर्यके स्वरूप जैसे हैं। हम स्नेह और सौजन्यकी देवियां हैं। ७
दुःखी मानवोंका दुःख दूर रखती हैं ।
हमारी प्रकृति रोनेको शांत करती हैं। हम स्नेह और सौजन्यकी देवियां हैं। ८
हम कांतकी माननीया गृह देवियां हैं,
हम खुशीतो प्रभु सर्वदा प्रसन्न है। हम स्नेह और सौजन्यकी देवियां हैं। ९

संसारकी देवियांमें आवश्यक दिव्य गुण

१	विशुद्ध प्रेमभाव	११	करुणार्द्र हृदय
२	सम्पूर्ण दाम्पत्य स्नेह	१२	उन्नत-आशा
३	प्रबल वात्सल्य प्रेम	१३	प्रबल-आत्मनिष्ठा
४	उदार मैत्रीभाव	१४	अध्यात्मरति
५	प्रबल गृहनिवासेच्छा	१५	अचल श्रद्धा
६	विशुद्ध शील धर्म	१६	अनुपम औदार्य
७	अद्भुत त्याग	१७	स्नेह पूर्ण सौन्दर्य
८	दृढ़ धैर्य क्षमा, सहनशीलता	१८	साहित्यानुराग
९	पूर्ण भक्ति भाव	१९	मधुर और प्रिय बाणी
१०	विनय-शिष्टाचार	२०	सुखद सौजन्य

आदर्श दम्पती सीता, राम. चित्र नं २

जिसका एक वचन, एक बाण और एक पत्नी। ऐसे न्यायकारी और प्रतापी राजा भगवान रामचन्द्र जीका गुणगान अभी तक प्रत्येक मनुष्य गा रहा है

तथैव रामः सीतायाः प्राणेभ्योऽपि प्रियोऽभवत्
हृदयं त्वेव जानाति प्रीतियोगं परस्परम्॥ उ. रा. चरित्रे

महाराजा दशरथ और महर्षि वशिष्ठके सन्मुख राम, लक्ष्मण और सीता खड़े थे, वन यात्राकी आज्ञा माग रहे थे, उस समय महर्षि वशिष्ठने कहा था "राम वन को जा सकते हैं परन्तु भरत अयोध्या के राजसिंहासन पर नहीं बैठेंगे। प्रत्युत इस राजगद्दी पर हम महाराणी सीता को बैठावेंगे"। इसका उत्तर महाराणी सीताने दिया था कि जिस प्रकार छाया शरीर को नहीं छोड़ती उसी प्रकार पत्नी भी पति को नहीं छोड़ सकती। धन्य सच्ची वैरागिनी पति परायणा महाराणी सीता।

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतुशान्तिवान्॥
मा भ्राता भातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया॥
येन देवान वियन्ति नोच विद्विपते मिथः।
तत्कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुपेभ्यः॥

अथर्ववेद

बालकों का चित्र
गृहस्थाश्रमका फल एवं सृष्टिका
अनादि कालका जीवन
बाल बगीचा
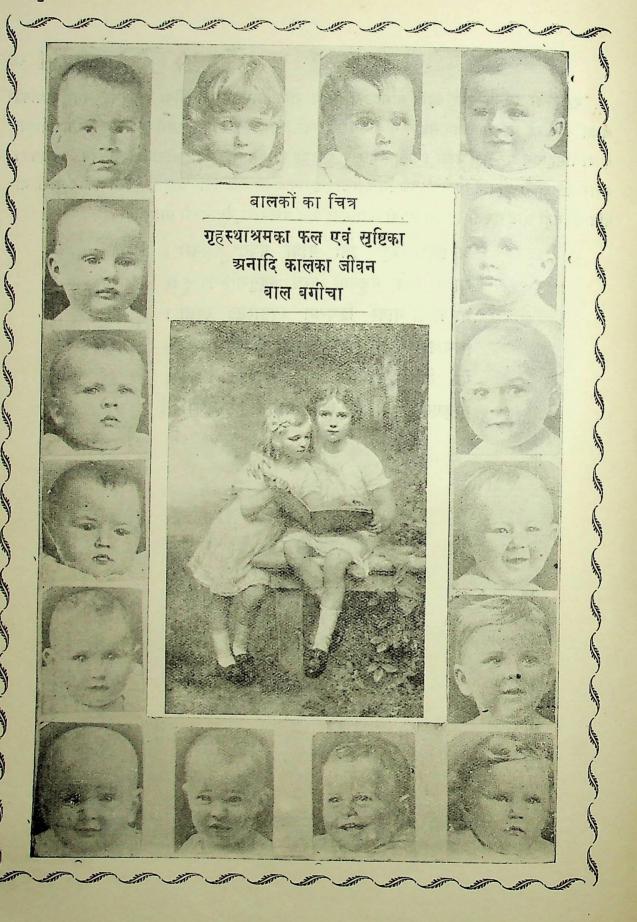
नं० १० वात्सल्यस्नेह अथवा अपत्यप्रीति

Parental Love or Philoprogenitiveness

वात्सल्य स्नेह—स्व सन्तान और प्रत्येक बालक पर प्रीति, पालन, पोषण की वृत्ति बालकों को जन्म देना, उनका रक्षण और पोषण करना, बालकों को ध्यानपूर्वक बड़ा मनुष्य बनाना और उनके जीवनमें स्व, तन्त्रतासे कार्य करने की योग्यता उत्पन्न करना, अन्य प्राणियों को पालने की वृत्ति इत्यादि सभी भावोंका इस वात्सल्य स्नेहकी वृत्तिमें समावेश होता है। स्त्रियोंमें यह वृत्ति अधिक प्रमाणमें विकसित होती है। कारण कि बाल बच्चोंको स्नेहपूर्वक सम्भालना और उनका पालन-पोषण करनेका कार्य निसर्गसे ही स्त्रीजातिके स्वाधीन है। इस वृत्तिका दुरुपयोग वा मिथ्या योग होनेसे माता, पिता तथा स्नेही जन अति प्रेम, लाड, प्यार करके बच्चोंके जीवनके सुधारनेमें बाधक बन जाते हैं।

कण्ठके पीछेके भागकी ओर शिर नमाना यह इस वृत्तिकी स्वाभाविक भाषा है। बालकोंके कारण शोक, सन्ताप, विलाप करने वाले माता, पिता अपने शिरको पीछे झुकाते हैं।

उपयोग—इस वृत्तिका मुख्य उपयोग प्राणिमात्र की बाल्यावस्थामें रक्षण और पोषण करना, निराधार अवस्थामें उनको सहायता देना, ममत्व और स्नेह दर्शाकर उनके जीवनको प्रगति देना है। बाल्यावस्थामें प्राणिमात्रको प्रेमसे विशेष सम्भालकर रखने वाली वात्सल्य वृत्ति बच्चोंकी देवी है। प्यारसे उत्पन्न किए हुए बालकको यथावत् बढ़ाना यह इस वात्सल्य वृत्तिका कार्य है।

प्रजोत्पत्ति और अभिवृद्धि यह प्रकृतिकी (ईश्वरीय नियम की) सर्वोपरि इच्छा है। जो मृत्यु और विनाशके सामने अपना कार्य कर रही है। इस प्रजोत्पादन और अभिवृद्धिके अभावमें प्रत्येक प्राणी वा वनस्पति केवल एकबार उत्पन्न होकर विनष्ट हो जावें तो स्थावर जङ्गम सभी पदार्थोंका सर्वदाके लिए विनाश हो जावे और प्रकृति की अनन्त रचना तथा उत्पन्न हुए पदार्थोंके भोक्ताके अभावमें सब जड़ पदार्थ हो जाते और अनन्त काल तक सड़ाही करते। ऐसा न हो अतः कामवृत्ति—सयुक्त होनेकी वृत्ति सृष्ट पदार्थों तथा प्रत्येक प्राणीको योग्य युवावस्था में प्रजोत्पादन और अभिवृद्धि करनेकी और प्रेरणा करती है। इस वृत्ति द्वारा प्रकृतिका महान् कार्य हो रहा है और भोक्ताओंकी सर्वदा क्रमशः वंश परम्परा चलती ही रहती है।

प्रकृतिसे उत्पन्न होतेंही समग्र बाल प्रजाकी योग्य संरक्षा और अभिवृद्धि यथार्थ रीतिसे हो यह विश्वनियन्ता की युक्ति युक्त प्रेरणा है। और वह पहले इस प्रकारकी समस्त सामग्रीकी संयुक्ति रचना, स्थिति और अनुकूलता करनेके पश्चात्ही प्राणियों को जन्म देता है। यह अति महत्वका विषय है।

स्त्री पुरुष दोनों भिन्न भिन्न जातिके हैं, पुनरपि दोनोंका परस्पर स्नेहाकर्षण है और इसका परिणाम यथार्थ रीतिका संयोग तथा इसके द्वारा प्रजाकी उत्पत्ति, उत्पन्नोंका पालन तथा रक्षण करने

वाली इस वात्सल्य वृत्ति—स्नेहका उत्तेजित होना तथा अपनी स्वाभाविक रीतिसे प्राप्त हुए कार्य करनेके लिये तैयार होना। ये सब संयोग और स्थितियां उस विश्वनियन्ता एवं रचयिता महान् शिल्पीकी अद्‌भुत रचना, सकारण प्रवृत्ति और बुद्धि चातुर्यको एक भी शब्द उच्चारण किये बिना स्पष्ट दर्शा रहे हैं। अकस्मात् वा प्राकृतिक नियमोंकी प्रवृत्ति अथवा प्रकृति का ही यह कार्य है ऐसा कहने वाले बुद्धिहीन अज्ञ मनुष्य हैं प्रजोत्पत्तिके उपरान्त उसके रक्षण और पोषणके पवित्र कार्य को माता पिताकी वात्सल्य वृत्तिको बहुतही समझ पूर्वक सोंपा है। और तदनुसार आचरणमें यह वृत्तिही अपने समग्र साधनों को अनुकूल करती है। प्रजोत्पत्तिके पश्चात् उसके रक्षण और पोषणके सब साधनोंको प्राप्त करके उनका प्रयोग करनेमें अत्यधिक परिश्रम करना पड़ता हैं। बुद्धि, साहस, कार्य तत्परता और प्रेमकी आवश्यकता पड़ती है। वात्सल्य प्रेमही यह सब कार्य स्वाभाविक रीतिसे करवाता है। मनुष्य, पशु, पक्षी तथा जीव जन्तुओंके समूहमें अनेक माता पिताने स्व सन्ततिके रक्षणके लिये प्राण त्याग किया है ऐसे अनेक दृष्टान्त सर्व विदित ही हैं।

संसारमें माताके स्नेहसे समानता करने वाला अन्य कोई नहीं है। माता स्नेहकी चरम सीमा है। अपने बालककी दुःखी दशा वा मृत्यु देखकर माताके हृदयमें जो दुःख होता है उनका नाप तोल कौन कर सकता है ?

इस वात्सल्य वृत्तिके न्यूनाधिक विकासके साथ दूसरी मानसिक शक्तियोंका मिश्रित प्रभाव होनेसे मनुष्योंके बालकोंके प्रति अनेक प्रकारके मिश्रित भाव बनते हैं। मस्तक विद्याका ज्ञाता इन सब भावोंको वाणी और व्यवहारसे सरलतया स्पष्ट जान लेता हैं।

वात्सल्य प्रेमका प्रभाव और मातृ स्नेहका स्तवन

१ मा तो मा, अवधि है, माके निर्मल प्रेमकी है।
सच्ची एक जनेता, पूर्ण दूसरा कोई नहीं है॥
मा तो मा, अवधि है, मा के निर्मल प्रेमकी है।

२ ऊंच नीच वा मध्यम होवे, स्वार्थ विना कभी होय न कोये।
निःस्वार्थी हैं, तोये माता सबसे हैं॥ मातो मा, अवधि हैं··

३ प्रेम मित्रका, प्रेम पिताका, प्रेम ऐसे देखो पत्नी का
वा अन्य दूसरेका, मा जैसा नहीं है॥ मा तो मा, अवधि है··

४ तौलके निश्चय करना उसका, प्रेम अधिक है किससे किसका।
'मा' का, 'मा' का, 'मा' का विशेष सबसे है॥ मा तो मा, अवधि है··

५ कुछ क्षण बच्छा जो नहीं देखे, तो गौ कोलाहल मचा देवे।
मिलेगा तब रहेंगी, माता शान्तिसे हैं॥ मा तो मा, अवधि हैं··

६ जब बालक बीमार होवे, आकाश भूमि साथ मिलावे।
लेती लक्ष उपाय अपने प्राणसे है॥ मा तो मा, अवधि हैं···

७ काली रात्रिमें बालक करण, जाना पड़े जो श्मशान शरण।
नहीं भय व्यग्रतासे जायेंगी दौड़ती है॥ मा तो मा, अवधि हैं··

८ बल्कि भारी प्रतिज्ञा धरती, अरे! अनाहार व्रत करती।
बालक लिए उतारती तारक आकाशसे है॥ मा तो मा, अवधि हैं··

९ नीरोगी बालक होवे कैसे प्राण अरे पटकती ऐसे।
करनेके लिए वैसे—माको ना नहीं है॥ मा तो मा अवधि हैं···

१० बालक होवे स्वस्थ हंसता, दृष्टि लगे उसको खेलता।
सन्देह नहीं हो जाता माके चित्तसे है॥ मा तो मा अवधि हैं

११ आधी रात्रिमें रोदन सुनकर, गहरी नींदसे तुरन्त जागकर।
लाडला क्या है, बोलती भावसे है॥ मा तो मा, अवधि हैं···

१२ पहिले साबुनसे स्नान कराती, साफ कर झभला पहिनाती।
चुम्बन कर बुलाती माता प्रेमसे है॥ मा तो मा अवधि हैं···

१३ सच्चे प्रेमका जल बरसावे, छातोका अमृत पिलावे ।
बाल पुष्प विकसावे पोषी प्राणसे है ।। मा तो मा, अवधि हैं…

१४ वालकके सुखमें सुख गिनती, दुःखमें दुगुना दुःख धरती ।
किसीको ऐसा होवे ! वे अन्ये नहीं हैं ।। मातो मा अवधि हैं…

५ कष्ट अधिक शिर लेनेकी, सीमा देखें वहु दूर जानेकी ।
नहीं होवेगी माकी तुलना किसीसे भी ।। मा तो मा अवधि हैं…

१६ बाल्यावस्था गई हमारी, माताके सुखमें ही सारी ।
अभि आनन्द है भारी पूर्ण पुण्यसे है ।। मा तो मा अबधि हैं…

१७ लाड पीछे कभी नहीं मिलेंगे, बचपन यादकर रोवेंगे ।
तोभी खुशी रहेंगे, माके सौख्यसे है ।। मा तो मा अवधि हैं…

१८ सेवा अनेक वर्षों करेंगे, बदला तो भी न दे सकेंगे ।
सुख देनेको श्रम करेंगे, तोभी प्रेमसे है ।। मा तो मा अवधि हैं…

१६ पूर्ण सुख सब माको मिलना, सबको सुख ऐसे माका मिलना ।
प्रसाद ऐसा मिलना प्रभुके प्रेमसे है ।। मा तो मा अवधि हैं…

यं माता पितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम ।

नः तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षं शतैरपि ।।

नं० ११ गृहनिवासेच्छा और स्वदेशानुराग

Inhabitiveness

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी
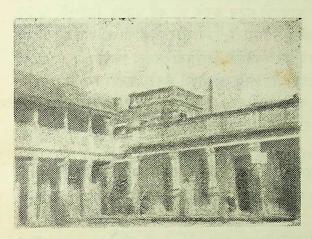
गृहनिवासेच्छा और स्वदेशानुराग--शीत, उष्णता और वर्षासे बचनेके लिये तथा दूसरे नेक प्रकरके भयके आक्रमणोंसे बचावके लिये और जीवनकी आवश्यक वस्तुओं का संग्रह करने, सुख पूर्वक रहने और बालबच्चोंका भली- भांति पालन पोषण करनेके लिये घर जैसे स्थिर स्थानकी मनुष्य तथा अन्य सभी प्राणियोंको आवश्यकता है। जो कि मनुष्य आदि प्राणियोंकी गृहनिवासेच्छाके गुणसे पूर्ण होती हैं। गृहप्रेम, मातृभूमिके प्रति प्रत्येकका ममत्व यह सब गृह निवासेच्छाके लक्षण है। मनुष्यका घर विश्राम स्थान है।

स्थान—वात्सल्य भावके ठीक ऊपर और मैत्री भावके दोनों अवयवोंके थोड़े बीचमें ऊपरकी ओर इस वृत्तिका स्थान है।

उपयोग—वात्सल्य स्नेहको पुष्टि देने और अनुकूल होने के लिए इस वृत्तिका मुख्य उपयोग है। क्योंकि मनुष्य तथा अन्य प्राणियोंका बाल्यावस्थामें उचित पोषण और रक्षण निश्चित और स्थिर स्थानके अभावमें बिना कष्ट और बाधाके यथार्थ रीतिसे नहीं हो सकता। यह बात निर्विवाद सत्य है कि चाहे वह स्थान किसीभी प्रकार का कैसा भी हो, साफ, शुद्ध और सादा झोंपड़ा हो या पर्वतकी कन्दरा हो, तो भी किसी न किसी प्रकारके निवास स्थानकी आवश्यकता तो अवश्य ही है। बिना घोंसलेके पक्षिगण, कन्दराके बिना वन्यपशु, गोशालाके अभावमें गाय आदि पशु और नदी तटके बिना जलचर प्राणी, अपने बच्चोंका रक्षण और पालन पोषण कैसे और कहां कर सकते हैं? वायु, शीत, आतप, तूफान, वर्षा और अन्य अनेक प्रकारके प्राणियोंके भयसे यथार्थ रीतिसे रक्षण कर अपने बाल बच्चोंको आश्रय, विश्राम, पुष्टि और शान्तिप्रद निद्रा देनेके लिए माता और बालकको सुरक्षित स्थानमें निवास करनेकी आवश्यकता स्वयमेव सिद्ध होती है। विश्वव्यापी साधन गृहवास की आवश्यकता सब को है। भूमि माताभी सूर्यके चारों ओर घूमनेके लिए अपना स्थान रखती है। वृक्ष वनस्पति पत्ते लता आदि प्रत्येक वस्तु देशकाल और अपनी स्थितिके अनुसार जंगल, पर्वत, घाटी, नदी तथा समुद्रके तट पर अपनी पुष्टि और रक्षाके लिए स्थान रखते हैं। जहां कि ये अपना मूल गहरा जमाकर अपने शरीरकी वृद्धि करते हैं।

चेतन पदार्थों में प्रत्येक पदार्थको यथायोग्य स्थान देनेका महान् नियम समाया हुआ है और उसी उद्देश्यको समझनेके लिए तथा तदनुकूल बर्ताव करनेके लिए ही मनुष्यके अन्दर भी इस वृत्तिका ग्राहक स्थान बनाने के कारण हमें परमात्माका उपकार मानना चाहिए।

जिस प्राणीमें यह गृहनिवासेच्छा और स्वदेशानुरागकी वृत्ति पूर्ण विकसित होती है वह घरसे दूर देशको जाते समय हृदयमें बहुत दुःख अनुभव करता है और इस वृत्तिके साथ वात्सल्य भाव अधिक मात्रा में विकसित हो तो प्रत्येक प्रकारकी कठिनता और बाधाको सहन करके भी वह मनुष्य विदेशमें जानेके लिए उद्यत नहीं होता, चाहे उसके लिए उसे कितनेही बड़े भारी लाभ और आशाको छोड़ना पड़े। वह मनुष्य प्रत्येक प्रकारकी स्थितिमें, कैसे भी घरमें रह कर स्वदेशमें ही रहना पसन्द करता है। उसकी प्रीति और प्रवृत्ति अपना घरबार, बाग बगीचा, क्षेत्र और सोने बैठनेके कमरे फरनीचर तथा अन्य सामान सुधारने और व्यवस्थित रूपमें रखनेमें ही लगी रहती है। घरको छोड़कर अन्य स्थान पर जाने में भी वह संकोच करता है। अपना ही स्वतन्त्र घर बसानेका तथा उसके लिए क्रय विक्रय करनेका ही वह प्रयत्न किया करता है।

ऐसे लोग स्वसत्ता स्वमान और यशको कामनाके कारण स्वमति स्वदेश और स्वदेश की प्रजाके मानकी रक्षा करनेके लिए सर्वदा तत्पर रहते हैं। अपने देशकी प्रथाओं और राज्यकी प्रशंसा करते हैं। घर और देशका सच्चे हृदयसे रक्षण करते हैं।

यदि किसीमें सौन्दर्य प्रेमकी अधिकता होवे तो अति सुन्दर प्रकारके साधनों और व्यवस्था शक्तिसे घरको आनन्ददायक और रमणीय बनानेका प्रयत्न करता है। मैत्री भावकी अधिकतासे मित्र वर्गको घर पर बुलाकर अथवा निमन्त्रण देकर आनन्द प्राप्तिकी विशेष इच्छा करता हैं। इसके साथ साथ भोज्य पदार्थोंमें अधिक रुचि होनेके कारण उत्तम स्वादु खान पान द्वारा मित्रोंको सन्तुष्ट करनेके लिए प्रवृत्त होता है।

जिन व्यक्तियोंमें यह शक्ति अल्प मात्रामें होती है वे गृह सम्बन्धी कार्यों में अधिक भाग नहीं लेते। मनमें शोक अथवा खेद किए बिना प्रसन्नतापूर्वक घरको छोड़कर स्थानान्तर कर सकते हैं। किन्तु यदि प्रेम तथा वात्सल्य भाव होवे तो घरकी अपेक्षा गृहिणी और कुटुम्बका विशेष ध्यान रखते हैं और जहां जावें वहीं पर कुटुम्बके साथ सन्तोषसे रहते हैं।

स्वदेशानुराग और स्वराज्य यह मनुष्यकी अति उत्तम, अत्यन्त महत्वपूर्ण स्वाभाविक अभिलाशा है। प्रत्येक स्वदेशाभिमानीके हृदयमें यह अनुराग अवश्य होना चाहिए। राज्यतन्त्रभी स्वदेशानुराग, मैत्रीभाव, सावधानता; जागृति, वल, स्वमान, यशोभिलाष, व्यवस्था, भक्ति आदि भाव तथा बुद्धयादि उत्कृष्ट शक्तियोंके सम्मिलित कार्यका ही परिणाम है।

मनुष्यकी अनेक शक्ति और भावोंकी राज्य व्यवस्थामें प्रत्येक क्षण आवश्यकता पड़ती है। प्रत्येक देशकी राज्य व्यवस्था वहाँके मनुष्योंके विचार और बुद्धिके अनुसार ही होती है। क्रूर, घातक, चोर, लुटेरे उचित राज्य व्यवस्था होने पर वशमें रह सकते हैं। अनीतिमान, अधार्मिक तथा अशिक्षित लोगों का समूहभी इसी प्रकार नियन्त्रणमें रह सकता है।

प्रत्येक व्यक्ति अपने नैतिक और धार्मिक बलसे ही स्वयं और दूसरोंका रक्षण इसी रीतिसे प्रायः कर लेता है। जैसे जैसे मनुष्यके अन्दर आत्मनिष्ठा विशेष विकसित होती जायेगी वैसे ही वैसे वह किसीभी अनुचित कार्य को करता हुआ रुकता जाएगा। और दूसरोंके अयोग्य कार्योंके आधीनभी न रहेगा। मनुष्य सर्वदा सत्यको चाहते हैं और असत्यका तिरस्कार करते हैं। ऐसा व्यवहार करने वाले राज पुरुष, अधिकारी वा राजाके प्रतिभी स्वाभाविक रीतिसे वैसीही दृष्टिसे देखते हैं।

प्रत्येक प्रजातन्त्र राज्य अन्य राज्योंकी अपेक्षा सर्वदा श्रेष्ठतम सिद्ध होता है। इसका कारण यह है कि प्रजातन्त्र राज्यका मूल उद्देश्य है—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखमाप्नुयात्॥

सम्पूर्ण समाज सुखी हो, सबका स्वास्थ्य अच्छा हो, सब शुभ और भद्र की प्राप्ति करें, कोई भी व्यक्ति दुःखी न होवे।

भ्रातृ भाव और स्नेह बन्धन मानव समाजके पृथक् पृथक् व्यक्तियों को सङ्गठित करने वाला अनुपम सूत्र है। इस स्वदेशानुराग वा जन्मभूमिके प्रति प्रेमकी वृत्तिका प्रत्येक मनुष्यमें योग्य प्रमाणमें विकास करना और उसका यथा समय उपयोग करना मनुष्य मात्रका उत्तम कर्तव्य अथवा धर्म है।

समानो मन्त्रः समितिः समानी; समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मंत्रमभि मंत्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि॥
(ऋग्वेद १०।१९१।३)

जन्म भूमिके गुण-गान·

स्नेह भरे नेत्रसे निहारती, हो वन्दना तुझे मात भारती।
प्रेम भरे अमृतसे अभिषेकती हो वन्दना तुझे मात भारती।
भीष्म, बुद्ध, दधीचिके त्यागसे तू उज्जवली—भार्गव, अर्जुन, कर्ण सौन्दर्यके रत्नजड़ी
आत्म त्यागसे उज्जवल मुख धारती, हो वन्दना तुझे मात भारती।
दम्पती आदर्श रघुवीरे राम सीता—योगेश्वर कृष्ण समा गाई जिसने गीता
गान्धी दयानन्दको तू धारती हो वन्दना तुझे मात भारती।
शौर्यगीत गुंजती प्रतापी प्रतापके—स्वातंत्र्य संग्राममें सिंह शिवराज के
कीर्तिकी गाथा उच्चारती हो वन्दना तुझे मात भारती।
विश्वके विराट् शरीरको मुकुट मंडली—अर्पती मैं स्वीकार इस स्नेह भरी अंजली
सरिता निज स्नेहसे बहावती हो वन्दना तुझे मात भारती।
स्नेह भरे नेत्रसे निहारती हो वन्दना तुझे मात भारती।

सुन्दर मेरी भारत मात

(१)

हिमालय मस्तक उसका है, शिरसे गंगा बहती है ।
ब्रह्मपुत्रा और सिंधु सात, सुन्दर मेरी भारत मात ।।

(२)

विन्ध्याचल कमर पट है, छोटी नदियां नसें दीखती हैं ।
राजस्थानको हृदय धात, सुन्दर मेरी भारत मात ।।

(३)

कोरोमांडल पैर दक्षिण है, वाम मलवारको जानते हैं ।
पादुका लंका को ज्ञात, सुन्दर मेरी भारत मात ।।

(४)

हाथ पूर्व पश्चिम पसारा, सब रैयतको हृदय लगाया ।
भूमंडलमें उत्तम जात, सुन्दर मेरी भारत मात ।।

(५)

कुपुत्रों ने अपंग किया है, शरीर उसका पूर्ण नहीं है ।
मिटादो मिलकर भंजन भ्रात बनादो पूरी भारत मात ।।

(६)

भारत राष्ट्र वैदिक धर्मी है, पुरानी संस्कृति पवित्र है ।
चंचल अरज उरमें ईशतात, विलसे ओम् ध्वज भारत मात ।।

जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी
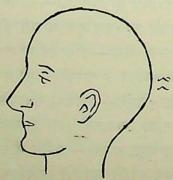
मस्तिष्कके अन्दरका गृहनिवासेच्छाव ।
स्थान इस चित्रमें दिखाया है ।

नं० १२ मैत्री भाव अथवा स्नेह सम्बन्ध

FRIENDSHIP OR ADHESIVENESS.

(United We stand. Divided we fall)

मैत्री भाव अथवा स्नेह सम्बन्ध-विश्वास, सहकारित्व, सहवासशीलता, परिचय प्रियता, समाज-संस्था वा सभाके रूपमें एकत्रित होनेकी अभिलाषा, मिलकर कार्य करनेकी वृत्ति, संगठन, ज्ञान-पहिचान, व्यापार, व्यवहार, उद्योग और जगत्के समग्र कार्यालयोंका आधार, परस्पर सहाय और उपयोगिताके सिद्धान्त परही चालू रहते हैं—टिक सकते हैं । एक दूसरेके साथमें बसना, साथमें मिलकर कार्य करना यह आत्माका मैत्री भावका धर्म है ।

जिनमें मैत्री भावकी वृत्ति पूर्ण प्रमाणमें विकसित हुई हो वे ऐसे प्रतीत होते हैं मानो वे अपने मित्रों के लिएही जी रहे हैं । वें मित्रोंकी संगतिमें ही सुख मानते हैं। मित्रोंके सुख दु;खमें समान सुख दुःख अनुभव करते हैं । द्वेष भावनाका तो उनमें अभाव ही हो जाता है । ऐसे व्यक्ति अनेक मित्रोंके समूहसे और एकत्र स्थिति, स्नेहसे सुशोभित सुन्दर समाज, संस्था अथवा गृहमण्डलके अनेक धन्यवादके पात्र होते हैं । वहां ही सुख और आनन्दका निवास स्थान समृद्धिके अभावमें भी है ।

किन्तु बहुतसे ऐसे ही मनुष्य होते हैं कि जिनके हृदयमें ऐसी मैत्री नाम मात्रभी नहीं होती, तथापि हजारों मिथ्या, अनुचित, अधर्म, युक्त कृत्रिम हेतु देकर मैत्री भाव दर्शानेका पाखण्ड करते हैं । छद्मवेश धारी व्यर्थ इधर उधर फिरते हैं।

स्त्री वर्गमें मैत्री भाव अधिक प्रमाणमें होता है । स्नेही, सम्बन्धीका सत्कार करनेके पीछे कौन किसको नैवेध नहीं देता ! पति पर प्राण न्यौछावर करने और जीवन पर्यन्त स्नेहसे सेवा करने वाली स्त्री जाति ही है । गौ, मेढा (मेष) बकरा, बन्दर, गधा, कुत्ता आदि पशु स्नेह और सहवासके बहुतही प्रेमी होते हैं । इसलिए वे सर्वदा झुण्डमें रहते हैं। कितने ही तोता, सारस आदि पक्षी वियोगको सहन ही नहीं कर सकते, वियोगमें धैर्य धारण नहीं कर सकते । एककी मृत्यु पश्चात् दूसरा अवश्यही मर जाता है व्याघ्र और सिंहके साथ कुत्ते तथा कुत्ते कुत्ते परस्पर बहुत ही स्नेहसे एक साथ रहते देखे गये हैं । शौल नाम की मछली भी अपने पालने वाले मनुष्य को बहुत चाहती है, ऐसा ज्ञात हुआ है । कुत्ते तो प्रायः अपने स्वामीके अङ्ग रक्षक तथा सहायक का कार्य करते हैं इतनाही नहीं किन्तु अपने पालककी मृत्युके पश्चात् भोंक भोंककर मुर्झाई दशामें उनकी समाधिपर खाये पीये बिनाप्राण छोड़ देते हैं। ऐसे अनेक दृष्टान्त मिलते हैं ।

हस्तमिलन द्वारा भाव दर्शाते हैं
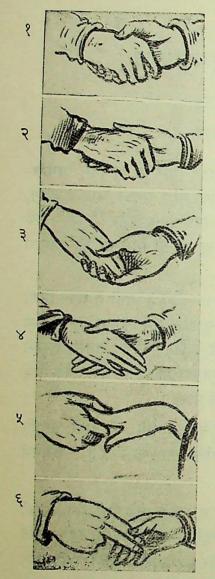
नं० १. स्नेह, उत्साह, जीवन.
नं० २. एक पक्षी प्रेम.
नं ३-४. बेपरवाह, शठता, मूर्खता, अविनय।
नं० ५. निरुत्साह, निराशा, मन्दता
नं० ६. अहंभाव, मद.

इस शक्तिके अतियोगका परिणाम मैत्रीका खण्डन होने पर अति शोकाकुल होता है। और इसके हीन योगके परिणाममें मनुष्यकी स्थिति साधु सदृश (निस्स्वार्थ आश्रम निवासी जैसी) हो जाती है।

जिनके अन्दर यह मैत्री भाव प्रबल होता है उनमें स्वाभाविक रीति से स्नेही मित्रोंसे भेंट करने, आलिङ्गन करनेका प्रबल आकर्षण होता है। ग्रामवासी लोगोंसे भेंट करनेकी, बाहु पासमें लेकर हृदयालिङ्गन देनेकी रीतिका कारण यही है। हाथ मिलानेकी क्रियामें भी ऐसे व्यक्ति परस्पर स्नेहका अदल बदल करते हुए अति आनन्द पूर्वक और बलसे हाथ दबाते हैं। मनुष्य समाजमें अनेक उद्देश्योंसे चलाए हुए विविध कार्य, कारखाने, सभा तथा समाजोंका आधारभी इस वृत्तिके कार्य पर ही है। सहकारी कम्पनियोंके अभावमें मनुष्यकी एक भी प्रवृत्ति क्षण भर नहीं टिक सकती। उसके सभी कार्य अत्यल्प कालमें अस्त व्यस्त हो जायेंगे। पारस्परिक सहयोग और उपयोगके सर्व व्यापी सिद्धान्तानुसार ही मनुष्य समाजकी रचना की गई है। सभा; संस्था, जाति, भाषा, लेख, वार्तालाप, विज्ञापन, पत्र, उपदेश, गुरुकुल, स्कूल, कालेज, यन्त्रालय, स्टीमर, रेल, विमान, डाक, तार आदिके महान् विस्तृत विभाग और कार्यालयों की सर्वविध प्रवृत्तियां इस उपर्युक्त मैत्री गुणके आधार पर ही चल रही हैं।

संसारमें यदि किसीको किसीकी परवाह ही न हो तो किसीके लिए मनोधर्म, ममत्व, स्नेह, करुणा और विचार न होते तो सहृदयतादिके सब भावों का नाश होकर इनके स्थान पर मनुष्यकी स्वार्थ वृत्ति—पशु वृत्तिकी ही प्रबलता होती। ऐसी स्वार्थ वृत्तिके व्यवहारमें आ जाने पर योरोपके महायुद्ध जैसे प्रसङ्ग चालू रहेंगे, यह स्पष्ट है। किन्तु इस मैत्री भावके परिणाम स्वरूप ऐसे अनिष्ट कार्य दबे रहते हैं और मनुष्य परस्पर के उपयोग, सहयोग और भ्रातृभावके उच्च बन्धनोंसे एकत्र मिले हुए हैं तथा एक दूसरेके सुख दुःखोंके प्रसङ्गोंमें सहायक बनते हैं।

जगत्‌को नियन्त्रणके महान् सूत्रसे सम्मिलित वा इकट्ठा करने वाला यह एकही प्रबल स्नेह सूत्र वा मैत्री भावकी वृत्ति है। इसकी यथार्थ कल्पना कर सकना सर्वथा असम्भव है। मनुष्य मात्र हमारा भाई ही है ऐसी भ्रातृ भावकी प्रबल शृङ्खलासे मनुष्य समाजको एकत्रित करना इस वृत्तिका महान् कार्य और उद्देश्य है।

परमात्माकी यह प्रजा, सकल है संसार;
एक सम्बन्धी हम सब, एक पिता परिवार।
श्याम श्वेत किसी भी हो, गुण रहित गुणवान् ;
कहना न क्षुद्र किसीको, सकल एक समान ॥

इस महान् सूत्रके महत्त्व और व्यावहारिक सत्यको अभी तक जन समाज समझनेमें समर्थ नहीं हुआ है।

संसारकी भलाई, सभ्यता, सच्चाई और सुख शान्तिमें ही व्यक्तिके सुख और शान्तिका समावेश हुवा है, इसी प्रकार प्रत्येकके दुःख और अशान्तिमें दुःख और अशान्ति दिखाई देती है। मानव समाज एक समष्टि का शरीर है इसकी सेवा और यथार्थ निर्णय वेदोंके पुरुष सूक्तमें किया गया है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण तथा ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास इन चार आश्रमोंमें विद्यमान समस्त प्रजा एक ही समष्टि शरीरके भिन्न भिन्न अवयव हैं। इनमें से एक के भी दुःखी, असन्तुष्ट अशान्त हो जाने पर वैयक्तिक शरीरकी भांति सामष्टिक शरीर भी दुःखी, असन्तुष्ट, अशान्त हो जाने पर वैयक्तिक शरीरकी भाँति सामष्टिक शरीर भी दुःखी, असन्तुष्ट तथा अशान्त हो जाता है। अतः बिचार विनिमय, सङ्गठन और शान्तिके महान् सूत्रसे सङ्गठित होकर प्राणिमात्रके सुख और शान्तिके लिए प्रयास करना मनुष्य मात्रका कर्तव्य है। **"Then let all act to allas he would to himself"** "आत्मवत् सर्वभूतेषु" प्राणि मात्रसे प्रीति पूर्वक व्यवहार करो और निम्नलिखित वेद के महान् आदर्शको अति प्रेम पूर्वक प्रत्येक देश, जाति और घरमें फैला दो।

दृते दृंहमा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे, मित्रस्य चक्षुषा समीक्षा महे ॥
(यजु ३६।१८)

संसमिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ ।
इलस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर ॥१॥
सङ्गच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे सञ्जानाना उपासते ॥२॥
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥४॥ (ऋ॰ १०।१९१)

सब प्रकारके ऐश्वर्यके अभिलाषी स्त्री पुरुषों तुम परस्पर मिलकर चलो, मिलकर बातचीत और कार्य करो, तुम्हारे मन एक हों, तुम गम्भीर विचार मिलकर करो, तुम्हारी सभा, समाज एक हो जिस में तुम सब मिलकर बैठ सको । तुम्हारे मनन, निश्चय, विचार और प्रयन्न एक हो, तुम्हारे हृदय एक हों, जिससे परस्पर सहायता से भलीभांति उन्नति कर सको । बल, बुद्धि, तेज और कीर्ति बढ़ते ही रहें ।

नं० १३ तत्परायणता अथवा स्थैर्य

Continuity or Concentrativeness

तत्परायणता अथवा स्थैर्य—कार्य परम्परा, एकाग्रता, कार्य के पीछे लगा रहना हाथ में लिये हुए कार्यको पूर्ण करना, किसीभी प्रकारकी बाधा संकट आदिके कारण कार्यको अधूरा न छोड़ना। शान्ति और गम्भीरतासे सर्वदा विचार चालू रखना। बात चीत और व्याख्यानमें विषयान्तर न होना। दूसरी शक्तियोंके कार्यमें भी एक सदृश रुख-आकार-स्वरूप रखनेमें स्थैर्य गुण अपना धर्म बतलाता है।

तत्परायणता

प्रबल | मन्द

स्थान—मैत्रीभाव और स्वदेशानुराग के ऊपर अवनत शृङ्गवाली अर्ध चन्द्राकाराकृति में इस वृत्तिका स्थान उपस्थित है।

उपयोग—प्रारम्भ किये हुए कार्य को पूरा करना अथवा पूरा होनेतक उसके पीछे लगा रहना, कठिनाइयोंसे घबराकर बीच में न छोड़ना, यह इस वृत्तिका मुख्य कार्य है।

संगति—कितनेही मनुष्य सम्भाषण में विषयान्तर नहीं होते, उचित ससम्बन्ध रीतिसे वार्तालाप करते रहते हैं। जबकि बहुतसे लोग व्यर्थ असम्बन्ध प्रलाप करते रहते हैं। और पर्याप्त समय चलाजाने पर भी श्रोताओं पर किन्चिन्मात्र भी प्रभाव नहीं डाल सकते। इससे यह प्रतीत होता हैकि एकमें संगति अथवा सम्बन्धकी रक्षा करनेकी शक्ति अधिक है और दूसरेमें इस शक्तिकी बिलकुल न्यूनता है।

प्रत्येक मनुष्य एकही विषयको अनुकूल समझता है और उसीसे सम्बन्ध रखनेवाली अन्य घटनाओंके संग्रह रूप उपदेश, व्याख्यान अथवा पुस्तकादि पढ़ने सुनाने के लिए अथवा संग्रह करने के लिए शीघ्र तैयार होता है। परन्तु एक वाक्य इतिहासका, दूसरा भूगोलका तो तीसरा गणितका और चौथा चित्र विद्याका, इस प्रकार पृथक् पृथक् विषयोंके असंगत वाक्यों को लिखे हुए पत्रको अथवा वार्तालाप को कोई पसन्द नहीं करता। क्योंकियह स्वाभाविकतयाही विरुद्ध है। प्रकृतिमें भी उसके सब कार्य, रचना और क्रियाओंमें संगति परम्परा और अव्याहत सम्बन्ध एक समान रीतिसे सर्वत्र देखने में आता है। अतः उसके सब कार्योंकी संगति और परम्पराके अनुभवके लिए मनुष्यके अन्दरभी ऐसी शक्ति अवश्य ही होनी चाहिए। और सचमुच है भी जिससे मनुष्य वैसी संगतिको कार्य परम्पराका अनुभव करनेमें समर्थ हो सकता है और उपयोग करसकता है।

गृहप्रेम स्वदेशानुरागके अन्दरभी स्वदेशमें रहने की वृत्ति की स्थिरता आवश्यक कार्य करती है। क्योंकि हमको अपना घर, अनेक प्रकारके साधन वृक्ष वाटिका इत्यादि सामग्री और फरनीचर सहित सुन्दर, सुशोभित, मनोहर निवास स्थान बनानेमें स्थैर्यकी आवश्यकता है।

वात्सल्य वृत्तिके परिणाम स्वरूप उत्पन्न हुई प्रजाका भरण पोषण, लालन पालन और शिक्षित कर बड़ा होने तक उसका प्रत्येक प्रकार का प्रबन्ध और रक्षा करने के लिए तत्परायणताकी तो आवश्यकता होती ही है।

हाथमें लिये हुंए कार्यको पूर्ण करना यह इसी वृत्तिका कार्य है। स्थैर्य वा धैर्य के विना बीजारोपण करनेवाला किसान अपने क्षेत्रमें बोये हुए बीजके साथ ही तत्क्षण फल प्राप्त करने में समर्थ नहीं हो सकता।

एक ग्रामसे दूसरे ग्राम में जानेके लिये पाद प्रचलन क्रिया अवश्य रहती है। लड़नेमें हस्त.प्रचलन क्रिया की आवश्यकता है। हृदय और फुफफुस सर्वदा प्रतिक्षण अपना कार्य नियमित रूप से रात दिन करते रहते हैं। ये यदि कुछ क्षणके लिये भी रुक जायेतो उसी क्षण ही मृत्यु हो जाति है।

जिनमें यह वृत्ति पूर्ण विकसित होतो है वे किसीभी पदार्थ वा विषयमें अपनी वृत्ति धैर्यसे लगाते हैं, परन्तु एक बार हाथमें लिए पीछे उसको पूर्णही करते हैं। ऐसे व्यक्ति दो तीन कार्य एक साथ लेना पसन्द नहीं करते।

मैत्री भावकी अधिकतासे मित्रोंकी मृत्युके पश्चात् दीर्घकाल तक चिन्ता, सन्ताप, विलाप किया करते हैं। नैतिक शक्तियोंकी अधिकतासे धर्म क्रिया और नैतिक आचारमें एक रीति समान भावना—रुचि सर्वदा रखते हैं। तुलना शक्ति, सौन्दर्य प्रेम और वक्तृत्व शक्तिके कारण शब्दालंकार और वाक् चातुर्य दीर्घकाल तक चालू रहता है। बुद्धि शक्तिकी अधिकतासे अन्वेषणके एकही तत्त्वके अभ्यासके पीछे प्रबलतासे संलग्न रहकर उसके वास्तविक रहस्यको जान लेते हैं। ऐसे मनुष्यों का "एक समयमें एकही कार्य हाथमें लो और उसको पूर्ण करो" यह मुद्रा लेख होता है।

अस्थिर मनसे किसीभी प्रकार ज्ञान प्राप्त करना योग्य नहीं, किसी विषयका पूर्ण अभ्यास करना चाहिए। शिक्षण संस्थायें इस ओर उचित ध्यान दें। विद्यार्थियोंके मस्तककी परीक्षा करवाकर उनकी प्रबल वृत्ति और शक्तिके अनुसार उनको एक दो विषयोंका ज्ञान मुख्यतया देना चाहिये तथा अन्य

विषयोंका शिक्षण गौण रहे । जिन बालकोमें विशेष गुण संख्यामें अधिक मानसिक शक्तियां संस्कारी और विकसित हुई हों तो उनको उन शक्तियोंके अनुकूल तथा अनुरूप विशेष ज्ञान देना चाहिंये । बालकों को योग्य बनाने के लिए माता पिता तथा ज्ञान दाता गुरु इस विषय पर ध्यान दें ।

स्त्री भावयुक्त मुख और मस्तक

घर सांसारिक भावनाओं का प्रदेश और उसका आँख पर होता मधुर प्रभाव

ध्यानमें रखने योग्य सांसारिक भावना सम्बन्धी सूचना

१ घर सांसारिक सब भावनाओंका मूल आधार विशुद्ध प्रेमभाव है। प्रेमभाव जब तक प्रकट न होवे तब तक विवाह करना निषिद्ध है ।

२ अति कामासक्त, विषयान्धता, लंपटता यह काम वृत्तिका मिथ्या योग है। जिन स्त्री पुरुषोमें नं० ८ वाला स्थान विशेष प्रमाणमें भरा हुआ हो वैसे स्त्री पुरुषोंके साथ इस स्थानकी मन्दता वाले स्त्री पुरुष विवाह सम्बन्ध कभी भी न जोड़ें।

३ प्रेमका उद्देश्य विवाहके अन्दरही समाया हुआ है कि जिससे सर्वदा ऐकान्तिक अथवा अव्यभिचारी प्रेमभाव युक्त ही होना चाहिए ।

४ नं० ६ दाम्पत्य प्रेमकी न्यूनता ही व्यभिचार वृत्ति । अर्थात् अनैकान्तिक स्नेह भाव है। इसलिये ऐसे स्वभावके स्त्री पुरुषोंको पसन्द करने से पहिले सावधान रहो ।

५ प्रेम और विवाह इन दोनोंका उद्देश्य वात्सल्यके पोषणके लिए है ।

६ योग्य मैत्री भावकी स्त्री पुरुष दोनोंको आवश्यकता है ।

७ गृहानिवासेच्छाकी प्रबल भावना स्त्री पुरुष दोनोमें यथायोग्य प्रमाणमें होनी चाहिए ।

८ दाम्पत्य ज वन, वात्सल्य, मैत्री आदि कौटुम्बिक सम्बन्ध वैसे ही स्वदेश और स्वजन भूमि आदिका स्नेह भावका संरक्षणके लिए योग्य तत्परायणताकी दोनों वर्गोंको यथावत् आवश्यकता है ।

९ प्राणशक्ति (जिजीविषा) की न्यूनता अथबा हृदय, फुफ्सोंकी मन्दता वाले अथवा दमा, खांसी, क्षय, मन्दाग्नि अर्श आदि आमाशय, पकवाशय, यकृत, प्लीहाके रोग वाले, किसी भी प्रकारके ब्यसन वाले स्त्री पुरुष विवाह सम्बन्धके लिए अयोग्य है। ऐसे ही आहार विहारके नियमोंके अज्ञात पशुवृत्ति वाले तदुपरान्त लोभी, कृपण, अतिव्ययी, प्रपंची, दंभी, छद्म वृत्ति वाले, प्रमादी, क्रोधी डरपोक भावना रहित शुष्क, निर्दय, बुद्धिहीन, सत्य और न्यायनिष्ठा हीन, धार्मिक वृत्तिकी न्यूनता वाले, ऐसे अवगुणी, दुष्ट स्वभाव वाले स्त्री, पुरुष विवाह सम्बन्धके लिए अयोग्य है ।
कारण—ऊपर दर्शाये हुए किसी भी प्रकारके रोगकी स्थितिवाले और सद्गुणहीन स्त्री पुरुषों के विवाह सम्बन्ध से उत्पन्न हुई प्रजाभी वैसे ही रोग वाली, निर्बल, अल्पायु और अनिष्ट-दूषित संस्कार वाली बनती है । इसलिए ऐसे विवाह सम्बन्ध करनेसे पहिले बहुतही सावधानी रखो ।

तृतीय प्रकरण

उत्कर्षक वृत्तियाँ

१४ सावधानी
१५ यशोभिलाष
१६ स्वमान
१७ दृढ़ता (धैर्य)
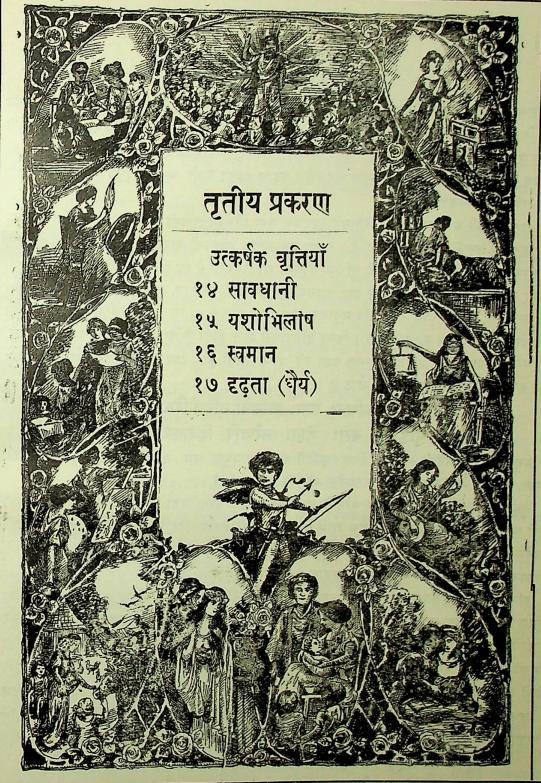
उत्साहसम्पन्नदीर्घसूत्रं क्रियाविधिज्ञं व्यसनेष्वसक्तं ।
शरं कृतज्ञं दृढ सौहृदञ्च लक्ष्मीः स्वयं याति निवासहेतोः ॥ (हितोपदेशे)

उत्कर्षक वृत्तियाँ

संसारके समग्र प्राणी उन्नत और उत्कर्षक दशाकी सर्वदा आकांक्षा रखते हैं। इसलिये उत्कृष्ट दशा किसको कहते हैं इसका हम विवरण करेंगे। जगत्में जिन्होंने आगे बढ़नेकी इच्छा होगी उन्होंने सर्वदा उच्च नियम, उत्कृष्ट धारणा रखनी चाहिए। जिनके विचार और ध्येय महान होता है वे ही महाशय महात्मा और पूज्य पदको प्राप्त करते हैं। महान् पदको प्राप्त करनेके लिये महान् इच्छाकी सबसे प्रथम आवश्यकता है।

आत्मोकर्षकी अभिलाषा वाले मनुष्यने उत्कर्षक गुण और विचारोंको धारण कर सर्वदा उनका सेवन करनेकी उतनी ही आवश्यकता है। सर्वदा एक महान् उद्देश्यको धारण कर उस उद्देश्यको यथावत् पूर्ण करने वाले मनुष्योंके अन्दर ऐसी वृत्तियाँ होनेकी आवश्यकता है कि जिन वृत्तियाँसे मनुष्य प्रमादी आलसी न बने किन्तु प्रत्येक प्रसङ्गमें दक्ष, सहनशील, धैर्यशील, बलवान, स्वमान तथा यशकी अभिलाषा आदि उत्कर्षक गुणोंसे युक्त रहे। यदि मनुष्यके अन्दर यह गुण न हों तो वह जन्मके समय जैसी स्थिति में था वैसी ही स्थितिमें सर्वदा रहता। किन्तु इतिहाससे ज्ञात होता है कि मनुष्यका स्थान, ज्ञान, विद्या, और अन्य शक्तियां दिन प्रतिदिन उन्नत दशा को प्राप्त होती हैं। ईश्वरीय नियमानुसार मनुष्यका स्थान समग्र स्थावर जंगम पदार्थोंमें श्रेष्ठ है।

भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः।
बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठाः नरेष्वपि द्विजातयः॥

मनुष्यके उच्च पदकी संरक्षाके लिए प्रकृतिने भी सहायभूत बन उसको सावधानी, गोपनेच्छा, स्वमान, यशोभिलाष दृढ़ता आदि उत्कर्षक वृत्तियाँ प्रदान की हैं।

गृहतन्त्र और राजतन्त्र यह एक मानुषी आवश्यकता है। ग्राम, नगर और देशकी अमुक प्रजाको अपनी राजनियन्त्रणाकी पद्धतिसे अनेक लाभ होते हैं। इसी प्रकार कौटुम्बिक राजतन्त्र और उसको चलानेमें आवश्यक सम्भाल, सावधानी, संरक्षण, आत्मसत्ता, इन्द्रिय निग्रह, स्वाधीनता, स्वमान, अधिकार, धैर्य, दृढ़ता और कीर्ति आदि महान् गुणोंकी आवश्यकता है।

इन्द्रिय निग्रहकी सर्वत्र आवश्यकता रहती है। कितने ही अवसरों पर मनुष्य कामवश, लोभ वा मोहवश होकर अमुक प्रकारके कार्य करनेकी ओर आकृष्ट होता है, संसार सागरके अनेक भले बुरे प्रसङ्गोंमें वा भाग्यवशात् अनेक दशाओंमें आ पड़ता है। ऐसे प्रसङ्गोंमें जो लोभ, मोह वा कामवश हो जावे तो वह अपने मनको निर्बल बनाकर अधम मार्ग पर प्रवृत्त हो अपने जीवनके सब कल्याणकारी संयोगों और साधनोंको लगभग निकम्मा बनाकर अधम दशामें पहुंच जाता है। परन्तु जो ऐसे लोभ मो तथा विषयोंके आधीन न हो और दृढ़तासे धैर्यसे स्वमानको सम्भालकर सावधानी पूर्वक मन और शरीरका यथार्थ रीतिसे रक्षण कर सीधे मार्गसे चला जावे तो उसका जीवन सफल समझना चाहिये।

उत्साहसम्पन्नमदीर्घसूत्रं क्रियाविधिज्ञं व्यसनेष्वसक्तम्।
कृतज्ञं दृढ़ सौहृदञ्च लक्ष्मीः स्वयं याति निवासहेतोः॥ (हितोपदेशे)

नं १४ सावधानी-चेतावनी.

Caution or Cautionsness

सावधानी, चेतावनी, जागृति, दूरदर्शी, सूक्ष्मनिरीक्षरण, समझ, भविष्यकी चिंता, विचाराधीन रखना, ठहर रखना वा स्थगित करना, इत्यादि अनेक प्रकारकी प्रवृत्तियाँ इस सावधानी के अन्दर ग्रहणकी जाती हैं। सावधान मनुष्य अपने जीवनमें सफलता प्राप्त करते हैं और असावधान मनुष्य अनेक आपत्तियोंमें फंस जाते हैं। इसके अतियोग और मिथ्यायोगसे भीरुता, त्रास, निराशा और स्तब्धता आदि भावोंका जन्म होता है।

स्त्रियोंमें पुरुषोंकी अपेक्षा यह वृत्ति अधिक प्रमाणमें होती है। क्योंकि उनको अपने बालकोंकी संभाल और रक्षाके लिये इस शक्तिकी आवश्यकता पड़ती है। समग्र आत्मरक्षक अथवा पशुवृत्तियोंके लगभग मध्यमें ही इस शक्तिका स्थान स्थापित है। अपने शरीरकी सम्भाल रखनेमें और बाहरसे कोई भय वा अचानक घटी घटनासे रक्षा करनेमें सावधानताकी शक्ति बहुतही आवश्यक कार्य करती है।

वैश्य वृत्तिके कोने पर और निग्रह शक्तिके बराबर (ठीक) ऊपरही आये हुए इस शक्तिके स्थानसे मनुष्य तथा अन्य प्राणी स्वयं अपने भाविन रक्षण और सुखी रहनेके लिए अन्न वस्त्र निवासादिकी पहलेसे ही व्यवस्था कर लेते हैं। बलके साथ संयुक्त होकर वीरतासे अपना रक्षण करते हैं। यश कीर्ति वा उत्कर्षाभिलाषके समीपही उसकी परिस्थितिके लिये मनुष्यके आचार विचार और वर्तावके पर निरीक्षण करते रहते हैं।

जब ऊपरके स्थानमें आत्मनिष्ठाके निकटही इसकी उपस्थिति मनुष्यको सर्वदा अन्तरात्माके सत्य और निष्पक्ष विचार तथा आचरणके लिए विशेषतया सम्भाल रखना सिखाती है। अधर्मसे बचनेके लिये भय दर्शाती है। इस वृत्तिसे ख्याल करने से नैतिक और धार्मिक वृत्तियोंके पासही इसकी परिस्थिति ईश्वरीय चेतावनी, सावधानी सूचक रचना है। जीवन के समग्र सूत्र, भाव और वृत्तियोंके मध्यमें ऐसे सम्पूर्ण सप्रयोजन और युक्ति सङ्गत रीतिसे इस अवयवका निर्माण करना कितना अनुपम और सर्वाङ्गपूर्ण है, यह विचारशील, गम्भीर, सोचने समझने वाला समझदार व्यक्ति ही समझ सकता है। साथमें सावधानीके भावको दिखाने वाला चित्र है।

अन्विष्—इस शक्तिके अवयवका अन्वीक्षण डा० गॉलने एक मेजिस्ट्रेट और धर्माध्यक्ष पादरोके मस्तकका अन्वेषणसे किया हुआ था। अनेक पशु वा प्राणियोंके शिरका अन्वेषण किए पीछे उन्होंने इस स्थानका यथार्थ निर्णय किया है। अपना पुस्तकमें वह अति विस्तारसे इस विषयका विवरण करते हैं।

सचेतक—सावधानी वा रक्षक वृत्तिका उपयोग अनेक प्रकारसे सृष्टिमें सर्वत्र फैला हुआ देखनेमें आता है। मनुष्य जीवनके समस्त कामकाजमें, शासनमें इस वृत्तिकी अनेक बार आवश्यकता पड़ती है।

सृष्टिमें उत्पन्न हुआ प्रत्येक पार्थिव पदार्थका वे स्थूल रूप ग्रहण करते हैं अतः रसात्मक सोम द्रव्य से पोषण देनेमें आते हैं। जिस रसके ऊपर वाला पृष्ठ भाग पीछेसे स्थूलताको पाकर त्वचा वाला वा अस्थि वाला हो जाता है। अर्थात् बाहरके उष्ण, शीत इस प्रकार कठोर, शुष्क वायु वा बाह्य पदार्थ अन्दरके रसको विशेष हानि नहीं पहुंचा सकते। और प्रत्येक पदार्थ, पुष्प, फल, अन्न, औषधि आदि भली भांति पोषण पाकर, पुष्ट होकर पक्व तथा रसपूर्ण सरस बन जाते हैं। यदि ऐसा न हो तो वृक्षोंके अन्दर प्रसरण होने वाला रस फैलनेसे पूर्वही सूख जाता और वृक्ष, वनस्पति आदिके छोटे पादपकी कभी वृद्धि नहीं हो सकती। अतः प्रत्येक जड़ (मूल) पुष्प फलादिके ऊपरकी त्वचा वाला भाग मूल रसमेंसे स्थूलत्वको प्राप्त होकर आन्तरीय सत्वका रक्षण करनेके लिए प्रारम्भसे ही स्वाभाविकतया बन जाता है। अखरोट, बादाम, नारियल आदि फलोंके अर्धरसात्मक सत्त्वकी ऊपरकी त्वचा द्वारा रक्षा होती है। इसीके अनुसार पशु पक्षी आदिके शरीरकी रक्षा भी बाल, ऊन, पङ्ख, त्वचादि साधनों द्वारा होती है।

शिरके बाल मस्तकके अन्दरके मैदा जैसा पदार्थकी सर्दी, गर्मी आदिसे रक्षा करते हैं। शिरकी खोपड़ी (हड्डी) भी मस्तिष्कके प्रत्येक विभागकी भलीभांति रक्षा करती है, जिससे किसी भी प्रकारका भार सहसा प्रहारका प्रभाव मस्तक पर तुरन्त नहीं हो सकता। इसी प्रकार अस्थियोंके प्रत्येक सन्धि स्थान के लिये रखने में आये हुए मृदु एवं कोमल अस्थियोंके तकिये भी शिरसे पाँव तक के सभी अवयवोंकी दौड़ने, कूदने वा गिरनेसे होने वाले दुःख तथा तोड़ फोड़से रक्षा करते हैं। प्रत्येक पशु पक्षी वा मनुष्यके शिरका वैसे ही अन्नफल तथा अस्थियोंका गोलाकार एवं अण्डाकृति अपनी रचनासे ही अपना रक्षण करने में समर्थ हुए हैं।

नेत्रका अस्थिमय डिब्बा उसकी गोलाकृति और भ्रूकुटि तथा पलक, नेत्रका ढक्कन आदि भागोंसे हमारे नेत्र रत्नोंका कितनी अद्‌भुत रीतिसे संरक्षण किया हुआ है। ऐसे सुन्दर आवश्यक और अमूल्य रत्नों की रक्षाके लिए उनको नेत्र गोलक रूपी सुन्दर गृहमें सुरक्षित रखनेमें परम कृपालु परमात्माका बुद्धि चातुर्य और प्रयोजन स्पष्ट होता है। इसी प्रकार दाँतके ऊपर पतरी, जिह्वाके चारों ओर दाँत और मांसास्थिका दुर्ग और हृदय, फुप्फुस, यकृत तथा शरीरके अन्तरङ्ग अवयव और नस नाड़ी आदि जो सम्पूर्ण शरीरमें रक्त फैलाती हैं उनका तथा श्वासनली अन्न मार्गके कोठे आदिकी पंसलियोंसे रक्षा होती है। इसी प्रकार पीठकी खड़ी हड्डीके अस्थियोंसे पीठ डण्ड रज्जुकी एवं सब नस नाड़ियोंके संभालने का कार्य भी इसी संरक्षा वा सावधानीके कार्य तथा नियमका सहस्र प्रमाण है।

मनुष्यकी अन्दरभी इन प्राकृतिक सिद्धान्तोंके समझनेके लिए और सङ्कटसे बचनेके लिए सावधानीके उपयोग करनेकी योजना करनेके लिए ऐसी शक्ति और रचनाकी आवश्यकता है और ऐसी वृत्तिका यथा समय यथा आवश्यक उपयोग करनेकी भी आवश्यकता है। स्वात्मरक्षा यह प्राणी मात्रकी सबसे प्रबल और प्रथम प्रवृत्ति है। मस्तिष्ककी रक्षा खोपड़ी, बाल आदि साधनों और गोल आकृति द्वारा स्वाभाविकतया हो रही है। परन्तु मनुष्य यह न समझ बैठे कि अपनी इस संरक्षक वृत्तिका उपयोग करनेकी आवश्यकता नहीं है। बाह्य झपट वा प्रहार अथवा अकस्मात् घटित घटनाके अवसर पर दोनों हाथों अथवा अन्य साधनों द्वारा इस स्थानकी सावधानी के रक्षा करनेकी, रक्षाके साधनोंका प्रबन्ध करनेकी और बचनेकी मनुष्यको आवश्यकता होती है। संरक्षा भी मनुष्यका स्वाभाविक गुण वा प्रवृत्ति है। जिस प्रकार दर्शनके लिए नेत्र और प्रकाशका सम्बन्ध तथा देखनेकी इच्छा इत्यादि साधनों की आवश्यकता होती है उसी प्रकार बचावकी इच्छाको प्रकट करने वाले मानसिक अवयव और उन अवयव द्वारा कार्य करने वाले हस्तपादादिकी भी उतनी ही आवश्यकता पड़ती है।

जिनमें यह वृत्ति पूर्ण प्रमाणमें होगी अथवा संस्कारी होगी वे बहुतही चतुर और निपुण होंगे। सर्वदा सचेत रहते हैं। जिस किसी कार्यको हाथमें लेते हैं उसको सावधानीसे आगे बढ़ाते हैं, चालू रखते हैं, अंकुश मारते हैं किन्तु रश्मि (लगाम) को ठीक सम्भालकर पकड़े रहते हैं। अतः अपने अभिलषित मनोरथको पूर्ण करते हैं। बुद्धि, बल और विवेकसे प्रत्येक कार्य प्रारम्भ करते हैं। धनाभिलाषकी अधिकता और यशकी सामान्य इच्छा होने पर धन सम्बन्धी प्रत्येक विषयमें बहुतही सावधानीसे वर्तते हैं। मैत्री और करुणावृत्तिकी अधिकतासे मित्रोंकी भलाई करनेमें अत्याधिक आनन्द अनुभव करते हैं।

आत्मनिष्ठा अधिक होनेसे वे ध्यान रखते हैं कि उनके द्वारा कोई असत्य अयोग्य कार्य प्रारम्भ न किया जाये, इसलिए बहुतही सम्भालकर चलते हैं।

सावधानी कहती है कि—

जिस करनेका कार्य वह करो आज ही आज।
कल सागरसे प्रवास पर चला जाय जहाज।।
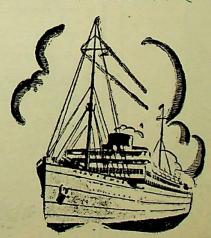
रुधिराभिसरणके अवयवों.

हृदय—फेफड़ा और रक्त वाहिनीओं

Organs of Circulation.

चित्र नं० ३

कोऽस्मिन्नापोव्यदधाद्-विषुवृत्तः
पुरुवृतः सिन्धु सृत्याय जाताः
तीव्राअरुणा लोहिनीस्ताम धूम्रा,
ऊर्ध्वा अवाचीः पुरुषे तिरश्चीः ॥　(अथर्ववेद)

रसवहानां स्रोतसां हृदयं मूलं दश च धमन्यः ॥
(चरक)

हृदय और रुधिराभिसरण

१ हृदय—यह रुधिराभिसरणका मुख्य अवयव है।

२ इस अवयव उरस्थानके मध्यप्रदेश में दोनों फेफड़ाओंकी बीचमें स्थित हुआ है।

३ उसका मुख्य कार्य—शरीरकी अन्दर रक्तके प्रवाहोंको शरीरके समग्र प्रदेशोंमें अपना संकोच विकास द्वारा नियमित रीतिसे सर्वदा वहता रख कर शरीरके प्रत्येक अंग प्रत्यंगको पोषण और रक्षण देकर सुरक्षित और सजीव रखनेका है।

४ हमारे हृदयके मुख्य दो भाग हैं, बायाँ (बाम) और दाहिना (दक्षिण) और वह प्रत्येकके दो,दो विभाग हैं।

१. वाम कर्णिका २. वाम जवनिका ३. दक्षिण कर्णिका ४. दक्षिण जवनिका।

५ दक्षिण ओरके हृदयके ऊपरके कर्णिका रूप खंडमें शरीरस्थ अशुद्ध रक्त एकत्र होकर नीचे की जवनिकामें से शुरू होती अशुद्ध रक्त वाहिनीओं द्वारा दोनों फेफडांओंमें शुद्ध होनेके लिए भेजनेमें आता हैं।

६ जब बाम ओरके हृदयके ऊपरके खंडमें फेफडांओं की अन्दरका शुद्ध हुआ रक्त इकट्ठा होकर नीचे की जवनिकाकी अन्दरसे निकलती रक्तवाहक नाड़ियों द्वारा समग्र शरीरमें प्रसरनेके लिए भेजने में आता हैं।

७ हृदयमेंसे निकलती मुख्य रक्त वाहिनीओंके प्रवाहोंका इस चित्रमें दर्शन दिया हुआ है।

प्राणवहानां स्रोतसां हृदयं मूलं महास्रोतश्च-- ाणवह स्रोता का मूल-हृदय है, वे स्वयम् एक महास्रोत रूप है ।

हृदय और फेफडां रूप प्राणावयवों
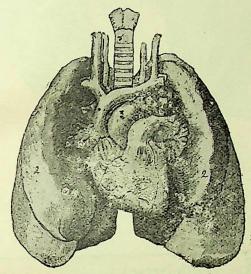
चित्र नं० ४

१हृदय और फेफडां (**Heart and lungs**)
२बाम और दक्षिण फेफडां
३ दक्षिण ओरका हृदय और उनकी ऊपरके भाग की मुख्य रक्त वाहिनीओंके मूल
४ स्वास नलिका (**Bronchites**)

चित्र नं ६

दक्षिण ओरके हृदयका अन्दरका भाग

चित्र नं ५
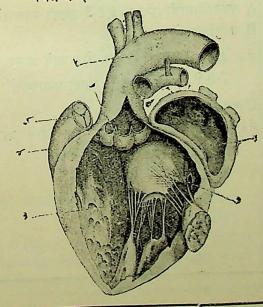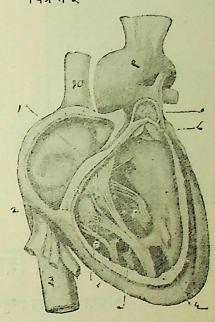
१ कर्णिका २ जवनिका
३ अशुद्ध रक्त वाहिनीओं
४, ५, ६ परदाओंको गति देने वाला रज्जुओं
७, ८ त्र्यंकुश (**Valves**)

चित्र नं०६ बायें ओरके हृदयका बीचमेंसे कटा भाग
१ बाम कर्णिका २ बाम जवनिका
३, ४, ५ रक्त वाहिनीओं
६ विशुद्ध रक्त वाहिनी नलिका
७ रक्तको नियमित वहन करनेमें सहायता रूप परदाओं (**Valves**)
८ बाम कर्णिका
९ हृदयकी अन्दरके परदाओंको सकुचाना, विकास द्वारा गति देने वाला मांस रज्जुओं

दर्शनेन्द्रिय और दर्शनतन्तुओं
चित्र नं० ७
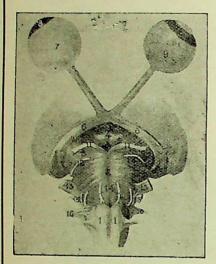
नेत्र-संचालक तन्तुओं और मांसपेशीओं
चित्र नं० ८
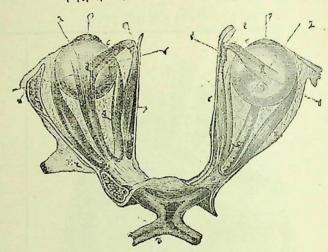
त्रिशीरा वा त्रिशाखिन् (Fifth Nerve)

पाँचमा नम्बरका तन्तु और उनकी शाखा प्रशाखाओं

चित्र नं० ६

विशेष-वर्णन

A नयनाभिगामी तन्तु (**1**,2,**3** उनकी शाखाओं)
B चवर्णतन्तुओं
नं० **4-5-6** } ऊपरके जबड़ा ओर जाने वाला
7-8-9 } चर्वण तन्तुकी शाखा प्रशाखाओं
C चवर्ण तन्तुओं
नं० **10** से **18** नीचेके जबड़ा ओर जाने वाला
चर्वण तन्तुओंकी शाखा-प्रशाखाओं

चित्र नं० १०

पीठडण्डरज्जु और उसकी अन्दरकी शाखा प्रशाखाओं

प्राणाः प्राणभृतां यत्र श्रिताः सर्वेन्द्रियाणि च यदुत्तमांगमङ्गानां शिरस्तदभिधियते ॥
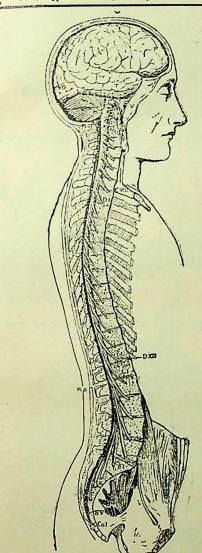
तद्वा अथर्वणःशिरः देवकोषः समुब्जितः ॥

अथर्ववेद.

अथर्वा अर्थात् जीवात्माका शिर अतएव मस्तक—यह एकत्र हुई (मिली हुई) अनेक दिव्य शक्तियोंका कोश है।

चित्र नं० ११

घ्राणेन्द्रिय-नासिका

घ्राण तन्तु और उसकी शाखा प्रशाखाओं

चित्र नं० १२

श्रवणेन्द्रिय

—:o:—

पचनेन्द्रियोंके अवयवों　　**ORGANS OF DIGESTIVE SYSTEM.**
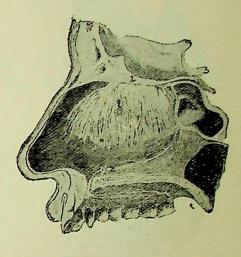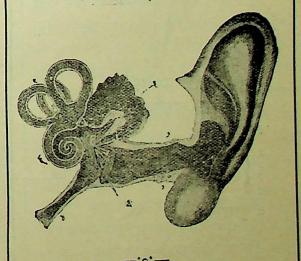
यकृत—१ से ४ यकृतकी ग्रन्थिश्रों, ५ पित्ताशय,
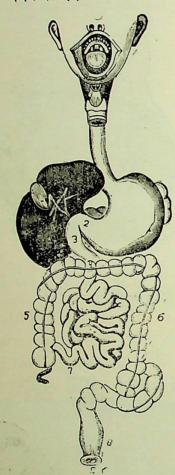
चित्र नं० १३

१ मुख, दाँत, जिह्वा आदि
२ जठराग्नि (आमाशय)
३ पकवाशय
५, ६, ७ } बृहदान्त्र
८ गुदाद्वार

चित्र नं० १४　६, ७, ८ यकृत वाहिनिश्रों
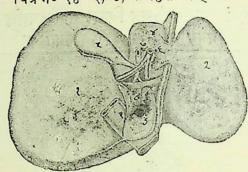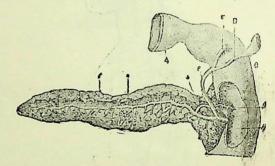
चित्र नं १५　यकृत—प्लीहोधरा और स्वादुपिन्ड

चित्र नं० १६　लघु आन्त्र और बृहद आन्त्र

१, २, ३ रक्त वाहिनिश्रों ४ स्वादुपिन्ड

अस्थि पिंजर

चित्र नं० १७
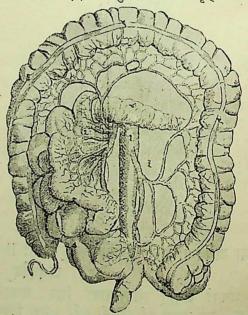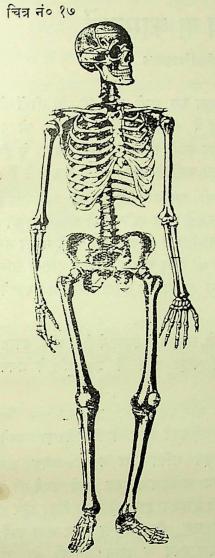
दोसो अस्थिओंका बना हुआ मनुष्यका अस्थि पिंजरमें खोपड़ीके आठ, और मुख परके चौदह मिलकर बाईस अस्थिओंके समूहसे हमारा शिर स्थान बना हुआ है। ऐसी महान अस्थिओंकी रचना और यह द्वारा मस्तकका यथायोग्य संरक्षण ऐसी सब योजनाओं किसने की है ? विश्व रचना के शिल्पी परमात्माने।

प्राण ग्रन्थी (**Pons Varolii**)

चित्र नं० १८
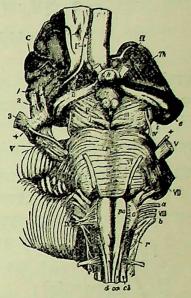
ऊपरके मुख्य मस्तिष्क और उसके अनेक विभागों नीचेकी प्राण ग्रन्थी (**Medulla oblongata**) तथा पीछेके अनुमस्तकको संयुक्त करने वाला आडा और उलटा तन्तु तथा भूरा (कपिश) रंगके मेंदु (सत्व) से संयुक्त होकर बना हुआ इस प्राण ग्रन्थी रूप मस्तिष्कका एक विभाग है। जैसे कोरपसकेलोझम (**Corpus Callosum**) मानसिक सब व्यापारका मध्य विन्दु हो रहा है, वही अनुसार शारीरिक सब प्रवृत्तियोंका इस स्थान मध्य विंदु (मध्य स्थान) हो रहा है। ऐसी उसकी रचना और परिस्थिति स्पष्टतासे दर्शाती है। इस अवयव का कार्यभी अति उपयोगका और महत्वपूर्ण है।

अनुमस्तिष्क (**Cerebellum**) का प्राणग्रन्थी की साथ बहुतही गाढ सम्बन्ध है।

सब क्रियातन्तुओंका शारीरिक कार्य मुख्य मस्तिष्ककी अन्दर मध्यप्रदेशमें स्थित हुई प्राण-ग्रन्थीमें से प्रसरकर पीठडण्डरज्जुके पीछेके भागमें प्रसारित हुआ क्रियातन्तुओं द्वारा सब स्नायुओंके संकाच विकास द्वारा फैला रहे हैं।

नं० १५ यशाभिलाष वा कामनायें

Ambition Or Approbativeness

आकांक्षा, उन्कर्षाभिलाष, प्रशंसा, कीर्ति, लोकापवादका भय, आगे बढ़ने की वा लोगों की दृष्टि में पूज्य बनने की आकांक्षा इत्यादि इच्छाओं का इस वृत्ति में समावेश हुआ है। नाम को उज्ज्वल बनाने में यह वृत्ति ही कार्य करती है। बहुत से सार्वजनिक कार्यों को लोग यशाभिलाष से ही करते हैं। तथा इसी प्रकार अपनी बहुतसी शक्तियों को विकसित करते हैं और पतन से बच जाते हैं।

यश की अभिलाषा की प्रबलता वाले मनुष्यों की सभी प्रवृत्तियों में यश की आकांक्षा होगी। किसी भी प्रकार अपने आपको अच्छा कहलाने का प्रयास करते हैं। ऐसे व्यक्तियों में सत्यनिष्ठा की न्यूनता होगी तो वे झूठ, छल, कपट करने में वा निर्दोष को कलङ्कित करने में भी भय और शङ्का नहीं करते। जब यश (सुख्यति) की वृत्ति के साथ धार्मिक वृत्तियां सम्मिलित होंगी तब वह सत्य मार्ग से ही यश की कामना करेगा। यही आदरकरने योग्य मानना चाहिये।

१५

यश की अभिलाषा

स्थान—सावधानी के स्थान के पीछे, स्वमान के स्थान केदोनों ओर, आत्मनिष्ठा के नीचे और स्थैर्य वृत्ति के नीचे थोड़ा कौने में इस वृत्ति के अवयव का स्थान है।

इस वृत्ति का कार्य सर्व मान्य और सर्व साधारण है और यह व्यष्टि तथा समष्टिके लिये भी लाभप्रद है। क्योंकि यह निस्वार्थभाव से केवल प्रशंसा के लिए कार्य करने के लिए प्रेरणा करनेवाली सबसे प्रबल शक्ति है। इस शक्ति द्वारा मनुष्य अनेक उज्ज्बल, कीर्तिकारक, औदार्य और भक्तिभाव युक्त कार्य करने की प्रेरणा पाता है। यशाभिलाष की उत्तेजना द्वारा ही माता पिता और अध्यापक अपने बालकों को उत्साह और उत्तेजना देकर भला कार्य करा सकते हैं। भले और उदार हृदय के महान मनुष्यों का उपकार उनकी उज्ज्वल कीर्ति और ख्याति जाहिर गीत गान और उत्सवों द्वारा स्वागत सत्कार किए बिना दूसरी कौनसी उत्तम रीति से ज्ञात हो सकेगा ?

प्राणलाल शेठ

मानसिक अवयवों का गवेषक महान आत्मा डा० फ्रान्सीस जोसफ गोल कहता है कि हमारे जूति बनाने वाले चर्मकार में भी प्रशंसाप्रियता का गुण होना मैं पसन्द करता हूं क्योंकि वह इस गुण के कारण मेरा जूता अच्छा बनाता है। मेरे माली में भी यह गुण होना चाहिए, ऐसा में चाहता हूं, इससे वह उत्तम फल तैयार कर लाता है।

लोकव्यवहार, लोकाचार और लोकापवाद की सत्ता, नागरिकता, सभ्यता, शिष्टता और विवेक ज्ञान ये इस वृत्तिके कार्यके लिए कितनीक रीति से उद्भव होते हैं। जनसमाज को धार्मिक, सभ्य और विनयशील बनाने में लोकापवाद अनेक बार विशेष कार्य करता है। अनेक स्त्री, पुरुषों के आचार विचार और व्यवहार की पवित्रता की रक्षा करने के लिए यश वा कीर्ति की अभिलाषा तथा लोकापवादका भय, अनुपम कार्य करते हैं। लोकापवादके ही कारण अनेक उद्धत, गँवार, निर्लज्ज, स्वच्छन्दचारी और निरंकुश स्त्री पुरुषों के जीवन पर एक प्रकार का अंकुश है।

"लोकापवादभयम्" यह लोकोकित बताती है कि जिस भाव से नहीं करते वह लोक भयसे तो करता ही हैं। सब को सामाजिक सभ्यता सिखाने का वह सब से प्रबल साधन है। यह साधन के उपयोग से राजा महाराजा, अधिकारी रंक, धनी सब अपना यथायोग्य कर्तव्य में उद्यत हो रहे हैं।

कुलीनता, अधिकार, सत्ता, मान, प्रशंसा वा कीर्ति की इच्छा रङ्कसे राजा तक सभी को होती है। क्योंकि यह मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। प्रत्येक मनुष्य को आगे बढ़ने की, उत्कर्षकी श्रेष्ठताकी स्तुत्य और प्रशंसनीय बनने की इच्छा न्यूनाधिक अंशमें अवश्य ही होती है। सभी अपनी-अपनी शक्ति और साधनों के अनुसार सम्पत्तिका उपभोग तथा समयका व्यय अपनी इच्छा पूर्ण करनेके लिये कर रहे हैं। अनेक विध वस्त्राभूषणोंकी चाहना, बाग बगीचा और मरुत (वायु) महलमें रहनेकी अभिलाषा, देश सेवाके निमित्त वीरता से शत्रुके सन्मुख जाकर प्राणान्त हो जाने पर भी उज्ज्वल यशः प्राप्ति की कामना इत्यादि इस वृत्ति के अभावमें कभी उद्भव नहीं हो सकते। किन्तु कीर्ति की अभिलाषा, मान प्राप्ति की पिपासा, भीरु कायरों में गणना किये जाने का भय और शूरवीर पुरुषों में गणना किये जाने की अभिलाषा आदि देश सेवा के कर्त्तव्य से भी विशेष अंश में मनुष्यों को शुभ कर्म और महान् यशस्वी कार्य करनेकी प्रेरणा मिलती है? प्रत्यक कार्य में आगे बढ़ने की वा उन्नत होने की आकांक्षा बिना कोई भी व्यक्ति आगे बढ़ने वा उन्नत होने में समर्थ नहीं हो सकता। यशोभिलाष वा प्रसिद्धि की प्राप्ति की आकांक्षा से अनेक व्यकित सुखप्रद और आशीर्वादात्मक, शुभ कामना युक्त, परोपकार और जगद् हितैषी कार्यों की ओर इच्छा न होते हुए भी प्रवृत्त होते हैं यह प्रशंसा यशाभिलाष और प्रसिद्धि की वृत्तिका ही प्रभाव है।

इस वृत्ति का अतियोग वा मिथ्यायोग होने पर अनेक प्रकार की हानियां भी हो जाती हैं। उदाहरणार्थ कितनी ही खाने पीने और पहिनने की नई रीतियों (फैशन) के आधीन हो जाने पर उनका

परिणाम हानिप्रद होता है। पुनरपि उचित मर्यादा में रहकर ओढ़ने पहनने की रीति योग्य है। किन्तु अति फैशन में फंसने और अनुकरण करने से हानि होती है। आजकल हम विदेशी सभ्यता तथा सिनेमा का बन्दर को भान्ति अनुकरण कर रहे हैं यह हमारे पतनका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

प्रबल प्रशंसाप्रियता का प्रभाव

बालका डौल, वस्त्रोंकी फेशनेबल पसन्दगी, कोटका कट, खड़ा रहने की ढब, यह सब बाबतें इस वृत्ति के प्रबल प्रभाव का लक्षण है

परम कृपालु परमात्माकी सृष्टिमें प्रत्येक मनुष्यको उसके कर्मानुसार अच्छा वा बुरा फल मिलता है। एवं इसी प्रकार सबको कार्यानुसार सिद्धि, लाभ और प्रशंसा मिलनी चाहिए। भृत्य, बालक, स्त्री, पुरुष और राजा प्रजा सब को उचित प्रशंसा प्राप्ति की अभिलाषा होती है। स्वाभाविकतया जो कोई यश वा फल देने में पीछे पड़ते हैं वे अवश्य पाप करते हैं।

प्रशंसा से मनुष्य को बल, उत्साह और उत्तेजना मिलता है और दोष, कलङ्क वा धिक्कार देने से स्वमान तथा अन्य अनेक वृत्ति वा भावनायें कुंठित हो जाती हैं मनुष्यका मस्तिष्क स्तब्ध बन जाता है। सर्वदा बार-बार दोष देने से वह मनुष्य निष्ठुर, कठोर और क्रूर हो जाता है। ऐसी स्थिति में किसी भी मनुष्य बालक, स्त्री वा भृत्य सन्तोषकारक कार्य करने वा सुधारने तैयार हो सकता नहीं। अतः उनको दोष न देकर नम्र, सभ्य भाषामें उनके दोष दिखाकर ठीक रीति से कार्य करने का प्रोत्साहन देना चाहिये, उचित मार्ग बतलाकर भूलका सुधार करना चाहिये। प्रत्येक मनुष्य सुन्दर लाभदायक और सुखदायक कार्य करनेका प्रयत्न करता है परन्तु उसके मस्तिष्क में ही दोष होगा तो अच्छा कार्य नहीं बन सकता।

अमीरी और कुलीनता यह इस शक्ति का उच्च स्वरूप है। प्रत्येक मनुष्य ने अपने अच्छा बनाना वे सिखना चाहिए। ऐसी प्रेरणा देने वाली ये शक्ति है।

मनुष्योंको आगे बढ़ने और स्पर्द्धा करने के लिए यह अमीरी गुण ललचाता, लुभाता और प्रेरणा देता है। जिनमें यशकी शक्तिपूर्ण प्रमाणमें विकसित होगी वे दूसरों के भले, सच्चे, अभिप्राय, विचार तथा सम्मतिके अनुसार ही अपने सब कार्य करनेका प्रबन्ध करते हैं। प्रकट निन्दा, अपयश, लोकापवाद वा हंसी मजाकसे सर्वदा बचनेका प्रयत्न करते हैं। सर्वदा अच्छा कैसे दिखाइ दें ऐसा ही प्रयत्न

करते हैं। उनमें मिलनसार, विनय, विवेक, हंसमुख, सभ्यतायुक्त दूसरोंको आनन्द देने वाले गुण स्वभाविक होते हैं। स्नेह और सहवास प्रियताके कारण समाज और कम्पनियोंको अधिक पसन्द करते हैं। उच्च आचरण विचार अभ्यास और आदर सत्कार करनेकी वृत्ति वाले होते हैं। बाहर के दिखावे से भी बहुत अच्छा प्रभाव डाल सकते हैं। सर्वदा आगे बढ़नेकी ओर किसी भी बड़े कार्य में हाथ बटानेकी इच्छा करते हैं। कलङ्क, धिक्कार, निन्दा, अपमान और घृणासे बहुतही खिन्न होते हैं।

मैत्री भावकी अधिकतासे मित्र वर्गके अभिमानी होते हैं और मित्रों द्वारा अच्छा मान (इज्जत) चाहते हैं। वाक् चातुर्यकी अधिकतासे बातचीत योग्यता पूर्वक करते हैं। दया और परोपकार वृत्तिके प्राबल्यसे दया और परोपकार के कार्य कर प्रशंसनीय बनने का प्रयत्न करते हैं। बुद्धि और तर्क तुलना शक्तिकी अधिकता से साहित्य (विद्या विशेष काव्य अलङ्कारादि) तथा बुद्धि शक्तिकी विचक्षणताकी प्रशंसा और सम्मान हो ऐसी विशेष इच्छा करते हैं। स्वमान और शरीर बलकी अधिकतासे तथा उग्र प्रकृति होनेसे किंचित् मात्र भी टीका तथा निन्दा होने पर उनके हृदय में आग पैदा होती है और विरोधी शत्रुओं का साहसपूर्वक साम्मुख्य (मुकाबला) करते हैं। बल आशा और कार्य शकितके प्राबल्यसे किसी भी समय निराश नहीं होते। आरम्भ किये हुए कार्य को नहीं छोड़ते परन्तु किसी भी भान्ति कार्य पूर्ण होने तक अपने उद्देश्य को पूरा करनेके उद्योगसे लगे रहते हैं। अपनी शक्ति से अधिक कार्य करके भी प्रतिपक्षियों को पराजित करते हैं। इस सम्बन्ध में महात्मा गांधी जी का दृष्टान्त उपस्थित है।

जिनमें यह शक्ति न्यून प्रमाण में होती है वे किसीके मत वा अभिप्रायकी परवाह ही नहीं करते। मित्रोंकी भी गणना नहीं करते अर्थात् मित्रोंके कथन पर ध्यान नहीं देते। प्रशंसा की इच्छा नहीं करते। अच्छे चालन चलन की भी आवश्यकता नहीं समझते। और व्यावहारिक विनय को व्यर्थ समझकर 'लोग क्या कहेंगे' इसकी चिन्ता नहीं करते।

इस कीर्ति वा यशकी कामना को नियन्त्रण में रखनेकी बहुत आवश्यकता है। बहुत से मनुष्य आत्मश्लाघाप्रिय होनेके कारण विद्वान होने पर भी उपहासके पात्र बनते हैं। झूठ, छल, प्रपञ्च करते हुवे वा निर्दोषको दोषी ठहरानेमें नहीं हिचकिचाते।

बाह्य आडम्बर और दिखावेके स्थानमें आन्तरीय शुद्ध गुण और योग्यता को पूजाका स्थान मिलना

चाहिये । "गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः" इस सूत्रका पाठ सर्वत्र पढ़ाने की आवश्यकता है । राजरीति और धर्म आदिके सभी कार्यों में गुणोंकी ही पूजा और प्रचार होनेको सर्वप्रथम आवश्यकता है । इसीके परिणामसे जन समूहकी प्रगति बुद्धि कुशलता, नीतिनिपुणता आदि में प्रसिद्धि हो सकती है । ऐसी स्थिति बन जाने पर मानव समाज फैशन की उपासना को छोड़कर थोड़ेही दिनों में सरस्वती देवी (विद्या) के उत्कर्ष गुणों की उपासना प्रारम्भ कर देगा ।

विद्या ददाति विनयं, विनयाद्याति पात्रताम् ।
पात्रत्वाद् धनमाप्नोति, धनाद्धर्मं ततः सुखम् ॥

इसका परिणाम यह होगा कि जो अमूल्य समय और धन इस समय फैशन में नष्ट हो रहा है वह विद्या, विनय, विवेक तथा धर्मादिके उत्कर्ष में होगा । यही सबसे आवश्यक महत्वका कार्य है । हमारी सब अभिलाषायें पशुवृत्ति परक वा बाह्याडम्बर के लिए नहीं हैं, परन्तु उच्च एवं उत्कृष्ट गुणों की प्राप्ति के लिये होनी चाहियें ।

चरित्र निर्माण करनेवाली
उत्कृष्ट मानसिक संपत्ति युक्त मस्तिष्क

नं० १६ स्वमान अथवा अहंभाव

Dignity or Self Esteem

स्वमान अथवा अहम्भाव, आत्मविश्वास, आत्मबल, स्वातन्त्र्यप्रियता स्वराज्यकी इच्छा, अधिकार और नेतृत्व आदि भावों का इस स्वमान की वृत्तिमें समावेश होता है। मनुष्य को उन्नत और उत्कृष्ट स्थितिमें पहुंचानेके लिए यह वृत्ति अत्यावश्यक है। इसके बिना कोई भी महान् कार्य नहीं हो सकता। मनुष्य समाजमें अपना मान (इज्जत) की रक्षा और स्वतन्त्रता युक्त सुखमय जीवन व्यतीत करने के लिए स्वमान गुण की प्रत्येक मनुष्यको आवश्यकता पड़ती है।

स्थान—इस वृत्तिका स्थान दृढ़ताके स्थानके ठीक पीछे और तृष्णा अथवा यशोभिलाषके दोनों स्थान के बीचमें चोटी के स्थान में आया हुआ है।

योग्य स्वमान, साहस धैर्य, आशा आदि भाव युक्त मस्तक

उपयोग—इस अहम्भाव वा स्वमान की वृत्ति के उपयोगकी सर्वत्र आवश्यकता पड़ती है। प्रधान (प्रेसिडेण्ट) नेता वा अग्रणीकी सर्वत्र आवश्यकता है। बिना प्रधान के कोई कार्य ठीक नहीं हो सकता। प्रत्येक प्रसङ्ग में अग्रणी-नेताकी तो आवश्यकता है ही। शरीर में शिर प्रधान पदका उपभोग करता है और प्रधान पदके योग्य कर्तव्यको भी निभाता है। सृष्टि में सर्वत्र इसी नियम का प्रचार देखने में आता है। प्रत्येक पशु, पक्षी आदिका भी एक अग्रणी अवश्य होता ही है (१६, ७, १७, २०) जिसके नेतृत्व में दूसरों सब चलते हैं। इसी प्रकार मनुष्यके प्रत्येक समाज, संस्था, सभा आदि में भी किसी एक को प्रधान का कार्य करने वाला चुनते हैं। अर्थात् समग्र संस्था वा सभा का नेतृत्व पद एक व्यक्ति को सोंपते हैं। प्रत्येक राजसभा, धर्मसभा और विद्या सभा आदिके कार्य बिना प्रधान किसी भी समय चालू नहीं रह सकते। ग्राम, नगर, राज्य, सेना आदिके कार्य भी नेता वा अहम्भाव धारण युवत अभिमानी देव के बिना नहीं चल सकते। ऐसे स्वमान को ग्रहण करनेके पीछे ही सब कार्यों की प्रवृत्ति होती है। ससग्र विश्व में जब यह नियम लागू है तो मनुष्य की शकितयों में भी लागू होना ही चाहिये। और वह ठीक लगा हुआ भी है।

प्रत्येक स्त्री वा पुरुषमें यह स्वमानकी वृत्ति न्यूनाधिक अंश में कार्य कर रही है। क्योंकि सभी मनुष्यों को प्रतिक्षण स्वमानकी वृत्तिकी आवश्यकता होती है। स्वमानके द्वारा मनुष्य अपने व्यकितत्वकी रक्षा कर सकता है। स्वमान का गुण मनुष्यको उत्तरदायित्वपूर्णकार्यमें हस्तक्षेप करनेकी प्रेरणा करता है। और वह स्वमानके द्वारा ही उसे पूर्ण करता है। आत्म विश्वास से अच्छा कार्य करने में ही उन्नति निहित है।

पशु पक्षी वृक्षादिमें भी स्वमान की वृत्ति होती है किन्तु इन सबमें मनुष्यका स्थान सर्वोच्च है। क्योंकि वह अपनी बुद्धि शकित, धार्मिक तथा नैतिक शकित की प्रबलता से सबसे श्रेष्ठ पदका उपभोग करता है। मनुष्यके मस्तिष्क का स्थान बहुत ऊंचा है। तदातद विश्वमें महान, पवित्र और महत्व पूर्ण कार्य करने सर्जाया है। मेरी मनुष्य की उत्तम पदवी और मैं ऐसा पापाचारण वा दुराचार कैसे करूं? मुझसे असत्य उच्चारण कैसे हो सकता है? मैं मिथ्या साक्षी कैसे दूं? अथवा स्वार्थ परायण होकर निर्धनोंका गला घोटकर, न्यायको एक ओर रखकर मैं पशुवृत्तिका पोषण करूं, क्या यह मेरे लिए उचित है?

इस प्रकारके उत्तम भावोंको धारण करने और तदनुकूल व्यवहार करनेसे इस अहम्भावका उत्कृष्ट उपयोग होता है। मनुष्य को उत्तम दशामें पहुंचाने के लिए इस वृत्तिकी अत्यन्त आवश्यकता है। न्याय, नीति, धर्म और सदाचार युक्त उच्च जीवन भी इसी वृत्ति के कार्य पर निर्भर है।

"हम क्या कर सकेंगे?" "हमारी क्या शक्ति है?" क्या यह हमारा कार्य है? ऐसी निर्बल वृत्ति वाले स्त्री पुरुष कोई भी महान कार्य नहीं कर सकते। और न किसी उच्च स्थान को प्राप्त कर सकते हैं। राम कृष्ण वा ईश्वरके अनेक अवतार मानने वाला तथा प्रेम और श्रद्धा भक्ति से उनकी पूजा करनेवाला भी स्वमानके अतिरिक्त भारतके करोड़ों मनुष्यों में से एक भी राम, कृष्ण, अर्जुन, पृथ्वी-राज और महर्षि दयानन्दजी सदश शूरवीर वा धर्मवीर आज तक कोई प्रकट नहीं हुआ। इसी प्रकार निर्बल वृत्ति वाली स्त्रियों में से सीता, सावित्री, सरस्वती, अनसूया और वीरमती की उत्पत्ति नहीं हुई। इसका मुख्य कारण स्वमान का अभाव ही है।
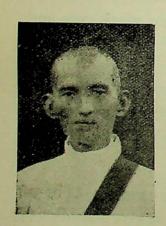
आदर्श स्त्री पुरुषोंके जीवन चरित, रामायण, महाभारत और उपनिषदों की कथाओं में संग्रहकर रखने के लिए नहीं हैं, किन्तु मनुष्योंमें वैसे ही श्रेष्ठ, उदात्त भाव उत्पन्न कर वैसाही बननेके प्रयोजनसे ऐसें महत्व-पूर्ण इतिहास लिखे गये हैं और लिखे जा रहे हैं। प्रत्येक मनुष्य आत्मबल, आत्माभिमान, स्वमानको धारण कर तदनुसार आचरण कर इन्हीं पूर्वोक्त स्थानों को प्राप्त कर सकता है इसमें कुछ सन्देह नहीं।

वर्तमान समय में ही सत्याग्रह संग्राममें विजय प्राप्त करने वाले महात्मा गांधी जी का स्वमान, सत्याग्रह और दृढ़ताका जागृत प्रत्यक्ष दृष्टान्त हमारे सन्मुख है। सत्याग्रह, दृढ़व्रत और स्वमान की भावनाओं को बुद्धिपूर्वक ठीक मार्गसे चलाकार सर्वोत्कृष्ट मान, यश, आत्मसुख और आत्म सन्तोष किस रीतिसे प्राप्त हो सकता है इसके नवीन और आर्यावर्त्तके अति प्राचीन तथा अर्वाचीन इतिहासमें भी अनुपम एवं अद्वितीय दृष्टान्त हैं।

जो कार्य महात्मा गान्धीजी ने राजकीय क्षेत्रमें किया है, वही कार्य गांधीजी से पूर्व महर्षि दयानन्द सरस्वतीजी ने धार्मिक क्षेत्रमें किया है। और यह सब कार्य प्रबल शौर्य, क्षमा, स्वमान, धैर्य, आत्मविश्वास, आत्म-बल, आत्म-निष्ठा, धार्मिक वृत्ति और बुद्धि शक्ति के प्रतापसेही हुआ है।

अनुपम आत्मनिष्टा और दृढ़ आत्मप्रयत्न के ये दो सर्वोत्तम दृष्टान्त हैं। ऐसे गुणों का मनुष्य के अन्दर विकास करने की विशेष आवश्यकता है। आचार विचार और व्यवहार की पवित्रता और स्वार्थ त्याग सिखाने में तथा अनुभव करनेमें अपनी इस अहम्भाव वृत्तिका ठीक उपयोग करना प्रत्येक व्यक्ति ने सीखनाही चाहिए। क्योंकि मनुष्य के अन्दर वृत्तियों को विकसित करनेका यही सबसे बड़ी द्वार है। यह एक महान् नेता का कार्य करने वाली अग्रगामी वृत्ति वा शक्ति है।

जिनमें स्वमानकी शक्ति प्रपूर्ण रीति से विकसित होती है उनमें महान कार्य करनेकी प्रबल इच्छा रहती है। अपनी शक्ति, सामर्थ्य और साधनों पर उनको पूर्ण विश्वास और श्रद्धा होती है। दूसरों पर कार्य न छोड़कर अपनी शक्तिसे स्वयं कार्य करते हैं किसीके विचार विमर्श और सम्मति की बाट नहीं जोहते (नहीं देखते) किन्तु अन्तरात्माकी इच्छानुसार निर्भय और निःशङ्क बन बर्ताव करते हैं। उनमें मनोबल पूर्ण होता है, वे कभी भी निराश और हताश होकर आत्माको शिथिल नहीं पड़ने देते। उनके विचार सर्वदा उत्कृष्ट होते हैं। बोलने चालने में भी मान, गाम्भीर्य और अहम्भाव को भली भान्ति सम्भाल रखते हैं।

यशाभिलाष की अधिकता से अपने आप को सबसे बड़ा मानते हैं। सोजन्य भाव न्यून होगा तो स्वभाव में कठोरता दिखाई देते हैं। साथ ही उद्योग शक्ति विशेष होतो सबके साथ लडने झगड़ने के लिए उद्यत रहते हैं। वात्सल्य की न्यूनता और स्वमान की अधिकता से बच्चों के प्रति विशेष स्नेह (ममता) नहीं रखते। वात्सल्य कीं अधिकता होने पर बालकों के अस्तित्व से विशेष अभिमान धारण करते हैं। मैत्री भाव की अधिकता से मित्र मण्डल (सभा) में जाते हैं। और वहाँ भी अग्रणी बनने की इच्छा रखते हैं।

स्वमान का अतियोग
यही घमण्ड

नैतिक शक्तियोंके प्राबल्यसे स्वमान, उत्साह, भाषा और इच्छाओं को ऐसी प्रबल नैतिक उत्तेजना देते हैं कि जिससे ऐसे मनुष्य सर्वत्र मान और प्रशंसाको प्राप्त करते हैं। और इसके साथ बुद्धि शक्तिका प्राबल्य होगा तो सांसारिक सब कार्यों में जन समाज में विजय प्राप्त करते हैं लोगों के अग्रणी बन न्याय और नीतीसे नेता के पदको धारण कर शोभा पाते हैं। स्वार्थ वृत्तिकी अधिकतासे घमण्डी.उद्धत, उन्मत स्वभाव वाले तथा असहनशील और धन ऐश्वर्य एवं राज्यकी तृष्णासे अन्धे हो जाते हैं।

जिनमें पूर्ण अंशमें स्वमानकी भावना होती है और उसके साथ आशा, बल दृढता अधिक प्रमाण में होंतो ऐसे मनुष्य दु:ख, भय वा संकटके अवसर पर अपने आत्मबल पर विश्वास रखकर आचरण करते हैं। संकट का निरन्तर सामना करते हैं। बुद्धि शक्तियां ठीक प्रमाण होंगी तो अन्य मनुष्यों की समझ युक्त सम्मति को स्वीकार करनेमें तत्पर रहते हैं, पुनरपि ऐमी सूचना और सम्मति स्वयं लेने के लिये नहीं जाते, किन्तु अपना आचरण योग्य रीती से चलाकर यश के भागी बनते है।

जिनमें यह वृत्ति सामान्य होगी वे अभिमानी नहीं होते। अपने विचार को विशेष महत्व नहीं देते। किन्तु यदि नैतिक और बुद्धि शक्तियों सम्पूर्ण अंशमें विकसित होंगी तो उत्तरदायित्व पूर्ण पद को यथावत सम्भाले रखते हैं। और अच्छी रीति से कार्य कर सकते हैं। परन्तु प्रारम्भ में उनका अपनी शक्तियों पर विश्वास नहीं होता।

जिनमें स्वमान की न्यूनता होगी वे अपनी आत्म-शक्तियों का यथावत् मूल्याङ्कन नहीं कर सकते। सर्वदा अपने आपको दूसरों से अयोग्य, नालायक और नम्र सेवक मानते हैं। बातचीत और व्यवहार में दूसरों का दासत्व स्वीकार करते हैं। खुशामद तथा लल्लो पत्तो करते हैं। किसी के ऊपर शासन नहीं कर सकते। महान् कार्योंका भार उठाने के लिये अपने आपको अयोग्य समझकर डरते हैं। अपने आत्माको अनधिकारी समझते हैं। अतः दूसरे लोग भी उसका उतना ही मूल्य करते हैं। बार बार क्षमा याचना करते हैं। ऐसी वृत्ति वाले व्यक्ति खुशामदियों की मण्डलीमें मिलना पसन्द करते हैं ऐसे पुरुष और स्त्रियां अपने स्वमान की वृत्तिका विशेष ध्यानपूर्वक विकास करें।

स्वमानका विकास—इस उत्तम वृत्ति का यथार्थ विकास करनेकी प्रत्येक व्यकितको आवश्यकता है। इसका विकास करना एक आवश्यक कर्तव्य है। अतः इस वृत्तिका विकास करनेका इच्छुक प्रत्येक व्यक्ति निम्नलिखित विषयों में सर्वदा ध्यान रखे—

१. अपने गुणका योग्य मूल्याङ्कन करो।

२. "मैं यह कार्य कर सकूंगा" ऐसा सर्वदा निश्चय करो।

३. दूसरोंकी सम्मति और सूचना सुनलो और ध्यान में रखो किन्तु स्वयं निश्चय कर विचारपूर्वक कार्य करो।

४. अपने आपको हीन कमी मत समझो, आत्मा को अवनत दशामें मत छोड़ो।

५. सर्वदा मनसा, वाचा, कर्मणा एक रहो। सत्य, सदाचार, निति और इमानदारी को अपने व्यवहार में स्थान दो। स्वमान बढ़ाने और उसको सम्पुष्ट बनानेकी उत्तम विधि है।

६. ईश्वर के प्रति निरभिमान, अहम्भाव का त्याग, अभाव अथवा ईश्वर का दासत्व यह एक महान् गुण है किन्तु मनुष्यों के प्रति बिना कारण ऐसी वृत्तिका बार बार स्वीकार करने से स्वमानकी वृत्ति न्यून होती जाती है। अतः सर्वत्र ऐसा स्वभाव बतानेकी आवश्यकता नहीं। क्योंकि यह वृत्ति मानव को हलका करनेवाली है। पुनरपि विनीत होनेकी आवश्यकता है। परन्तु दासत्वतो दुर्गुणहै।

७. रोमन लोग कहते थे कि "**I am Roman**" मैं रोमन हूं। इसी प्रकार अभी अंग्रेजभी कहते हैं कि "**I am an European**" मैं एक यूरोपियन वा अंग्रेजहूं। ऐसा कहकर वे गौरव अनुभव करतेहैं। वैसेही प्रत्येक मनुष्य अपनी भूमि वा देशके अभिमानके साथ "**I am a human being**" मैं मननशील मनुष्य हूं ऐसा आत्मगौरव धारणकर मननशील बनकर सर्वदा व्यवहार करे।

८ अपने स्थान वा पद का अभिमान नहीं करना चाहिए परन्तु न्याय और धर्म वृत्तिसे सबके साथ स्नेह भावसे यथायोग्य व्यवहार करना आवश्यक है।

९. अपने आत्माको कभी अवनत दशामें रखो नहीं। वैसेही अन्यके आत्मा कोभी कभी निर्बल और अधम प्रवृत्तियों और अधमताके प्रवर्तक उद्योग धन्धे तथा व्यापार व्यवहार से दूर रहो।

१०. बैठने और चलनेके समय शरीर और मस्तिष्क सीधा रखने का अभ्यास करो, ऐसा करनेसे इस शक्तिके विकासमें सहायता मिलती है।

बालकोंमें स्वमानकी शक्ति विकसित करनेके उपाय

१. बालकोंमें स्वमानकी शकित विकसित करना अपना धर्म समझो।

२. बालकोंमें इस स्वमानकी शकितको विकसित करनेके लिए उनमें उनकी शकित पर विश्वास करना सिखलादो। अति अंकुश (दबाव) में रखकर उन्हें दीन हीन और अति नम्र नहीं बनाना चाहिए।

३. उनकी यथायोग्य प्रशंसा कर उनको उत्साहित करना चाहिए।

४. उन्हें ऐसा सूचित करना, सावधान करना वा बतलाना चाहिए कि अब तुम बालकहो; परन्तु बडा होनेपर तुम्हें स्त्री या पुरुष के भिन्न भिन्न उत्तम उत्तराधिकार ग्रहण करने हैं देश हितके लिए बड़े बड़े कार्य करने हैं। इस कार्यके करनेकी तुम्हारे अन्दर शक्ति विद्यमान है। इन कार्यों के करनेके लिए तुम्हें अभीसे तैयार होजाना चाहिए। बड़े बड़े कार्यकर कीर्ति, प्रतिष्ठा और मान प्राप्त करना है।

५. यदि बालकोंसे कोई सिकृष्ट कार्य हो जावे तो उनको शान्ति से उसका परिणाम समझाकर पुनः वैसा कार्य न करनेके लिए सावधान कर देना चाहिये। विशेषतया उनको स्वमानकी भावनाको शिक्षा देनी चाहिए।

६. अंकुश, कठोरता वा कठोर भाषण अथवा क्रोध कर उनके आत्माको निर्बल विकल और भय भीत नहीं बनाना चाहिये। और क्रोध कर गाली प्रदानभी नहीं करना।

७. बालकोंके साथ आदर पूर्वक सभ्य व्यवहार रखो।

८. बालक बालिकाके जीवनको उत्कृष्ट, उत्साहपूर्ण, गम्भीर, सत्यनिष्ट, सभ्य और स्वमान की भावनासे परिपूर्ण बनादो कभी अवनत न होने दो।

९. माता, पिता, गुरू, अध्यापक और पूज्यजन बालकोंके प्रति अपने कर्तव्य को भूलेंगे तो वेही दोषी हैं, अपराधी और पापी हैं। इस पापका फल उन्हें तथा उनकी भावी सन्तानको भोगना पड़ेगा, यह निश्चित है।

आत्मवश्यता, मनोबल वा स्वराज्य यह इस वृत्तिका अपना अनुपम स्वरूप है। इसके उपर विशेष ध्यान देनेकी आवश्यकता है। संसार में मनुष्य जैसा चाहे वैसा कर्म करनेवाला स्वतन्त्र प्राणी है। सत्य, मिथ्या, भला, बुरा, उत्तम-अधम कर्मको भली भान्ति समझकर भी किस रीतिसे आचरण करे यह उसके मनकी स्वतन्त्र इच्छाहै। मनकी शुभाशुभ प्रवृत्ति रूपी लगामको हाथमें रखना यह विशेषतः इस शक्तिकाही कार्यहै। इसमें सावधानी, गोपन शक्ति, दृढ़ता, आशा तथा अन्य नैतिक और बौद्धिक शक्तियों भी यथासम्भय आवश्यकतानुसार सहायकहैं। उनके साथ स्वमान अपना नेतृत्वका बल दूसरी शक्तिको देकर अमुक ही प्रकारका वर्ताव कराताहै। और उस कार्यको सफल बनाता है।

हम जड पदार्थ वा यन्त्रोंकी भान्ति निर्जीव नहीं हैं जिससे सब ओरके संयोग और आकर्षणोंके परिणामसे जो अवस्था प्राप्तहुईहै सर्वदा उसीमें रहेंगे। अथवा अमुक कार्यही कर सकेंगे। परन्तु सत्या-सत्यका निर्णयकर इच्छित मार्गमें चलना, विद्या तथा धर्मका प्रचार एवं विस्तार करना यह हमारी स्वतन्त्रताके आधीन है। इच्छा पूर्वक किसी पापको दूरकर हम सदाचारका मार्गग्रहण कर सकतेहैं। कोई भी भावना वा वृत्ति अपने उग्र स्वरूपसे हमको दबाकर अपने आधीन करने के लिए तत्पर होगीतो उस समय हमारे अन्दर विद्यमान शुभ शक्तियाँ तुरन्त अपना कार्य प्रारम्भ कर कुवृत्तियोंको पराभूत करनेमें सहायक होंगी। और अन्तमें विजयी होगी। सांसारिक देवासुर संग्रामकी भान्ति हमारे मस्तिष्क की वृत्तियोंमेंभी अनेकबारतुमुल युद्ध होता है। उस समय इन्द्रियोंका निग्रहकर इच्छानुसार उचितमार्ग पर चलानेका जो महान कार्य है वह हमारे आत्माके आधीन है। हम स्वयं अच्छी वृत्तियोंको विकसित कर कुवासनाओंको दबा सकते हैं और अपने व्यवहारको सुधार कर ठीक मार्गपर चला सकते हैं। इन्द्रिय निग्रह यह मनुष्यका महान गुण है और इस गुण की प्रवृत्तिमें यह स्वमानकी शक्ति अन्य शक्तियोंके सहयोगसे अनुपम पुष्टि देतीहै।

बाल्यावस्थासे लेकर मृत्यु पर्यन्त हम अनेक प्रकारकी तृष्णा, लोभ, इच्छा, आदिके संयोगमें आते हैं, यह हम सभी जानते हैं। अनेक बार हम बाह्याडम्बर और लोभमें फंस कर अनुचित कार्य प्रारम्भ कर-देते हैं। ऐसे अवसरपर जीवनके यथार्थ रक्षणके लिए हमें इन्द्रिय निग्रह अथवा आत्मवश्यता रूपी शस्त्रकी आवश्यकता पडती है। हमारी शारीरिक, मानसिक और वाचिक प्रत्येक प्रवृत्तिमें यह शस्त्र अनुपम सहायता करताहै। लोभ, तृष्णा आदिके सन्मुख इस शस्त्रका उपयोग अत्यावश्यक है। ऐसे प्रत्येक प्रसङ्गमें सम्पुर्ण सत्ता बुद्धि शक्तियोंको सोंपकर उनके बर्चस्वमें मनुष्य अपना व्यवहार रखे, इसकी अधिक आवश्यकता है।

निग्रहकी आवश्यकता-स्वमानके कारण मिथ्याभिमानी, स्वेच्छाचारी, मदान्ध, अथवा धर्मान्ध बन जाने वालोंके लिये निग्रहकी आवश्यकता है। निग्रहवान् व्यक्ति तन, धन, बुद्धि, अधिकार आदिका अनुचित अहङ्कार कभी नहीं कर सकता। यदि अहङ्कारके भाव प्रकटभी होतेहैं तो बुद्धि, आत्मनिष्ठाको सन्मुख लाकर उन्हें दबा देना चाहिये।

वास्तविक महत्ता, उचित मान, अच्छी दृढता तो तभी समझनी चाहिये जबकि मनुष्यमें नम्रता, विनय, विवेक और मृदुताके भाव प्रकट हो जायें।

नं० १७. दृढ़ता अथवा स्थैर्य वा धैर्यवृत्ति

Firmness Perseverance and Will Power

दृढ़ता स्थैर्य अथवा धैर्यवृत्तिः—सुनिश्चितता, अडिगता, तितिक्षा, आग्रह आदि भाव धैर्यवृत्तिके लक्षण हैं। प्रकृतिके सब पदार्थ स्थिर धैर्यसे अपना अपना नियत कार्य करते रहते हैं। धैर्यके बिना कोई भी आगे नहीं बढ़ सकता। धन, विद्या, यश, धर्म और सांसारिक सुख आदि सब कामनाओंकी यथावत् पूर्ति करनेमें धैर्यरूपी धनकी अत्यावश्यकता है। हमारे प्रत्येक कार्य को आपत्तियों और बाधाओंसे बचाकर पूर्ण करनेके लिए तथा धर्म परायण रहनेके लिए धैर्यकीही आवश्यकता है। सज्जन तथा साधु लोग धैर्य तथा सन्तोषरूपी धनके पालने वाले होते हैं।

सत्याग्रही महात्मा गांधीजी

स्थान—इस वृत्ति के अवयवका स्थान मस्तिष्कके ऊपरके भागमें मध्यप्रदेशमें, शिखाके अग्र भागमें आया हुआ है। कानकी ओरसे शिरका यह भाग जितना ऊंचा होगा उतनीही इस वृत्तिकी विशेषता समझना।

स्थैर्य अथवा दृढ़ता प्रकृतिका एक महान् गुण है। स्थिरपन तो प्रकृतिका एक महान् मुद्रालेख है। वे उसके प्रत्येक कार्य और नियममें सब स्थानोंपर स्पष्टतया देखनेमें आते हैं। सूर्य प्रतिदिन अवि-श्रान्तसे अपना मार्गमें अन्य ग्रहोंके अनुसार निरन्तर गतिकर रहा है। ऋतु, सरिता (नदी) पवन (वायु) समुद्रादि स्थिर धैर्यसे अपने अपने मार्गमें प्रवृत्तिकर रहे हैं। वृक्ष, वनस्पति आदि सब पदार्थ अपने नियत कार्य सम्पूर्ण रीतिसे फलीभूत होवे तब तक एकही स्थानपर स्थीरतासे टिक रहते हैं।

हमारे प्रत्येक कार्यमें किसो न किसी प्रकारकी कठिनाई अवश्य आजाती है। उसको सहने तथा दूर करनेके लिए हमें धैर्यकी आवश्यकता होती है। एक विचार एक क्षणमें आया और दूसरे क्षणमें नष्ट हो गया वह किसी कामका नहीं है। मनुष्यको प्रत्येक महान् कार्यमें महान् धैर्य, स्थैर्य तथा अचल सुनिश्चित विचारकी सर्वत्र आवश्यकता है। धर्मका पहला लक्षणभी धैर्यही है, इस "धैर्य" में बड़ा गूढ आशय समाया हुआ है।

हजारों विपत्तियों तथा कठिनाइयोंको धैर्यसे दूर करनेके बिना मनुष्यकिसी भी कार्यके करनेमें समर्थ नहीं हो सकता है और प्रसिद्ध तथा विख्यात अपराधी भी धैर्यसे अपना काम कर सकते हैं। महान्-पद बड़पन तथा प्रतिष्ठा प्राप्त करनेमें धैर्यरूपी गुण बड़ी अद्‌भुत सहायता प्रदान करता है। धैर्यके बिना उत्तमबुद्धि तथा उत्तम कौशल्यभी उपयोगी नहीं हो सकता। परन्तु धैर्यसे युक्त स्वल्प बुद्धि तथा स्वल्प कौशलवालाभी बहुत अच्छा फल प्राप्त कर सकता है।

संरक्षक वृत्तियों तथा नैतिक शक्तियोंके मध्यमें आया हुआ यह धैर्यका स्थान उसकी उपयोगिता को दर्शाता है। प्रत्येक शक्तिके उपयोगके समय इस शक्तिसे संयुक्त करनेकी बड़ी आवश्यकता है। कारण यह है कि इसके द्वारा मनुष्यको प्रत्येक क्रियाको स्थिरत्व प्राप्त करने की शक्ति मिलती है। मनुष्यके अन्दरकी पशुवृत्तियों को दबाकर नैतिक प्रवृत्तियोंको निरन्तर कार्योंसे गति देना इस स्थैर्य-वृत्तिका मुख्य कार्य है। नैतिक वृत्तियोंके समूहके पीछेही इस शक्तिका अवयव होना यह भी एक कारण है।

जिनमें यह शकित प्रपूर्ण रूपमें होगी उनका विचार स्थिरहोता है और वे दृढ़ प्रतिज्ञा वालेहीहोते हैं, वे किसीभी कामको पूरा किये बिना पीछे नहीं हटते हैं।

१. शरीर बल और स्वमानकी तीव्र भावनासे वे सर्वदा अपने निश्चयमें स्थिररहते हैं। इसी लिये वे किसी के समझाने अथवा किसीके द्वाराआकर्षित करनेसे आकृष्ट नहीं होते।

२. तर्क शकितकी प्रबलतासे केवल तर्कके प्रावल्यसेही उनको समझा सकते हैं।

३. स्वमान और युयुत्सा वृत्ति वाले किसीके दबावसे नहीं दबते। किन्तु जैसे जैसे उनको दबाने कुचलने और पददलित करनेका प्रयत्न किया जाता है वैसे वैसे वे अपने निश्चयपर अधिक दृढ़ और अडिग होते जाते हैं।

प्राचीन कालके इतिहास प्रसिद्ध राजा सत्यवादी हरिश्चन्द्रजी, श्रीरामचन्द्रजी, महाराणा प्रतापजी तथा देवियोंमें सती तारामती, सती सीता, सावित्री आदि इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। वर्तमान कालमें भी स्थिर धैर्यवाले अनेक पुरुष हैं जिनमेंसे महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गान्धीजीका नाम विशेषतया उल्लेखनीयहै। जिन्होंने अफ्रिकामें स्वमान और सच्चाई की रक्षाके लिये अपना सर्वस्व त्याग कर सम्पूर्ण शक्तिलगाकर भारतके मानको चार चांद लगादिये। यह सुप्रसिद्ध महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गान्धीजीका जीता जागता उत्तम दृष्टान्त सम्पूर्ण संसारके सन्मुख उपस्थित है। इङ्गलैण्ड निवासी, कूटनीतिज्ञ अंग्रेजों तथा अफ्रीका सदृश स्वतन्त्र किन्तु जङ्गली, असभ्य, गंवार राज्यमदसे हुआ

हस्तीयोंके मान और मदको भी मोड़नेवाले, नाकमें दम भरनेवाले, नीचे नमाने वाले अन्तमें अपना निशस्त्र युद्धमें विजय प्राप्त करनेवाले महात्मा गान्धीका दृष्टान्त सचमुच भारतके इतिहासमें अनुपम और अद्वितीय है।

४. ऐसे आग्रही मनुष्योंमें दया और मैत्रीका प्रबल भाव होगा तो सुगमतासे समझा सकातेहैं, विशेषतः मित्र वर्गसे उन्होंको शीघ्र समझा सकाते हैं।

५. आत्मनिष्ठा और मनोबलकी अधिकतासे अपने विचार और व्यवहारमें बहुतही दृढ़ और चुस्त रहते हैं।

साधारण—जिनमें यह शक्ति साधारण प्रमाणमें होगी वे दीर्घकाल तक अडिग नहीं रहसकते। धैर्यशाली नहीं होते। महान कार्यों को चिरकाल तक चालू रखकर पूर्ण नहीं कर सकते। स्थिरता और कार्यके पीछे लगे रहनेकी वृत्ति बहुत ही न्यून होती है। ऐसे मनुष्य ढीले और अस्थिर स्वभावके होते हैं। शीघ्रही समझोता पर आजाते हैं और जन प्रवाह जिन रास्ते बहता है वे रास्ते वह जाते हैं।

चित्र नं० २०

ब्रह्मचर्य बलका प्रभाव
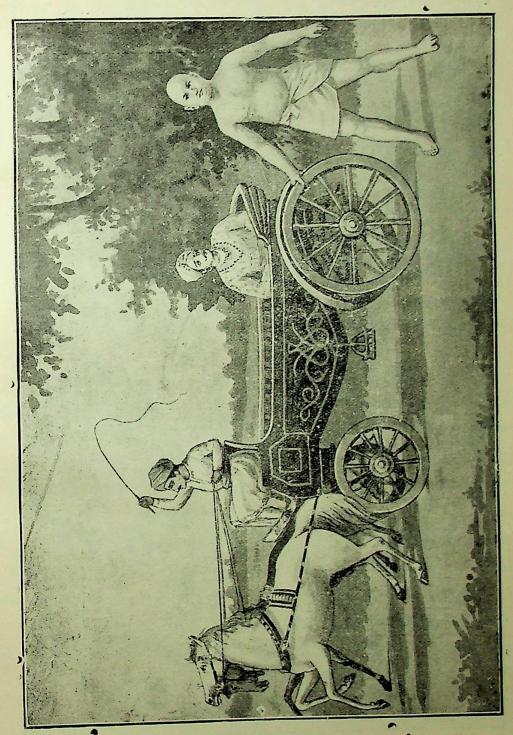
ब्रह्मचर्यकी महत्तापर अमृतसरके सरदार विजयसिंहको उत्पन्न हुई शंकाका क्रियात्मक उत्तर देता अखंड बाल ब्रह्मचारी महर्षि दयानन्द।

पू० महर्षि दयानन्दमें—

सत्य, धर्म, नीति, सदाचार, आत्मनिष्ठा, ब्रह्मचर्य, शौर्य, स्वमान, स्वदेशानुराग, दृढ़तास्थैर्य, धैर्य, निर्भयता आदि उत्कृष्ट गुणके कारण वेश्यागामी नरेश को फटकार दिया और उनका सच्चा स्वरूप समझाया। चित्र नं० २१
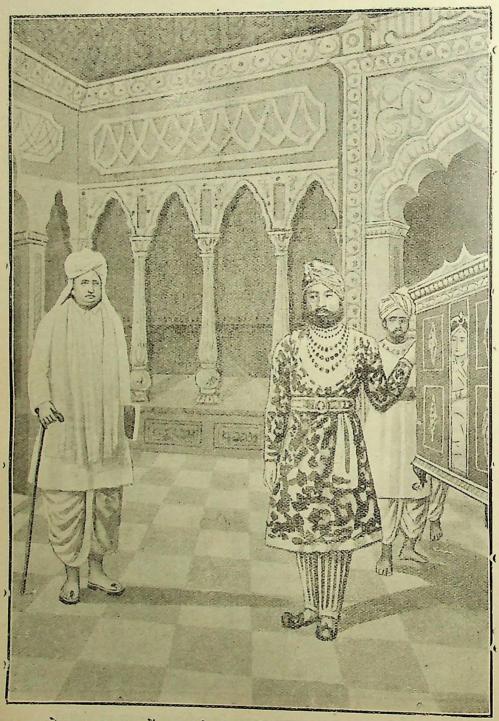
जोधपुर राजप्रासादमें राजा की मान्य गणिका, स्वामीजी का एकाएक आगमन
महर्षिका जोधपुर नृपतिप्रति उपदेश (हितकथन)
'राजन्! सिंहका सम्बन्ध कभी कुत्तियासे हो सकता है'?

दृढ़ता अथवा धैर्यवृत्तिका विकासः-

१ इस शक्तिके विकासके लिए मनको सर्वदा दृढ बनाओ।

२ बुद्धिपूर्वक पहले दृढनिश्चय करो, पुनः तदनुसार आचरण करनेमें अडिग रहो।

३ प्रथम अपने मार्गकी सत्यताका निश्चय करो पुनः उसपर धैर्यसे डट (टिक) रहो।

४ किसीभी आपत्तिके सन्मुख डटे रहो, घबराकर दूर न भागो।

५ यदि कोई समझानेका प्रयत्न करेतो उसकी चिन्ता न करो,अपने सिद्धान्त के अनुसार चलो।

६ प्रत्येक कार्यका आरम्भ खूब सोच विचार कर करो और प्रारम्भ किये हुए कार्यको पूर्ण किये बिना मत छोड़ो।

७ लोभ तथा इन्द्रियोंके आधीन न होने इच्छित सत्य और उचित अभिलाषको पूर्ण करनेका लक्ष्य रखो और धैर्यसे लगे रहो।

८ जो धैर्य और उत्साह पूर्वक अपने उद्देश्यको पूर्ण करनेमें संलग्न रहताहै उसको अन्तमें विजय प्राप्ति होती है।

९ सत्यके मार्गसे एक इंच भी दूर न जानेकी प्रतिज्ञाको बारबार दृढकरो।

युवक और बालकोंमें इस वृत्तिका विकास करनेकेलिए यह ध्यानमें रखना चाहिए कि वे जो कार्य पूर्ण न करसकें वैसा कार्य उनको कभी नहीं सोंपना चाहिए, तथा बुद्धि पूर्वक प्रारम्भ किया हुआ कार्य कभी अधूरा छुडवाना नहीं चाहिये। वह कार्य उनकेही द्वारा पूर्ण करवानेका ध्यान रखना चाहिये। हाथमें लिए हुए कार्यको पूर्ण करनेका बच्चोंको अभ्यास करवाना चाहिये, किन्तु "जी हजूर" स्वभाव वालाभी नहीं बना देना। क्योंकि ऐसा करनेसे वे दासत्वको प्राप्त होते हैं।

सेवक वा भृत्योंकोभी बहुत दबावमें रखकर अथवा उनके प्रति तुरन्त कठोर होकर, बारबार कार्यों को स्थगित कराने, विलम्ब कराने और बीचमें दूसरे कार्य दिखानेसे उनके स्थिरत्व, धैर्य अथवा कार्यके पीछे लगे रहनेकी शक्तिको तथा स्वमानकी वृत्तिको मन्द करनेमें कारण न बने, यह विशेषतया ध्यानमें रखना चाहिये।

मनुष्यके अन्तरात्माकी वृत्तियोंको बल पूर्वक वा जिदसे दबा देना वा निर्बल बना देना यह एक महान पापहै। धनाढ्य वा अमीर, सेठ, साहूकार शीघ्रतासे तड़ातड़ एकके उपर एक आज्ञा देनेवाले, ऐसेही अधिकारियों को इस विषयमें अधिक समझनेकी आवश्यकता है।

निग्रह—इस वृत्तिके अतिउग्र स्वभावको दबाकर रखनेकीभी अनेकबार आवश्यकता होतीहै। अतः सर्वदा ध्यान रखना चाहियेकी अति आग्रह हठके परिणामसे तुम्हें स्वयं तो हानि नहीं हो रहीहै ? हमेशा समझदार व्यक्ति और मित्र वर्गके कहने पर यथार्थ ध्यान रखो और दृढताके साथ बुद्धि और आत्मनिष्ठा की सहायता लेकर कार्य करो। बुद्धिके साम्राज्य वा नेतृत्वकी सर्वत्र आवश्यकता है। जिनमें अति आग्रह और हठ होगा वे अपने दोष, भूल वा हानिकी ओर देखते ही नहीं, ऐसी अवस्थामें ईश्वर प्रदत्त इस दिव्य शक्तिका दुरुपयोग होना सम्भव है। अतः ऐसी दशामें आग्रहकी उग्र वृत्तिवाले व्यक्ति विशेष ध्यान रखें कि ऐसा कोई दुरुपयोग तो नहीं हो रहा है ?

"न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः"

(भर्तृहरिः)

संस्कारी धैर्यशक्ति, सत्याग्रह और न्यायपरायणताकी
उत्कृष्ट विभूति महात्मा गांधी

शौर्य, स्वमान, दृढ़ता, स्थैर्य, धैर्य आदि गुणोंके साथ ब्रह्मचर्य बल।
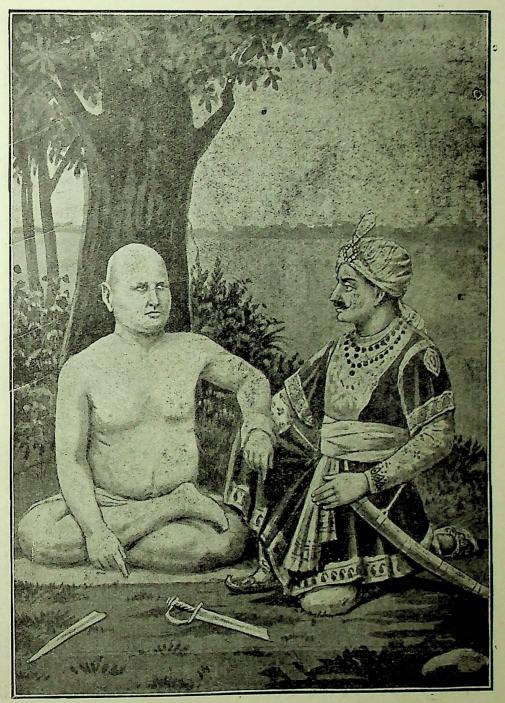
रावकर्णसिंह का स्वामी जी पर तलवार का वार।
स्वामीजी उनकी तलवारके दो टुकड़ा कर डालते है और क्षमा देते है।

८४ प्रबल मेधाशक्ति और दया, परोपकार वृत्तिसे अपने विष देने वाले को भी क्षमा दिया
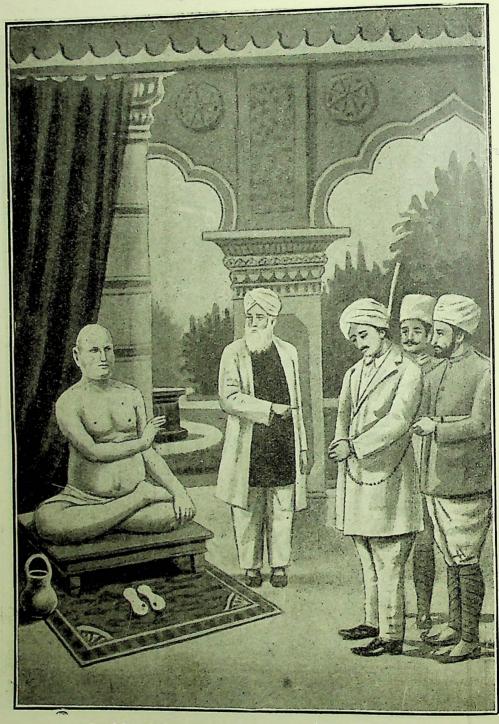
पानमें विष देने वालेको यह कहकर छुड़ाना कि "मैं संसार में कैद करवाने नहीं आया किन्तु कैद से छुड़ाने आया हूं।"

चतुर्थ प्रकरण
नैतिक और धार्मिक वृत्तियाँ

Men's Moral and Religious, Sentiments
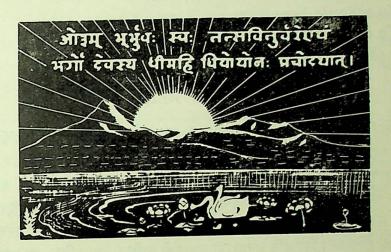
१८. भक्ति भाव
१९. अध्यात्मरति
२०. आशा
२१. आत्मनिष्ठा
२२. दया, करुणा, परोपकार

धर्मोविश्वस्य जगतः प्रतिष्ठासर्वं धर्मे प्रतिष्ठितं
तस्माद् धर्मं परमं वदन्ति

WHAT IS RELIGION?

1. To love justice and mercy (न्याय और दया)
2. To pity the suffering (करुणा)
3. To assist the weak (सहानुभूति)
4. To forget wrongs and remember benefits, (क्षमा)
5. To love the truth and liberty (आत्मनिष्ठा और औदार्य)
6. To cherish wife and children (दाम्पत्यधर्मऔर वात्सल्यस्नेहकापालन)
7. To love friends (मैत्रीभाव)
8. To make a happy home (सुखी गृहस्थाश्रम)
9. To love the beautiful in art and in nature (सौन्दर्यप्रेम)

10. To cultivate the mind (स्वाध्याय)
11. To te brave (शौर्य)
12. To be cheerful and make others happy (आनन्द हास्य)
13. To fill life with the splendour of generous acts (परोपकार)
14. To discard errors and destroy prejudice (अहंकारत्याग)
15. To receive new truths with gladness (सत्य परायणता)
16. To cultivate hope (आशा)
17. To do the best that can be done (कर्तव्यपरायणता)
18. And then to be resigned (संन्यास)

THAT *IS* RELIGION

धर्मके मूल सिद्धान्तो—मनुष्य स्वभावसेही धार्मिकहै। मनुष्यके मस्तिष्कमें सामाजिक भावनायें, बुद्धि शक्तियाँ और स्वार्थयुक्त संरक्षक शक्तियाँ, अवलोकन शक्तियों इसीप्रकार नैतिकऔर धार्मिक वृत्तियाँ मस्तिष्क शास्त्रानुसार खोज करनेसे ज्ञात हुईहैं। जिनके आधारपर इसविभागकी सम्पूर्ण रचनाऔर विवेचन किया गय है। मनुष्यके मस्तिष्कके उपरके भागमें इस वृत्तिका स्थानहै। यह इसशक्तिकी उत्कृष्टता एवं श्रेष्टताको दर्शानेके लिए मस्तिष्क शास्त्रकी स्वाभाविक भाषानुसार प्रबल प्रमाणहै। और यह ऐसा दर्शाता हैकि अन्य विशयोंके अनुसारही मनुष्यकी धार्मिक तथा नैतिक भावनायें प्रमाणित की जासकतीहैं। ऐसा प्रबल प्रमाण के आधारपर मनुष्यके स्वभावके साथही स्थापित कियाहुआहै। जिन्हेंइस विषयमें किञ्चिन्मात्र भीं सन्देहहोवे वह मस्तिष्क के अन्दरकें इसविभागमें बतलाईहुई वृत्तियोंके स्थान और उनके विकास के अनुसार मनुष्य जीवनमें होता न्यूनाधिक प्रभावपर विशेष ध्यानदें, ऐसा हमारानम्र-निवेदनहै।

संसारमें धर्म अथवा नीति सम्बन्धी जो भी सत्य औंर स्थिरसिद्धान्तहै वे मनुष्यके अन्दरकी धार्मिक और नैतिक वृत्तियोंकेही कारण है। ये वृत्तियाँ गस्तिष्क के अन्दरके तद् तद् वृत्तियां के अवयवों द्वारा प्रकट होकर सर्वदा कार्यकररहीहैं।

जीवनमें हम कोईभी कार्यवा क्रियाओंको प्रारम्भ करें उससेपूर्व "चेष्टेन्द्रियार्थाश्रय शरीरम्" हमको भिन्न भिन्न प्रकारकी चेष्टा अथवा क्रिया करनेकेलिये तथा विषयोंको ग्रहण करनेके लिये साधनभूत इन्द्रियोंकी और इन सबके साथ सम्बन्ध रखने वाले आत्मा सहित स्थूल शरीरकी सबसे पूर्व आवश्यकता है।

१. सब नैतिक और धार्मिक वृत्तियां मनुष्यके अन्तरात्माके साथ स्वभावसेही वर्तमान हैं।
२. उनके मूलस्वरूपका ही वह एक लक्षण गुण अथवा शक्ति है।
३. और ये शक्तियां प्राकृतिक सम्बन्धों द्वारा यस्तिष्क के अन्दर उचित अवयवों द्वारा सङ्गठित

हो रही हैं । इसी प्रकार ये अवयव जीवात्मा अथवा जिसको हम मन कहते हैं उसकी आन्तरिक नैतिक अथवा धार्मिक शक्तिको इच्छानुसार प्रदर्शित करनेके साधन हैं ।

मस्तिक शास्त्रके इन तीन सिद्धान्तोंके आधारपर नीति और धर्म सम्बन्धी सम्पूर्ण धामकी रचना की गई है । ऐसा मस्तिष्क शास्त्री दृढ़ताके साथ प्रमाणित करने के लिए तैयार हैं ।

लक्षण—इस नैतिक शक्तिके पूर्ण विकाससे मनुष्य का मस्तिष्क दोनों कानोंके ऊपरके शिर: स्थान में उन्नत हुआ स्पष्ट देख पड़ता है । और वह ऊपरका भाग पूर्व तथा पश्चिम अर्थात् आगेसे पीछेकी ओर लम्बगोल स्वरूपका होता है । इन नैतिक अवयवों के यथार्थ विकासकी न्यूनतासे मस्तिष्कका यह प्रदेश चपटा (बैठा हुआ) ललाटकी ओर नीचा झुका हुआ और ऊपरसे विस्तारमें न्यून दिखलाई देता है।

पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियों में यह विभाग प्राय: अधिक प्रमाणमें उन्नत हुआ देखनेमें आता है । इसलिए स्त्रियोंमें धार्मिक श्रद्धा वा नीति निपुणता अधिक प्रमाणमें होती है ।

उपयुक्त विवरणसे स्पष्ट होता है कि कुदरतमें धार्मिक प्रबन्ध तथा नैतिक नियमों की खास निश्चित विशेष व्यवस्था है । तदुपरान्त मनुष्य अन्यगृह्यवृत्तियों वा शक्तियों के अनुसार धार्मिक वृत्तियों से प्राकृतिक रीतिसे संयुक्त है । अतएव धर्म, नीति या कर्तव्य परायणता 'मिथ्या किंवदन्ती' नहीं है, किन्तु युक्ति प्रमाण सङ्गत सत्य और प्राकृतिक नियमोंका नाम है । जोकि अपरिवर्तनशील, स्वयं सिद्ध और सृष्टिक्रमके नियमानुसार अनादिकालसे एकरस चले आ रहे हैं ।

समग्र संसारकी प्रतिष्ठा वा स्थिति धर्मपरही है । प्रजाभी धार्मिक मनुष्योंकाही आश्रय लेती है । अतएव धर्मको प्राचीन ऋषियोंने सर्वश्रेष्ठ माना है । तब धर्मका मूल आधार क्या है ? धर्मका प्रयोजन क्या है ? धर्म किस आधारपर सुस्थिर रहता है ? ये तीन खास विषयके प्रश्न हैं । इनका उत्तर निम्न-लिखित दिया है:—

१. मनुष्यके अन्दर विद्यमान सब मूल मानसिक स्वाभाविक शक्तियों का संसारके समग्र पदार्थोंके साथ जो नैतिक और धार्मिक सम्बन्ध है वह धर्मका मूलाधार है । भोजन और भोज्य वृत्तिका, कारण साथ तर्क शक्तिका, माता पिता और सन्तान तथा वात्सल्य भावका, पति और पत्नीका प्रेम वृत्ति साथ जिस प्रकार पारस्परिक सम्बन्ध है उसीके अनुसार कुदरतके अन्दर समग्र पदार्थों और मनुष्योंके अन्दर की समग्र शक्तियां का भी ऐसीही तात्विक सम्बन्ध है ।

२. विश्व (संसार) के सब पदार्थों—एक तृणसे लेकर ईश्वर पर्यंतके गुण, कर्म, स्वभावका यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर उनका आवश्यकतानुसार यथायोग्य उपयोग करना, यह विश्वव्यापी धर्मका महान् उद्देश्य, प्रयोजन वा कारण है, और होना चाहिये ।

३. जब मनुष्यकी आन्तरिक धार्मिक और नैतिक स्वाभाविक आत्मशक्तियोंकी अन्दर ऐसे सब धर्मों की अवस्थित वा स्थिरता है ।

विश्व साथ मनुष्यका सम्बन्ध अर्थात् संसारके पदार्थोंके साथ मनुष्यके मानसिक गुणोंका सम्बन्ध कैसा है ।

१. विश्वमें खाद्य या भोज्यपदार्थोंका अस्तित्व है, क्योंकि प्राणीमात्रको भोजनकी आवश्यकता है। भोज्यपदार्थोंको यथार्थ रीतिसे ग्रहण कर चबाकर, कुचलकर; रसमय बनाकर उनका यथार्थ उपयोग करनेके लिए पाचनेन्द्रियों का समग्रसाधन समुदाय दान्त, जिह्वा, ओष्ठ, स्वादुरस, अन्नमार्ग, जठराग्नि, आमाशय, पक्वाशय, पित्ताशय, यकृत, प्लीहा, स्थूलान्त्र, सूक्ष्मान्त्र और मल-मूत्रद्वार आदि अवयवोंको कार्यमें प्रवृत्त करनेवाला खाद्याभिरुचिका अवयव मस्तिष्कमें विद्यमान है। इसके उपरान्त खान-पानके उचित और उपयोगी, हानिप्रद वा लाभप्रद नियमोंका ज्ञान अन्वेषण आदि मनुष्यके अन्दर विद्यमान खाद्याभिरुचिके ही कारण होता है।

२. जगत्में प्रत्येक वस्तुका पृथक्-पृथक् अस्तित्व है। उनके भिन्न-भिन्न स्वरूप का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना यह मनुष्यके लिये अत्यावश्यक है। और इस प्रयोजन की सिद्धिके लिये मस्तिष्कमें अवलोकन (देखभाल) शक्तिका अवयव विद्यमान है। मनुष्य जो कुछ अन्वेषण, परीक्षण, निरीक्षण और अवलोकनकरना चाहता है वह इसीशक्तिके द्वारा करता है। अर्थात् बाह्यपदार्थों के साथ अवलोकन शकितका विशेष सम्बन्ध जुड़ा हुआ है।

३. मनुष्य जब उत्पन्न होता है तब सर्वथा निरालम्ब स्थितिमें होता है। यदि उस समय उसको किसी प्रकारकी बाह्य सहायता न मिले तो जन्मके साथही मृत्यु होना सम्भव है और ऐसा हो जावेतो एक शताब्दि के पश्चात् मानव जातिका नाम निशान भी न रहे। परन्तु इसके प्रतिरोधके लिये परम कारुणिक परमात्माने वात्सल्य स्नेहको पूर्वसे ही माता पिताके मस्तिष्कमें स्थापित कर रखा है। उसके द्वारा पिता पुत्र और प्रजा तथा पालयिताके सब धर्मों का पालन होरहा है। अर्थात् वात्सल्य स्नेह वा पैत्रिक धर्मका संरक्षण यह इस वृत्तिका मुख्य कार्य तथा उपयोग है। इसमें किसीको अविश्वास वा संशय नहीं हो सकता, अपितु समस्त जनसमाज इसकी सम्पुष्टि करेगा। प्रजाकी अभिवृद्धि, संरक्षा, पालन पोषण और परिरक्षणके लिये क्या-क्या करना चाहिये यह वात्सल्य वृत्ति स्वयं सम्भालती है।

४. इस विश्वमें जिसको हम सौन्दर्य कहतेहैं, इस सौन्दर्यका सब पदार्थ, द्रव्य, सामग्री, स्वभाव और गुणोंके साथ अबाधित सम्बन्ध है। मनुष्योंके अन्दर इनको यथावत् जानने समझनेकी वृत्ति विद्यमान है। जिनके द्वारा सौन्दर्यसे होता आनन्द और सुख मनुष्य जान सकते, अनुभव और वर्णन करसकते हैं और प्रसङ्गानुसार प्रयोग में लासकते हैं। सौन्दर्य प्रेमकी वृत्तिका यह खास कार्य है। उसे प्रकट करनेका खास अवयव मनुष्यके मस्तिष्कमें विद्यमान हैं।

५. मनुष्यके मस्तिष्कमें उसीके अनुसार नैतिक और धार्मिक वृत्तियां भी विद्यमान हैं। यह सिद्धान्त समग्र धार्मिक और नैतिक अन्वेषणका मूल है। सच्चा, प्रामाणिक मजबूत आधार है और यही आदि, मध्य और अन्त रूप है। मनुष्यके अन्दर इन वृत्तियोंका यथार्थ पृथक् करण करनेसे कुदरतके वा ईश्वरके और मनुष्यके समग्र सम्बन्ध यथावत् रीतिसे विदित हो जाते हैं। मनुष्य स्वभावसे ही भक्तिभाव और श्रद्धासे पूर्ण है। उसकी रचना उसी प्रकारकी बनी हुई है जैसी होनी चाहिये। जैसे-जैसे हम भक्तिभाव और श्रद्धाके समग्र कार्योंका पृथक् करण करेंगे वैसे-वैसे हमें यह विदित

होजायेगा कि भक्ति किस रीतिसे करनी होती है। किस स्थानपर, कबतक, किससमय, कितनी बार करना उचित है। हमें यह भी मालूम हो जायेगा कि भक्ति न करनेसे क्या हानि होती है, और यथार्थ भकितभावसे क्या-क्या लाभ होते हैं और कैसे उनकी प्राप्ति होती है इत्यादि समग्र विषयका यथावत् दर्शन और ज्ञान प्राप्त होता है। इतनाही नहीं किन्तु भक्तिभावके द्वाराही हमें ईश्वरके समग्रगुण, कर्म, स्वभाव और उसके साथ हमारा क्या सम्बन्ध और क्या कर्तव्य है इसका भी यथावत् स्पष्टीकरण हो जाता है।

६. इसी प्रकार मनुष्यके अन्दर आत्मनिष्ठा और आत्मबलकी वृत्तिभी विद्यमान है। मस्तिष्क शास्त्रके अनुसार जब हम इन वृत्ति के सब कार्यों, आवश्यकताओं और अनेक सम्बन्धों तथा सूचनाओं और स्वभावसे परिचित हो जाते हैं, तब हम सत्यासत्य, धर्माधर्म, पाप पुण्य, मंगल कल्याणकारक, भले या बुरे कार्यों का यथावत् विवेचन और प्रकाशन करने में समर्थ होजाते हैं। साथही हमें यह मालूम हो जाता है कि हमारा कर्तव्य क्या है, हममें तपश्चरण कितना है, क्षमा, दयाका स्वाभाविक रूप तथा कृत्रिम कर्मफल और अनेक छोटे बड़े सम्बन्धों को हम जान सकते हैं। इतनाही नहीं बल्कि अन्यान्य, शक्तियों से भी अपने-अपने गुण कर्म स्वभावके अनुसार अपने कार्यों से दूसरी वृत्तियोंको सहायता देकर अपना कार्य करनेके लिये अनेक रीतिसे संयुक्त होतेहैं। इस प्रकार आशा, अध्यात्मरति, स्वमान और अन्य अनेक वृत्तियोंके पारस्परिक कार्य सम्बन्धमें समझना।

धर्म और नीति ये मनुष्य स्वभावकी अन्य वृत्तियोंके अनुसारही आवश्यक वृत्तियां हैं। क्षुधा और तृषाकी वृत्तियोंके अनुसार मनुष्य धार्मिक वृत्तियोंके बिना भी कभी जीवित नहीं रह सकता। संसारमें जैसे प्रत्येक पदार्थके लिये बाजारकी आवश्यकता होती है उसी प्रकार धर्म स्थानों, मन्दिरों और मस्जिदों की भी मानव मात्रके लिये एक स्वाभाविक आवश्यकता होती है। मनुष्य जैसे आहार और प्राणादिको ग्रहण कर रहे हैं वैसे धर्म भावनाओंको भी सर्वदा ग्रहण किया करते हैं। मनुष्य धर्म या भक्ति भावसे अथवा श्रद्धासे रहित हो जावे ऐसी सम्भावनासे धर्मगुरुओं या धर्माचार्योंको कभी भी घबराना नहीं चाहिये। कारणकि श्रद्धा धर्म और भक्ति आदि भाव मनुष्य स्वभावमें अत्यन्त गहराई में निहित हुए हैं।

जिस प्रकार प्रेम या संगीत आदि की स्वाभाविक प्रवृत्ति मनुष्य में विद्यमान रहती है उसी प्रकार ये वृत्तियां भी मनूष्य-स्वभाव से किसी भी समय पृथक् नही की जा सकती। जिस प्रकार संसार में सूर्य, चन्द्र, वायु, जल, आदि पार्थिव पदार्थ विश्व में अपना अपना कार्य यथावत् कर रहे हैं उसी प्रकार ये अत्यन्त पवित्र और दैवी शक्तियां मनुष्य की स्वाभाविक धर्म मावना से कभी पृथक् नहीं हो सकती। जैसे प्रतिकूल, विपरीत आहार विहार के बर्तन से अनेक प्रकार के विकार, व्याधि व दुःख उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार धार्मिक वृत्तियों के अयोग्य या अनुचित प्रयोग से या अज्ञानयुक्त कार्य करने से अनेक प्रकार के भय, नुकसान, हानि हो जाने की उतनी ही सम्भावना रहती है।

भूतकाल में और वर्तमान में भी धर्म के नाम से अनेक युद्ध और लड़ाइयां इसी कारण होती रही हैं। जब तक मनुष्य सस्वाद, अच्छा सुन्दर फलों सब सौन्दर्य युवत पदार्थों और प्रदेशोंको चाहते है तब तक सत्य धर्म, विज्ञानयुक्त धर्म और उसके सर्वोत्कृष्ट सिद्धान्तों को प्राप्त करने की प्रबल ज्ञान-पिपासा से सत्य धर्म की जिज्ञासा से मनुष्य का अन्तरात्मा परिपूर्ण रहने के लिये समर्थ रहेगा। धर्म और नीति के सिद्धान्त कुदरत के अन्य नियम के अनुसारही सत्य और सुस्थिर हैं। उनकी सत्यता और सुस्थिरता इसी कारण है क्योंकि वे सब देश और सब काल में उनका स्वरूप एक जैसा रहता है। पदार्थ-विद्या के किसी भी सिद्धान्त के अनुसार वे अचल और अडिग हैं। यह बात हमें अपने मन में दृढ कर लेनी चाहिये कि जिस प्रकार गणित-विद्या, रसायन-विद्या, भूगोल-विद्या भूगर्भ-विद्या तथा खगोल-विद्या आदि विद्याओं के सिद्धान्त और नियम एक रूप, सत्य, सुस्थिर और व्यवस्थित हैं उसी प्रकार धर्म और नीति विद्या के सिद्धान्त, नियम और प्रभाव भो उतने ही सत्य, सुनिश्चित और व्यवस्थित हैं धर्म कोई बनावट की वस्तु नहीं प्रत्युत मनुष्य के स्वाभाविक नैतिक विकास का कुदरती आधार है। इसलिये धार्मिक नियमों का आचरण उसी प्रकार समझना होता है जिस प्रकार कुदरत के रसायन, गणित तथा भूस्तरविज्ञान आदि विज्ञानों की पृथक् पृथक् शाखाओं और नियमों को हम समझते हैं। धर्म और नीति ये भी अन्य विज्ञानों को तरह विज्ञान की पृथक् शाखायें हैं। इन्ही के द्वारा मनुष्य मात्र के आचार, विचार और व्यवहार आदि की योग्यता अयोग्यता की यथार्थ बिवेचना विवरण किया जाता है इनके अनुकूल व्यवहार करने से अनेक प्रकार के सुख और अनुकूलताओं की प्राप्ति होती है, और उनकी प्रतिकूलता में सब प्रकार के दुख, दर्द, संकट, भय आदि प्राप्त होते हैं।

ऐसे सत्य सिद्धान्तों की स्थापना और अस्तित्व हमारे लिये उनको व्यवहार में उतारना, यही संसार में समग्र सुखों को यथायोग्य रीति से प्राप्त करने का उपाय है। मनुष्य का जीवन अनेक दृष्टि से विचारा जा सकता है। जिसमें शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक,सामाजिक, नैतिक,आर्थिक और सांसारिक सभी शुभाशुभ प्रवृत्तियों पर नैतिक सिद्धान्तों का चक्रवर्त्ती साम्राज्य स्थापित हुआ है। इसी लिये कहा जाता है कि नैतिक सिद्धान्तों का सवत्र आधिपत्य विद्यमान है। उनके नियमों के अनुसार जीवन व्यतीत करने में प्राणीमात्र जन्म से मृत्यु पर्यन्त हर एक क्षण में बन्धे हुये हैं। नैतिक नियमों का हमारे जीवन में अकुश रहता है। यदि हम उन नियमों के अनुकूल आचार, चालचलन तथा वर्ताव रखेंगे तभी हमें सुख और शान्ति प्राप्त होना सम्भव है। यदि विरूद्ध या विपरीत आचरण रखेंगे तो हमें कभी भो सुख, शान्ति या विश्राम नहीं प्राप्त हो सकता।

संसार में भिन्न भिन्न धर्म अथवा पन्थ धर्म के नाम से सैंकड़ों सम्प्रदायों और असंख्य पन्थों में फैले हुये हैं। परन्तु सत्य सिद्धान्त तो एक ही हो सकते हैं। किन्हीं का भी परस्पर विरोध नहीं होता है। वे ही सत्य सिद्धान्त विश्व में सर्वदा सर्वतन्त्र शास्त्र के रूप में स्वीकृत हुये हैं। इन सत्य द्धान्तों में देश, काल या अवस्था के अनुसार विकार नहीं हो सकता। विश्वव्यापी कुदरती नियम सर्वथा सत्य।

अधिकार से बाहर नहीं होते, अतएव उनमें परस्पर विरोध या असत्यता होने की कभी सम्भावना नहीं होती।

डा० चक्रवर्ती का गणित तो बतलावे कि २ और २ मिलकर ४ होते हैं और गोखले का गणित २ और २=५ होते हैं बतलावे, यह नहीं हो सकता। गणित-विद्या के सब प्रोफेसर मिलकर अपनी अपनी संस्थाओं या सम्प्रदायों में गणित-विद्या के सत्य सिद्धान्तों को ही प्रकट करते हैं। उनमें वे फेर-फार नहीं कर सकते। इसी प्रकार धार्मिक और नैतिक सिद्धान्त ऐसे अटल हैं कि उनमें भी कभी फ़ेर फार नहीं हो सकता।

सत्य धर्म जैसी वस्तु इस संसार में अवश्य है और उसी की खोज के लिये विविध रीतियों और ढङ्गों से चलता हुआ मनुष्य प्रयत्नशील हो रहा है। धर्मसम्बन्धी तत्वज्ञान को प्राप्त करने की भी एक विद्या है। यदि मनुष्य-समाज सब प्रकार का पक्षपात छोड़कर न्यायवृत्तिसे धर्म बुद्धि से और सत्यको स्वीकार करने की प्रबल इच्छा रखता हो तो निस्सन्देह उसके सरल हृदय में धर्म-सम्बन्धी सत्यसिद्धान्त अवश्य ही प्रकट हो सकेंगे। जिस प्रकार गणित-सम्बन्धी सत्यसिद्धान्त गणित विद्या के प्राप्त करने से ही प्रकट होते हैं और भू गर्भ विद्या के सत्य सिद्धान्त भूगर्भ विद्या के अध्ययन और अन्वेषण से प्राप्त होते हैं उसी प्रकार नैतिक धार्मिक सत्यसिद्धान्तों का अन्वेषण उनके योग्य स्थान में यथायोग्य रीति से करने से प्राप्त हो जाते हैं। मस्तिष्क-शास्त्री दृढ़ता के साथ कहने को उद्यत हैं कि मनुष्य का मस्तिष्क में नैतिक और धार्मिक वृत्तियों को अध्ययन करने का सुनिश्चित और अपनेही रीतिका अपना स्वतन्त्र स्थान है। जिनको सत्यधर्म की ज्ञान-पिपासा हो उनसे हमारा नम्र निवेदन है कि वे मस्तिष्क शास्त्र के सत्यसिद्धान्तों और सुनिश्चित नियमों का यथार्थ रीति से अध्ययन और अनुभव करें, और सत्यको स्वीकार करने के लिये निष्पक्ष भाव से शुद्ध हृदय से तत्पर रहें, तथा मनुष्य के पवित्र मानव धर्मका सर्वत्र प्रचार करने में तत्पर रहें।

प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक है कि वह अपना शिक्षक, गुरु या धर्माचार्य बने और धर्मज्ञ होने के लिये विशेष प्रयत्न करता रहे।

अहंभाव, ममता, ममत्व, मोह, माया का विश्वके प्रत्येक स्थावर तथा जङ्गम वस्तुमात्रके साथ, स्वाभाविक सम्बन्ध है। प्रत्येक मनुष्य तथा प्राणिमात्र अपने लिए स्वयं अपने आप ही खाते पीते उठते बैठते, और चलने फिरने तथा श्वास आदि की क्रिया करते हैं, तथा सुख दुःख भोगते हैं। इस प्रकार प्राणिमात्र अपनी जीविका के लिये स्वयं प्रवृत्ति करते हैं। इसी प्रकार वृक्ष वनस्पति आदि भी स्वयं ही बढ़ते और पुष्ट होते हैं।

धर्म के विषय में भी यही नियम लागू होता है। प्रत्येक मनुष्य स्वयं ही सत्यनिष्ठ बनता है, अन्य के लिये नहीं। इसीलिये कहा जाता है कि "जो पाप करते हैं उसका फल करने वाले को ही भोगना पड़ता है" दूसरा कुछ भी कार्य मनुष्य दूसरे के द्वारा करा सकता है परन्तु धर्म कार्य के लिये ऐसी बात

नहीं है। धर्म तो स्वयं ही करना होता है। करने वाला स्वयं ही करता है और स्वयं ही उसका फल भोगता है। हम अपने लिए आवश्यक वस्तु किसी अपने सेवक से खरीदकर मंगा सकते हैं, पैसा ले सकते या दे सकते हैं, परन्तु ईश्वरभक्ति या स्तुति प्रार्थना आदि प्रत्येक मनुष्यने स्वयं अपना अन्तर आत्मा से ही करना चाहिये। किसी अपने सेवक से नहीं करा सकते और उसका दाम नहीं चुका सकते। उसमें दूसरों का प्रतिनिधित्व काम आ सकता ही नहीं। वह तो स्वयं करने की वस्तु है और उसका फल भी स्वयं भोगा जाता है। धर्म ज्ञान, धर्म ध्यान या धर्म कर्म के लिये किन्हीं आचार्य, धर्मगुरु या पैगम्बर पर श्रद्धा रखकर बैठे रहने से कार्य नहीं चलता। दूसरे पर श्रद्धा रखकर बैठे रहने से स्वर्ग-सुख की आशा रखना यह मिथ्या है।

कोई भी काम सन्तोष-कारक रीति से करना हो तो दूसरे पर विश्वास या भरोसा रखकर छोड़ देना ठीक नहीं होता। वह कार्य तभी ठीक हो सकता है जबकि स्वयं ही किया जाता हो, इसलिये सत्यधर्म और नीति के तत्वज्ञान से जिन्हें लाभ लेने की इच्छा हो उन्हें श्रद्धा, भक्ति, स्तुति, उपासना तथा दया, परोपकार और नीतिके काम स्वयं अन्तरात्मा की इच्छा से अपने आप ही करने चाहियें।

व्यक्तिगत धर्म या नीतियुक्त व्यवहार तभी विशेष महत्व रखते हुए प्रतीत होतेहैं जब हम उन्हें स्वयं करने को उद्यत होते हैं। धर्म-कार्यों को पुरोहित आदि व्यक्तियों पर छोड़ देने से कुछ लाभ नहीं होता। कोई विद्यार्थी यदि गिनने का हिसाब अपने अध्यापक को सौंप देवे तो उससे उस विद्यार्थी को कुछ लाभ नहीं होता, किन्तु उसका लाभ उसे तभी प्राप्त होता है जब वह स्वयं उसका अभ्यास करता है। इसी प्रकार धर्म, नीति, या तत्व-ज्ञान के सम्बन्ध में हमें समझ लेना चाहिये कि जब तक इनके सिद्धांतों को हम अपने जीवन में चरितार्थ नहीं करते, तब तक केवल ऋषि, मुनियों के या महात्माओं के विचार पढ़ लेने मात्र से हम उनके लाभ को प्राप्त नहीं हो सकते।

एक ही उद्देश्य से कार्य करने वाले शारीरिक और मानसिक सभी अवयव सयुक्त रहकर कार्य करेंगे तभी वे यथोचित कार्य करके लाभ प्राप्त कर सकेंगे। यह पारस्परिक सहयोग से काम करने का नियम शरीर के अवयवों में बड़ी सुन्दर रीति से देखने में आता है। वक्ष:स्थल में हृदय और फेफड़े सहयोग से काम कर रहे हैं। सामने मुख पर विद्यमान अवयव नासिका और मुख नेत्र और दर्शन-तन्तु ये भी सहयोग से काम करते हुये मालूम हो रहे हैं। हाथ, पैर की सब सन्धियाँ, मस्तिष्क के सम्पूर्ण, अवयव और शक्तियां इसी सहयोग के सिद्धान्त की पुष्टि दे रहे हैं। इसी प्रकार नैतिक और बुद्धि शक्तियां एक दूसरे के चारों ओर आये हुये सहयोग के सिद्धान्त को प्रकट कर रहे हैं। इनकी पारस्परिक अनुकूलता को प्रकट करने वाली इनकी स्थिति एक विचार, एक सम्मति, एक सिद्धान्त से कार्य करना। इसी के लिये स्थान-विशेष के साथ रचना-विशेष को प्रकट कर रही है। इसी लिये हम कह सकते हैं कि ईश्वर, धर्म तथा नीति सम्बन्धी तत्वज्ञान का जन्म इन शक्तियों के संयुक्त कार्य से हुआ है और इसीलिए मनुष्य-स्वभाव को इनकी हमेशा आवश्यकता है।

तर्क-शक्ति अथवा समझ-शक्ति ये सब प्रकार के सत्य की खोज करने वाली, सबसे अधिक प्रबल शक्ति है। बालकोंको माता पिता की आज्ञा माननी चाहिए यह सम्बन्धी यथार्थ ज्ञान बालकों को समझाकर, उनकी बुद्धि शक्ति को उत्तेजित कर, उद्देश्य पूर्वक देनेसे आज्ञाकारी; कर्तव्यनिष्ठ बनानेका और शिष्टाचार सिखाने का कार्य सरल होता है।

मस्तिष्क में मानस-शक्तियों के नियमानुसार उच्च प्रकार की शक्तियां राज्य करने वाली है। धार्मिक और नैतिक शक्तियां मस्तिष्क से सब में ऊपर के स्थान में विद्यमान हैं इसलिए स्थान के कारण उनका सर्वोत्तम अधिकार है। इसीलिये बुद्धि शक्तियों का स्थान भी मस्तिष्क में सबसे आगे परमात्मा ने बनाया है। इससे स्पष्ट होता है कि ये दोनों प्रकार की वृत्तियां मिल कर मनुष्य की जीवनयात्रा रूप रथ को जिसमें इन्द्रिय रूपी घोड़े लगे हुए हैं सुव्यवस्थितता के साथ, धर्मपूर्वक चलाने की आवश्यकता है। प्रायः धार्मिक सूत्रों को मनुष्य रट लेते हैं और उससे वे समझते हैं कि वे पूर्ण धार्मिक मनुष्य हैं, परन्तु केवल रटने मात्र से वे धर्म और नीति के सिद्धान्तों का पूर्ण लाभ नहीं उठा सकते जब तक कि समझ और विचार-शक्ति के द्वारा अपने दैनिक आचरण में प्रयोग में नहीं लाते।

प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है कि धर्म और नीति के नियमों का विशेष स्वाध्याय करे कि जिससे वह उन्हें अपने जीवन में डालकर उसे पवित्र बना सके। संसार में समाज में रहते हुए अपने बालबच्चों, पति पत्नी, कुटुम्ब तथा घर की वस्तुओं से हमारा किसी न किसी प्रकार का सम्बन्ध रहता है। वह सम्बन्ध धर्म और नीति के सिद्धान्तों को अपनी आतमा में सुदृढ़ करने के लिये होता है यह बात हमें अपने जीवन को उच्च और परम उन्नत बनाने के लिए समझ लेनी चाहिए। इसके लिए 'सत्य-धर्म की खोज हमें स्वयं करनी चाहिये और अपना जीवन धर्ममय बनाना चाहियें। इसीके लिये पहिले हमने कहा था कि मनुष्य को अपने आप ही अपना धर्म-गुरु होने की अत्यन्त आवश्यकता है। जैसे किसी शिक्षणालय के शिक्षक अपना कर्तव्य-पालन करते हैं उसी प्रकार अपने अनुभवों से तैयार हुये धर्म-गुरु भी धर्म-शिक्षण का कर्त्तव्य पूरा करने के लिये उद्यत होने चाहियें।

मनुष्यकी सब वृत्तियोंमें नैतिक और धार्मिक वृत्तियां सबसे अधिक उत्कृष्ट हैं और मस्तिष्कमें उनका स्थानभी सबसे अधिक उत्कृष्ट है।

जैसे प्रत्येक वस्तुमें उत्तम, मध्यम, और हीन तीन अवस्थायें होती हैं ऐसेही मनुष्यकी मानसिक शक्तियोंमें भी उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ तीन अवस्थायें होती हैं। जैसे जैसे मस्तिष्कका अवयव ऊपरकी ओर विशेष चढ़ता है वैसे वैसे उसका कार्य भी उत्तरोत्तर महत्व वाला होता है। हरएक प्रकारके फल, अनाज, बीज, पुष्प आदि जो वृक्षों की अन्तिम सर्वोत्कृष्ट दशा और परिणाम है वह हमेशा ऊपर के स्थान में ही देखने में आता है।

वृक्षका स्कन्ध, मूल, आदि जिनके काम उद्देश्य की पूर्ति के लिये उपयोगी और आवश्यक हैं वैसे ही पदार्थोंके आधार-भूत अवयव अपने-अपने स्थानमें अपना-अपना महत्व रखते हैं। वे आधार-भूत

पदार्थ अपने महत्वके रूपमें चरणके स्थानमें विद्यमान होते हैं, परन्तु सबसे उत्तम अङ्ग शरीरमें मस्तिष्क है और वह सबसे उत्कृष्ट स्थानमें विराजमान है। यह कुदरत की अपनी स्वाभाविक भाषा है।

शरीरमें प्रत्येक अवयवको उसकी योग्यताके अनुसार ही उस-उस स्थानमें उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ आसनपर बैठाया गया है। यह कुदरतका स्वाभाविक क्रम है। मस्तिष्कके अन्दर भी अवयवोंको उसी क्रमसे यथार्थ रीतिसे स्थापित किया हुआ है। यह विशेष आश्चर्यजनक है। जिस अवयवका कार्य जितने अंशमें उत्तम है उतने ही अंशमें मस्तिष्कमें उसका आसन भी उत्तम स्थानपर स्वाभाविक रीतिसे स्थापित हुआ है।

मनुष्यके अन्दरकी पशुवृत्तियोंका कार्य भी उपयोगी है तथापि उत्कर्षक वृत्तियों और नैतिक वृत्तियोंके मुकाबलेमें उनका स्थान उच्च नहीं माना जाता। इसलिये पशुवृत्तियोंको वैसे ही स्थानमें स्थापित करनेका प्रबन्ध हुआ है। परन्तु धार्मिक और नैतिक शक्तियां विश्वमें सबसे अधिक उत्कृष्ट पदका उपभोग करती हैं। इसलिये मस्तिष्कके अन्दरभी उनका स्थान सबसे श्रेष्ठ स्थानमें ही स्थापित करनेमें आया हुआ है। उपरोक्त सब स्पष्टीकरणसे यह परिणाम निकलता है कि मनुष्यको अपना जीवन धार्मिक नैतिक वृत्तियोंके आधारपर रहकर व्यतीत करना चाहिये। यही संसारका नियम है कि सब देशकी प्रजायें उच्चतम न्यायालयके आधीन रहकर उसका न्याय (फैसला) माना ही करती हैं। इसी प्रकार मनुष्य-समाज में जो मनुष्य धर्मात्मा और नीतिनिपुण होते हैं वे ही सबसे अधिक मानके पात्र हुआ करते हैं। संसारमें शूरवीर सैनिकोंको, चतुर शिल्पकारोंको, वार्ता-विनोद करने वालोंको और राममूर्ति, सैण्डो आदि पहलवानोंको, नाट्य करने वाले खिलाड़ी नटोंको उनके शारीरिक बल और शौर्यके लिये हम मान देते हैं। राजा और प्रजाको उनकी पदवीके कारण और शिल्पकारों, यान्त्रिकों और अन्य वैज्ञानिक अन्वेषकोंको उनके गुण और शक्तियोंके अनुसार मान दिया करते हैं। परन्तु धार्मिक और नैतिक उत्कृष्टताको रखने वाले व्यक्तियों को अन्य सभी व्यक्तियों से विशेष और अधिक मान मिलता है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती, श्री गोखले, श्री सुरेन्द्रनाथ बेनरजी, एवं वर्तमानकाल के महात्मा गांधी जी, तथा श्री दादाभाई नौरोज जी, श्री तिलक महाराज आदि नरवीरोंने उन्हीं उत्कृष्ट वृत्तियों के कारण जन-समाजमें उत्कृष्ट पदवी प्राप्तकी है। श्री रामचन्द्र जी और श्री कृष्णचन्द्र जी सहस्रों वर्षों से इन्हीं धार्मिक और नैतिक वृत्तियोंके बलके कारण इस समय तक पूजाके पात्र चले आ रहे हैं। यद्यपि अन्य अनेक मनुष्योंको बुद्धिबल और आर्थिक-बलमें विशेषता रखते हुए भी उनके मुकाबले में वैसे सम्मान के पात्र नहीं हुए हैं।

हमारे अड़ोस, पड़ोसमें वे ही स्त्री या पुरुष मानके योग्य समझे जाते हैं जो आचार-विचार और बर्ताव में नैतिक, धार्मिक और पवित्र जीवन वाले होते हैं।

इसलिये सत्यासत्य धर्मका यथार्थ विवेचन तथा विवरण होनेकी सम्पूर्ण आवश्यकता है क्योंकि संसारमें इस अज्ञानके कारण धर्मके नाम पर अधर्मका स्वीकार किया जाता है और उससे विपरीत परिणाम आ जाता है। सत्य धर्मकी जिज्ञासा, यह मनुष्य की स्वाभाविकवृत्ति है, उसी स्वाभाविक वृत्तिके अनुसार मस्तिष्क शास्त्र का यह उद्देश्य हो जाता है कि सत्य-धर्मका अन्वेषण किया जाये।

बाह्य जो धर्म देखनेमें आता है उसका मूल कारण मनुष्यके आत्मामें बीज रूपमें से विद्यमान है। मनुष्यके आत्मामें उसके संस्कार रहते हैं। उसके संस्कारोंके अनुसार उसका व्यवहार दृष्टिगोचर हुआ करता है। धर्मके नामसे उसकी प्रवृत्ति, आचार, विचार और सभ्यता दिखाई पड़ती है। संसारमें जो कुछ अच्छा काम देखने में आता है वह मनुष्यके आत्मामें विद्यमान शुभ-संस्कारोंके आचरणका परिणाम है। एक दु:खी मनुष्यको दूसरा मनुष्य अपने अन्दर विद्यमान दयाकी शक्तिके कारण सहायता करता है। दयाकी देवी भूखेको अन्न, प्यासे को जल, नङ्गे को वस्त्र और रोगी को औषध प्रदान करती है। अशक्तको आश्रय देकर उठाते हैं, बैठाते हैं और उसकी सेवा शुश्रूषा करते हैं, इस प्रकार दूसरेकी सहायता करेनेको हम धर्म कहते हैं और इसी प्रकार परोपकारके तथा कृपा, सहायता, भलाई के काम करने वालेको हम धर्मी कहते हैं। किसी अशक्त (कमजोर) मनुष्यको दूसरे कुबुद्धि बलवान मनुष्य मार पीट करते हों, या उसका खून करनेको तैयार हुये हों तो मनुष्य के अन्दर बसी हुई दयाकी देवी साथ शूरता, स्वमान, उद्योग मिलकर उसकी रक्षा करती है। इसी प्रकार सत्य, समानता, सौजन्य, स्नेह, भक्ति, आशा, आत्मनिष्ठा, अध्यात्मरीति, कला, क्षमा, औदार्य, स्वमान, यश, दाम्पत्य, वात्सल्य, न्याय, अहिंसा, ममताका त्याग आदि वृत्तियोंके काम और अन्य सब वृत्तियोंके मर्यादित काम, वे सब धर्म कहलाते हें, और वे हमारे आत्मामें ही स्थित हैं इसीलिये बाह्य-संसार में धर्मका अस्तित्व दिखाई पड़ता है अतएव धर्म और नीति ये मनुष्य से किसी भी समय पृथक् नहीं हो सकते। धर्म आत्माके साथ अनादि और अनन्तकाल से जुड़ा हुआ है। सत्यधर्म और सत्यसिद्धान्त एक ही हैं।

जगत्में जो भिन्नता दीखती है वह मनुष्यकी आत्मिक शक्तियोंकी न्यूनाधिकता के कारण है। आत्मिक शक्तियों के विकासके अनुसार मनुष्य आचरण करते हैं। इस प्रकार बुद्धि तथा धार्मिक, नैतिक गुणोंसे रहित असंस्कारी अथवा कुसंस्कारी मनुष्योंके व्यवहारसे न्याय-युक्त सत्यधर्मके स्वरूपमें बाधा नहीं आती अर्थात् सत्य धर्मके तत्वमें कोई फर्क नहीं पड़ता। उसकी योग्यता तथा महत्ता कम नहीं हो जाती है। धर्म तो एक रूप, एक रस, अखण्ड, अविभाजित सर्वदाके लिये एक जैसा ही रहता है।

मनुष्यकी सम्पूर्ण वृत्तियाँ यथायोग्य कार्य करती हुई यथावत् सन्तोष प्राप्त कराया करती हैं। इसी के परिणाममें सबके कर्त्ता, भोक्ता और ज्ञाता मन या आत्माको यथावत् सुख, सन्तोष और आनन्द देना यही इस समग्र रचनाका महान्-मङ्गलमय और महत्वपूर्ण हेतु है, ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है। मनुष्यके अन्दर ऐसी अनेक वृत्तियां होनेकी आवश्यकता इसी कारण से हुई है, किन्तु जैसे संगीत-स्वर या गणित आदि शक्तियों के यथावत् उपयोगसे मनुष्य सुख और अनुकूलता प्राप्त करते हैं उसी प्रकार

नैतिक शक्तियोंके उपयोगसे भी स्वयं आनन्द सुख सन्तोष प्राप्त करना और अन्यको सुखी करना यही इस ईश्वरीय रचनाका महान् उद्देश्य प्रत्यक्ष हो रहा है। इसके बाद हम क्रमशः मनुष्य-स्वभावकी यह सर्वोत्कृष्ट वृत्तियोंके कार्यों का सविस्तर निरीक्षण और यथावत् अनुभव करानेका प्रयास करेंगे।

नैतिक धार्मिक वृत्तियोंके इस विभागको पांच उपविभागों में विभक्त किया हुआ है। उनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं:—

१—भक्तिभाव व पूज्यवृत्ति।
२—अध्यात्म-रति
३—आशा
४—आत्मनिष्ठा
५—दया, परोपकार

इनके अन्दर समग्र धर्मके मुख्यसिद्धान्तोंका साररूपमें वर्णन आजाता है। अब हम प्रत्येक विषय का पृथक्-पृथक् वर्णन देकर हरएक विषयको विशेष स्पष्ट प्रकट करनेका यथायोग्य प्रयत्न करेंगे।

कितने ही मनुष्य बिना समझे कहा करते हैं कि धर्म हमें नहीं चाहिये, धर्म को हमें आवश्यकता नहीं है। परन्तु वे नहीं जानते कि धर्म क्या वस्तु है।

धर्म वस्तुतः अपने आपको जीवित रखने की आवश्यक प्रवृत्तियों को करते हुये सुख प्राप्ति के लिये आवश्यक उचित आचरण करना वह धर्म है। सब प्रवृत्तियां दूसरी मनुष्यों की सहायता से ही हुआ करती हैं, अत एव हम अपने कार्य के लिये दूसरों की सहायता चाहा करते हैं और दूसरों को उनके कार्य के लिये सहायता दिया करते हैं। इस प्रकार अपने शरीर आदि के लिये और दूसरों के शरीर आदि के लिए सहायक होना यह हमारा कर्तव्य रूप धर्म होता है। हम समझते हैं कि ससार में हर एक मनुष्य को चाहे वह किसी भी अवस्था में हो उसे धर्म की आवश्यकता रहती है और इस धर्म के विना हम थोड़े समय भी जीवित नही रह सकते। परस्पर कर्तव्यों का पालन करना सत्य, न्याय, नीति, नियम के विना नहीं होसकता। इस प्रकार अपने शरीर को चलाने के लिए भी हमें धर्म की अपेक्षा रहती है। हवा, पानी, आहार और आराम तथा रक्षण ये मनुष्य को लेनेही पड़तेहैं और वह प्रतिदिनकी खास आवश्यक वस्तुओंमें भी एक दूसरोंकी सहायता लेनी ही पडती है। अतएव हमें जीवित रहनेके लिए और सुख, सन्तोष, शान्ति और आनन्द-प्राप्ति के लिए व्यष्टि और समष्टि भाव से संयुक्त होकर अपने कार्य सत्य और न्याय-पूर्वक होने की अत्यन्त आवश्यकताहै और यह सत्य धर्म है।

वर्तमान सरकार कहती है कि राज्य-व्यवस्था में धर्म की आवश्यकता नहीं है किन्तु ये महानुभाव थोड़ी सी बुद्धि से विचार करेंगे तो इन्हे स्पष्ट अनुभव हो जायेगा कि ये जो राज्य-व्यवस्था कर रहे हैं वह धर्म ही है। सरकार भी तो यह चाहती है कि राज्य-व्यवस्था राज्य-प्रबन्ध सत्य, न्याय और नीति से होना चाहिए। यह समझलेना चाहिए कि सत्य, न्याय और नीतिपूर्वक व्यवहार यही धर्म है। धर्म सब के लिए समान सदृश और एक रूप है। अत एव सरकार ने धर्म की व्याख्या और उसके तत्व को समझ

कर ऐसा कहना चाहिये कि राज्यतन्त्र में सबको एक समान रीति से अनुकूल हो वे ऐसे अर्थात् सत्य, सद्भावना, शिष्टाचार, समानता, और प्रामणिकता से वर्तने की आवश्यकता है। परन्तु धर्म के नाम पर असत्य, अनुचित; बनावटी, कल्पित, पाखण्ड और अज्ञानता-युक्त मत-मतान्तर जो चल रहे हैं वे वास्तविक नहीं हैं उनका नाम धर्म नहीं है। इसलिये सब मनुष्यों को सत्य, न्याय, सदाचार और धार्मिक नैतिक होना ही चाहिये, ऐसा उच्च आदेश सरकार जनता को देने के लिये सर्वदा उद्यत रहे। ऐसी हमारी आशा है।

अब धर्म के स्वरूप को विभाग वार समझाते हैं।

नं० १८ भक्ति भाव अथवा पूज्य वृत्ति—

ईश्वराराधना, पूजा, वृद्धों और पवित्र वस्तुओं के लिये पूज्यभाव, श्रद्धा, प्रभुपरायणता, शारीरिक और मानसिक तपस्या, संयम, संध्योपासना, प्राणायाम, योगाभ्यास, नम्रता, विनीत भाव, मानवृत्ति, कृतज्ञता, आत्मनिष्ठा, सत्य-परायणता, ईश्वर पर विश्वास, कर्म-फल और पुनर्जन्म आदि भाव इस भक्तिभाव की वृत्ति के अन्दर भक्तिभावकी वृत्ति द्वारा ग्रहण करने में आते हैं।

पूर्ण भक्ति भाव

इस वृत्तिके अतियोग या मिथ्या योग से जड़ पूजा, धर्मान्धता, मताग्रह, और धार्मिक बहम (सन्देह, भ्रम, भ्रान्ति, अन्देसा, अविश्वास, वितर्क, अन्धविश्वास) बढ़ते हैं। न्यूनता के कारण नास्तिकता, और निरीश्वरवादिता के भाव प्रकट होते हैं।

सृष्टिनियन्ता परम पिता परमात्मा के प्रति भक्तिभाव की इस श्रेष्ठ और महान् वृत्ति से अधिक दूसरी कोई भी श्रेष्ठ वृत्ति समस्त विश्व में अस्तित्व नहीं रखती है। मनुष्य के आत्मा की भक्तिभाव की वृत्ति ही परमात्मा के प्रति भक्तिभाव रखते हैं।

स्थान—इस वृत्तिके अवयवका स्थान मस्तकके (शिरके) ऊपरके भागके मध्यप्रदेश में विद्यमान है। इस वृत्तिके अति विकासके परिणामसे मस्तिष्क के मध्य प्रदेशका वह स्थानवाला भाग पूर्णतः ऊपर बढ़ा रहता है। जब इस वृत्तिकी कमी हो तब इस प्रदेश का वह भाग नीचा दबा हुआ दिखता है।

इस वृत्तिके स्थानका अन्वेषण सुप्रसिद्ध डाक्टर गोलने किया था। इसका इतिहास इस प्रकार वर्णित करते हैं।

"All my ten brothers, sisters and myself received the same education,but our faculties and tendencies were very different. One brother from infancy had a strong tendency to devotion, his play things were church vases which he sculptured himself copes and sur peiceswhich he made out of paper. He prayed God and said masses all day when obliged to miss church service, and passed the time in ornamenting and guilding a crucific of wood my father designed him for commerce, for which he had an invencible oversion because he said it compelled him to lie. At twenty-three' having given up all hope of fitting himself by study for a priest he lost all patience, ran away from home and turned a hermit. Five years after he took holy orders and till his death lived in the exercies of devotion and penance.

"I observed in school that certain pupils were in different to religious instruction, while others were very eager for it. This preinclination was born in them and could not be attributed to example or education and rest of them devoted themselves in a religious life contrary to parental wishes, I visited the churches of all sects to inspect the heads of those who prayed with the utmost fervor, and were most absorbed in their contemplations. Observed that the fervent devotees were almost always bold, and that their heads often rose gradually to the top, precisely the form of head which had first struck me in my brother. I visited the monastaries and observed the monks and collected exact information as to their devtional character. Those who performed the function of pre chers and confessors had this organ much larger than their butlers cooks and servants. All those who were especially devout had heads greatly raised towards the crowns, and that the portraits of Zealous religious eccles iastics had the same formation."

"It is thus shown by the states of both disease and health thar the sense of existance of a supreme being, and the propensity to religious worship are fundamental qualities of the human race and conseqnently must beproduced by a separate faculty of the mind and organ of the brain. D. Gall

डा० ज्योर्ज कोम्ब भी कहते हैं कि–" This faculty is source of naurral religion and of that tendency to worship supreme Being which manifests itself in almost every trsbe of men yet discovered.

"It is large in the portraits of constantine, Aurelins Charles I of England. It if also very large in the heads of philosophers and poets who are distinguished for piety as in Newton, Milton and Klopstock, but deficient in spinoza, who professed atheism" George Comb.

अर्थात् मेरे दशों भाइयों, बहिनों तथा मैंनेभी एकसीही शिक्षा पाई थी परन्तु हमारी शक्तियां और वृत्तियां अति भिन्न भिन्न थीं। एक भाईको बचपनसे ही प्रबल भक्तिभाव था, यह गिरजाघरके पात्रोंको अपने आप स्वयं घड़कर तैयार करता था। कोप्स (Copes) और अपने बनाये कागजके सफेद भब्बे उसके खिलौने थे। वह ईश्वर प्रार्थना करता था। जिस दिन देवपूजा न कर सका होगा, सारा दिन वह घटना लोगों को कहा करता था। और लकड़ीका क्रोस बनाकर उसको सुशोभित करनेमें सारा समयका व्यय करता था। मेरे पिताने उसे जिसके लिये वह अधिक अप्रसन्न था वैसे व्यापारमें उसे लगा दिया। किन्तु वह कहता था कि उसे वे बिन परिश्रमी बना देते हैं। तेईस वर्षकी आयुमें पादरी बननेके लिये स्वाध्याय करनेकी कोई आशा न रहनेपर वह सब मायाको त्यागकर साधु होकर घर छोड़के चला गया। पाँच साल पश्चात् उसने पवित्र आज्ञाओंको लिया और मरण तक भक्ति-पूर्वक उनका पालन किया।

मैंने शालामें देखा था कि कितने ही विद्यार्थी धार्मिक सूचनाओं के प्रति लापरवाह रहते थे। और दूसरे कितनेही विद्यार्थी उन सूचनाओंके लिये जिज्ञासु होते थे। ऐ पूर्वग्रह तथा स्वाभाविक गुण उनमें जन्मसे ही थे। जिससे वे दूसरा दृष्टान्त या शिक्षणके अनुरूप न हो सके। जब दूसरोंने माता पिताकी इच्छाके विरुद्ध धार्मिक जीवन भक्तिसे बिताया। जो मनुष्य पूर्ण भक्तिकी भावनासे प्रार्थना करते थे तथा जो अपनी मान्यताओं में संलग्न रहते थे उनके मस्तिष्ककी तलाशी करनेके लिए मैंने सब संप्रदायके मन्दिर देखे। मैंने देखाकि जैसे मेरे भाईके मैंने पहिले देखा हुआ सिरकी आकृति अनुसारही जिस लोगों सम्पूर्ण भक्त था उनके मस्तिष्कका सिरके मध्यप्रदेशका स्थान ऊपर ऊँचा बढ़ता फैलता विस्तृत रूपमें बना हुआ दीखता है। वे लोग हिम्मतवान् शूर और साहसी थे।

मैंने पादरियों के निवासस्थानको देखा और पादरियोंकी छानबीनकी और उनके भक्तिपूर्ण चरित्रके सम्बन्ध में सतर्क, उचित अनुभव प्राप्त किये। इनमें जो उपदेशक होते थे, सम्मेलनों के योजक होते थे उनमें यह अवयव उनके पाक-शास्त्री तथा सेवकों की अपेक्षा विस्तृत होते थे। जो वस्तुतः सच्चे धार्मिक और पवित्र थे उन सबके मस्तक-मुकुट बहुत ही ऊचे ऊपर बढ़ हुए होते थे। उसी प्रकार वे उत्साही, उद्योगी, धार्मिक वृत्ति वाले पादरियों के चित्र-शिल्पों में भी वैसी ही आकृतियाँ होती थीं। दोनों दृष्टियों से व्याधि और स्वास्थ्य की परिस्थिति के अनुसार यही निर्णय होता है कि सर्वोच्च-तत्व के अस्तित्व की समझ तथा धार्मिक पूजा की भावना मानव-जाति की मूलभूत सम्पत्ति है। अर्थात् वह मनुष्य की अलग ही एक शक्ति मस्तक के अवयव से उत्पन्न हुई होनी चाहिये।

(डा० गोल)

डा० ज्योर्जकोम्ब भी कहते हैं कि—

आज तक आविष्कृत लगभग सभी मानव परम्पराओं में स्वयं स्थित सर्वोच्चतत्वकी पूजा करनेकी वृत्ति और स्वाभाविक धर्मका मूल यह शक्ति है।

"कोन्स्टैनटाइन, इङ्गलैण्ड का औरेलैन्स चार्ल्स पहिला की प्रतिभाओं में इस वृत्ति का स्थान भरा हुआ परिपूर्ण है। न्यूटन, मिलटन, और क्लोपस्टोक जैसे भक्तिभाव के लिए प्रसिद्ध तत्वज्ञों और कवियों के मस्तिष्कों में भी यह स्थान भरा हुआ है। किन्तु नास्तिकताके प्रचार करने वाले स्पाईनोजामें इस स्थानकी कमी थी। इसके मस्तिष्क में भक्तिभाव का स्थान नीचा दबा हुआ था।

(डा० ज्योर्जकोम्ब)

अन्धश्रद्धा, धर्म की अज्ञानता, धर्म का पागलपन, ये इस वृत्तिके उग्रताके परिणाम हैं। ऐसे मनुष्य हमारे देखनेमें अधिक आते हैं, कि जैसे दूसरे अन्य किसी विषयमें वे विशेष ज्ञानी नहीं हैं तो भी धर्मके प्रति पागलपन तो उनमें अवश्य देखा जाता है। इससे यह प्रमाणित होता है कि भक्तिभाव या धर्म-भावना का विचित्र अलग ही अवयव मस्तिष्कके अन्दर स्थापित हुआ है और वह स्वतन्त्रतासे अपना कार्य करता है।

तुर्की लोग हमेशा बहुत ही धर्मपालक, धर्मके प्रति पागल, अति श्रद्धालु और धर्माभिमानी होते हैं। इसलिये उनके शिरमें इस वृत्ति वाला प्रदेश विशेष बढ़ा हुआ देखनेमें आता है। क्रिश्चियनों की तुलनामें इन लोगोंमें धर्मभावना प्रायः दश गुना अधिक होती है। नमाजका समय होते ही तत्क्षण सब कामकाज छोड़कर तैयार हो जाते हैं और अपने धर्मपुस्तकको इसी रीति से इलाहमी हुक्म मानकर उसकी आज्ञा को बरतनेमें अतिदृढ़ आग्रही होते हैं।

परमात्माने धर्मभावको मनुष्यके अन्दर अति गहरे प्रदेशमें स्थापित किया है। संसारमें ऐसी एक भी जाति, जगली या सुधरी हुई प्रजा नहीं मिलेगी कि जो किसी प्रकार के देव, खुदा या ईश्वर की अदृश्य शक्ति को न मानती हो। मानव जाति के अस्तित्व के साथ ही इस वृत्ति का और ईश्वर सम्बन्धी मान्यता का बीजारोपण हुआ हुआ है। मनुष्य-रचित मनुष्य का बनाया हुआ या कल्पित वृत्तियों का यह कार्य नहीं है।

इस धर्म वृत्ति के भाव के साथ ही मनुष्य-समाज के अन्दर अनेक प्रकार की धर्म-क्रियायें, संस्कार, धार्मिक-कर्त्तव्य नित्य, नैमित्तिक और साधारण धर्म कर्म जैसे कि सन्ध्या, स्तुति, प्रार्थना, उपासना, प्राणायाम, योगाभ्यास, नम्रता, विनीतभाव, मानवृत्ति, आभार की भावना, आशा, आत्मनिष्ठा, अध्यात्मरति, दया, परोपकार, क्षमा, सत्यपरायणता, श्रद्धा, भक्तिभाव, ईश्वर पर विश्वास, कर्मफल और पुनर्जन्म आदि, अनेक धार्मिक और नैतिकभाव, या कर्त्तव्य जन्म पाते हैं।

ईश्वरके अस्तित्वमें विश्वास आस्तिकता और ईश्वर भक्ति परायणताको मनुष्य के अन्दरकी इस भक्तिभावकी स्वभाविक प्रवृत्तिके अस्तित्वके लिए जन्म मिला है। पूज्यभाव यह मनुष्यमात्रकी स्वभाविक वृत्तिहै और उस वृत्तिका न्यूनाधिक विकासके प्रमाणमें तथा अन्यान्य शक्तियोंके संयोगसे मनुष्य, वृक्ष, पर्ण, पत्थर, कबर, पादुका, टोपी, नदी, पर्वत, कन्दरा, वस्त्र इत्यादि जड पदार्थोंको या राम, कृष्णके नामसे ईश्वरकी अमुक प्रकारकी जड मूर्ति बनाकर उसकी भक्ति, स्तुति, प्रार्थना, उपासना, करने लगे

हैं। ग्राम्य देवता और क्षेत्रपाल, ग्रह, उपग्रह, तथा गणपति, मारुति, और भैरव आदि देवोंकी मान्यता और भी अप्सरा और परियों तथा इन्द्रादि देवो इत्यादिकी मान्यता। यवन और ईसाईओंकी परियों, फिरस्ताओं और सेतान आदिकी कल्पना, तथा जिन, भूत, पिशाच आदिकी मान्यता भी इस वृत्तिके अतियोग और बुद्धि शक्तिकी न्यूनताके कारणसेही है।

पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण, उपर या नीचे भूमिके किसी भी प्रदेशमें हम जावें या किसी भी धर्मको स्वीकार करें तो हम मनुष्योंके अन्दर धार्मिक भावोंकी भावना, इच्छा, मति, रुचि सर्वतः एक समान ही हमको दिखाई देगी। डॉक्टर गॉल कहते हैं कि—

How should men so different in all other respects yet agree on the existance and worship of a supreme being unless their creator had implanted it within their hearts impressed it into the organism of the human race ?"

अर्थात मनुष्य स्वभावके अन्दरहीं जो इस धर्मकी वृत्तिका भाव स्वाभाविक रीतिसे ही विद्यमान न होतातो पुरुषोत्तम परमात्मा जैसे तत्वका अस्तित्व और भक्ति आदि उपास्य भावोका स्वीकार करनेमें भिन्न भिन्न देश और जातिके भिन्न भिन्न मान्यतावाले लोग इस एकही विषयमें सम्पूर्ण रीति से एक मत किसी प्रकार हो सकते ? डो० गोल०

डो० ओ० एस० फाउलर कहतेहैं कि:—

Phremo—magnetism still further attests that the shecific organ is divine worship. In every single instance every magnetized fachlty xpreses itself impromptly incomparably more perfactly than any actor could possibly represent it, and in thousand of experiments I never magnetized worship wiihout also seeing the subject clasp and raise the hands in the attitude of worship assume a devotional aspect and tone of voice and express a desire to pray or else break forth in the worship of God enraptured in contemplating him. Thus is the worshipping of this faculty established by phrenology beyond all dispute. No proposition in geometry is more fully proved than this" O.S. Fowler.

Auther of human science and phrenology P.784.

मानस विद्युतशास्त्र अथवा प्राण विनिमय द्वाराभी इस वृत्तिका कार्य ईश्वरआराधना ही है ऐसा अच्छि रीतिसे निश्चित हुआ है। ऐसे प्रत्येक प्रसंगमें प्रत्येक शक्तिका कार्य एक एक्टर या नाट्यकार प्रकट कर सकेंगे उसकी अपेक्षा भी सम्पूर्णता से और यथावत् रूपमें प्राण विनिमय द्वारा दिखाये जा सकते हैं। प्राण विनिमयसे सहस्रों अनुभव मिले हैं उस समयपर जब जब मैंने इस भक्तिभावके स्थान पर प्रवाहको प्रवाहित करके परीक्षा की तब तब हमेशा मैंने अपने विषेयोंको दोनों हाथ जोड़कर ऊंचाकरके नम्र प्रार्थना की स्थिति में पूर्ण श्रद्धायुक्त वर्तन और वाणी से प्रार्थना करता था अथवा ईश्वरके ध्यानमें लीन होकर तन्मय बना हुआ देखा है। एक भी प्रयोग ऐसा बनावसे रहित देखनेमें नहीं आया जिसमें असफलता हुई हो।

मस्तिष्क शास्त्रके अनुसार इस श्रद्धा और भक्तिभाव का स्थान और कार्य इतना अधिक सुनिश्चित और निर्विवाद रूप में प्रमाणित हुआ है जितनेकि भूमितिके सिद्धान्त स्पष्ट प्रमाणित होते हैं।

किसी भी देशमें और किसीभी स्थानमें आप जाकर देखें। सर्वत्र किसी भी रूप में ईश्वरपूजन, आराधन या स्तुति, प्रार्थना, उपासना, संध्या, नमस्कार नमाज, सेवा, आदि आपको मालूम पड़ेंगे, विश्वकी समग्र प्रजाओं में इस वृत्तिका कार्य स्वभाविक रीतिसे सर्वत्र एक समान ही देखने में आता है। जहाँ देखें वहाँ किसीको किसी प्रकारका धर्मतो उपस्थित है ही। इतना ही नहीं किन्तु प्रत्येक प्रजा अपने अपने धर्मको दूसरे सबकी अपेक्षा सबसे मुख्य और उच्च स्थान देती है।

अधिकांश मनुष्य धनको बहुत चाहते हैं। तो भी धर्मको उससे भी अधिक कीमती समझते हैं। इस विश्वके महान् ब्रह्मड को रचना देखकर उसके रचयिताके प्रति आश्चर्य, भय, भक्तिभाव और प्रेम उत्पन्न न हुआ हो ऐसा एक भी मनुष्य इस पृथ्वी तल ऊपर मिलना कठिन है, अशकय है। अति उच्च पर्वतके शिखर, नीचे के भव्य मैदान (वृक्ष पर्वत रहित भूमि) क्षेत्र अनेक प्रकार की सुन्दर रम्य पुष्पलतायें और पुष्पफलादिसे झुकेहुए मनोहर, मनमोहक भव्य उपवन, वाटिका, भूमिपर फैलेहुये हरितक सुशोभित-रमणीय कुदरती गलीचा देखकर किसका मन आमोदसे नहीं भरजाता? सायं प्रातः समयके सुवर्ण और चाँदोके रंगका रंगरंगीला बादल, उदय कालीन सूर्यकी उषा. सन्ध्या समयका रक्त सूर्य, दूसरो ओर पूर्वाकाशमें वही समय धीरे धीरे उदय होता शीतल रश्मि-प्रकाश युक्त रजनीकान्त-चंद्र और भव्य नक्षत्र मंडल रूप अनेक रत्नजडित और हीरेसे मण्ढे हुए दिव्याभरणको धारणकर अपने स्वामीको मिलने मन्द मन्द हस्तिके अनुसार प्रयाण करती रम्य रजनी (रात्री) का रमणीय स्वरूप देखकर किसका मन मुग्ध नहीं होता? कुदरती लीला का दिव्यगान करता, रमणीय गर्वयुक्त होकर बहताहुआ न्यागराका जलप्रपात, अत्यन्त वेगयुक्त विद्युत वह्निकी दिव्य दीप्ति, मेघमंडल के गाम्भीर्य युक्त गर्जन आदि देखकर कौन आश्चर्यान्वित नहीं होता? सूसूशब्दयुक्त हुंकार करता मेघमंडलको बिखेरकर फैलाता, विद्युतकोभी झपाटेके साथ आह्वान करता "अपां सखा" मरुतदेव-वायु, वर्षा ऋतुको प्रवृत्त करनेवाला वायुके आघातसे अस्थिर बना हुआ, अनन्त लहरकी हिलोरे उठाता महान महोदधि महासागरभी अन्य प्रकारसेही कुदरतकी रचना और सृष्टिकर्ताकी स्तुति करने में उद्यत रहताहै।

व्याघ्र, सिंह, सर्प, बिच्छू जैसे क्रूर, हिंसक और जहरीला प्राणी, गाय, भैंसे, बकरे, मेण्ढे, स्वान, घोड़े, (अश्व) जैसे उपयोगी पशु अद्भुत प्रकारके पक्षिसमूह भ्रमरोंके गुंजारों (मधु मक्षिकाओंके रहने का घर बनानेकी कण्ठा और मिष्ट मधु मयूरोंका नृत्य, केकिन, कोयलके केकारव, अनेकविध रंगाकार और गुणवती वनस्पति, रंग बेरंगी पुष्पोंके मनोरंजक परागयुक्त परिमल (सुगन्ध) यह सब कुदरती दृश्य जिनकी गिनती हो सके नहीं जिसका पूरा वर्णन और गुण कथनभी हो नहीं सकता, ऐसी सब रचना के पीछे विद्यमान उसके रचयिताकी बुद्धिमत्ता, सर्वज्ञता, सौन्दर्य, आत्मनिष्ठा और प्रेमके प्रति भक्तिभावसे हमारा शिरझुक जाताहै। कठोरसे कठोर दिलके मनुष्यको भी रसमय और आनन्दयुक्त बना देतेहै।

कुदरतके रम्य और भव्य विश्व व्यापि बगीचा–उपवनके अन्दरके ऐसे अनेक अद्भुत, भव्य और मनमोहक रचना व्यवस्था देखकर नीति और धर्मयुक्त तथा बुद्धिशाली मनुष्योंके मस्तक तो कुदरतकी इस आश्चर्यजनक लीला (रचना) और समृद्धि देखकर सचमुच भक्ति, श्रद्धा, आनन्द, और उत्साह आदि अनेक विशुद्ध भावोंसे परमात्माके प्रति आकर्षित होना यह बिल्कुल स्वाभाविक है। ऐसे संयोगोंमें मनुष्यके हृदयमें परमात्माके अपार, अनंत कार्यो की स्तुति, प्रशंसा या प्रेम भक्तिके महान भाव सहज ही में, जरा-जरासी बातमें स्फुरना स्मरणमें हो आते हैं। और कुदरत द्वारा कुदरतके रचयिता सम्बन्धी ज्ञान प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील रहते हैं। इतना ही नहीं परन्तु विश्वात्मा, विश्वंभर और विश्वकर्मा ईश्वरके कार्यो का निरीक्षण करके अत्यन्त आनन्द पाते हैं। किन्तु जगतमें कोई एक किसी कोने में पड़ा हुआ नास्तिक मिल जावे वह शायद भक्तिभाव या श्रद्धाकी अमूल्य भावनासे रहितहो अथवा ईश्वरके जैसी सर्व शक्तिमान सत्ताके अस्तित्वके सम्बन्धमें ही शकाशील हो तो इससे ऐसा सिद्ध नहीं होता है कि ईश्वर या भक्तिभाव जैसी वस्तु जगतमें हैही नहीं ? अथवा उनकी जरूरत ही नहीं ? क्या विश्व में दस, पचास उल्लू, घुग्घू मिलकर कहने लगेंकि "प्रकाश" जैसी कोई वस्तुही विश्वमें नहीं है और लोग जिस सूर्यकी अपार प्रशंसा, करते हैं वह तो व्यर्थ बकवाद है। इससे क्या लोग अपनी आंखें बन्द करके बैठे रहेंगे ? यह क्या सम्भव है ?

संसारके आरंभसे ही आज दिन तकके इतिहासमें कोई एक मनुष्यने भी पूर्ण भक्ति और श्रद्धायुक्त हृदयसे, सच्चे अन्तःकरण से ईश्वरकी स्तुति, प्रार्थना या उपासना की है तो उस मनुष्यने अपने इस भक्तिभावके अवयवका उपयोग किया ही होगा। ऐसा कहना ही पड़ता है।

मनुष्य हमेशा परम पूज्य परमात्माके प्रति भक्तिभाव रखते हैं यह सचमुच अवश्य स्वाभाविक है। कारण उनसे कोई उतम, सर्वशक्तिमान, ज्ञान गुणयुक्त श्रेष्ठ शक्तिवाला समग्र विश्व के अन्दर है ही नहीं।

श्रेष्ठ पदार्थके प्रति आकर्षित होना, दिल लगाना या मान वृत्ति अथवा भक्ति भाव या पूज्यभाव उत्पन्न होना ये सब नैतिक इसी रीतिसे धार्मिक नियमानुसार ही है। और यह सब अनेक चिन्हों द्वारा साफ प्रकट होते हैं।

जगतके अन्दर बड़ी बड़ी मस्जिदों, मकरबाओ, मिनाराओ, आकाशके साथ बातें करते शिखर वाले ईसाइयोंके देवल, हिन्दुओंके जगन्नाथ, रामेश्वर, द्वारका और काशी विश्वेश्वर आदि स्थानोंके महान मन्दिर और तीर्थ स्थान ये सब क्या दर्शाते हैं ? उनके अन्दरके घंटा, शंख या आरतिओंक सूर, शब्द (छन्दोंके टुकड़े जो मूर्ति के पास सायंकालको पढ़े जाते हैं) मुल्लाओंके पुकार तथा अमुक प्रकारके भक्तिभाव और श्रद्धा पूर्ण भजनोंका सुन्दर. मधुर स्वर किसका गान कर रहे हैं ? यह तुम समझते हो ? मन्दिरमें, मस्जिदमें, पर्वतके शिखर पर गांधर्वो और गुणीजन एक तार होकर किसके गुणोंका यशोगानकर रहे हैं वह तुम जानते हो ? स्नेहयुक्त बन्धनोंसे निर्माण हुआ गृहस्थाश्रमकी अन्दर यज्ञ समयपर माता, पिता, पत्नी भाई, पुत्र और पुत्री आदि मिलकर पवित्र भावसे अनेक प्रकारकी विशुद्ध

प्रार्थनायें, शिव संकल्पके मन्त्र और शान्ति पाठ किसके प्रति कर रहे हैं ? यह तुम विचार सकते हो ? इस सब क्या एकही महान विश्व नियन्ताप्रति प्रेम और श्रद्धायुक्त भक्तिभावके चिन्ह नहीं है ? इससे विशेष स्पष्ट और विश्वव्यापक दूसरे किस प्रमाणकी जरूरत है ? ये सब मनुष्यके आत्मा को स्वाभाविक भक्तिभाव पूर्ण प्रवृत्तियों के कार्यके ही प्रमाण हैं मनुष्य उसके बिना जीता जागता रह नहीं सकता या सुखी नहीं हो सकता । जैसे बुद्धि या तर्क शक्ति बिना उनका कोई कार्य नहीं हो सकता ऐसे धार्मिक किसी भी प्रकारकी प्रवृत्ति इस भक्तिभाव की वृत्तिके अभावमें यथार्थ रीतिसे हो नहीं सकती । इसलिये इस भक्तिभाव और श्रद्धापद वृत्तिके लिये मस्तिष्कके अन्दर अनोखा अवयव है, यह स्पष्ट है। कारण अन्य प्रत्येक वृत्तिया शक्तिके अवयव अपना अपना नियत कार्य निर्दोषता से करनेमें सम्पूर्ण रीति से लग रहे हैं । अर्थात्—

१. क्षुधावृत्तिकी सब शक्तियां और उसे सहायता करने वाले दूसरे अवयव खोराकको प्राप्त कर, पाचनकर अपनी इच्छा तृप्त करने और जिह्वाके स्वादको अन्वेषण पीछेही रुक रहते हैं । जिस से उसे परमात्माकी भक्ति करनेका समय नहीं है ।

२. वैश्यवृत्ति (**Acquisition**) या धनाभिलाषकी वृत्ति तो अपना सब उपायों और पूरा परिश्रम से धन एकत्र करनेमें और किसी भी प्रकार जहाँ चाहे वहाँसे प्राप्तकर उसको संग्रह कर रखनेकी महा हलचल, घबराहटमें ही ग्रसित होकर मनुष्यकी अनेक शक्तियोंके कार्यको रोक बैठी है, तथापि अपनी अभिलाषा ऊंचाभवन निर्माण करनेके लिए पूर्णतया शक्तिमान नहीं हो सकी । तो उसे अन्य कार्यके लिये विचार करनेका मौका कहींसे मिले ।

३. शौर्य और शारीरिक बलकी शक्ति अनुकूल संयोगके अन्वेषणमें और अनेक प्रतिकूल संयोग को दूर करने, हटानेमें लग रहे हैं । उसेभी अपना नियत कार्य अतिरिक्त अन्य कार्य करनेके लिये अपना कार्यसे अवकाश नहीं है ।

४. वात्सल्यस्नेह—प्रजाका पालन, पोषण, रक्षण आदि कार्य करनेमें प्रेमपूर्वक जुड़ रहा है जिससे उसे परमात्माकी भक्ति करनेको समय नहीं है ।

५. सापचेती या सावध वृत्तिको अनेक प्रकारके भय और कष्टसे बचनेके प्रयत्नों में तथा दूसरी प्रवृत्तियोंको सफल बनानेके लिए अगमचेती (सावधानी) का उपयोगकर उसको सहायभूत होनेसे पहले समझपूर्वक उसकी तैयारी करनेमें ही लगे रहनेका अपना कर्तव्य (स्वयं लगनमें) उसको भक्तिभाव का धर्म पालनकी तो फुर्सत ही कहाँ से होगी ।

६. सौन्दर्यप्रेम—चारों ओरकी कुदरतकी व्यापक कलाकी सब रम्यतामें और सौन्दर्य युक्त स्वरूप देखने में ही तल्लीन हो रहा है । कुदरत के अनेक रम्य प्रदेशों को देखकर वह तो आश्चर्यसे विस्मित और व्याकुल ही बन गया है । ऐसी स्थितिमें कुदरतकी भव्यता, रम्यता और सौन्दर्यकी मुक्त कण्ठसे स्तुति, प्रशंसा करनेकी उसेतो धीरजही नहीं और शान्ति भी नहीं है ।

७. तर्कशक्ति, मननशक्ति और तुलना शक्तियोंको तो विश्वके असंख्य पदार्थों को निरीक्षण करना, उन्होंका मुकाबलाकर मूल कारणको खोज करनेके महान प्रयत्नों और सत्यकी विवेचना-भाष्य पीछेही करनी पड़ती महा प्रवृत्तियां मेंसे मुक्त होकर भक्तिभाव को ग्रहण करनेका सौभाग्य प्राप्त नहीं होता। बल्कि सुप्रीमकोर्ट के न्यायाधीश अनुसार सारा दिन और रात मुकदमा, निर्णय घडनेमें (प्रमाण, दाखला, मूल तैयार करनेमें) रजूआतों सुननेमें, शान्त चित्तसे न्याय करने और फैसला (निर्णय) देनेमें ही क्यों चला जाताहै उसको खबर ही नहीं। सकल विश्वका मूल कारण, निमित्त कारण, उद्देश्य, नियम, अर्थ तथा परमात्माका अन्वेषण करनेमें वह समर्थ है यह सत्य है। किन्तु भक्ति भावसे उनको प्रणाम करनेकी तो उनसे भी फुरसत नहीं है। कारण अपना अधिकारका नियत कार्य करनेमें ही वे एक चित्तसे लगे रहे हैं।

८. दया, परोपकार, अनुकरण, अवलोकन और दूसरी सब शक्तियाँ अपना-अपना नियत कार्य करनेमें हमेशा ऊपर प्रमाणेही तत्पर हो रही हैं। अपना नियत कार्य करनेका ही उनका स्वभाव है। इससे अन्य कोई शक्तिको भक्तिभाव प्रदर्शित करनेका अवकाश ही नहीं रहता यह सुस्पष्ट ही है।

९. इसलिये भक्तिभाव या श्रद्धाका अवयवका मनुष्यके मस्तिष्कमें खास पृथक अस्तित्व है और अपना नियत कार्य करता है। यह स्पष्ट और स्वाभाविक है।

१०. मनुष्यके अन्दर प्रत्येक शक्तिके अवयवके लिये उचित कार्य नियुक्त करनेमें आया हुआ है और वह शक्ति द्वारा वह अपना नियत कार्यही करने समर्थ हो सकते हैं, अन्य नहीं। यह एक कुदरती सत्य सिद्धान्त है।

११. आँख, नाक, कान, त्वचा तथा जिह्वा आदि इन्द्रियों अपना-अपना दर्शन, गन्ध, श्रवण, स्पर्श और स्वाद आदि नियत कार्यही करनेमें समर्थ हैं। यह उपरोक्त विषयों का सबसे प्रबल प्रमाण है।

१२. देखनेका काम नाकसे या श्वास और गन्ध लेनेका काम आंखसे कभी नहीं हो सकता। तदनुसार स्वाद ग्रहण करनेका कार्य आंख, नाक या कान आदि किसीभी इन्द्रिय किंचित् भी कर सकनेमें समर्थ नहीं होती। उसमें स्वाध्याय, शिक्षण या प्रयत्नसे भी उनकी अन्यथा प्रवृत्ति नहीं हो सकती।

१३. इसीके अनुसार इस श्रद्धा शक्तिके कार्यके लिए भी शिक्षण, स्वाध्याय तथा अमुक प्रकारके संस्कारोंसे समूचा नवीनही जातिका अवयव बनाकर स्थापित नहीं होसकता। या भक्तिभावको समूचा नूतन रूपमें जन्म नहीं दिया जा सकता। जो ऐसे होसकता तो अन्धेको भी दीखता और बहिरेको या गूंगे अवाकको भी सुनता और बुला सकता अथवा खानपान और पाचन क्रियाको अभ्यास द्वारा अन्य मार्गसे प्रवृत्ति करसकते। किन्तु ऐसा किसी भी समय नहीं हो सकता।

१४. मनुष्यके अन्दर इस भक्तिभाव के अवयवका खास स्वाभाविक रीतिसे ही श्वास प्रश्वासके अनुसारही अस्तित्व है। इससे उनको अभ्यास या शिक्षण द्वारा विकसित करके यथार्थ मार्ग पर लेजा सकते है। उनकी विश्व व्यापी सत्ता और मनुष्य समाज पर इतनी बड़ी अधिक असर होनेका वही

सबसे सबल कारण है। किन्तु यह भक्तिभाव कोई शिक्षण या अभ्याससे समूचा नवीन उत्पन्न होकर विश्वासमें इतनी बडी विश्व व्यापी सत्ता फैला सकेंगे ऐसी कल्पना मात्र असत्य और आधार सिवाय का ही है।

१५. मनुष्यकी भिन्न भिन्न भाषाकी अन्दरभी भक्तिभाव प्रदर्शक और ईश्वर वाचक शब्दोंके अस्तित्वका इस वृत्तिही मूल कारण है। भक्तिभाव या श्रद्धा शक्तिकी एक महान शाखा-कार्यक्षेत्रका कार्य यहांसे शुरू (आरम्भ) होता है।

तब फिरसे प्रश्न यह उपस्थित होते हैं कि—

१. मनुष्यकी अन्दर भक्तिभावकी यह वृत्ति कहांसे आई है ?

२. सर्वावस्थामें और सर्व कालमें जहां जहाँ मनुष्य जाते हैं वहां वहां धर्म स्थान और मन्दिर तथा मस्जिद रूप धर्म कर्मके लिए स्थान बनानेकी वृत्ति कैसे उद्भूत है ?

३. बहुतही लोभी, लालची, धनाभिलाषी और व्यवहार कुशल व्यापारिओं के जो एक एक पाईके लिए बहुत ही सावधान होते हैं और ब्याज या अन्य प्रकारके लाभ (फायदा) बिना जिन्हों किसीभी प्रकारकी धनादिकी लेनदेन करनेके लिए प्रेरक नहीं होते ऐसे व्यवहार कुशल व्यापारिओंके खजानेमें से भी धनादिकी संख्याबन्ध थैलियों धर्मार्थ निकालनेका कार्य कौन कर रहा है ?

४. धर्मस्थान, धर्मगुरू, धर्मपुस्तक, धर्मशाला, धर्मसभा, धर्मसंगीत, धार्मिकभजन, धर्मकर्म, धर्मसंकटें और धर्मधतिंग के अनेक झगड़े तथा धर्मके लिए वाद विवादकी महान विस्तृत धार्मिक सेनाएं सब कहां से पैदा हुई।

५. ये क्या इन सबका जन्म शिक्षासे हुआ है ? नहीं। शिक्षण से समग्र वृक्षका एक पत्ता या टहनी अन्य रास्ते ले सकते हैं परन्तु नवीन टहनी या नवीन शाखातो क्या किन्तु एक पर्णभी नया पैदा नहीं हो सकता ?

उपर उपस्थित हुआ सब प्रश्नों का एकही और यही जवाब है कि हमारे शरीरका संचालन करने वाला आत्मारुप चेतन अमुक गुणयुक्त है। जिन गुणोंमें से भक्तिभाव अथवा श्रद्धा यही भी आत्माका एक पवित्र गुण है। आत्माके दूसरे गुण डा० गोलके पुरुषार्थ से हमें ज्ञात हुएहैं। उनका यथार्थ विवरण अनुक्रमसे इस पुस्तक में दिया गयाहै। उसीपर पाठक गण पुरता ध्यान देकर अपना प्रत्यक्ष विश्वास, सन्तोष अपने आप कर देखें ऐसी हमारी उनसे नम्र प्रार्थना है।

जिनमें पूर्ण भक्तिभाव होंता है, वे—

१. अपना अन्तरात्मा में सर्वान्तिर्यामी परमात्माको सर्वोत्क्रिष्ट समझते हैं और उसको सबसे उत्कृष्ट भक्तिभावसे सर्वदा पूज्य मानते है।

२. ऐसे मनुष्योंमें उत्कृष्ट प्रकारका भक्तिभाव और ईश्वर प्रति उत्कृष्ट प्रकारका प्रेम भाव होता है।

३. धर्म कर्तव्योंमें और ईश्वर उपासनामें ऐसे मनुष्य अत्यन्त अनुपम आनन्द और अपार सुख अनुभव करते हैं।

४. समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत्।
न शक्यते वर्णयितुं तदा गिरा स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते॥

उपनिषदके उपरोक्त महान् वाक्योंका यथार्थ आनन्द ऐसे महात्माही अनुभव करते हैं।

५. ऐसे मनुष्य सर्वदा ईश्वर आज्ञानुकूल और धर्मके पवित्र नियमानुसार ही अपनी तमाम प्रवृत्तियां करते हैं।

६. हमेशा उनका हृदय भक्तिभावसे भरा हुआ परिपूर्ण होता है। और जीवनभी विशुद्ध, निर्मल, निष्पाप, सरल मणि (रत्न) तुल्य तेजस्वि होता है।

७. ईश्वरीय आज्ञाको सर्वथा शिरसावन्द्य समझते है। और तदनुकूल सर्वदा अपना आचार रखते हैं।

८. ऐसे मनुष्योंमें पूज्यभाव और वयोवृद्ध तथा पूज्य मनुष्यो के प्रति अनुपम मानवृत्ति होती है।

९. ऐसे मनुष्योंका सम्पूर्ण सुख, सर्वोत्तम आनन्द और सर्व अभिलाषा ईश्वर आधीनता में ही प्रविष्ट रहते हैं।

१०. विश्वकी तमाम प्रवृत्तियां में धर्मको अग्र स्थान देते हैं।

११. अपने धर्मस्थान में नियमित समय पर जानेमें इसी रीतिसे अन्य धर्म व्रत पालनमें हमेशा उचित रीतिसे बर्ताव करते हैं। उसीके अनुसारका वर्तनमें अपना कर्तव्य समझते हैं। और उसमें उनको आनन्द आता है।

१२. आन्तरीय या बाह्य भ्रष्टतासे वे कांपते हैं।

१३. प्रचलित और प्राचीन मनाते संस्कारों, धर्म प्रवृत्तियाँ, धार्मिक लोकाचार और प्राचीन मनुष्यों, ऋषि मुनियों, धर्माचार्यों या पीर पेगम्बरोंको अत्यन्त मान और आदरकी भावनासे देखते हैं और उनके विचारोंको सम्पूर्ण मान देकर आधीन रहकर बर्ताव करते हैं।

१४. ऐसे विचारके (**Arthodox**) मनुष्य शुद्ध, सनातन धर्मके दृढ़ अनुयायी बन रहते हैं। स्वतन्त्र विचारसे धर्म विशुद्धि करने शक्तिमान नहीं हो सकते। परन्तु **Oldis gold** ऐसा मानकर सर्वथा वर्तते हैं। इस वृत्तिके अन्यान्य वृत्तियोंके साथ संयुक्त कार्यसे मनुष्यका वर्तन अनेक प्रकारके देखनेमें आते हैं।

१५. स्वमानकी न्यूनता और सावधानता तथा आत्मनिष्ठाकी प्रबलताके लिये तथा ज्ञान तन्तुओंकी निर्बल या रोगी हालतमें मनुष्य अपने आपको अयोग्य, अत्यन्त अधम, पापीष्ट और ईश्वरके गुनेगार (अपराधी) समझकर "मैं पापात्मा हूं, प्रतिदिन पाप कर्म करता हूं इसलिए अरे ईश्वर! मेरा सर्व पाप ले लेओ" ऐसे अधम, अवमान्य युक्त आत्माको दबाकर कुचलने वाले, पद दलित करने वाले

मनोमर्दक भावोंसे दबे रहते हैं। प्रत्येक बातमें ईश्वरका अत्यन्त डर रखते हैं। शोकाकुल, चिन्तित, सन्तप्त हृदयके होकर फिरते हैं। ऐसी वृत्तिके परिणामसे उनके मुख ऊपर वैराग्य-उदासीनता और शोक दुःख प्रदर्शित रेखा पड़ी रहती है। ऐसी वृत्ति के दीर्घ काल तक टिकाव से शुभ परिणाम नहीं आता। किन्तु नुकसान होना सम्भव है। इसलिये ऐसी वृत्ति वाले मनुष्यों ने बल और बुद्धि का उपयोग करना चाहिये।

१६. आशा और अध्यात्मरति के आधिकयसे ईश्वरको अन्तर्यामी समझ पूर्ण भक्ति भावसे भजते हैं। और प्रतिदिन उसके परिचयमें ही रहनेका तथा उसके गुणोंका अनुकरण करना सीखते हैं।

१७. औदार्य भावनाकी प्रबलतासे (**Sublimity**) ईश्वरको सर्व शक्तिमान, सर्वज्ञ, अनादि, अनन्त, अपार, अगत, अपरिमित, अगम्य, अजर, अमर, नित्य, शुद्ध, बुद्ध और मुक्त स्वभाव युक्त समझकर उच्च प्रकारके अनुपम भक्तिभावसे सेवते हैं।

१८. समझशक्ति या तर्क शक्तियाँके प्राबल्यसे वे साथ अन्य सब मानस शक्तियां साम्यावस्था में हो तो ईश्वरके गुण, कर्म, स्वभाव, लक्षण और उसके सत्य स्वरुप को तथा उसकी विश्व व्यवस्थाको यथावत् समझकर ग्रहण कर सकते हैं। और भी उसपर वादविवाद करनेमें या तत्सम्बन्धी तत्वावमन्थन करने में बहुतही आनन्द मानते हैं।

१९. वात्सल्य भावकी अधिकतासे उसको पिता पुत्रवत्, पूज्य पूज्यक और सेव्य सेवक भावसे सन्मान समझते हैं और पूजते हैं।

२०. दया या परोपकार वृत्तिके प्राबल्यसे उसकी अपार करुणा के लिये प्राण देने को तैयार हो करुणा सागर, दयानिधि आदि विशेषणों से उनकी प्रार्थना करते हैं।

२१. न्याय और तर्क शक्तिके प्राबल्यसे न्यायकारी, कर्म फलदाता—कर्मानुसार जीवको गति देने वाला, सृष्टिके नियामक तथा व्यवस्थापक जानकर उपासना करते हैं। इस रीति से सर्व कारणों के कारण अकारण "कारणं कारणानाम्" समझकर सेवा शुश्रूषा करते हैं।

२२. कार्य कौशल्य और कारणात्मकताकी अधिकतासे सृष्टिकर्ता, विधाता, विश्वकर्मा, सृष्टिसर्जनहार, उत्पत्ति, स्थिति और लय करनेवाला तथा पालन पोषणकर्ता, खगोल, भूगोलादि के सृष्टा और हिरण्यगर्भ आदि नामों और गुणों से युक्त समझकर उसकी उपासना करते हैं।

२३. मैत्रीभावकी पूर्णताके लिए जाहिर संस्थाओंमें या पारिवारिक उपासनामें अन्तःकरण पूर्वक उपस्थित रह हार्दिक स्नेह और मैत्री भावसे मित्र वरुण आदि नामों और गुणयुक्त परमात्माको परम सहायक; सखा समझकर उपासना करते हैं और मित्र वर्ग तथा स्नेही सम्बन्धियों के कल्याण के लिए भी प्रार्थनोपासना करते हैं। इसी रीति से उनके हितमें अपना वर्ताव रखते हैं। पारिवारिक उपासना में अधिक आनन्द और सुख प्राप्त करते हैं।

२४. स्थैय या धैर्य वृत्तिकी न्यूनताके लिये इधर उधर घूमता, अनेक विचारों से विक्षिप्त होता है। और स्तुति प्रार्थनाके विषय पर एकाग्र ध्यान रखनेमें तकलीफका अनुभव करते हैं। इसलिये संक्षिप्त प्रार्थना या सरल सन्ध्या विशेष पसन्द करते हैं। लम्बे उपदेश या भजनोंसे थक जाता है, अरुचि होती है। एक ही विषय को ग्रहण नहीं करता परन्तु भिन्न भिन्न अनेक विषयोंकी ओर मनके भक्तिभावोंको दर्शाते हैं।

२५. शरीरबल या शौर्य शक्तिकी अधिकतासे झगड़ालू या संवादप्रिय होते हैं। इसलिये धार्मिक सिद्धान्तों को उत्सुकतासे तथा अन्तरात्मासे चिपटरह बचाव करते हैं। परन्तु जो शौर्य साथ विनाशक शक्ति या दृढ़ता अधिक प्रमाणमें होती है तो विरुद्ध धर्मिके साथ बहुतही कठोरता और सख्ताईका उपयोग करते हैं।

२६. स्वमान और दृढ़ता जो उसकी साथ योग्य प्रमाण में संयुक्त होती है तो धर्म सम्बन्धी प्रत्येक बात में बहुतही चोकस (सतर्क, सावधान) आग्रही और अतिशय स्वधर्माभिमानी होते हैं अन्ध श्रद्धासे प्रत्येक धार्मिक सिद्धान्त संस्कारों अथवा प्रथा (रिवाज) को इसी रीति से भक्तिभाव या पूजाके प्रकार को चिपट रहते हैं और जिन अपने मतसे विरुद्ध पड़ते होंगे उन्होंका प्रतिकार करते हैं।

२७. निग्रह और उत्कर्षाभिलाष की अधिकता और आत्म निष्ठाकी सामान्य हालत में मात्र धर्म ढोंगी, धर्मध्वजी ब्राह्याडम्बरयुक्त, मलिन हृदयके ठाठ बाठ वाले (वैष्नवपंथ जैसे) अमरीधर्म को बहार से स्वीकार करते हैं। (तिलक चन्दन और पूजाके ठाठबाठके प्रत्येक बाह्याडम्बर पर अधिक ध्यान देते हैं। किन्तु धार्मिक कर्तव्य करनेकी परवाह कम रखते हैं। न्यायकी परवाह नहीं करते, धार्मिक, नैतिक बन्धनोंको नाश करनेमें डर नहीं रखते। अन्तरमें सदा स्वार्था लोलुप, लंपट दांमिक और बक वृत्तिवाले होते हैं तो भी धर्मके बहानेका आश्रय लेते हैं। इतनाही नहीं परन्तु ईश्वरीय भावों या भक्ति अथवा धर्म बल अपने में नहीं होते तो भी भक्त होनेका या ईश्वर तुल्य होनेका हक अधिकार कर बैठते हैं बैष्नव धर्मकी और आचार्यों की स्थिति करीब ऐसी है। ऐसे पुरुष देव दर्शन और पूजाके ठाठबाठ में हमेशा दिखावेके खातिर तत्परता दिखाते हैं। किन्तु देवस्थान या मन्दिर छोड़कर जैसे बाहिर आजाते हैं तुरन्त उनके आचार विचार या वर्ताव में धर्मका अंश भी मालूम नहीं पड़ता। महर्षि मनु महाराज ऐसे पुरुषों को धर्म ध्वजी की उपमा देकर वाणीसे भी ऐसे मनुष्यका सत्कार नहीं करना ऐसा कहते हैं।

२८. तर्क, तुलना अतएव समझ शक्ति और आत्मनिष्ठा की प्रबलतासे ईश्वरीय ब्रह्मविद्या सम्बन्धी या तत्त्वज्ञानका स्वाध्याय करने में अति आनन्दका अनुभव करते हैं और शौक रखते हैं। तथा ईश्वरके गुण कर्मस्वभाव और लक्षणों सम्बन्धी, ईश्वरी नियमों उसके सृष्टि रचनादि कार्यों सम्बन्धी ज्ञान विज्ञान प्राप्ति के लिये हमेशा आतुर (उत्सुक) रहते हैं और प्रयत्न करते हैं। कुदरतके अन्दर सर्वत्र बसी हुई, फैली हुई भव्यता व्यापकता और सर्वज्ञता आदि ईश्वरीय अनंत गुणोंका मनन और निदिध्यासन कर भक्ति भावसे प्रेम पूर्वक हृदय से परमात्मा को पूज्य समझते हैं। अन्य धर्म सम्बन्धी यथार्थ तत्त्वों को समझकर सत्य सिद्धान्तोंको स्वीकार कर तदानुसार वर्ताव करते हैं। ऐसे मनुष्य

निष्पक्ष न्याय युक्त सत्य धर्मका स्वीकार करने या अन्वेषण करने के अति उत्सुक होते हैं। और सच्चे धर्मात्मा बन किसी भी जाति, वंश, देश या धर्म को प्रभा, प्रतिष्ठा देनेवाले साबित होते हैं। ऐसे मनुष्य उपदेशका महत् कार्य करनेके लिये सम्पूर्ण योग्य होते है। परन्तु ऐसे मनुष्यों की संख्या हमेशा बहुत कम होती हैं।

२६. भक्तिभाव की साथ दया और आत्मदिष्टाकी प्रबलता से अच्छे उत्तम, भले और प्रमाणिक कार्यों के करने में श्रद्धा, भक्ति और धार्मिक वृत्तिका अच्छा उपयोग करते हैं। धार्मिक क्रियाओं या संस्कारों को करते हुए तो भो धार्मिक कर्तव्यों ऐसे मनुष्यों बहुत ही कीमती समझते हैं।

सामान्य–जिनमें भक्तिभाव की वृत्ति सामान्य अथवा साधारण प्रमाण में होती है। वह ईश्वर आराधना करते हैं परन्तु अपनी प्रबल वृत्ति को प्रमुख स्थान देते हैं।

१. मैत्रीभाव, दया, आत्मनिष्ठा आदिके प्रबल प्रभावसे प्रभावित मनुष्य धार्मिक स्थलोंमें या धर्म सभाओं में जानेको विशेष पसन्द करते हैं कारणके वहाँ मित्र और स्नेही वर्ग को मिल सकते हैं। दयापात्र, गरीब, लूले लंगड़े अपंगको यथा शक्ति देनेका, उनको देखनेका, वहाँ प्रसंग मिलते हैं। जिससे दयाकी भावना को तृप्त करते हैं। सामान्य रीतिसे ऐसे मनुष्य, मनुष्यमात्र की भलाई या सबकी सुखी हालतके लिये प्रार्थना करते हैं।

२. ऐसे मनुष्य खास कार्य या कारण बिना धर्म सभा में नियमित उपस्थित नहीं रहते। मनन शक्तिकी प्रबलतासे तर्क और समझ शक्ति से जो प्रमाणित होते हैं इतनी ही भावना से भक्तिभावकी ओर आकर्षित होते हैं। और 'अच्छा वह मेरा' ऐसा समझकर वर्ताव करते हैं किन्तु 'मेरा वही अच्छा' ऐसा आग्रह नहीं रखते। परोपकार और भलाईके कामों को ही चाहना करते हैं।

न्यून—जिनमें भक्तिभाव की वृत्ति न्यून प्रमाण में होती है उनमें भक्तिभाव या धर्मकी भावना आदि कुच्छ देखने में नहीं आती। ऐसे मनुष्योंमें माता, पिता, शिक्षक, धर्म गुरुओं या पूज्यजन के प्रति मान या पूज्य भावकी भावना नहीं होती वे विशुद्ध अन्तःकरणके नहीं होते। धर्म, कर्म या क्रियाके लिये आवश्यकता नहीं मानते। धार्मीक क्रिया कदाचित दिखावा के लिए करते होंगे, परन्तु इस सम्बन्धी भावना उनके दिलमें नहीं होती। ऐसे मनुष्योंमें आत्मबल की न्यूनता होगी। धर्मसभा में देवयोग से ही उपस्थित रहते हैं तो भी उनकी मतलब सब अलग ही होती है। ऐसे मनुष्यों को अपना आत्मा विरुद्ध वर्तनेमें या परमात्मा की आज्ञा का ध्वंस करनेका भय नहीं होता। तद्वत् धर्म सम्बन्धी शंकाओं या प्रश्नोंके निर्णय साथ कुच्छ सम्बन्ध होगा वैसा उनको दीखता नहीं। ऐसा होने से ऐसे मनुष्य धर्म हीन, किसी भी प्रकार के सिद्धान्त में रुचि न होकर नास्तिक वृत्तिके ही होते हैं। ऐसी दशा में खुश स्वभाव या हास्य वृत्ति और अनुकरण शक्तिकी प्रबलता संयुक्त होती है तो धार्मिक पुरुषों और स्त्रियों की नकल (प्रतिरूप) और हंसी मसखरी, मजाक करनेके विशेष स्वभाव वाले होते हैं विशेषमें शरीरबल संहारक वृत्ति और स्वमान आदि शक्तियों का प्राबल्य हो तो धर्म सम्बन्धी प्रत्येक विषयमें विरुद्ध विचार दर्शाते हैं। और "धर्म यह तो पाखण्ड है" "एक प्रकारका धनिंग (झूठा दिखावा) है"

"लूच्चे और ठग लोगों के धनकमानेका यह रास्ता है" निर्दोष और निष्पाप मनुष्यों को फंदेमें फंसाने का एक प्रकारजाल फन्दा है" इत्यादि विचार धर्म और धार्मिक संस्थाओं तथा मनुष्योंके सम्बन्धमें रखते हैं।

भक्तिभाव या श्रद्धाकी न्यूनता और प्रेम या कामवासना की अधिकता तथा मान उत्कर्षकी प्रबल इच्छा और सौन्दर्य के प्रबल शौकके लिये धर्म मन्दिरों या धर्म स्थानमें या धर्म सभाओंमें जाते हैं परन्तु ऐसा करनेमें उनका उद्देश्य सुन्दर स्त्रियोंको देखकर नेत्र तृप्त करने का तथा प्रशंसा और मान प्राप्ति का ही होता है। ईश्वरका प्रेम या भक्तिभाव अथवा धार्मिक श्रद्धाका बूंद भी उनके हृदयमें नहीं होती। ऐसे पुरुष रोनकदार दिखाऊ और ठाठ-बाठ वाले मन्दिरोंके जिनमें नाचगान, नाट्य और नृत्य करने वाली स्त्रियोंके गान या संगीत तथा होली (फालगुणमासकी पूनमके दिन सायं कालके समय पर एक स्थानमें बड़ी आग जगानेकी क्रिया) के समयपर होने वाले खेलगान हों, ऐसे धर्मस्थानोंमें (वैष्णवोंके मन्दिर अनुसार) जहाँ रंगराग चलते हों वहां सदैव जाना चाहते हैं और साथ ही जो वक्तृत्व शक्तिका और संगीतका शौक हो तो एकमात्र सुप्रसिद्ध व्याख्याताओंके व्याख्यानोंको सुनने, तथा सुन्दर भजनों कों नहीं किन्तु सुन्दर गानोंको श्रवण करनेके लिये ही देव मन्दिर या सभाओंका आश्रय लेते हैं। किन्तु उनमें धर्म भावना कुछ नहीं होती।

ऊपर प्रमाणे मनुष्यके धर्मभाव साथ समग्र शक्तियोंके न्यूनाधिक प्रमाणके सम्बन्ध अनुसार मनुष्यों के धर्मभाव, धर्मकर्म और धर्मक्रियाओंमें भी वैषम्य या भेदभाव देखनेमें आते हैं उनके साथ देशकाल और जनरीति आदिके प्राबल्यसे भी अनेक प्रकारकी भिन्नता और परिवर्तन दिखाई देते हैं।

जीवात्मा परमात्मा और प्रकृति का सम्बन्ध
सृष्टिकर्त्ताकी सर्वोत्तम कृति "मस्तिष्क"
उसका अनुपम कार्य

परमात्मा की बनाई हुई सृष्टिके अन्दर प्रत्येक पदार्थ या वस्तुका परस्पर सम्बन्ध और योग्य उपयोग होता ही है। सृष्टिका यह अचल नियम है। सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, भूमि, जल, तेज, वायु आकाश विद्युत, वृक्ष, वनस्पति, वराल, बादल, पशु, पक्षी और मनुष्य आदि सर्वप्राणी और पदार्थोंका परस्पर एक दूसरोंके साथ अबाधित सम्बन्ध है।

आँख और तेज, दांत जिह्वा और रस, नासिका मुख और कंठ, भोज्य पदार्थों और जठराग्नि आदि पचनेन्द्रियके अवयवों, अस्थि और स्नायुओं, फेफड़ा तथा हृदय और यही अनुसार शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धादि गुणों का श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा और घ्राण आदि इन्द्रियोंके साथ अनेक रीति के, असंख्य प्रकारके सम्बन्ध हैं और उसके परिणामसे प्रत्येक वस्तुका पारस्परिक सम्बन्ध एक दूसरोंके अस्तित्वको निर्विवाद रीतिसे सिद्ध करते हैं।

उदाहरण—पगकेजानुका ढक्कन और पैरकी हड्डी, मस्तिष्क और सिरकी खोपड़ी (सिरकी हड्डी) अंगुलियां और उनके ऊपरके नाखून, आंख और दर्शन शक्ति तथा दृश्य पदार्थ, श्रोत्र और

श्राव्य शब्दादि विषय, दांत और दन्त मांसपेशियों और त्वचा तथा स्पर्शका, सम्पूर्ण ज्ञानेन्द्रियों और ज्ञेय पदार्थोंका एक दूसरेके साथ अबाधित सम्बन्ध है। सृष्टिके सब पदार्थों का अस्तित्व परस्पर उपकारक और आवश्यक हैं।

सृष्टिके समग्र कार्य एक दूसरेके साथ अबाधित सम्बन्ध होनेसे सर्वत्र संयुक्त हुए हुए हैं। किसी भी स्थल पर असम्बन्धता या परस्पर विरोध सम्पूर्ण विश्वमें कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता।

इस तरह होने पर भी जो लोग इस महत्वपूर्ण प्रत्यक्ष सम्बन्धको स्वीकार नहीं करते या उसके सत्यको समझ नहीं सकते वे देखते हुए भी अन्धे, सुनते हुए भी बहिरे, बोलते हुए भी गूंगे और ज्ञानेन्द्रियाँ सहित होते हुए भी ज्ञानहीन हैं। ऐसा कहनेमें किंचितमात्र भी गलती या अतिशयोक्ति नहीं होती। ऐसे मनुष्योंके कथनपर विश्वास नहीं लाना चाहिए।

आँख और उसकी अवलोकन शक्ति तथा देखनेकी इच्छा होने पर भी यदि दृश्य पदार्थों का दुनिया में अभाव होतो यह कितनी बड़ी गलती होगी? प्राणीमात्रके अन्दर क्षुधा वृत्तिकी स्वाभाविक प्रेरणा और पचनेन्द्रियके अवयवोंकी रचना तो हो किन्तु साथ पाच्य या भोज्य पदार्थोंका अस्तित्व न हो अथवा निर्माणही न होतो यह कितनी बड़ी भयंकर कमी कहायेगी! इसी अनुसार प्राण विना प्राणेन्द्रियों और रक्त बिना हृदयके अवयव भी किस कामके? इसी प्रकार मनुष्यकी सब आवश्यकतायें और स्वाभाविक आकांक्षायें पूर्ति करनेवाले साधनोंके अभावमें तमाम निरर्थक होती हैं। परन्तु कुदरत मनुष्यके प्रत्येक अवयव या इन्द्रिय तथा मस्तिष्कके अलग-अलग अवयवों या वृत्तियोंको निर्माण करनेके साथ ही उस-उस इन्द्रियके विषयका निर्माण कर योग्य संतोष और सुख देनेमें हमेशा सम्भालपूर्वक वर्तति है। इसी अनुसार भक्तिभाव यहभी मनुष्यकी एक स्वाभाविक वृत्ति है। जो उसको संतोष देने वाला पदार्थ या विषयके अस्तित्वका सम्पूर्ण विश्वास देती है, और इसलिये परमपूज्य परमात्माके अस्तित्वके लिए अन्य पुरावा या प्रमाणकी जरूरत नहीं रहती। प्रत्येक मनुष्यके मस्तिष्कमें इस वृत्तिका अवयव स्पष्ट रीति से न्यूनाधिक प्रमाणमें उपस्थित रहता है और मनुष्य इस अवयवके प्रमाणमें ईश्वरके स्वरूपमें किसी का किसी पदार्थका स्वीकार कर श्रद्धापूर्वक किसी भी प्रकारसे उसकी पूजा भक्ति या आराधना करते हैं। यह बात अवश्य निर्विवाद है। और इस कारण ही ऐसे पूज्यभाव या आराधनाको स्वीकारनार (स्वीकार करने वाला) या सार्थक करने वाला ईश्वर, खुदा या **God** नामके चेतन पदार्थका अस्तित्व सदा सर्वथा सिद्ध ही है।

डा० स्परज्ञीयम कहते हैं कि इस भक्तिभाव या पूज्यवृत्ति का अवयव द्विधा विभक्त हुआ हुआ है। उनका पीछेका भाग (स्थान) जिस दृढ़ता और आत्मनिष्ठाके निकट आया हुआ है वह ईश्वर आराधना, धार्मिक श्रद्धा या धर्मभावके लिये निर्माण हुआ है। जब उसका अग्र भाग (स्थान) वडीलो और उपरि अधिकारियों (अध्यक्ष) के प्रति पूज्य बुद्धि और प्राचीन धर्म पवित्रता या पूर्वजोंके लिये अनन्य मानकी भावना पैदा करते हैं। इतने अंशमें वह लोकाचारको, प्राचीनताको पसन्द करने वाली शक्ति है। जिसे तुरन्त बदलने या मूल में से सुधारणा करनेमें किसी समय पर प्रतिबाधक होती है।

प्राचीन धर्म पवित्रता या पूर्वजोंके लिए अनन्य मानकी भावना पैदा करते है। इतने अंशमें वह लोकाचारको, प्राचीनताको पसन्द करनेवाली शक्तिहै। जिसे तुरंत बदलने या मूलमें से सुधारणा करनेमें किसी समयपर प्रतिबाधक होतीहै।

कितनेही लोग ऐसा प्रश्न करतेहैं कि ईश्वर भक्ति धर्म और नीतिके सिद्धान्तोके साथ मस्तिष्कशास्त्र का क्या सबन्ध है ? अध्यात्मविद्याके तत्व ज्ञान युक्त विषय और धर्म शास्त्रकेसाथ मानसशास्त्रका क्या लेना देना है ? उनको सूचित करना, सुझानाकि सारे विश्वके अन्दर ऐसा एक भी विषय नहीं है कि जिसका संबन्ध मस्तिष्क शास्त्रानुसार इस मस्तिष्कके एक या अनेक अंग प्रत्यंगकेसाथ संयुक्त हुआ न हो ? विश्वके अन्दर एक मात्र परमात्मा और जीवात्माके पश्चात् मनुष्यके मस्तिष्क के तुल्य एक भी प्राकृतिक पदार्थ सारे विश्वमें नहीं हैकि जिसका मुकाबिला इस प्राकृतिक मस्तिष्कके साथ हो सके ?

परमात्माकी समग्र रचनाको यथावत् समझना इसके द्वारा अपने अनेक कार्यों पार पाडना, पूर्ण-करना, आत्मा परमात्माके अनेक गुण, कर्म, स्वभाव और लक्षणोंको यथावत् जानना या प्रत्यक्ष करना, तथैव प्रकृतिके त्रिगुणात्मक गुणोंसे और अनेकविध रचनासे यथावत् विदित होकर अनेक रीतिसे उसका उपयोग कर अपने और अन्य प्राणीमात्रके उपयोगमें उनको साधन भूत बनानेके महान कार्य हमारे जीवात्मा इस मस्तिष्क द्वाराही यथावत् कर सकते हैं।

इसी अनुसार श्रद्धा, भक्ति, नीति, धर्म या कर्तव्य आदिके उचित या अनुचित प्रदेशोंको यथावत् दर्शाकर सत्य और धर्मयुक्त पंथपर लानेके महान बुद्धियुक्त कार्यभी इस मस्तिष्कके आधारसे ही यथावत् हो सकते हैं। विश्वके अन्दर प्रविष्ट हुई सम्पूर्ण दिव्य शक्तियोंको इसी रीतिसे वस्तु मात्रके गुण, कर्म, स्वभावको यथावत् जाननेका मन अथवा जीवात्माका यह मस्तिष्क एक अमूल्य साधन है। जिसके द्वारा परमात्माके गुण, उसकी भक्ति करनेकी रीति, उसकी स्तुति, प्रार्थना या उपासनासे होता आनन्द तथा उपासना किस कारण, किसी रीतिसे करनी इत्यादि समग्र विषयोंका और प्रश्नोंका यथावत् निरूपण फैसला सूक्ष्म विचारसे सम्पूर्ण रीतिसे कर सकते है। इसलिए अथर्ववेदमें कहा हैकि—

तद्वा अथर्वणः शिरः देवकोशः समुब्जितः।

तत्प्राणो अभि रक्षति शिरो अन्नमथो मनः॥

अर्थात् जीवात्माका यह सिर अर्थात् मस्तिष्क विश्वकी सम्पूर्ण शक्तियोंको एकत्र करनेमें आया हुवा खजाना रूप है। अन्न, सिर, प्राण और मन आदि द्वारा उसकी यथार्थ रक्षा हो रहीहै।

मनुष्योंको हमेशां जो विषय युक्तियुक्त, बुद्धिपूर्वक, कुदरतें नियमानुसार और प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे प्रमाणित हो सके, तत्वज्ञानकी दृष्टिसे और और व्यावहारिक रीतिसे भी उपयुक्त होसके उनका स्वीकार करते हैं। तथैव—

मस्तिष्कशास्त्र भी प्रत्येक विषयकी यथार्थ निपुणता, जानकारी प्राप्त कर तद् तद् विषयका ज्ञान

देनेमें उचित सहायता देते हैं। इतनाही नहीं किन्तु नैतिक और धार्मिक विषयोंको भी स्पष्टकर उनका पृथक्करण कर ईश्वरका सत्यस्वरूप तथा अस्तित्व और मनुष्यके साथ उसका सम्बन्ध यथावत् रीतिसे प्रमाणित करते है। इस कार्यमें भक्तिभाव के साथ अन्यान्य वृत्तियां भी यथा आवश्यकता सहाय देती हैं और भक्तिभाव श्रद्धा के योग्य स्वरूपको भी सम्पूर्ण रीतिसे स्पष्ट करते हैं।

१. मनुष्यके अन्दरकी प्रत्येक शक्ति उसके योग्य कार्य या उपयोग करनेके लिए ही हैं। स्त्री और पुरुषोंके स्नेहयुक्त सम्बन्धोंको यथावत् मिलाकर प्रजोत्पादन और कुटुम्ब, आत्मीय जनके सम्बन्धों को दृढ़ करनेके लिए ही मनुष्यके अन्दर कामवासना और प्रेमवृत्तिको नियत करनेमें आयी हुई है। तदुपरान्त समग्र गृह या सांसारिक भावनाओं का यह वृत्तिमूल आधारहै और इसी कारणसे ही उनको समग्र गृह्य शक्तियों के आश्रय रूप स्थान देनेमें आया हुआहै।

२. वात्सल्य भाव भी यही अनुसार उत्पन्न हुई प्रजाका रक्षणऔर परिपालन तथा परिपोषण करनेका महान उद्देश्यसे ही हमको अर्पण करनेमें आया हुआ है। परंतु वह एकाधा कुत्ता, कबूतर, तोता मेनाका लालन पालन करनेके लिए नहीं युवान स्त्री पुरुषों प्रेम वृत्तिके यथार्थ पोषण द्वारा धर्मयुक्त रीतिसे पैदा किया स्वसंतान बालबच्चेका यथावत् पालन पोषण करनेके लिए कुदरतके पवित्र नैसर्गिक नियमों और सिद्धांतानुसार बन्धाया हुआ है। जिससे यह अनुसार वर्तनाही चाहिए।

जिन माता पिता वात्सल्यभाव की न्यूनताके लिये बालकोंके रक्षण पोषण और शिक्षण प्रति बेपरवाह रहते हैं, उसके स्वास्थ्यकी सम्भाल लेते नहीं, इसलिये बालको अकालसे बचपनमें ही यह संसार छोड़ कर चले जाते हैं। इससे माता पिता पूर्ण रूप में उत्तरदाता और गुनेगार (अपराधी) हैं, और दोषी सर्वदा सजाके पात्र बनते हैं।

३. हम जन समुदायमें रहते हैं। इसलिए उनके नियमानुसार और फरजके लिये प्रत्येक व्यक्ति साथ मान पूर्वक योग्य वर्तणूक (आचारण) से वर्ताव करने बन्धायें हैं। हमारी पड़ौसके घरमें आग लगी है। लोग अकस्मात् महा भयंकर आपद् (विपत्ति) में आ पड़े हैं। हम दृष्टिसे देखते हैं। वे अन्दरसे जरूरी सहायताके लिये आक्रन्द (हमारी ओर आवाज) करते हैं तो क्या ऐसे प्रसगमें सहाय, बचाव के लिये दुःखसे निवेदन करते बन्धुओंको धार्मिक, नैतिक रीतिसे देखकर एक मनुष्यका कर्तव्य समझकर अथवा दयाकी भावनासे योग्य और यथाशक्ति सहाय देने कुदरती नियमानुसार हम बन्धाये हुए नहीं है? हमारा कर्तव्य बन जाता नहीं है?

४. ईश्वरीय बन्धारण (प्रबन्ध) योजना, कुदरती कानून, सृष्टिका क्रम इसकाही नाम है। और यही अनुसार मनुष्यकी प्रत्येक प्रकारकी शक्ति यां वृत्ति अपना अपना अनुकूल और आवश्यक संयोगोंमें यथायोग्य कार्य करनेके लिय कुदरती रीतिसे ही बन्धायी हुई है कर्तव्यनिष्ठ बनी रहती है और कुदरती रीतिसे ही कार्य करने के लिये उत्तेजिक होती है। उनका ही नाम स्वाभाविक, धार्मिक या नैतिक कर्तव्य या बन्धन है। तदनंतर कोई स्वार्थवश या द्वेश अथवा वैश्यवृत्तिके प्रबलकार्य को आधीन होकर

स्वाभाविक भावनाओंकी गतिको बलपूर्वक रोक रखे तो इतने अंशसे यह कुदरतके नियमों का नाश करनेवाला गुनेगार अथवा पापी है।

५. तथैव भक्तिभाव या पूज्य वृत्तिभी एक मनुष्यकी मुख्य और सर्वोत्कृष्ट वृत्ति है। ये वृत्ति रखने वाला प्रत्येक मनुष्य यह वृत्तिका महान, पवित्र, पावनकर्त्ता और कल्याण तथा आनन्ददायक कार्य का प्रचार करने के लिये धार्मिक रीतिसे बन्धाया हुआ है।

प्रत्येक मनुष्यकी अन्दर भक्तिभाव की वृत्ति कम अधिक प्रमाणमें जन्मसे ही होती है। तो भी उनकी निर्बलता या न्यूनता होती है तो यह न्यूनता दूर करनेकी दुगना फर्ज हमारा पर आती है। क्या क्षुधा की निर्बलताके लिए कोई खानाही छोड़कर मरणको शरण होता है? क्या क्षुधाकी निर्बलता, पाचन शक्तिको बढ़ानेकी फरज नहीं दर्शाती! ऐसीही रीतिसे भक्तिभावकी वृत्तिको विकासकर पुष्ट बनाना ये प्रत्येक व्यक्तिका पवित्र कर्तव्य है। कारण अपनी निर्बल शक्तियोंको अनुपयोग द्वारा जिन प्रतिदिन विशेष निर्बल और निकाम, निरर्थक बनाते हैं या बेपरवाह रह यथार्थ रीतिसे विकसाते नहीं वे अधर्मी या अपराधी हैं। और उतने अंशमें शिक्षा के पात्र हैं।

जैसे यादशक्ति, न्यायशक्ति, तुलना शक्ति, सौन्दर्यका शौक, स्नेह और भलाई, सभ्यता, प्रामाणिकता आदि गुणो विकसित कर सकाते हैं और विकसित करनेकी आवश्यकता है। यही अनुसार इस भक्तिभावकी वृत्तिको भी विकसित करनेके लिए प्रतिदिनके नियमित अभ्यासकी सर्वदा आवश्यकता है।

भक्तिभाव से मिलता आनंद सचमुच अनुपम और अद्वितीय है। प्रत्येक शक्तिके यथार्थ कार्यसे संतोष, सुख और आनंद मिलते हैं। तथाहि प्रत्येक मनुष्य अपना पुस्तक या कपड़ा को जितने अंशसे चाहते हैं उतना उनको आनन्द मिलता है। तथैव मनुष्य जितने अंश में ईश्वर आराधना तथा धर्म कर्म को चाहते हैं उतनेही प्रमाणमें उनको अधिक आनन्द होता है। कुदरत दोनों रीतिसे कर्म फल देने में बहुत ही उदार है। हम जिस कार्यों करेंगे उनके लिए उतनेही प्रमाण में फल देती है परन्तु जिन कार्यों बेपरवाह से नहीं करते या छोड़ देते तो उसका भी फल यथावत् देनेको तैयार रहती है। मनुष्य जैसे विशेष बुद्धिशाली ऐसे उनका आनंदभी अधिकाधिक होता जाता है। जब अज्ञ मनुष्यों स्वल्प आनंद से सन्तुष्ट होते हैं और दूसरा अनेक महान् आनदके स्थानोंसे विमुख रह जाते हैं। उसका भी उन्हें ध्यान नहीं रहता। तथैव धर्म विषयमें भी हमारी बेदरकारी से अनेक प्रकारके भाविन् फायदा जो धर्म ज्ञानसे यथार्थ दशामें हम प्राप्त कर सकते होंगे। उससे वंचित रहते हैं। धर्म भावना को निद्रावश या निष्कर्म रखनेसे हम अंतमें समूचा स्तब्ध, विरक्त, त्यजाएल, निष्प्रेम और क्षुद्र हृदयके सुनसान, निर्जन, ऊजड़, अरण्य जैसे धर्म ज्ञान हीन और समूचा निरुपयोगी बन जाते हैं। जब धर्म भाव और भक्तिभाव के यथार्थ विकसित होने और उनकी प्रदीप्ति द्वारा हम उत्साह सम्पन्न आनन्द युक्त, प्रसन्न, प्रमुदित, आत्मसन्तुष्ट, शान्त, धीर, वीर बनकर जीवन का सुख और सन्तोषपूर्वक

उपभोग करते रहते हैं इस विषयको आत्मा अनुभवसे अपने आप अनुभव करने वालाही सचमुच वास्तवमें सुखानंदका अनुभव ले सकता हैं।

१. इस भक्तिभावका अवयव मनुष्यके मस्तिष्की अन्दर सबसे उत्कृष्ट स्थानमें मस्तिष्कके मध्य प्रदेशमें स्थापित हुआ है। उससे मनुष्यकी अन्दर इस शक्तिका कार्य भी यही अनुसार उत्कृष्ट है। तदुपरान्त उससे मिलता आनन्द कुदरती रीतिसे ही अन्य सर्व शक्तियोंके मुकाबिल अनुपम और अवर्णनीय है।

लड़ाई, झगड़ा, विवाद या धन प्राप्ति, मान, यश अथवा होहेकी प्राप्तिमें अमुक प्रकारका आनन्द आता है किन्तु इससे अधिकाधिक आनन्द जिसको प्राप्त करनेकी आशा होगी उन्होंने भक्तिभाव और धर्मभावको तो साथ लेनेकी अवश्य आवश्यकता है।

२. भक्तिभाव और धर्मभावकी वृत्तिसे संयुक्त होनेसे अन्य प्रत्येक शक्तिका आनन्द अनेक रीतिसे पुष्ट बनता है। तथाहि एक नास्तिक और एक प्रभु परायण आस्तिक दोनों उत्तम प्रकारका भोजन करने समान क्षुधासे साथहो बैठते हैं। भोज्य और भोजक शक्ति बंनेमें समानही है। नास्तिक मनुष्य इस समग्र भोज्य पदार्थोंके स्वादको आस्तिक मनुष्यके जितनेही आनन्दसे लेते हैं। किन्तु आस्तिक मनुष्यको परमात्माका आभार माननेमें और ऐसा उत्तम भोजन प्रदान करनेके लिये गुणानुवाद गानेमें जो अति उत्कृष्ट प्रकारका आनन्द और आत्म संतोष मिलता है उसका अल्पभी आनन्द नास्तिकको नहीं मिलता।

आस्तिक मनुष्य भोज्य पदार्थों, भोजन शक्ति, पचनेन्द्रियके अवयवों और भोज्य पदार्थोंके स्वाद तथा उनको ग्रहण करने वाली रसना इन्द्रिय आदि सम्पूर्ण आनन्ददायक साधनोंके लिये पृथक्-पृथक् आनंद प्राप्त कर अपना खोराकको ग्रहण करते समय अनेकधा आनन्दको विस्तृत कर सकते हैं। और जैसे-जैसे भक्तिभाव तथा हृदयके धार्मिक भावोंसे विशुद्धि अधिक हों तो ऐसे प्रत्येक क्षण उनका आनंद शतगुन बढ़ता जाता है। बल्कि मानसिक विशुद्धि और धर्मभावसे उसकेमें एक प्रकारकी शान्त और शामक वृत्ति जिन भोज्य पदार्थोंके यथार्थ पाचनके लिये अति आवश्यक है वह जन्म पाती है। जिससे वह शान्तिसे खोराक खाते हैं, इतना ही नहीं किन्तु विशेष अच्छी रीतिसे पाचन होकर उनको रुष्ट, पुष्ट बनानेमें सहाय करते हैं। जब नास्तिक तो मात्र भोज्य पदार्थोंके ही आनंद मात्रको यथाशक्य ग्रहण करते हैं। अन्य आनंददायक विषयों या वृत्तियोंसे तो वह समूचा वंचित ही रहते हैं।

३. इस अनुसार उपरोक्त दोनों मनुष्यों एक महान् पर्वतके शिखर पर समान स्थानपर बैठकर सृष्टि सौंदर्य देखते हैं और आनंद प्राप्त करते हैं। परन्तु आस्तिक और भक्तिपरायण हृदयतो नीचेके परिपाकपूर्ण क्षेत्रों, ऐसे तैसे, वक्र बहती सरिताके निर्मल नीर, पहाड़ी पर या सरिताके तटपर घास खाते निर्दोष बकरे और मेंढेके झुण्ड, अनेक प्रकारके फल फूलसे लचक रहा हुआ आम वृक्ष, नींबू, नारंगी, अनार, नारियल, मुसम्बी, सेव आदिके वृक्ष और मधुगंधा पुष्पलता आदि अनेकविध वनस्पतिके

गाढ़ खचाखच (पास पास) जंगलों, उसमें कलकल नाद करते चांदीके रंगसे बहता हुआ निर्मल पानीके झरनाओं, पवनसे ऐसे तैसे झूलते लहराते शस्यशाली क्षेत्रों, औरभी ऊपरके आकाशका सौन्दर्य देखकर और शीतल, मन्द, सुगन्धयुक्त समीरकी लहरोंका स्पर्शका अनुभव कर परम कारुणिक परमपिता परमात्माका सबमें आवास देखकर उनके सर्व सामर्थ्य और ज्ञान तथा युक्ति प्रयुक्तिको अनेक रीतिसे अनुभवकर पूर्ण भक्ति और प्रेम भावसे अनुपम आत्मानन्दका अनुभव करते हैं। प्रतिक्षण आनन्दमें पसार करता नया ज्ञान तथा नवीन भावको पुष्ट करते हैं। प्रत्येक शाखा, डाली, टहनी, पुष्प, फल फलादि और वृक्ष वनस्पतिमें ईश्वरीय सत्ता और सामर्थ्यको देखते हैं। यह क्या कम आनन्द है ? नास्तिक हृदयके मनुष्यको ऐसे अनुपम आनन्दका अनुभवही कहाँसे हो सकता ?

इतना तो सत्यही है कि ईश्वर प्रति पूर्ण भक्तिभाव होने विना और उसकी सम्पूर्ण सत्ताका सृष्टि के प्रत्येक कार्यमें अनुभव करने बिना कोई भी मनुष्य पुष्प, फल या कुदरतके अन्य पदार्थोंका यथार्थ मूल्य कभी नहीं कर सकता। वैसे उनको देखकर यथावत् आनन्द भी प्राप्त नहीं कर सकता।

No man can at all appreciate fruits flowers and all other natural pleasures and scenaoy unless he "Looks through nature up to nature's God"

४. दाम्पत्य धर्मके अति पवित्र सूत्रसे संयुक्त हुए स्त्री पुरुषों ? जो तुम्हारे हृदयमें परस्परके लिए हार्दिक स्नेह हो, एक दूसरे साथ अनुपम स्नेह ग्रन्थिसे निरन्तर एकरस, अव्यभिचारी वृत्तिसे संयुक्त रहनेकी इच्छा हो तो तुम्हारा परस्पर विशुद्ध प्रेम भावको परमात्मा प्रतिके प्रेमसे अधिक पुष्ट और पवित्र बनाओ। ईश्वर तुम्हारी स्त्री पुरुष द नोंकी जोड़ इतनी सौम्य, मधुर, रम्य और प्रत्येक रीतिसे आकर्षक बनाकर समान गुण, कर्म, शीलका यथायोग्य संयोग करा दिया है उसके लिये सहस्रवार भक्तिभावसे आभार मानो।

सुसंतानको प्राप्तकर शरीर और मनकी सम्पूर्ण आरोग्यता (स्वास्थ्य) साथ तुम सह कुटुम्ब परि-वार तुम्हारा जीवन धर्मयुक्त और नीतिमय कार्योंमें लगाकर ईश्वर आराधनामें युक्त रह शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥ आदि मंगल प्रार्थनाओं परमात्माके गुणानुवाद सहित प्रतिदिन प्रातः संध्या समय पर सयुक्त होकर गाते रहो, और गृहआनन्दको प्रतिदिन अधिकाधिक विस्तृत करते रहो। ईश्वरीय भक्तिभावका सुन्दर शामक, आनन्ददायक, शीतल और शांतिकी अमृतवर्षाको वर्षाने वाला सुखद प्रवाह है। सौभाग्यशाली और धार्मिक वृत्तिके स्त्री पुरुषही ऐसे आनन्दका अनुभव करके भाग्यशाली होते हैं। ऐसे गृहस्थाश्रमको सहस्रों धन्यवाद हैं।

पवित्र प्रिय भाइओ और बहिनो ! परमात्माके उपर सूचित किया विशुद्ध भक्तिभाव रूप अमृत रसका पान करो। तुमारा जीवन संगीतके समग्र तारोंसे सुन्दर, मधुर,मोहक, सुखप्रद और शांतिदायक गानका सुर ललकारकर जीवनके समग्र प्रदेदेशोंको सुखप्रद बनाओ। समग्र स्त्रीपुरुषों हमेशां ऐसे विशुद्ध

भावोंको अपना जीवनकी प्रतिक्षण अनुभव करेंगे और परमात्माका कोटिशः धन्य मानेंगे ऐसी हम अंतः-करण पूर्वक इच्छा रखते हैं ।

प्रत्येक गृहस्थी नीचेके वेद मन्त्रों गृह्य सुखोंकी यथार्थ प्रवृत्तिके लिए अर्थ साथ कठस्थ कर लेवे तो कितना शुभ परिणाम आयेंगे ?

सहृदयं सामनस्यमविद्वेषं कृष्णोभिवः ।
अन्योऽन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्ना: ॥
अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः ।
जाया पत्ये मधुमतो वाचं वदतु शान्तिवान् ॥
मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा ।
सम्यञ्चः सव्रताः भूत्वा वाचं वदत भद्रया ॥
जायस्वन्तश्चित्तिनो मा वियौष्ट
संराधयन्तः सुधुराश्चरन्तः
सम्यञ्चो ऽग्नि समर्पयतारानाभिमिवाभितः

उपर बतलायी हुई गृह्योपासना अनुसार पारिवारिकोपासना भी अब भवितभावसे पूर्ण होती है तब अनेक रीतिसे आनन्दप्रद लाभदायक और सुख तथा शांतिदायक होतीहै ।

ऊपरोवत विना ये स्पष्ट दर्शाती हैकि ईश्वर आराधना स्वभाविक प्रत्येक शुभ प्रसंगमें अनेक रीतिसे आनन्ददायक और सुख संचारक होती है ।

भोज्यपदार्थों कि अन्दर बसा हुआ स्वाद अनुसार धर्म और भक्तिभाव ये मनुष्य जीवनके समग्र आनन्दका सत्व, सारया अमृत मय मधुहै ।

धर्महि सर्वेषु भूतेषु मधुः आत्म शान्ति और आत्म शुद्धिके लिए प्रत्येक व्यक्तिने भक्तिभावकी पवित्र वृतिको विकसित करनेकी जरूरत है । तथा जीवनके समग्र भावनाओंको और सुखोको प्रभु प्रति अन्तः-करणकी सम्पूर्ण आभार वृत्ति रखकर स्वीकारने सीखना चाहिए ।

हमारे पवित्र संस्कारके नियम प्रमाणे—

१. प्रतिदिन प्रात. समयपर उठ जाना ।

२. शरीरकी संरक्षा और आयुषकी वृद्धिके लिए शौच, दन्त धावन,तेल मर्दन, व्यायाम और स्नानादिद्वारा शारीरिक पवित्रतापर प्रथम ध्यान देना ।

३. सन्ध्या या ब्रह्मयज्ञ और देवयज्ञ तथा प्राणायाम आदि द्वारा मानसिक विषयोंकी विशुद्धि कारण प्रयत्न करना । स्तुति, प्रार्थना, उपासना, प्राणायाम और योगाभ्यास आदि क्रियाओं वैसेही धर्म, नीति और तत्त्वज्ञानके ग्रन्थोंके स्वाध्याय या मननरूप अभ्यातमें चित्तको लगादो । उपरोवत कार्यके लिए प्रातःकालसे सूर्योदय पर्यन्तका समय बहुतही अनुकूलहै । और सायंकाल सूर्यास्त होने लगे तबसे सम्मपूर्ण नक्षत्र मंडल धीरे धीरे दृष्टिगोचर हुए वहां तकका अवसर अत्यन्तही उत्तम है ।

हमारा संस्कार संस्कृति अनुसार ही मस्तिष्क शास्त्री प्रोफेसर फाउलर कहते हैं कि—

"Man worship thy God not by fits and starts, but daily and habitually. Make this worship a part and parcel of thy daily avocation of rat her pleasure. Arise in the morning betimes, and as the glorious sun is lighting up and animating all nature wiih his presence, do thou pour forth the heart in praise and adoration to the maker of the sun and to the author of all these surrounding beauties. And while the setting sun is shedding on delighted earth his last rays of diurnal glory and spreading his golden hues over nature to warp her in the mantle of night, do thou offer thy eveing orisons of thanks gibing for the mercees of the day and supplicate protection for the night; Instead of spreading all thy energies in ammassing wealth or in pursuing merely animal worldly objects take ample time to feed thy immortal soul. Go to church if thou pleasest or not if thou objectest. Place and mode are nothing but worship is alone important."

भावार्थ—अरे मनुष्य ! परम पिता परमात्मा का तेरे आत्मा के आत्मा का तू ध्यान धर। प्रतिदिन नियमित रीति से और अभ्यास रूप से ही उनकी उपासना कर। ईश्वरोपासना को तेरे नित्य नैमित्तिक कर्तव्यों का एक अति उत्तम कर्तव्य कर्म समझ। हमेशा सवेरे प्रातःकाल में उठना, जिस समय से समग्र विश्व को पोषण और जीवन देनेवाला सवितादेव अपना सुन्दर सुनहरी अनेक प्रकारके रंग रंगीला रश्मिसे सारा विश्वको प्रकाश, उष्णता और आनंद देकर अपना प्रति दैनिक कार्यमें पहिलेसे आगे प्रवर्तते हैं। तब समग्र विश्वको बनाने वाला सृष्टिकर्ता सब सौन्दर्यके आधार रूप, परमपावन, शुद्धस्वरूप और ग्रहण करने योग्य विश्वात्मा सविता देव परमात्माकी स्तुति, प्रार्थना और उपासनाके परमपावन प्रवाह को तेरे अन्तरात्माके प्रत्येक प्रदेशमें पूर्ण प्रेमसे बहने दे। ऐसी ही रीतिसे जब सन्ध्या समये विश्वको अपना समग्र स्वरूप से तृप्त कर अस्त समय पर सूर्य देव अपना नरम और रम्य रश्मिसे नगर, वन, वाटिका, पुष्पलत्ता और वृक्षादि को वैसेही भूमिपरके समुद्र, सरिता, पहाड़ी, पर्वत और अन्तरिक्ष के मेघमंडल, वायु आदि पदार्थों को अनेक प्रकारके रंगका अद्भुत रम्यता से मनमोहक बनाकर सुवर्णमय झभ्भा (लम्बा नीचा कुरता) से अलंकृत कर विश्वके गोलाओंको रात्रिके रमणीय गोदमें रख देते हैं। इस समय सारा दिवस में उपभोग किया हुआ अनेक सुखों और आनंदोंके लिये उस महान परमात्माका विशुद्ध हृदयसे उपकार, कृपा मानकर आगामी रात्रि सुखपूर्वक व्यतीत होने के लिये नवीन बल और नवजीवन प्रदान करके तेरे, ऐसेही समग्र प्राणी मात्रके जीवनको बल, बुद्धि, सुख और आनन्द देने योग्य बना दे ऐसी मंगल, मधुर और विशुद्ध प्रार्थना कर।"

सारा दिवसमें धन एकत्र करनेकी प्रवृत्ति पीछे और मात्र आहार, निद्रा, भय, और मैथुन आदि की पशु वृत्तियों या यश, मान पान, धनधान्य के लिए अनेक सांसारिक लालसाओं पीछे लगी हुई वृत्तियों को फौरन रोक, अवरोध कर तेरे अन्तर आत्माको भक्तिरस रूप अमृत पान करानेके लिए

पूर्ण समय दे। देव मन्दिर में प्रार्थना करने न जा सके तो उसकी चिता नहीं। अमुक स्थान या रीत को चिपट न रहना, परन्तु ईश्वरोपासना, ईश्वर आराधना यही खास मुख्य आवश्यक वस्तु है ऐसा मान। और इसी अनुसार वर्तन कर। जीवन के प्रत्येक प्रसंगमें ऐसे भक्तिभावका तेरे हृदयमें अनुभव कर और जीवनके प्रत्येक कार्यों धर्म पूर्वक यथावत् करते रहे।

"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविच्छेत्शतं समा
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे"

ये वेद वाक्यानुसार वर्तन करते रहो। जीवनके निद्रा, खानपान और अन्य सब प्रकारके भोग भोगो परन्तु ईश्वर आराधना; ईश्वर उपासना योग में सबसे अधिक आनन्द और संतोष समझो। जीवन के इस अमूल्य समयका अनुपम और अलभ्य तथा उत्कर्षक लाभ ग्रहण करो। और सौभाग्यशाली बनो।

संगीत द्वारा सुंदर, मधुर स्वर युक्त भजनो गवायें और साथ हारमोनियम, तबला, ढोलक, सितार, सारंगी दिलरुबा जैसे मूक और जड़ बाजित्रो भी साथ में लेयेंगे और बजायेंगे तो इस विषयके आनन्दको अनेक रीतिसे विस्तीर्ण करने में सहायभूत होते हैं। संगीत ये आत्माकी अन्तर्गत सर्वोत्तम भाषा है। श्रद्धा और भक्तिभाव ये आत्माका सर्वोत्कृष्ट भाव है। यह दोनों जब यथार्थ रीति से संयुक्त होते हैं, तब अपने ऐसेही दूसरे अनेक आत्माओंको प्रोत्साहित कर सकते हैं। इस लिये पूर्ण भक्तिभाव और नीति रसकी पूर्ण भावनावाला धार्मिक भजनों को भी उपासना का एक मुख्य अंग बनाना चाहिए।

पारिवारिक या कौटुम्बिक उपासना यह भी मनुष्य समाजका एक अति अगत्यका और महत्वका कर्तव्य है। कौटुम्बिक स्नेहमें वृद्धि करने में, शिष्टाचार सिखानेमें, मनुष्य के मनको शान्त; समतोल और साम्य बनानेमें ऐसेही हृदयको संतोष और आनन्द देकर सुखी निद्रा को लाने में पारिवारिक उपासना समान एक भी दिव्य साधन नहीं है।

कुटुम्बके मनुष्यों जैसी रीतिसे भोजन समयपर एकत्र होकर सर्व साथ मिलकर भोजनका आनंद लेते हैं इसी ही रीतिसे ईश्वरआराधना और उपासना का आनंद भी सर्वदा स्त्री पुरुष, पुत्र, पुत्री, पड़ोसी निकटवर्ती और समग्र परिवारसे एकत्र होकर संयुक्त रीति से लेनेकीआवश्यकता है। हमारे बालबच्चों के अच्छा चारित्र्य बनानेमें उसका प्रभाव अजीब रीति से होता है।

इसीही अनुसार ज्ञतिभोजन, यज्ञोपवीत या विवाह आदिके प्रसंगमें या वर्षकी अन्दरके बड़ा त्यौहार पर्व दिन तथा वार्षिक उत्सवों समयपर भी ऊपर प्रमाणे ईश्वर आराधना और उपासना आदि पवित्र कर्मोका पवित्र और विशुद्धभावसे सर्वत्र भूमण्डलमें प्रचार होनेकी परमआवश्यकता है।

जगतमें धनादि पदार्थों प्राप्त करनेकी आवश्यकतानुसार जरूरत दिखाती है परन्तु धनादिका लोभ या आकांक्षा धर्म कार्योंमें प्रतिबन्ध करती हो इतने प्रमाणमें किसीभी समय वृद्धिगत न होनी चाहियें।

ईश्र की स्तुति

निद्रा महीं जब तन भान नहीं था, जिसने देखो तब पूर्ण रक्षण किया था
उसको प्रभात समयमें प्रथम स्मरूंगा, कार्यों तमाम दिवसके पीछेसे करूंगा।.........१
जीवोंका पालन करते प्रेमसे सर्वदाये, अरे ! जीव कारण रचना जगकी दिखाये;
तेजस्वी सूर्य राशि नित्य प्रकाशते हैं, दे जीवको जीवन शक्ति बढ़ाते हैं।.........२
हटाते तिमिर गगनमें घूमते दिन रात, आरामकी नहीं वही पल एक बात,
थकित सारा दिनके श्रमसे ही प्राणी, रात्रि अच्छी सुख दीए भर निद्रा आणी।...३
जो मेघ मंडल करते नियमित वृष्टि, संतोष और हर्षमें ही फूलाती सृष्टि,
पृथ्वी वनस्पति द्वारा धन धान्य देती, प्राणीके कठिन कष्ट अनेक हरती।......४
से यह सृजे पवन, पावक, पानी ईशने ? प्राणीका जीवन ये तीन नित्य दिखते,
जो सेवा मनुष्यकी ये तीनोंको दी है, साथ सुख साधनकी रचना की है।.........५
अहा ! प्रभु मनुष्यको मन बुद्धि दे दी, सत्ता बड़ी सब जीवों पर उसकी रखदी,
ऐसा सुन्दर सर्वदा पालन ईश करते हैं, उसको भूल नहीं भजते जन पापी वहहै।...६
मागुं सुबुद्धि प्रभुजी पंथ नीति वाला, भूलावता सब मेरा संशय हटाला,
है मुज धर्म समझ कार्य तमाम करूंगा, पूर्ण भक्तिसे प्रभुके चरणमें ठरूंगा।...७

कर्तव्यसे भरी रसमय जिन्दगी

सौन्दर्यसे भरी है कर्तव्यसे भरी, प्रभुने मेरी जिन्दगी सुरससे भरी
यह है मेरी जिन्दगी कर्मो अनंतकी—कर्मो अनन्तकी,
संस्कार संचित पुरुषार्थसे बनो, प्रभुने मेरी जिन्दगी सुरससे भरी—१
सब योनिमें मनुष्यदेह सम्पत्ति—मनुष्यदेह सम्पत्ति,
सृष्टि सर्जककी सर्वोत्तमकृत्ति, प्रभुने मेरी जिन्दगी सुरससे भरी—२
शरीरपुरीमें मस्तिष्क मन्दिरकी—मस्तिष्क मन्दिरकी,
आत्मनिवासार्थे रचनाकरी, प्रभुने मेरी जिन्दगी सुरससे भरी--३
रंगाकृति भार माप शास्त्र सिद्धान्तकी—शास्त्र सिद्धान्तकी,
अनेक वस्तु मस्तिष्कमें संग्रही, प्रभूने मेरी जिन्दगी सुरससे भरी—४
मस्तकमें जगत् बसाती, जगह न रुकती-जगह न रुकती,
नहीं भार अवस्था किंचित्, प्रभुने मेरी जिन्दगी सुरससे भरी—५
विविध भोजन पाकर, रक्त बनाती-रक्त बनाती,
अस्थि चर्म नसों सुसज्ज धरी, प्रभुने मेरी जिन्दगी सुरससे भरी—६
अद्भुत मशीनरी अविराम चलती-अविराम चलती,
सरिता सागरमें विद्युत् सरी, प्रभुने मेरी जिन्दगी सुरससे भरी—७

संगीतको समझके लिए संक्षिप्त नोटः—

ज्ञान कर्म धर्मके सुयोगसे योजाई—सुयोगसे योजाई,
नीति भक्ति सदाचारसे धरी, प्रभुने मेरी जिन्दगी सुरससे भरी··· ८
प्रजोत्पत्ति धर्मसे मनुष्य बेल बढ़ती—मनुष्य बेल बढ़ती
अपना जैसे प्राणको स्वभाव भरी; प्रभुने मेरी जिन्दगी सुरससे भरी··· ९
सब व्यापारो अंतर पटसे करती—अंतर पटसे करती
कर्तव्य परिणामों प्रत्यक्ष धरी, प्रभुने मेरी जिन्दगी सुरससे भरी··· १०
ब्रह्मांडके भेद आत्म ज्ञानसे समझती—विज्ञानसे समझती
आत्मगद्दी ब्रह्महृदयसे इन्द्रियको धरी, प्रभुने मेरी जिन्द सुरससे भरी··· ११
सुख दुःख कर्ताके भोग से भरौ हुई—भोगसे भरी हुई
सच्चिदानंद प्राप्तिके निवास करी, प्रभुने मेरी जिन्दगी सुरससे भरी··· १२
विश्वकर्मा ईश्वरके चरणमें चंचला—चरणमें चंचला,
सद्बुद्धि·स्वतेज शक्ति सबल करी, प्रभुने मेरी जिन्दगी सुरससे भरी··· १३

मनुष्य शरीर-जीवन प्रभुकी कृपासे सौन्दर्य, कर्तव्य और सुन्दर अच्छे रसोंसे भरा हुआ है।

१. मेरा यह जीवन अनन्त कर्मोंका फल है और वह कर्तव्यसे बंधा हुआ संस्कार, संचित पुरुषार्थ के परिणामसे बना हुआ है। प्रभुने मेरा जीवन उत्तमोत्तम रसोंसे भरा हुआ है।

२. सब योनियोंमें यह मनुष्य शरीर सृष्टिकर्त्ताकी सबसे उत्तम रचना है।

३. शरीरके अन्दर मस्तिष्ककी रचना जीवात्माके निवासके लिए परमात्माने अत्यन्त अद्भुत रीति से की हुई है। इसके मध्य भागमें ब्रह्महृदयमें मनुष्यका आत्मा विराजमान है—मानपूर्वक बैठा है।

४. रंग, आकृति, भार, माप, शास्त्रों और सिद्धान्तों अर्थात् मनुष्यकी सब प्रकारकी प्रवृत्ति हाल-चालकी, देखने जाननेकी, विचारनेकी, उपयोग करनेकी मस्तिष्कके अन्दरहै। भोग्य वस्तुओं तथा हकीकतके साथ सम्बन्ध कराने वाले वह सब विषयोंके अनेक रूप, संस्कार मस्तिष्कमें भरे हुए हैं।

५. दुनियाका अनेक विषयों और वस्तुओंका ज्ञान मस्तकमें भरा हुआ है। तो भी उससे जगह नहीं रुकती, भार बोझ नहीं लगता, नहीं अव्यवस्था होती है। परमात्माने मेरी जिन्दगी श्रेष्ठ रसोंसे भरी हुई है।

६. भिन्न-भिन्न प्रकारके, भिन्नस्वाद और भिन्न रंगके भोजन खाते हैं। इनसे रक्त बनते हैं। हड्डी, माँस, चमड़ी, नाड़ी, नस, तन्तु अच्छी रीतिसे बनते हैं। प्रभुने मेरा जीवन सुन्दर रसोंसे भरा हुआ है।

७. शरीरयंत्र चौबीस घंटे चलता ही रहता है। भोजनमेंसे रस और रुधिरका बनना, रुधिरका सारे शरीरमें भ्रमण करना, ज्ञान तन्तु और क्रिया तन्तुकी क्रिया, मानसिक विचारणा, मनोव्यापार आदि अविरत चलते ही रहते हैं। रक्तसागररूप हृदयके साथ जुड़ी हुई नाड़ी, नस रूप नदियाँ, और मस्तकमें जीवात्माके विहारके लिए योजाई हुई जवनिकाओंमें भरे हुए प्रवाहीको और शरीरस्थ सब रसोंको शरीररथ चलाने वाली विद्युत गति दे रही है।

८. ज्ञान कर्म और धर्म के सुयोगसे मिली हुई, नीति, भक्ति और सदाचारसे धारण हुई ऐसी मेरी जिन्दगी प्रभुने सुन्दर सुखकर रसोंसे भरी हुई है।

९. प्रजोत्पत्ति धर्मसे मनुष्य अपने जैसे दूसरे शरीर, स्वभाव को उत्पन्न कर मनुष्य समाजकी वृद्धि करते हैं। परमात्माने मेरी जिन्दगी कल्याणकारी रसोंसे भरी हुई है।

१०. मनुष्यके सब व्यवसायों (प्रवृत्ति) का उद्भव प्रथम अंतरआत्मा में होता है। जो हमारी स्थूल दृष्टिको नहीं दिखता। आत्मा में किया विचार और निर्णय बाह्य विश्वमें आचारमें लानेपर ही कार्य और परिणामरूप में ही प्रत्यक्ष होता है।

११. आत्मज्ञानसे कुदरतके गुह्य रहस्य जान लेते हैं। अगम्य और गुप्त तत्व समझ सकते हैं। पार्थिव या अपार्थिव किया हुआ सब अन्वेषण आत्मदेव मस्तकके ब्रह्म हृदयरूप सिंहासन—आत्मगद्दी से इन्द्रियों द्वारा आचरण करते हैं। व्यवहारमें लाते हैं।

१२. सुख दुःखके कर्ता हम अपने आप ही हैं। हमने जैसे कर्तव्य किये होते हैं वैसे ही भोग हम भोगते हैं। मनुष्यजीवन सत्--चित्–आनंद, आत्मज्ञान, सत्य, समझ और परमात्मा की प्राप्ति का साधन है।

१३. दुनियाके कर्ता परमात्माके शरण (आश्रय) में चंचला है। सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान् प्रभु पिताके सानिध्यमें रहकर अच्छी बुद्धि, सद्गुण, स्वाश्रय, स्वभान, पराक्रम, आत्मप्रकाश और सर्व-शक्तियाँ बलवान् बनानेकी इच्छा रखती है। परमात्मा से प्रार्थना करती है।

मनुष्यके शरीरकी रचना अलौकिक—अद्भुत है उसमें उसके योग्य कर्तव्य—कर्मों के लिये योजना अति सुन्दर है। वह शारीरिक तथा मानसिक अद्भुतरसोंसे भरी हुई है!

परमात्माने मेरी जिन्दगी उत्तमोत्तम रसोंसे भरी हुई है।

भक्तिभाव, अध्यात्मभाव, आशा, आत्मनिष्ठा, दया, परोपकार आदि
आत्माके गुण सब जीवोंका कल्याण करने वाले हैं।
मनुष्यके आत्मामें बसी हुई यह धार्मिक वृत्तिके फलस्वरूप
गुरुकुल जैसी संस्थायें उपस्थित होती हैं।

श्री गुरुकुल चित्तौड़गढ़के अध्यापक व ब्रह्मचारी
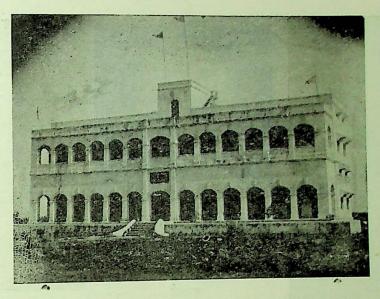
श्री गुरुकुल चित्तौड़गढ़ के ब्रह्मचारी
सैनिक वेषमें

आ राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम्

पूज्यस्वामीजी व्रतानन्दजो महाराज गुरुकुल चित्तौड़के संस्थापक संचालक और आचार्य तथा नरेला कन्या-गुरुकुलके भी संस्थापक और प्रधान, आप व्रतके धनी आदर्श संन्यासीहैं।

स्वर्गीय सेठश्रीशूरजीवल्लभदास बम्बई

आप जहाजी कम्पनी के आद्य-प्रणेता व्यवस्थापक व प्रमुख थे। भारतके सामुद्रिक व्यापारकी प्रगतिमें आपकी असाधारण बुद्धिप्रभा कार्य करती थी व्यापार कुशलताके साथ धर्म-परकी प्रीतिभी प्रशंसनीय थी। आप महर्षि दयानन्दका परम-भक्त, वैदिकधर्म प्रेमी, वेद धर्मका प्रचारके लिये लाखों रुपये दान दे गये हैं।

श्री प्रतापसिंह जी शूरजी वल्लभदास बम्बई

आप यशस्वी पिताके सुसंस्कारी सुपुत्र हैं। प्रसिद्ध व्यापारी और पिताकी भावना पूर्ण करनेके लिये लाखों रुपये का दान वैदिक धर्मका प्रचार यज्ञमें और अन्य कल्याणकारी कार्योंमें देते रहते हैं।

"आयुस्तेजोबलं वीर्यं प्रज्ञां श्रीश्च महायशः" आयुष्य, बल, वीर्य, बुद्धि, प्रभा (Beauty) और प्रतिष्ठा इत्यादिको देने वाला ब्रह्मचर्य है ऐसे ऋषियों ने ब्रह्मचर्यका गुणगान गाया है।

अथर्ववेद में ब्रह्मचर्यके महिमा (प्रताप) का एक सूक्त है इसमें कहाहै कि—

१. आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते—ब्रह्मचर्यका पालन कर आचार्य ब्रह्मचारी शिष्योंकी इच्छा करते हैं।

२. ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति—ब्रह्मचर्य और तपसे ही राजा राष्ट्र का रक्षण कर सकते हैं।

३. ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिं—ब्रह्मचर्यका पालनकर कन्या युवा पतिको प्राप्त करतीहै ।

४. ब्रह्मचर्येण देवा मृत्यु मुपाघ्नत—ब्रह्मचर्यके प्रभावसे देवजन मृत्युका नाश करते हैं । विशेष में उपरोक्तसूक्त कहते हैं कि—पशु, पक्षी, वनस्पति आदि भी अपनी-अपनी स्थिति अनुसार ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं ।

यह एक कुदरती नियम ही है कि सबने ब्रह्मचर्यका पालन करना ही चाहिये, किन्तु दुःख की बात है कि ऐसे उत्तम ब्रह्मचर्य के आचरणकी अब तक अवज्ञा हो रही है, जिसको पुनः सजीवन करने के लिये कन्या तथा कुमारके ब्रह्मचर्याश्रमोंकी आवश्यकता है तथा उसका संचालनके लिये धर्मज्ञ, वेदज्ञ ब्रह्मचारी, बुद्धिशाली; आत्मनिष्ठ, न्यायपरायण, वात्सल्यप्रेमी, निस्वार्थी, सेवाभावी, त्यागी, तपस्वी आचार्यों की तथा धार्मिक वृत्तिवाला, सेवाभावी, सहायक धनपतिओं की अत्यन्त आवश्यकता है ।

———

अध्यात्मरति या अध्यात्मयोग

SPIRITUALITY-MARVELLOUSNESS AND WONDER

अध्यात्मरति ये शब्द से, आध्यात्मिक विषयों प्रति मनकी इच्छा, विश्वके जड़ और प्राकृतिक पदार्थोंको त्यागकर, आत्मा, परमात्मा और उनकी दिव्य आश्चर्योत्पादक और अद्भुत रससे भरपूर दिव्य विभूतियों या आध्यात्मिक शक्तियोंको अनुभवनेकी देखनेकी या जाननेकी इच्छा, आत्मदृष्टि, दिव्यदृष्टि आदि भावोंको ग्रहण करनेमें आते हैं।

आत्मा, परमात्मा स्वरूप उनकी शक्तियों और दिव्य आश्चर्यकारक गुणोंका चिन्तन, स्पीरीच्युआलीटी, विचारसंकलन, विचारवांचन, मेस्मेरीझम, हीप्नोटीझम या मानस विद्युतके आश्चर्यकारक प्रयोगी तथा योगाभ्यास और योगकी अद्भुत विभूतिओं, चमत्कारों तथा उनकी दिव्य आत्मशक्तियोंका अन्वेषण और ज्ञान इत्यादिका सब आधार इस अध्यात्म रतिकी वृत्तिके ऊपरही है। इस वृत्तिका स्थान इसलिए प्राकृतिक विषयका चिन्तन करने वाला मानस शक्तियोंके समग्र स्थानसे उच्च स्थानमें व्यवस्थित रीतिसे स्थापित करनेमें आया है।

अध्यात्मरति (नं० १९)
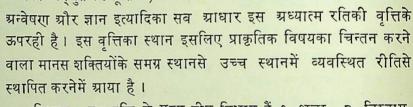
विभाग—इस वृत्ति के मुख्य तीन विभाग हैं १. श्रद्धा, २. विश्वास, ३. आश्चर्यप्रेम।

स्थान—इस वृत्तिके अवयवका स्थान मस्तक की दोनों ओर आशाके अग्र भागमें, अनुकरण शक्तिके पीछे और सौन्दर्य प्रेमके अवयवके ऊपर और भक्तिभावके कोनेमें अग्रभागमें आया हुआ है।

जिसमें इस शक्ति अधिक होती है उसके मस्तिष्क यह स्थानमें उन्नत, भरा हुआ और विस्तृत होता है। जब ये अवयवकी न्यूनता वाले मनुष्यके मस्तिष्क यह प्रदेशमें अवनत बैठा हुआ दीखता है।

इस वृत्तिके अतियोग या मिथ्यायोगसे अंधश्रद्धा अति विश्वास और अनेक प्रकारके संशयको जन्म मिलता है। जब न्यूनताके लिये आध्यात्मिक विषयों प्रीति प्रति नहीं होती ऐसे मनुष्य इसमें कुछ समझते नहीं। और ऐसी मान्यताओंको अंध श्रद्धा या अज्ञानता युक्त झूठ बकवाद मान लेते हैं।

डा० कोम्ब, इस अवयवके कुदरती लक्षणके सम्बन्धमें कहते हैं कि—

"The natural language of this faculty is nodding the head obliquelly upwards, in the directisen of this organ, I have observed one telling another some wonderful story to nod his head upwards two or thaee times at the end of each wonderful point. Its general function is considered stablished but its metaphysical analysis is still incomplete." George Comb,

अन्वेषण—डा० गोलने इस शक्तिके अवयवका प्रथम अन्वेषण किया था। वर्तमान समयका महान् मस्तिष्क शास्त्री मी० ओ० एस० फाउलर अपना फ्रेनोलोजीके ग्रन्थमें इस शक्तिके अति विस्तृत कार्यके अनेक दृष्टान्त देकर समझाते हैं कि—

"This faculty exists phrenology sets this point at rest by physical demonstration. It thus constitutes a part of every well developed head and philosophical mind and its absence is a great deficit. Without this faculty we could form no more idea of God as a spirit of an immaterial embodied spirit or the immortality of the soul or of any thing not material, than the blind of colors" But man has these ideas and tedings and they are as well defined and distinct as any of her other sentiments."

भावार्थ—इस शक्ति और उनका अलग अवयव मस्तिष्कमें विद्यमान है। और मस्तिष्क शास्त्रानुसार उनके बाह्य प्रमाण देकर सुनिश्चित करनेमें आया हुआ है। सर्वांसे सम्पूर्ण विकसित और तत्वज्ञानी मनुष्यके मस्तिष्कमें यह अवयव खासकर अधिक बढ़ता होता है। दिक्, काल अर्थात् अनादि और अनन्त समय, अनन्त आकाश और आत्मा, परमात्माके गुणों और स्थितिओं सम्बन्धी विचार देनेका साधन इस शक्तिही है। तदुपरान्त आश्चर्योत्पादक या विस्मयकारक विश्वके पदार्थों, वृत्तान्तों या बनावो होते तो उसकाभी ग्रहण इस शक्ति द्वारा ही होता है। तथाहि विश्वके अनन्त गोलाओं की अद्भुत, अगम्य और अदृष्ट गति, सूर्यका अविदित स्वरुप, सृष्टि रचनाका पूर्व स्वरुप और रचनाका आरम्भ तथा प्रलय आदिकी हालत वगैरेकी यथार्थ कल्पना प्रत्यक्ष ज्ञानके अभावमें करनी या उचित वर्णन देना य इस शक्तिका कार्य होगा, ऐसा हमको ज्ञात होते है। अप्राकृतिक अर्थात् प्रीकृतिक अवयवोंसे जो कुछ अगोचर और अगम्य होंगे उसका आध्यात्मिक दृष्टिसे ज्ञान प्राप्त कराना यही इस शक्तिका मुख्य कार्य है।

महान खगोल शास्त्रियों और अध्यात्मशास्त्रवेत्ताओंके मस्तिष्क हमेशा इस स्थानमें विस्तृत भरा हुआ होते हैं। जिनमें इस शक्ति प्रपूर्ण प्रमाणमें होती है, वे इस वृत्ति द्वारा अध्यात्मिक विषयका सत्यासत्य तुरन्तही जान सकते हैं। आत्मान्तर्गत सत्य और यथार्थ होंगे वह फौरन समझ लेते है। सत्यका प्रकाश प्राप्त करने और उस पर मनन करना सर्वदा पसन्द करते हैं। स्थूल इन्द्रिओंके साधन विनाभी कितनेही प्रसंग और खबर जान सकते हैं। न्यूटन, कोपरनीकस, कपिल, लापलास और टोलमीनी अनुसार अध्यात्म विषयोंमें प्रीति रखनेवाला और अध्यात्मयोगाभिरत होते हैं। ऐसे मनुष्यो प्रज्ञाचक्षु, आत्मनिष्ठ, ब्रह्मनिष्ठ या तत्त्वनिष्ठ कहलाते हैं। भक्तिभावकी प्रबलता से सर्वदा शान्त, विरक्त और परमानन्द युक्त हो रहते हैं।

तर्क शक्ति और तुलना शक्तिके प्राबल्यसे सत्यको तुरन्त ग्रहण कर लेते हैं। जिस सत्य पिछे से तत्त्व ज्ञानको परीक्षामें से यथार्थ रीतिसे पसार हो सकते हैं। अध्यात्मिक विषयोंके सत्य सिद्धान्तोंको

समझने में अति तीव्र बुद्धि या सूक्ष्म बुद्धि युक्त होते हैं। आत्मा, परमात्मा और उसके स्वरूपको तथा पुनर्जन्मको मानने वाले होते हैं।

अध्यात्म ज्ञान की शक्तिवाले मनुष्य गाढ अन्धकार युक्त प्रदेश को भी तोड़कर ज्ञानयुक्त प्रकाश डाल सकते हैं। तथा सूर्यके प्रकाशसे भी जिन सिद्धान्तो यथावत् प्रकाशित नहीं हो सकते, वैसे सिद्धान्तो समझ सकते हैं। और स्पष्ट कर सकते हैं। अदृश्य पदार्थों या बनावोको भी विचारके अद्भुत सामर्थ्य द्वारा प्रत्यक्ष कर सकते हैं। तदुपरान्त अनन्त विश्वकी अन्दर सर्वत्र प्रसारित हुए ज्ञानके अपार महासागरमें से अमूल्य सत्य सिद्धान्त रूप असंख्य रत्न प्राप्त कर सकते हैं। उसमें देश, काल या वस्तुका भी अवरोध नहीं आते समय अपना मौन तोड़कर सत्य हकीकत बाहिर निकालने पूर्व भाविकी चावी उनके मनमें आरहती है (आबसती है)

अनन्त को समझने वाली अध्यात्मशक्ति

सूर्य
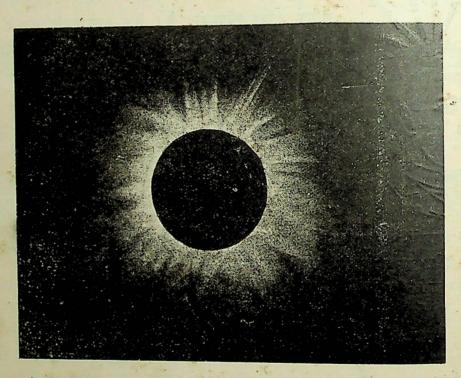
परमात्माकी अपार रचनाको समझने वाला मनुष्यके अन्दर अध्यात्म गुण बसा हुआ है। जिस गुण द्वारा मनुष्य प्रकृतिके अन्दर प्रसारित (फैली हुई) परमात्माकी अपरिमित और अनन्त शक्ति, सामर्थ्यका, अनन्त आकाश और अनादिकालका, असंख्य पदार्थों और प्रकृतिके अनन्त स्वरूपका तथा उसका महत्वपूर्ण गाम्भीर्यका अनुभव कर सकते हैं।

अनन्त को समझने वाली अध्यात्मशक्ति

धूमकेतुका मार्ग

शनि
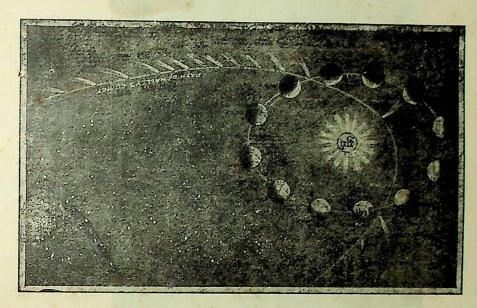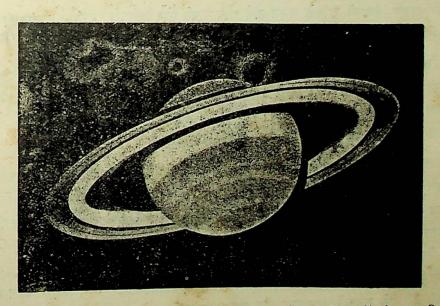
कुदरतकी शोभा, विस्तृतता और कुदरतका वैभव, प्रभाव कैसा है वे चारों ओर प्रसरित ईश्वरकी रचना देखकर समझमें आता है ।

अनन्तको समझने वाली अध्यात्मशक्ति
गुरुका पृष्ठ और बिम्ब.
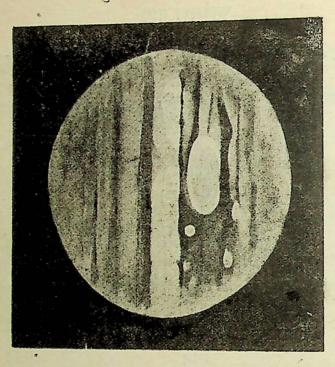
एक अन्धेरी बादल बिनाकी रात्रिके समय ऊंचे आकाशकी ओर देखो तो असंख्य मुक्तावली लटक रहे हो तथा हीरे माणिक्य जड़े हुए गलीचा बिछा दिया हो ऐसे दीखते हैं।

अध्यात्मशक्तिसे ही अन्तरिक्षमें घूमते अनेक गोलाओं, सूर्यमण्डलों, चमकती हीरक कणिकाओंके स्वरूप समझनेको खगोल वेत्ताओं परिश्रम करते हैं। उसका गणित गिनते हैं और उसका माप, परिमाण कद, आकार, रूप, रंग, गति आदि का अन्वेषणकर प्रकाशमें रखते हैं। इसमें से पाठक गणको किंचित् ख्याल देनेके लिये अंतरिक्ष वासी चार देवोंका दर्शन यहां पर दिया है।

दुनियाके प्रलय समय पर कैसी स्थिति होगी! अथवा होनी चाहिये? सृष्टिकी उत्पत्ति किस प्रकार और कैसी रीतिसे हुई होगी? विश्वके समग्र गोलाओं किस सिद्धान्तसे रचाये होंगे? वे किस नियमसे घूमते हैं? मनुष्य भूमिपर कैसी रीतिसे आये होंगे? वृक्ष, वनस्पति, पुष्प, फल आदिके मूल, बीज किसने बनाये होंगे? इत्यादि महान और अगम्य तथा अगोचर विषयोंका मात्र दार्शनिक शक्तियोंसे ही निर्णय कर सकते हैं? ऐसा सर्वोत्कृष्ट कार्य इस प्रज्ञा चक्षु या अध्यात्म ज्ञानकी वृत्ति द्वारा होता है। इतना ही नहीं परन्तु परमात्माका भी विश्वके एक महान आत्मा जानकर, स्वीकार कर तथैव श्रद्धा और भक्ति से मानते हैं, पूजते हैं। ऐसे मनुष्यों परमात्मा और आत्माका ऐक्य भावका अनुभव करते हैं।

घर संसारके सम्बन्धोंको भी ईश्वरी मानकर आनन्द उत्साह और आत्म सन्तोष से अनेक प्रकारके गूह्य सुखोंका भी अनुभव करते हैं। मुख्यतः धार्मिक विषयोंमें तो इतना अनुपम आनन्द लेते हैं कि उसका शब्दोंसे भाग्ये ही वर्णन हो सकता है। मात्र अनुभव द्वारा ही यह आनन्द का अमृत रसास्वाद ले सकाता है। परन्तु ऐसे अमृत रसका पान करनेका सद्भाग्य किसी सौभाग्यशालीको ही मिलता है। कारण मनुष्य समाज विशुद्ध नीति और धर्मसम्बन्धो विचारोंके वर्तनमें अभी तक बहुत ही पीछे और अपूर्ण तथा अधम दशामें है। किन्तु इतना तो निश्चित है कि इस वृत्ति द्वारा मनुष्य अपना आत्माके अन्त-रात्मा परमात्मा साथ एक होकर परमात्मामें तन्मय बन राजयोग का समाधि द्वारा अति उत्कृष्ट प्रकारका परमानन्द ग्रहण करतेहैं। जिस इस वृत्तिके कार्यके उपभोक्ता है वे सचमुच स्वर्ग सुख और मोक्षधामका अनुभव अपनी आत्मान्तर्गत इस वृत्ति द्वारा कर सकते हैं। प्रोफेसर फाउलर कहते हैं कि—

"All this and Much more, is not imagnative rhapsody l ut sober, philosophical deduction on the one hand and experimental reality on the other. This sublime truth will not be appreciated by the many because of the lowstate of this faculty, yet spiritually-mindedfew will feel the sacred response in their own souls, and all who will inquire at the shrine of their inner man will experience enough to confirm the witness"

अर्थात्—इस सब कल्पित या मन रचित नहीं किन्तु बहुत ही गहन और तत्त्वज्ञानकी दृष्टिसे जांच किया हुआ और अनुभवगम्य सत्य है। इस सत्य सिद्धान्तका स्वीकार करने बहुतही कम समर्थ है। कारण इस शक्तिका अवयव बहुत ही कम मनुष्यों में विकसित हुआ देखने में आता है। जिस अपना अन्तर आत्माकी शहादत रख इस विषयका अन्वेषण करेंगे उनका हृदय इस विषय की गवाही पूरेंगे। इससे आगे चलते वह सूचित करते हैं कि—

"Bear in mind that all this is but rigid scientific deduction from the normal function of spirituality which no previous phrenological author seems to have appreciated"

"तदुपरान्त अन्य रीतिसे अन्वेषण करतें हुए भी दिखाई देता है कि मनुष्य जब अपनी स्वभाविक, शांत, पवित्र, निर्मल, धार्मिक और नैतिक विशुद्ध स्थिति में होते हैं तब अपनी वृत्तियों के कार्यसे जो वशुद्ध आनन्द, अनुपम सुख, शांति और आत्मसन्तोष प्राप्त करते हैं। जब मनुष्य अपनी पशुवृत्तियों या इन्द्रियगण की प्रबलताके लिये उसकी अधमप्रकार की स्वार्थी वृत्तियों को आधीन बनकर धर्म और मानसिक पवित्रताका कोई भी विचार किये बिना किसी भी कार्य करने लग जाते हैं तब अन्तरात्माका आनन्द उसकी तुच्छ, भययुक्त (लज्जाशील) चालचलन से कितना विशेष कम हो जाता है! उसका सब किसी को अनुभव है। इसी अनुसार विशुद्ध, हार्दिक और आध्यात्मिक प्रेम और स्वार्थी (मतलंबी), शारीरिक पशुवत् प्रेमके आनन्द में भी कितना फर्क (अंतर) है? वे समझदार और सुज्ञ पाठकगण सहज समझ सकेंगे।

दिनांक	सदस्य संख्या	दिनांक	सदस्य संख्या

यश और कीर्तिको हलका प्रकार की अभिलाषा या आकांक्षाको तृप्त करने की इच्छा से हाहा और हुररे हुररेके पुकारो (लम्बा आवाज) द्वारा मिलता क्षणिक आनन्द और पूज्य महर्षिदयानन्द, श्री दादाभाईनवरोदजी, श्री तिलकमहाराज, महात्मागांधीजी, पूज्य स्वामी श्रद्धानन्दजी, श्री गोखलेजी तदनुपरान्त देशकी शुद्धि, संगठन और स्वातन्त्र्यके लिये धर्मकी वेदीपर चढ़ा हुआ दूसरे बहुतही वीर हुतात्माओंके निष्काम धर्म, कर्म और सेवाके बदलेमें मिलती, शांति और परमानंदको मुकाबिला करो कितना अन्तर है ! इस दोनोंका कारणका अन्वेषण करो, स्वार्थवृत्ति और पशुवृत्तियोंके कार्यसे मिलता आनन्द और अध्यात्मिक शक्तियों के कार्य से मिलता आनन्दमें जमीन और आस्मानका फर्क है । आकाश और पाताल (भूमि के भीतर) जितना अन्तर है । क्षुद्र जड़ पदार्थ और परमात्मामें जो अन्तर है, एक महा निर्बुद्ध या पागल मनुष्यमें और एक महान् महात्मा मनुष्यके हृदयमें जितना फर्कहै, जितना अन्तर है उससे भी विशेष अन्तर आध्यात्मिक और अन्य शक्तियोंके आनन्द बिचमें है ।

खुली आंख द्वारा साधारण देखनेसे आँखको तो सामान्य रीतिसे तृप्ति होतीहै, परन्तु वही पदार्थों को जब बुद्धिपूर्वक और नैतिक दृष्टिसे देखनेमें आताहै, तब ऐसे दर्शनकी अन्दर कोई अलौकिक प्रकारके हो आनन्द आता है । चोरी कर, कायदेकी कलमें हाथमें लेकर, अनेक रीतिसे झूठा सच्चा बालनेकी युक्ति प्रयुक्तिओ रचकर कर्मदत्त बुद्धि चातुर्यका उपयोगसे भी कितने कोट पतलून धारिओ अपनी (जेब) भरनेमें आनंद मानते हैं । परन्तु वही बुद्धिशक्तियोंका उपयोग विश्वके महान गोलाओंकी रचना, गति और नियमको निरखनेमें ऐसेही सृष्टिके पदार्थों का अवलोकन कर उसकी रचना और विशेषता, उत्तमता, गुण, योग्यता समझ जीव, ईश्वर और प्रकृतिके नियमोंका यथावत् अनुभव करनेमें जो आनन्द मिलता है वह समयके आनंदके साथ किंचितभी उनके पापयुक्त अधम आनन्दकी सरखामणी (मुकाबिला) हो सकता है ?

संक्षेप में मनुष्यकी अन्दरकी सम्पूर्ण शक्तियों जब मनुष्यकी सर्वोत्कृष्ट और सर्वोत्तम धार्मिक, नैतिक या आध्यात्मिक शक्तियोंके आधीनता में रहकर कार्य करते हैं । तब प्रत्येक मनुष्यको एक उत्कृष्ट प्रकारका विशुद्ध आनंद और सुखका अनुभव मिलता है । जो वही शक्तिके अकेला कार्यसे कभी नहीं मिल सकता । इस सब परिस्थिति और मानसिक गुणोंके एक दूसरे साथके सम्बन्धों यही दर्शाते हैं कि आध्यात्मिक शक्तियोंकी सहाय तथा अनुवर्त्तन से मनुष्य अनेक प्रकारके उत्तम सुखों, मानसिक और भी शारीरिक सुखों का सहस्र प्रकारसे अनुभव कर सकते हैं । इसलिये इस आध्यात्मिक शक्तिके कार्यको हमेशा विकसित करनेकी और उनके कार्यको प्रमुख या नेतृत्वका स्थान देकर मनुष्यने वर्ताव करनेकी खास जरूर है । कारण मनुष्यके योग्य हमारी सर्वोत्कृष्ट स्थिति और दरजाका हमको यथावत् ज्ञान और यथावन मान होना चाहिये । समग्र जीवनके मुख्य उद्देशरूप यथार्थसुख तथा परमानन्द तभी यथावत मिल सकता है ।

न्यून---जिनमेंअध्यात्मरति न्यून प्रमाणमें होती है वे अलौकिक या देवताइ आश्चर्यमय विषयोमें शंकाशील होते हैं । अगम् निगममें मानते नहीं । आश्चर्यप्रियता और विश्वासभी कम होता है । प्रत्यक्ष

परायण वृत्तिवाला बन रहतेहैं । जो कुछपदार्थ विज्ञानसे सिद्ध होंगे, उनकोही वतमान सायन्टीस्टोंकी अनुसार माननेवाले होते हैं । टेलीपथी, प्राणविनियम या हीप्नोटीझम आदिमें मानते नहीं ।

आत्मा, परमात्माकी दिव्यविभूतियोंको नहीं माननेका विचार वाले बनतेहैं । अध्यात्म शक्तियोंके ज्ञानमें बिलकुल अन्धश्रद्धालु होते है ।

विकास---आध्यात्मिक सुखानन्दका अनुभव करनेकी जिनमें इच्छा होगी वैसे प्रत्येक मनुष्यने इस अध्यात्मयोगको शुरू करनेकी परमपवित्र फरज समझनी चाहिये । इस शक्तिको विकसानेका यथार्थप्रयत्नका नामही योगाभ्यास या योग है । "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" चित्त वृत्तिके अवरोधका नाम योग है । ऐसे जो कहाहै वह यथार्थ है । कारणकि जब मनुष्य दुनियादारीके क्षणिक सुखोपभोगकी लालसा (कामना) छोड़कर यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि आदि साधनों यथावत् सिद्ध तभी कर सकते हैं कि जब संसारके विषयोके भोग, स्वार्थ और पशुवत वर्तन युक्त मनोभावोंको दबाकर चित्तको यथावत् स्थिरकर ध्यान योग या अध्यात्मयोगमें स्थिर करेंगे ।

भगवान् पतंजलिने योग दर्शनकी रचना इसलिये करी हुई है । इस अध्यात्म योगकी स्थितिको प्राप्त करनेके लिये प्रथम क्रिया योगके जो नियमो या उपदेशो दर्शाया हुआ है यह पर हम पाठक वर्गका अत्र ध्यान खींचनेकी विशेष आवश्यकता समझतेहैं । कारण उसकी अन्दर इस विषयका सम्पूर्ण विकास करनेके उपायोंका लगभग (प्रायः) बहुतही अच्छी रीतिसे समास करनेमें आये हुए है ।

क्रियायोगके सामान्य सूत्रो—

१. आत्मा और परमात्माका सचमुच आत्मिक सम्बन्ध शुरू करना सीखलो ।

२. अमुक समय पर फुर्सत मिले तब नहीं परन्तु प्रतिदिन नियमित रीतिसे और बारम्बार उसका अभ्यास करो ।

३. अभ्यास और वैराग्यसे चित्तकी अस्थिर वृत्तियोका निरोध करो ।

४. ईश्वरकी अन्दर पूर्णश्रद्धा, दृढ़भक्ति और परमप्रेम रखो । उनके अद्‌भुत कार्योका सर्वतः फैलाई हुई उनकी विस्तृत लीलाका सर्वतः निरीक्षण करो ।

५. मन, वाणी और क्रियामें एकता और विशुद्धि रखो । प्राणी मात्र के साथ प्रेमपूर्वकका वर्ताव करो ।

६. यम, नियम, आसन और प्राणायाम आदि अष्टांग योगके अभ्यास पिछे पुरता समय देवो ।

७. चित्तके विक्षेप को करने वाला कारण को दूर हटादो । सांसारिक राग, द्वेष युक्त वृतियोंका निरोध करो ।

८. अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पांच यम हैं । उनके लक्षण और उपयोगका, लाभका अभ्यास कर यह अनुसार आचरण करो ।

९. शौच, सन्तोष, तप स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान ये पांच नियम है, उनका यथार्थ मतलब लक्षण और लाभ समझ कर यह अनुसार अपना बर्तन रखो ।

१०. आहार, विहार और निद्रा आदि कार्यो में संयमी रहो।

११. दुनियादारी के (सांसारिक) द्वार बन्ध करो और अध्यात्म योग पिछे लगे रहो।

१२. अनन्त आकाश के असंख्य गोलाओ प्रति ध्यान देओ और उनकी अन्दर बसी हुई परमात्मा की महान शक्ति, गति और ज्ञान विभूति के साक्षात्कार से और प्रभु के पवित्र प्रेमसे तुम्हारे आत्मा को पूर्ण करो।

१३. विश्व के समग्र प्रदेशों में उनकी व्यापक सत्ता को मनन और निदिध्यासन द्वारा साक्षात्कार करो।

१४. ईश्वर स्तुति, प्रार्थना, उपासना रूप महान कार्यों में परम प्रीति और भक्तिभावसे हमेशा लगे रहो।

१५. हमेशा श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि और प्रज्ञा ये पाँच लक्षणो अध्यात्म ज्ञानके जिज्ञासुओंमें अवश्य होनेकी आवश्यकता है। इसलिये ये पाँचको यथावत् धारण करो।

अन्धेरे कमरेमें या कन्दरामें बैठा रहने की जरूरत नहीं है। कुदरती प्रकाश अध्यात्म रति को विकसानेमें अनेक रीतिसे सहायभूत होते हैं। इसलिये उसका सेवन करो।

१६. योगीकी योग्यताकी प्रत्येक स्थितिका अनुभव स्वयम् (अपने आप) लेकर अध्यात्म ज्ञानमें संलग्न रहकर परमात्माने दी हुई सम्पूर्ण शक्तियोंके कार्यको यथा शक्य शुभ कर्ममें सम्पूर्ण रीतिसे प्रवृत्त कर आत्मोन्नति प्राप्त करो। तथा अन्य आत्माओं को भी यह रास्ता बताकर अमृत सुखके भागी बनाओ।

समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत्।
न शक्यते वर्णयितुं तदागिरा स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते॥
यस्मिन्न द्यौः पृथ्वी चान्तरिक्ष मोतं मनः सहप्राणैश्च सर्वैः।
तमेवैकं जानथ आत्मानं अन्यावाचो विमुञ्चथ अमृतस्यैष सेतुः॥

समाधि योग द्वारा जिनके मनका मैल तमाम साफ हो गया है, ऐसे मनुष्यको अपना आत्माके अन्तरात्माकी अन्दर तन्मय होनेमें जो अनुपम आनंद मिलता है उसका वाणीसे कभी वर्णननहीं हो सकता। किन्तु जीवात्मा यह आनंदका अनुभव तो अपना अन्तरात्मासे ही करता है। इसलिये परमात्मा या विश्वके परमआत्मा की अन्दर प्रकाशित सूर्यादि लोग, अंतरिक्ष और पृथ्वी आदि लोग तथा सम्पूर्ण प्राण इन्द्रियों सहित मन आदि विश्वके समग्र पदार्थों ओत प्रोत हो रहे हैं। यही एक विश्वात्माको जानने का प्रयत्न करो। कारण वही एक अमृतका निधिहै।

२०-आशा (HOPE)

"कोई लाखों निराशामें अमर आशा छुपायी है"

आशा—भाविसुखकी अभिलाषा, उत्साह, आनन्द, आशाके बंगला बनाना, वस्तु स्थितिकी अच्छी दिशाही देखना, सट्टा करना, भाविको बहुतही महत्व देना इत्यादि भावनाओं इस आशावृत्तिके ही भिन्न भिन्न स्वरूप हैं। उसके अतियोगसे विना विचार किये मनमें लड्डू बनाना और आशाके प्रासाद रचने में आता है। हीन योग होनेसे निराशा हतोत्साह औदास्य और वैराग्य अथवा विरक्त वृत्तिको जन्म पाते हैं।

स्थान—इस आशा वृत्तिका अवयव आत्मनिष्ठाके अवयवके अग्र भागमें, अध्यात्म रतिके स्थानकी पिछले भागमें, सौन्दर्य, दृढ़ता और पूज्यवृत्तिके स्थानकी बीचमें आया हुआ है।

इस अवयवके मुख्य दो विभाग हैं। जिसमें ऊपरका विभाग आध्यात्मिक, नित्य अमर और पार-लौकिक सुखकी शाश्वत मुक्ति सुखकी आशा सम्बन्धी कार्य करते हैं। जब नीचेका विभाग इस लोकके अस्थिर सुख सम्बन्धी आशाओं धारण करते हैं।

आत्मनिष्ठाके स्थानकी पासही इस अवयवका स्थान कोई विशेष हेतुपूर्वक योजने में आया हुआ दीखता है, और यह दीखाते हैं कि मनुष्यको उनकी आशा और कर्मके अनुरूप फल अवश्य मिलता है।

"मनुष्यकी प्रत्येक अवस्थाको सुखी बनानेके लिये आशा ये एक अत्यन्त अगत्यकी वृत्ति है, इसके परिणामसे मनुष्य कितनी वार प्रत्यक्ष विजय करते भी अधिक सन्तोष प्राप्त करते हैं। जो मनुष्य हमेशा आशाके महलों, हवाईकिल्लाओं (हवा दुर्ग) बनाते रहते हैं। मनमें मन घड़न्त अश्व दौड़ाते रहते हैं। उनमें ये स्थान खास विस्तृत होते हैं। अन्य शक्तियोंकी जो कोई अभिलाषा होती है वह पूर्ण ही होंगे ऐसी इस वृत्ति आशा अथवा विश्वास देती है। इस जीवन सम्बन्धी नहीं किन्तु उसके द्वारा मनुष्य यह लोक और परलोक सम्बन्धी भी आशाओं रखने में समर्थ होते हैं और आत्माका अविनाशित्व स्वीकारते हैं।

अति प्रबल प्रमाणमें इस वृत्ति विकसित होगी तब असम्भव, असम्बन्ध और अनुचित विषयोंकी इच्छाभी पूर्ण होनेकी सम्भावनाकी कल्पनाकर बैठते हैं। परन्तु जब यह वृत्ति बिल्कुल न्यून प्रमाणमें होगी और सावचेतीका अवयव अच्छा विकसित होगा तो मनको निर्बल और निरुत्साहित बनाते हैं। तथा रंज, खेद, चिंता, दुःख और निराशाको जन्म देते हैं। ऐसा डा० स्परजीयम का कहना है।

डा० ज्योर्ज कोम्ब कहते हैं—

Phrenology shows that man's ardent hope and longing after immorta. lity results from two. Faculties, Love of life and Hope— combe

उपयोग—जैसे स्मरणशक्ति का सब सम्बन्ध करीब गत समयके बनाव (प्रसंग)के साथ है, ऐसे आशा वृत्तिका सम्बन्ध खास करके भविष्य या भावी आशाओं और अभिलाषाओंकी साथही स्वभाविक रीतिसे जोडाया हुआ है। भविष्यकी कोई भी प्रकारकी आशाके अभावमें वर्तमान समयमें पहिलेसे तैयारियाँ करना कभी नहीं बन सकते। हम हमेशा भविष्यके लिये आशावंत रहते हैं।

ईश्वरआराधना, पूजा, व्याख्यान, सभा, धन्धा, रोजगार, प्रवास, विवाह, गर्भाधान, कृषिकार्य और भी आम वृक्ष रायण, निम्बू, केला, सेब, अनार, इत्यादि अनेक प्रकारके फल, फूलके वृक्ष, वेल, लत्ता और पौधा (छोटा वृक्ष) तथा बीज बोनेका कार्य हम भविष्य ऊपर सम्पूर्ण विश्वास रखकर ही शुरू करते हैं। कारण यह सबके विपाकका भावी समय आनेकी हमको श्रद्धा है। जो भविष्यमें अन्न या कर्म का अच्छा फल होनेकी हमको आशा ही न होती तो वर्तमान समयमें विस्तृत हाथसे बीजारोपण कर अन्नादि बीजको धूलमें डाल मूर्ख कौन बनते ? कोईभी नहीं।

सब तरफके संजोगों और स्थिति की बहुत सावधानी से तलाशी करते यह स्पष्ट मालूम पड़ते हैंकि हम भावि-सुख प्राप्तिके लिये अनेक प्रकारके खर्चा और भारी प्रयत्न निरन्तर कर रहे हैं।

आशा वृत्तिके अभावमें रेल, तार, टेलीफोन, स्टीमर, विमान, विद्युत, रेडियो आदि पदार्थों और साइन्स आदि अन्वेषण जैसे कुछभी महत्त्वपूर्ण कार्य होते ही नहीं। होना सम्भावित भी नहीं था। या किसी भी प्रकारका सुधारावधारा मनुष्य जातिमें होने न पाया होगा। परन्तु भाविकी प्रबल आकाँक्षासे मनुष्योंको अनेक प्रकारके असंख्य सुख देनेके लिये प्रयत्नशील और आनन्दयुक्त बनाए हैं।

डा० गोल, डा० स्परझीयम, ज्योर्जकोम्ब और डा० ओ० एस०, फाउलर इस आशावृत्तिके अवयवको सम्पूर्ण रीतिसे स्थापित और सुस्थिर हुआ मानते हैं, और वे शोकाकुल, चिंतित और नाउम्मेद निश्चेष्टको आशाकी शक्तिकी न्यूनताका लक्षण समझते हैं। इसी के अनुसार प्रत्येक शक्तिकी न्यूनताके लिये विपरीत या विरुद्ध गुणों दृश्य होता है ऐसे सूचित करता है। तथापि प्रेमवृत्तिकी प्रतिकूल दशामें या पोषणके अभावमें झूरझूरकर मर जानेका वियोग जन्य दुःख पैदा होता है। अथवा विरुद्ध जातिका समूचा तिरस्कार (घृणा) पैदा होते हैं। यशाभिलाष या मानपानकी इच्छाके अभावसे निर्मानिता, क्षुधाके अभावसे खोराकपर अरुचि, भक्तिभाव और पूज्यभावके अभावसे नास्तिक, ईश्वरको और पूज्यगणको नहीं मानने वाला, बुद्धिके अभाव से बेसमझ अज्ञानता वही अनुसार आशाकी न्यूनतासे निरुत्साह नाउम्मेद, निराशा आदि के जन्म होने हैं। यही अनुसार दूसरी सब मानसिक शक्तियोंका समझना।

जिनमें आशा का स्थान अच्छी रीति से प्रपूर्ण प्रमाण में विकसित होता है वह अनेक आशाओं से पूर्ण होते हैं। आकाश में हवाई किल्लाओं (हवा का दुर्ग) बनाते हैं। भविष्य के लिये हमेशा आशावंत रहते हैं। आगामी सुखों के संकल्प मात्र में आनन्द उल्लास इच्छा, रुचि के भोगी और भावी जीवन के रमणीय सुख स्वप्नों में आनन्द का अनुभव करते हैं। कभी निराश होते नहीं। बाधा, तकलीफ, कठिनाई का विचार किये बिना भावि शुभ परिणाम के मनसुबाओं (इरादा, तदबीर, हेतु, धारणा) को महत्व देकर प्रवृत्ति करते रहते हैं। भविष्य में बढ़ने की, बड़ा होने की आशा से वर्तमान दुखों की अवगणना, हंसी करते हैं। और "कोई लाखों निराशा में अजीब आशा समाइ है" ऐसा हृदयगत भावों से पूर्ण होते हैं।

धनाभिलाष की अधिकता के लिये कोई भी काम हाथ में ले लेते हैं और उचित, होना चाहिये इससे भी अधिक लाभ पहिले से ही मान बैठते हैं। भावि फायदा की आशा से आगे को आगे विशेष खर्च किये जाते हैं। सावधानी की न्यूनता से बारम्बार मुसीबत में आ पड़ते हैं। एक पाद आगे बढ़ने जाते तब दो पाद पीछे हटना पड़ता है।

शौर्य, शारीरिक बल, दृढ़ता और तर्क शक्ति की अधिकता से हमेशा साहसी और हिम्मत वाले होते हैं, तथा मुसीबतों और निराशा के प्रसंगों में भी अपना उद्देश्य से च्युत न होते परवाहसे चिपट रह बहादुरोसे उद्देश्यको पूर्ण करते हैं और जो स्वार्थ, स्वमान और यशाभिलाषा की अधिक आकांक्षा से संयुक्त हो तो महान् मुसीबतों सामने टक्कर लेकर सब शक्ति से सामना करता है, और तमाम संकलनाओं बराबर पूर्ण सफलता से पार उतारते हैं। कीर्ति की आकाँक्षा से मानपान की पिपासावाला बन रहते हैं। अध्यात्मरति और पूज्य भाव की विशेषता से नैतिक गुणों में उत्कृष्ट पद की प्राप्ति करने के लिए पूर्ण आशावंत होता है। इस शक्ति को तर्क शक्ति और तुलना शक्ति द्वारा समझपूर्वक दाबमें रखने की जरूरत है।

जिसमें पूर्ण प्रमाण में इस वृति होती है वह व्याजबी (उचित) आशा रखते हैं और अपने से बन सके उतना ही सीर पर लेते हैं। साहसी और उत्साही होता है। किन्तु सावधानी की अधिकता होगी तो हमेशा संभाल पूर्वक कार्य करते हैं। पशु वृत्तियों की अधिकता से यह लोक के सुख के लिये विशेष आशावंत होता है, जब परलोक के सुख सम्बन्धी विशेष विचार नहीं करते। परन्तु नैतिक शक्तियों की अधिकता हो तो परलोक की अच्छी स्थिति की आशा रखते हैं।

साधारण—जिसमें यह वृत्ति साधारण प्रमाण में होती है, वह बहु आशावंत नहीं होते। उत्साहक साधनों की इच्छा से भी मुसीबतों का विशेष विचार करते हैं। वर्तमान की बहुत चिन्ता में रहते हैं भविष्य अर्थ बचाव की ज्यादा चिन्ता करते नहीं : धनाभिलाषा की अधिकता के लिए धन की लेन देन बहुत सावधानी से करते हैं। मुख्यतया ब्याज पर रखते हैं और कभी देते तो भी बहुत ही फायदाकारक धंधा में पूंजो (पैसा) सम्पत्ति रोकते हैं, धीरे धीरे धन एकत्र करते हैं। किन्तु खो देते नहीं, बरबाद नहीं करते। बुद्धि शक्तियों के प्राबल्य से आखिर दीर्घ समय के पश्चात् भी एकत्र करते हैं। सावधानी

की अधिकता से बहु वचनों नहीं देते परन्तु आत्मनिष्ठा के प्राबल्य से दिया हुवा बचन बराबर पालते हैं (किये अनुसार बर्ताव करते हैं) स्वमान की न्यूनता और आत्मनिष्ठा, पूज्य भाव और सावधानता की अधिकतासे मोक्ष सुखके लिए अति चिन्तातुर बन रहते हैं। दृढ़ता और सचेतना की अधिकता से कोई भी काम धंधे में पड़ने में बहुत ही संभाल रखते हैं। किन्तु शुरू किये को पीछे छोड़ते नहीं। हमेशा अनुकूल संयोगों की चाल, मार्ग देखते हैं, निराश नहीं होते हमेशा उत्साह पूर्ण होते हैं।

न्यूनता—जिन्होंमें यह वृत्ति न्यून प्रमाण में होती है वह निरुत्साही होता है थोड़ा भी साहस करते नहीं, कार्यों को बहुत ही मौकूफ रखते है। सावचेती की अधिकता और आशा की न्यूनता का ये परिणाम है। हमेशा हर एक कार्य में पीछे रहता है, पीछे हटता है। हमेशा अन्य के लिये शंकाशील रहते हैं। कीर्ति को प्रबल अभिलाषा और पूर्ण सावधानी होने पर भी सफलता की आशा कम रखते है। इसलिये समाज या सोसाइटी में बहुत ही पीछे पड़ जाता है। कारण ऐसे मनुष्यों में प्रशंसा की आशा के स्थानहास्य पात्र होने का भय अधिक होता है। थोड़ी थोड़ी देर में (अल्प समय में) ऐसे मनुष्यो निरुत्साही बन जाते हैं। तदुपरान्त वह अपना मार्ग में कुछ भी कठिनता न होगी तौ भी मुसीबत आपदों के पहाड़ धार बैठते है। साहस और बहादुरी रहित होते हैं। तथा तकलीफ को बहुत महत्व का स्वरूप दे देते है। और परिणाम में कुछ करने की या जोखिमका, जिम्मेवारी का कार्य करने की किंचित् भी हिम्मत कर सकते नहीं।

पहिले सूचित किया है ऐसे हम गत समय की साथ स्मृति द्वारा, मौजूदा वक्त साथ अपना अनुभव से और भाविन् साथ भाविआशा तथा अगम चेती से जोड़ाया हुआ है। हम जो कुछ काय वर्तमान काल (मौजूदा वक्त) में करते है, उनका भी अमुक अंश में हमारा भावि के साथ सम्बन्ध है।

ऐसी रीति से कुदरत ने हमारी सन्मुख भाविन्‌का एक महान् विस्तीर्ण कर्म क्षेत्र खुल्ला रख दिया है कि जिस हमको विद्यमान दशा में शुभ कर्म रूप बीज बोने का और भविष्य में उनके शुभ फल चखने का प्रति क्षण सूचवते है। और जैसे जैसे हम भाविन् का विचार करके अनेक शुभ कर्म रूप बीज उसमें बोयेंगे वैसे वैसे हमको सम्पूर्ण शुभ फल की आशा रखने का पूर्ण अधिकार है। कुदरत का ये एक अचल नियम है। "नहि कल्याणकृत् कश्चित् दुर्गति तात गच्छति" ऐसे जिस गीता में कहा है वह सर्वा से सत्य ही है। एक भी शुभाचरण रूप कर्म का फल दुर्गतीको प्राप्त नहीं होते, उनका सुन्दर फल अवश्य मिलते है। जिन्हों भविष्य (भाविन्) की आशा कम रखते हैं वह वर्तमान में बहुत ही कम करते या प्राप्त भी कम कर सकते है। जब बराबर समझ और अगमचेती (दूरदर्शी) द्वारा विस्तृत योजनायें हो सकती हैं, और द्विगुन लाभ होता है।

आशा के अभाव में या निराशा के एक प्रबल सपाटा से हृदय फौरन विदीर्ण हो जाते हैं और हाथ, पैर निर्बल ढीला हो जाता है। आशा बिना के सब प्रयत्नों और तीव्र इच्छाओं या कामनाओं तमाम शिथिल, निर्बल और दम बिनाकी हो जाती है। और कभी पूर्ण कर सकाती ही नहीं। निराशा से आशा का अमृत वृक्ष और उनके समग्र शक्तिरूप शाखाओं फौरन सूखने लगती है। शुष्क हो जाती है और तमाम शुष्क तथा निरस बनकर थोड़ा समय में मृत्युवश हो जाते हैं। इतने लिये

"निराश कभी नहीं होना" "Never Despair" "आशा अमर है" इत्यादि महान् सूत्रों को ध्यान में रख प्रत्येक मनुष्य ने हमेशा आशायुक्त और उत्साह पूर्ण रहने की जरूरत है।

निराशा ये एक प्रकार की मानसिक निर्बलता है। मनुष्य स्वभाव का यह कोई मूल गुण या वृत्ति नहीं है। हमारे हमेशा आशायुक्त रहना ही चाहिये। थोड़ी ठोकर लग जाय या पीछे हट जाओ तो तुरंत उत्साह को धारण करके तैयार हो जाओ और पुनः नये सिरे से, पुनर्वार नई प्रवृत्ति चालू करो। शायद आज संयोगो भिन्न प्रकार के होगा तो कल बदल जायगा। मुसीबतो, दरिद्रता, दौलत कोई एक सर्वदा रहते नहीं। बहादुर और समझदार मनुष्यों धैर्य धारण कर किसी भी समय आशा का त्याग करते नहीं। हमेशा दिनकर के प्रकाश होने पूर्व अंधेरी रात्रि ही होती है। जिस कार्य में कुछ सुधारा हो सके वैसा न होगा उसके लिये बारम्बार शोक, पश्चाताप नहीं करना। जीवन की प्रत्येक दशा में मुसीबत तो होती ही है। परन्तु उसे पार करने में; उसमें से बाहर निकलने में आनन्द समाया है। दुर्भागी दशा पर बारम्बार विचार करने से वह कुछ कमी होती नहीं। मुसीबतों से घबराने से, प्रयत्नों को शिथिल करने से विजयको धक्का लगता है, आत्मा निर्बल बनता है और कलुषित होता है। इसलिए शोक, रंज और निराशा को दीर्घ समय कभी तुमारा मनमें टिकने नहीं देना, चालू नहीं रखना। फौरन उसको दूर करो।

भय, कष्ट, चिंता और निराशा से क्षुधा मन्द हो जाति है। श्वास मन्द पड़ता है। रुधिराभिषरण की गति शिथिल हो जाती है, शरीर के सब अंग नरम धीमा और अशक्त बन जाता है, बुद्धि निर्बल हो जाती है। ऐसी दशा में ग्रहण किये हुए खोराक या जल पान की भी अच्छी असर होती नहीं।

मस्तक की अन्य शक्तियों जैसी कि उत्साह, धैर्य, दृढ़ता, साहित्य प्रेम, संगीत, ताल, आलाप, कला, सौन्दर्य, स्नेह, हास्य आदि वृत्तियों का कार्य भी फौरन अटक जाता है। गृहलागणीओं निरस बन जाती है। किसी भी कार्य में चित्त नहीं लगता। मुखमुद्रा निस्तेज निःसत्व शुष्क बन जाती है। मस्तकको बहुत ही हानि होती है। मानसिक शक्तियों लगभग समस्त निष्क्रिय हो जाती है। इसलिये ऐसी दशा का जैसे बन सके वहाँ तक शीघ्र त्याग करना।

इससे उलटा आनन्द, उत्साह और आशा का अमर प्रभाव से जीवन की प्रत्येक शक्तियों में उत्साह, बल, शक्ति और वीर्य आते हैं और मनुष्य की सर्व शक्तियों सजीवन बनाती हैं। एवं वह डबल सुख, आनन्द और सन्तोष देती है। इसलिये हमेशा ऐसे भावों को समस्त प्रयत्नों द्वारा प्रदीप्त करो। 'गतं न शोचामि' कर पुनः प्रत्येक कार्य में उत्साह पूर्ण हृदय से प्रवृत्ति करो। रोने से, विलाप करने से कोई बिगड़ा हुआ कार्य सुधरने का नहीं ये स्पष्ट समझो।

सशोक और निराशापूर्ण मस्तक की हालत (स्थिति) से मनुष्य की तनदुरुस्ती बिगड़ती है इसी रीति से आयुष्य को बहुत ही आघातजनक (चोट लगाने वाला दबाव, पड़ता है) जो मनुष्य ऐसी रीति से निराशा के कारण सोंच, चिंता से दब जाते हैं, आधीन हो जाते हैं वे अत्यंत निर्बल है और जितना अंश में ऐसे प्रसंगों में मनुष्य दबायें इतना ही उसका दुर्भाग्य समझना।

ऐसे प्रसंगों में मित्र, स्नेही, सम्बन्धी और हितेच्छु वर्ग का धर्म है कि ऐसे दब जाता, दुःखी होता

व्यक्तियों को प्रोत्साहन, उल्लास; धैर्य और आशा की अमर फल की जानकारी दइ, आशा की अमर बेल लत्ता का अमृत वर्षा कर अपनी मनुष्य के लिये की सम्पूर्ण फरजो बजानी चाहिये । निराशापूर्ण हृदयों को सजीवन करने की जरूरत है ।

निराशा के प्रसंगो दुनिया में अनेक बार बनते हैं । जैसा कि—

१. किसी के माता पिता का अचानक मृत्यु होने से, किसी निकट के सम्बन्धी का मृत्यु होने से ।

२. अत्यन्त प्रिय ऐसे बालकों या माता, पिता के वियोग से ।

३. किसी बड़ी व्यावहारिक विपत्ति, आपद आ जाय ।

४. बिलकुल निराधार और गरीब हालत में आ गिरेंगे तब ।

५. व्यापार, धन्धा में आकस्मिक हानि हो जाय ।

६. धन, सम्पत्ति या इज्जत का एकाएक कर्म संजोगे नाश होने से और ऐसे दूसरा अनेक प्रिया-प्रिय प्रसंगों के आवागमन और विसर्जन से मनुष्य हृदय अनेक बार कलेश, नाराजी खेद से घबरा जाते हैं, ऐसे सब प्रसंगों में स्नेही, सम्बन्धी और मित्र वर्ग ने तथा अडौस पड़ौस ने ऐसे व्यक्ति की मानसिक निर्बलता को दूर करने के लिये अनेक रीति से आशा, उल्लास और हिम्मत भरा हुआ वाक्यों का प्रयोग करना उचित है । निराशा से दु:खमें डूबा हुआ मनुष्य को उत्साहित करना हिम्मत देना सब मनुष्यों का धर्म है ।

विकास—हमेशा हृदय आशा से पूर्ण रकखो । हरेक वस्तु या प्रसंग की काली दिशा की ओर मत देखो, शुभ्र दिशा पर ही ध्यान देओ । मुसीवतों का विचार कम करो । अनुकूल संयोगों और शुभ परिणाम की ही आशा रकखो । चिन्ता को दूर करो । हमेशा प्रसन्न रहो । धन्धा रोजगार में उत्साह रक्खो । भविष्य के लिये आशावन्त रहो । हमेशा उच्च अभिलाषाओं, मंगल कामनाओ युक्त बनो । भजन, कीर्तन, संगीत, वाद्य आदि से आनन्द, उत्साह और आशा के अमर वृक्ष को सजीवन रकखो । हास्य वृत्ति को विकसाओ । बालकों की तरह हमेशा आनन्दयुक्त स्वभाव और आशापूर्ण हृदय रखो ।

निग्रह—इस वृत्ति के अति उग्र स्वरूप को भी निग्रह में (अंकुश में) रखने की आवश्यकता है । इसलिये—

१. बुद्धिपूर्वक विचार करके योग्य आशा रखो । अति आशावादी न बनो ।

२. विक्रीऔर लेन देन में नगद व्यवहार रखने सीखो ।

३. सट्टा (वायदे का धन्धा) या उधार ऊपर कभी आधार न रकखो ।

४. हवाई किल्ला (हवा के दुर्ग) बनाने का छोड़ दो । धारणा से आधा जोखिम (जवाबदारी) लेवो ।

५. शान्ति से मुसीबतों का योग्य विचार करो ।

६. अति उग्र धारणा से लाभ के बदले हानि होती है, इसलिये अति उग्र आशा की गति को तुरन्त अटकानेदियो—रोक दियो :

७. धीरे-धीरे प्रगति करने इच्छो । फौरन उछलना (कूद पड़ना) पसन्द न करो ।

८. जाँच, प्रयत्न, परीक्षा या नयी योजना पीछे खर्च करने में सम्भाल रक्खो ।

९. बुद्धि, समझ और निग्रह वृत्ति का उपयोग करो । आशा के दास न बनो ।
आशाया: ये दासा: ते दासा: सर्व लोकस्य ये ध्यान में रक्खो ।

आशा और निराशा प्रत्येक की उग्र गति को रोकने की अत्यन्त जरूरत है । इसविषय में प्रत्येक शक्ति की तरह इस आशा वृत्ति का भी हिन या अतियोग न होवे ये प्रत्येक प्रसंग में बहुत ही संभालने का है । साम्यावस्था प्रत्येक प्रसंग में पसन्द करने योग्य है । सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ।

आशा ये मनुष्य का, ऐसे ही प्राणीमात्र का जीवन है । और इन के द्वारा अन्य समस्त शक्तियाँ भी संजीवन रहकर अपना अपना कार्य करने तत्पर होती है । इसलिये आशा की वृत्ति का सन्मार्गे सदुपयोग करो ।
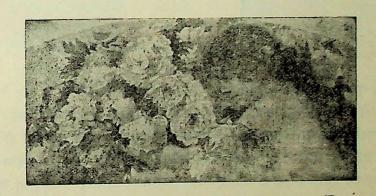
नं० २१—आत्मनिष्ठा अथवा आत्मबल

Conscience or conscientiousness
Conscience though distasteful truths msy tell.
But mark his sacred lessons well.
With it whoeverfalls at strife.
Loses a better friend for life.

आत्मनिष्ठा—आत्मबल, आत्मश्रद्धा, सत्यनिष्ठा, सत्यपरायणता, न्यायप्रियता, धर्म कर्तव्य, नीतिपरायणता, कर्तव्यनिष्ठा, धर्मनिष्ठा, नीतिनिष्ठा, बचन का पालन, आभार वृत्ति, पाप का भय, पश्चाताप या प्रायश्चित वृत्ति इत्यादि हृदय विशुद्धि दर्शक भावों का इस आत्मनिष्ठा की अन्दर ग्रहण करने में आये हैं।

प्रबल आत्मनिष्ठा

न्यून आत्मनिष्ठा
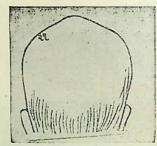
स्थान—इस शक्ति या वृत्ति के अवयव का स्थान यशाभिलाषा के अग्र भाग में, आशा वृत्ति के अवयव की पीछे और सावधता (सावधानी) तथा दृढ़ता के अवयव की बिच में आ रहा है। उसका ऊपर का भाग सत्यनिष्ठा तथा न्यायपरायण वृत्ति का अनोखा कार्य करते हैं। जब नीचे का भाग पशु, प्राणी या मनुष्य प्रति की आभार वृत्ति निदर्शनार्थ है। इस वृत्ति के अवयव का स्थान पीछे के भाग में जहां खोपरी (सिर की हड्डी) का भाग पीछे की ओर फिरता है वहाँ तक फैला हुआ है।

अन्वेषण—डा० स्परझीयमने इस वृत्ति के स्थान का अन्वेषण करके उसके स्थान को निश्चित किया है। आशा-वृत्तिके स्थान को निश्चित करने वाला भी वहीं था। वह कहता था कि "मेरे सब अवलोकन से यह सबूत हुआ है कि अवस्थावान वृद्ध मनुष्यों की अपेक्षा बालकों की अन्दर इस वृत्ति का स्थान विशेष वृद्धि पाया हुआ, विस्तृत होता है। कारण मनुष्य जैसे जैसे अवस्था से पहुंचते जाते हैं। वैसे-वैसे मनुष्य के संसर्ग में और अनेक संयोगों के सपाटा से उसको इस वृत्ति निष्ठुर, कुठित होती जाती है। मनुष्य जो विचार कर अपना गत समय की तलाशी कर देखेंगे तो उन्हीं को जरूर ये स्पष्ट मालूम पड़ेंगे कि वह पहिले करते आत्मनिष्ठा के कार्य विरुद्ध वर्तने में विशेष सतेज, निडर, निःशंक तथा नकटा, बेशर्म होते जाते हैं।

डा० ज्योर्ज कोम्ब अपने गृह सेवक सम्बन्धी कितनी एक आवश्यक हकीकत अनेक दृष्टान्त देकर इस आत्मनिष्ठा की कमी वाले मनुष्यों के वर्तन किस प्रकार के होते हैं वह नीचे दर्शाते हैं।

"after more than thirty year's experiance of the world in actual life, and in various contries I cannot remember anin stance in which I have been permanently treated unjustly by one in whom this organ and intellec were large. Momentary injustice, through irritation or misrepresen tation, may have been, done, but after correct information and time to beceme cool, I have found such persons ever disposed to act on the dictates of conscience, as well as satisfied with justice. Nor havethey ever maltreated me though we biffered greatly in opinion. but they represen my statements fairly and meet them with honest arguments, While my opponants who lack this organ have not scrupled to use falsehood misquotation, and misrepresentation as weapons of attack. Those in whom it is powerful are disposed to regulate their conduct by the nicest sense of justice are earnest upright and direct in manner. Inspire confidence and comvince us of their sincerity. It leads to punctuality in keeping appointment so as not to waste their time, to the ready payments of dedts, will, not send collectors away unsatisfied, except from inability to pay. are reserved in making promises, but punctual in keeping them and when favorably combined are consistant int conduct and pleasing in manners its predominance makes a strict disciplinarian and a rigid but just master. invests all actions with a sence of duty."

भावार्थ—"भिन्न भिन्न देशों के मेरे तीस वर्ष के अनुभव के बाद भी मेरे देखने में ऐसा एक भी मनुष्य नहीं आया कि जिस में आत्मनिष्ठा और बुद्धि शक्ति पूर्ण प्रमाण में विकसित हो। ऐसे किसी व्यक्ति ने मेरी साथ अयोग्य रीति से वर्ताव नहीं किया। यदि गलती, नासमझी या स्वभाव की उग्रता के कारण तत्क्षण अन्याय करने में आया होगा किन्तु सत्य हकीकत जानने के पश्चात् और स्वभाव शान्त होने के बाद ऐसे मनुष्य अपनी आत्मनिष्ठा अर्थात् अपना अन्तःकरण की वृत्ति अनुसार हमेशा बर्ताव करते और न्याय मिलने पर सन्तुष्ट होते देखे हैं। बल्कि इतना ही नहीं किन्तु हम अनेक समय महान् मतभेद से अलग पड़ जाये तो भी जाहिर में उन्होंने मेरा विचार स्पष्टता से प्रमाणिक मुद्रा द्वारा यथार्थ दर्शाकर हठाया है, किन्तु अयोग्यता से कभी भी वर्ते नहीं। तब मेरे विरोधी के जिन में इस वृत्ति की कमी थी उन्होंने असत्य उपाय या असत्य हकीकत जना कर ना समझी द्वारा अयोग्य हमला करने में कोई कमी रखी नहीं थी। परन्तु जिन में इस वृत्ति की प्रबलता होती है वे उत्तम प्रकार की न्याय परायणता दर्शा कर अपना वर्तन नियमित रीति से सुधारते मालूम पड़ते हैं। वे सर्वथा आग्रही, प्रमाणिक, शुद्ध, दिल के, निष्कपट और सरल हृदय के होते हैं। दूसरों के विश्वासपात्र बने रहते हैं और अपने प्रामाणिक उद्देश का सब को भरोसा और तसल्ली देते हैं। इस वृत्ति के परिणाम से मनुष्य

प्रत्येक कार्य में नियमितता से बर्तते हैं और निश्चित समय पर ही उपस्थित हो कर व्यर्थ समय बर्बाद करना पसन्द नहीं करते। ऋण पर धन देने वाले को पैसा तुरन्त चूका देते हैं। वचन देते संकोच धरते हैं, परन्तु वचन देने के बाद उनका बराबर पालन करते हैं और आचार, विचार, एवं वर्तन में ससम्बन्ध और चालचलन से प्रसन्नता उत्पन्न करने वाले साबित होते हैं। इस आत्मनिष्ठा वृत्ति के प्राबल्य से मनुष्य नैतिक या धार्मिक नियमों के पालन में दृढ़ता से और ध्यान से लग रहते हैं और निष्पक्षपात रीति से वर्तते हैं। सब कार्यों को अपने कर्तव्य (धर्म) समझ कर ही करते हैं।

उपयोग—मनुष्य को अपनी नीति, धर्म और सदाचार के सिद्धान्त अनुसार तथा ईश्वरीय सत्य और न्याययुक्त नियमानुसार बर्ताव कराने के लिये इस वृत्ति का विशेष उपयोग है। कुदरत के नियमानुकूल जो कुछ होगा वह सत्य और उससे जो कुछ प्रतिकूल होगा वह असत्य ऐसा मानने में यह वृत्ति खास कारण भूत है।

मानसिक सब कानूनों में अथवा नियमों में मनुष्यों के स्वाभाविक न्याय युक्त सत्य अधिकार का समावेश होता है। जब ईश्वरीय पवित्र कानून और नियमों अनुसार वर्तना यह ईश्वरीय महान् पवित्र नियमों का पालन करने के बराबर ही है। और जहाँ जहाँ कुदरत और मनुष्य के कानून या नियमों में भिन्नता या परस्पर विरोध मालूम पड़े वहाँ वहाँ ईश्वरीय नियमों को मान देना सीखाना यह इस वृत्ति का कार्य है।

ईश्वरी नियम और सिद्धान्त अचल, अटल एवं सम्पूर्णता और सत्यता से पूर्ण हैं। उसको तोड़ने से अनेक प्रकार के शारीरिक, मानसिक और सामाजिक दुःख (आधि, व्याधि और उपाधियाँ) उत्पन्न होते हैं।

ईश्वरीय सत्ता के इन स्वाभाविक नियमों को यथावत् समझकर तदनुसार वर्तन में और वर्ताने में सहायक होने के लिये यह आत्मनिष्ठा या आत्मबल की वृत्ति मनुष्य में स्थापित करने का सृष्टि नियंता महान् प्रभु का महान् उच्च उद्देश्य है। जिसके परिणाम से कुदरत और मनुष्य तथा मनुष्य और परमात्मा और कुदरत के विश्वव्यापी नियमों का परस्परसका सयुक्तिक सम्बन्ध सुरक्षित रीति से स्थापित हुआ है ऐसा अनुभव में आ रहा है। आत्मनिष्ठा से नैतिक आभार की भावना उद्भव होती है। "हमें अमुक कार्य करना ही चाहिए" "अमुक नियमानुसार वर्तना ही चाहिए" अमुक नियमों का भंग तो हमसे कभी भी हो सके ही नहीं। ऐसी वृत्ति या धार्मिक बन्धन से बंधाना या बंधाकर स्वेच्छा से वर्तना और वर्ताना यह इस वृत्ति का कार्य है। तदुपरान्त सत्य और असत्य का प्रत्येक पदार्थ या विषय के साथ इनका सम्बन्ध है और सत्य है वह सत्य ही है इसलिए ही हम सत्य अनुसार चलने और वर्ताव करने के लिए बन्धाये हुए है। इसी रीति से जो असत्य है वह असत्य हैं इसलिए उसका प्रतिकार करना यह हमारा कर्तव्य है। ऐसे समझना और वह अनुसार वर्ताव करना तथा अन्य सब मनुष्यों को अपना आचरण सत्य पर रखने को प्रेरणा देना—समझाना यह इस आत्मनिष्ठा वृत्ति का महान् कार्य है। इस वृत्ति हमारा कार्यों का फैसला देने वाली या न्याय करने वाली न्यायाधीश

नहीं है। किन्तु एक योग्य निष्पक्षपात ग्रौर सत्य सम्मति देने वाला हितेच्छु मित्र, वकील या शास्त्री का कार्य करती है। जिसकी सूचना ग्रनुसार चलने से मनुष्य सुख, शांति ग्रौर ग्रानन्द में जिन्दगी बिताने को समर्थ होते हैं। जब उसे विरुद्ध वर्तने से समग्र जीवन को भय, शंका, लज्जा, ग्रसंतोष, पश्चाताप ग्रौर परिताप से परिपूर्ण बनाकर मनुष्य ग्रपने हाथ से ग्रधम दशा को प्राप्त होकर सब रीति से पछताते हैं। ग्रन्तःकरण के ग्रफसोस से सदैव बारम्बार दुःखी होते हैं, चिढ़ाते हैं, खिझाते हैं ग्रौर रोते हैं। इतना ही नहीं किन्तु ग्रपने स्वयं ग्रपना ग्रन्तर ग्रात्मा को तिरस्कार की दृष्टि से देखकर ग्रसह्य दुःखों को सहन करते हैं ग्रौर ग्रन्त में दुर्भागी बनते हैं। (bites of conscience) इसका नाम है। ग्रात्महत्या, ग्रात्मघात भी इसका ही नाम है। ग्रात्मघाती महापापी कहलाते हैं। प्रत्येक मनुष्य ग्रपना शुभ-भला ग्रथवा बुरा कर्म के प्रमाण में परमात्मा को उत्तरदाता हैं। कारण प्रत्येक मनुष्य किसी भी प्रकार का कर्म करने की स्वतन्त्रता रखते हैं परन्तु कर्म के फल भोगने में ईश्वरीय नियमों को वह ग्राधीन हैं।

जिनमें इस ग्रात्मनिष्ठा का ग्रवयव परिपूर्ण रीति से विकसित होता है वे नैतिक श्रेष्टता को सबसे सर्वोपरि गिनते हैं; ग्रादर करते हैं। कर्तव्यपरायणता यही उन्हों का सर्वस्व है। नैतिक सिद्धान्तानुसार वर्तना यह उनका ग्रपना ऊंचा महान नियम बन रहते हैं। ऐसे मनुष्य किसी भी समय, किसी भी कारण से भी ग्रसत्याचरण या धर्म विरुद्ध वर्तन करते ही नहीं। प्रत्येक विषय में सम्भालपूर्वक सत्य की रक्षा करते हैं। विचारों में पूर्ण प्रामाणिक ग्रौर विश्वासपात्र होते हैं। ग्रौर जहाँ जहाँ ग्रयोग्य हो जाएं तो हमेशा दिल में हिचकिचाते हैं ग्रौर पश्चाताप करते है। तथा जो कोई मनुष्य ग्रनुचित, झूठा काम के लिए पश्चाताप करते हैं उसके ग्रोर क्षमावान रहते है। ग्रौर पश्चाताप रहित लोगों की ग्रोर कठोर तथा सख्त हृदय के भी दिखाते है। सत्य को सत्य रूप में स्वीकार कर प्राण से ग्रधिक प्रिय गिनते हैं। ग्रसत्य का ग्रसत्य होने के कारण तुरन्त इनका त्याग करता हैं—ग्रस्वीकार करते है। ऐसे मनुष्य हमेशा प्रामाणिक, विश्वासपात्र, मंगल उद्देश्यवाले योग्य समझकर कार्य करने वाले होते हैं। किसी भी कार्य करने ग्रगाऊ कर्तव्य एवं फर्ज का विचार पहिले ही करता है तो भी कदाचित् भूल हो जाय तो ग्रपना ग्रपराध स्वीकार करते हैं। हो गई हुई भूल के लिए क्षमा मांगते है ग्रौर भविष्य में सुधारने का प्रयत्न करते हैं।

शारीरिक बल या शौर्य ग्रधिक होने से ग्रसत्य वर्तन या विचार से शीघ्र तेजी से गुस्से हो जाते हैं, ग्रौर पूर्ण बलपूर्वक सत्य मार्ग को ग्रहण करते हैं। ऐसे मनुष्यों दोष, गलतियाँ दिखाने वाले होते है। इसलिए लोगों के दोष या मूर्खाई ग्रज्ञानयुक्त कृत्यों (कामों) के लिए बहुत ही कठिन, कठोर दिखाते है। पाप कृत्यो (कामों) करने वाले की ग्रोर त्वरित तिरस्कार दर्शाते हैं। ऐसे प्रसंगों में ग्रनुपम प्रकार का नैतिक धैर्य, ग्राश्चर्यजनक सहनशीलता ग्रौर दृढ़ता दर्शाते हैं। मैत्री भाव की प्रबलता से मित्र वर्ग की ग्रन्दर का ग्रसत्य वर्तन या ग्रनुचित व्यवहार जरा भी सहन नहीं करते या चलने देते नहीं। विशेषतः उन्हों को यही प्रसंग पर धमकाते हैं धिक्कारते हैं। वात्सल्यस्नेह की ग्रधिकता के लिए बालकों की ग्रोर बहुत ही सावधान रह है। किन्तु बलाधिकता के लिए उन्हों को धमकाने

को प्रेराते हैं। सावचेती की अधिकता के लिए अयोग्य या असत्य कार्य न होजाय उसकी बहुत ही सम्भाल रखते हैं। तथा पूज्यभाव, तर्क शक्ति, मनन शक्ति और वक्तृत्व शक्ति की अधिकता के परिणाम से स्वाभाविक रीति से ही तत्वज्ञान, धर्म और जीव, ईश्वर, प्रकृति सम्बन्धी ज्ञान, विज्ञान के अभ्यासी होते है। वे धार्मिक, नैतिक विषय पर संवाद, संभाषण और तर्क वितर्क करने में सम्पूर्ण आनन्द लेते हैं। पूज्यभाव या श्रद्धा की साधारण स्थिति में और दया तथा परोपकार वृत्ति के प्राबल्य के लिए सम्पूर्ण सुधारक बनते हैं।

कितनी बार मन की प्रबल वृत्तिओं के अधीन होकर अगर जल्दी में अनुचित कर बैठें (बुरा हो जाय) तो पीछे से अपनी भूल के लिये पश्चाताप करते हैं, शोकाकुल होते हैं। अज्ञान या भूल भरी हुई शिक्षा या संस्कारों के लिए कितनी बार सत्य को असत्य और असत्य को सत्य समझना, स्वीकार करना संभव रहते और इसलिये गलती करेंगे तो भी उससे उनका आंतरिक उद्देश बुरा या अधर्म युक्त नहीं होता। ऐसे मनुष्य सत्य जानने को हमेशा जिज्ञासु होते हैं और उसके अनुसार अपना चाल चलन रखने को उद्यत रहते हैं। मानपान, इज्जत आबरू की अभिलाषाकी प्रबल वृत्ति के परिणाम से नैतिक वर्तन को संपूर्ण विशुद्ध और निष्कलंक रखते हैं और अन्य व्यक्तियों का मूल्य भी उन्हों की धनाढ्यता प्रमाण में नहीं परन्तु उन्हों की नैतिक वर्तणुक-नैतिक आचार प्रमाण में ही अंकित करते हैं। ऐसे मनुष्यों के वचन यही सनद समझना। ऐसे व्यक्तियों में दया या परोपकार वृत्ति, शारीरबल और कार्य पूर्ण करने की वृत्ति अपूर्ण प्रमाण में हो तो जालिम, निर्दय और बिना कारण दूसरों को दुःख देने वाले की ओर शीघ्र क्रोध से गर्म हो जाते है, धमकी देते है। समय परत्वे सजा भी कर है। नैतिक शक्तियों की प्रबलता से नैतिक सिद्धान्तों की सब रीति से सम्भाल रखते है। सौन्दर्य प्रे की अधिकता से नैतिक श्रेष्ठता और विशुद्धि प्राप्त करने के लिए पूर्ण प्रयत्नों करते हैं।

बुद्धि शक्ति के प्राबल्य से नैतिक विषयों की चर्चा विवेचना और सत्य सिद्धान्तों का अन्वेषण और स्थापना पीछे वाद-विवाद करना पसंद करते हैं।

आत्मनिष्ठा के प्राबल्य के साथ शारीरिक शक्ति और बल अधिक होगा किन्तु ज्ञानतन्तुओं की निर्बलता होगी और वातार्श, अजीर्ण, अपच, बदहजमी अथवा कब्जियत के रोगी होगें तो बड़-बड़-व्यर्थ प्रलाप करने वाला स्वभाव के बन जाते हैं। सुधारणा के विषय में अतिशय आग्रही और कठिन बनते हैं, अपना विरोधियों का प्रतिकार करने में बहुत ही उग्रता से वर्तते हैं। मूल में से सुधारा करने की इच्छा रखने वाले सुधारक और धर्म के सूक्ष्म सिद्धान्तों को चिपट रहनेवाला धर्माग्रहीओं तथा धर्मान्ध वृद्धाओं इस सम्बन्ध में प्रत्यक्ष प्रमाण है।

जिन्हों में आत्मनिष्ठा पूर्ण प्रमाण में होती है ये योग्य प्रमाण में आत्मबल रखते हैं। साधारण उद्देशों को सम्भाल कर वर्तते हैं। उद्देश्य सुन्दर होगें तो भी शारीरिक बल, संहारेच्छा, कार्य पूर्ण करने की प्रबल इच्छा तथा प्रेम की अधिकता से वह वृत्ति के कार्य के आधीन कितनी वेर हो जाते हैं। द्रव्याभिलाष की प्रबल इच्छा से बहुत ही सम्भाल से सौदा (लेन-देन) करते हैं और धन्धा, व्यापार रोजगार में योग्य लाभ उठाते हैं। दूसरों के योग्य लेन देन को इच्छापूर्वक हानि पहुंचाते नहीं।

किन्तु न्याय की अपेक्षा धन की विशेष सम्भाल रखते हैं। बुद्धि शक्तियों की प्रबलता से सत्य सिद्धान्त और कर्त्तव्य के विषयों पर विवाद करना चाहते है। परन्तु ऐसे करने में सत्य को जरा कम और प्रसंग की योग्यता और अनुकूलता को विशेष मान देते हैं। ऐसे मनुष्यों ने आत्मबल को कभी निर्बल पड़ने नहीं देना चाहिये।

साधारण—जिन्हों में यह वृत्ति सामान्य प्रमाण में होती है वे अपनी प्रबल शक्ति अनुसार अपना वर्ताव रखकर लगभग (करीब) जो सत्य होगा वही करते हैं, और सामान्य रीति से योग्य वर्तन रखते है। किन्तु अयोग्य वर्तन के लिए क्रोध नहीं करते। सत्य का बलपूर्वक पक्ष नहीं लेते। स्वमान और श्रेष्ठता की अभिलाषा से यश-कीर्ति मिले वैसे कार्यों की ओर प्रवर्तते हैं। परन्तु जहां सत्य और कीर्ति का परस्पर विरोध होवे ऐसे प्रसंग में सत्य को थोड़ा अलग कर कीर्ति की रक्षा पीछे दौड़ते हैं। शारीरिक बल और उद्योग शक्ति की सामान्य स्थिति में कितनी एक अयोग्य हकीकत बिना दोष दिखाये, बिना धब्बे और प्रतिकार किये सिवाय चलने देते हैं। नैतिक हलचल या क्रोध अथवा बल नहीं दर्शाते। धनाभिलाषा की साधारण स्थिति में और कीर्ति दया तथा सौन्दर्य की प्रबल इच्छा से विशेष करके सत्य और योग्य होते हैं वह अनुसार वर्तते हैं और कम भूल करते हैं। किन्तु कि हुई गफलत के लिये अपने आपको जवाबदार नहीं गिनते। ऐसे मनुष्यों को दोष नहीं देना। धिक्कारना मत। कारण कि उनके अन्तःकरण सत्य स्वीकारे या समझे वह पहिले उनकी उत्कृष्ट अभिलाषा या कीर्ति अपमानित होती है यह वे सहन नहीं कर सकते। भावना या विचार में अपना मन्तव्य सत्य मानते है और पूरा करते है। सहनशील या क्षमायुक्त नहीं होता। कितनी वेर सिद्धान्तों को और कर्त्तव्यों को अलग रखकर, एक तरफ डालकर स्वार्थ वृत्ति को आधीन हो जाते हैं। ऐसे मनुष्यों ने अपनी इस वृत्ति को विकसाने के लिए दूसरी मनोवृत्तियों का साम्राजय न जम जाय यह अधिक ध्यान में रखने की आवश्यकता है। प्रत्येक प्रसंग में नैतिक पक्ष पर विशेष ध्यान देना उचित है।

जिन्हों में आत्मनिष्ठा की कमी होती है उन्हों के मन में आत्मनिष्ठ वर्तन के लिए परवाह नहीं रहती। भलाई सहायता या कृतज्ञता तथा पश्चाताप या नैतिक सिद्धान्तों अथवा न्याय, कर्त्तव्य या धर्म सम्बन्धी मानवृत्ति जैसा कुछ नहीं होतां। ऐसे मनुष्य अपनी दूसरी प्रबल वृत्तियों को आधीन होकर वर्तते हैं। पूज्य भाव की ऐसे ही अध्यात्मरति की न्यूनता (कमी) से नैतिक सिद्धान्तों अनुसार वर्तन में वर्ताव में अज्ञानता, नादानी दिखाते है। धनाभिलाष तथा निग्रह वृत्ति की सामान्य स्थिति में ऐसे ही शारीरिक बल और कार्य पूर्ण करने की सम्पूर्ण स्थिति में तथा मैत्री भाव, कीर्ति, दया(करुणा) सौन्दर्य प्रेम और बुद्धि शक्ति आदि गुणों की अधिकता से स्वभाव से सुन्दर और मिलनसार होकर निष्कलंक जीवन सामान्य रीति से बिताते है; किन्तु सूक्ष्म तलाशी करते हुए नैतिक भावनाओं की न्यूनता वाले ही दिखायेंगे।

विकास—इस अनुपम वृत्ति का विकास के लिए हमेशा अन्तर आत्मा में सत्यासत्य का निर्णय करो। हमेशा सत्य को चिपट रहने की सम्भाल रखो और असत्य से बचने का विशेष अभ्यास पाडो। अन्य मानसिक वृत्तिओं से कभी भी दब जाओ नहीं। ऐसे आत्मनिष्ठा को अपमानित नहीं करो। उच्च

प्रकार की कर्त्तव्य परायणता और कृतज्ञता को विशेष ध्यानपूर्वक विकसाओ। तथा प्रत्येक प्रकार का आचार, विचार और वर्तन की गलती-दोष सुधारने को प्रयत्न करो।

"न्यायात्पथ: प्रविचलन्ति पदं न धीरा:।"
सत्यान्नप्रमदितव्यम्। सत्यं परं धीमहि।
धर्मान्न प्रमदितव्यम् सत्यान्नास्ति परो धर्म:।
कुशलान्न प्रमदितव्यम्। सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्।
देवपि तृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्।

आदि महान् और पवित्र आज्ञाओं को जीवन का मुद्रा लेख बनाकर उसके अनुसार बर्ताव रखने को हमेशा तत्पर (तैयार) रहो।

निग्रह—इस वृत्ति का अतियोग न हो जाय उसके लिए निम्न सूचना पर विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता है।

१. हमेशा प्रत्येक कार्य में बहुत ही हठ या अति चौकसाई नहीं करो।

२. जहाँ कुछ भी अपराध न होगा वहाँ भी दोष मान लेने का आप का स्वभाव न हो जाय यह ध्यान में रखो।

३. अति तिरस्कार या धिक्कार की वृत्ति तुम्हारे में पैदा हो न जाय, इसलिये सौजन्यशील, नम्र, क्षमायुक्त और शान्त स्वभाव वाला बनना सीखो।

४. दूसरों के अनुचित कार्यों को देखकर या सुनकर खिन्न नहीं होना।

५. लोगों के आन्तरीय उद्देश्यों को यथार्थ समझने में आप चूक तो नहीं करते यह विशेष ध्यान में रखो।

६. कम गलतियाँ या दोषों को महत्त्व का या अति अगत्य का स्वरूप नहीं दो।

७. अल्प असत्य मिश्रित सत्य का भी स्वीकार करने में हठ या दुराग्रह का उपयोग नहीं करो।

८. स्वल्प दोषयुक्त किन्तु विशेष लाभप्रद विषयों का स्वीकार करने में या वह अनुसार वर्तने में भी आग्रही नहीं बन जाओ। उसका समझपूर्वक विचार करना स्मरण में रखो।

९. अपराध, पाप या अन्य दूषणों के लिये इतना अधिक पश्चातापशील या परितापयुक्त नहीं बनोंके जिस पश्चाताप से तुम्हारा जीवन शुष्क और नीरस बन जाय और अन्त:करण प्रतिपल जलता रहे। अतएव आत्मनिष्ठा के इतना अधिक प्रबल या अतियोग से आपकी अन्यशक्तियों को अनेक रीति से हानि होने का और निरुत्साही तथा निष्क्रिय होने का समय न आ जाय इसलिए सावधान रहना।

१०. प्रत्येक विषय में, आचार, विचार या वर्तन में आत्मनिष्ठा का समझपूर्वक उपयोग करो।

आत्मानात्मानमुद्धरेत। आत्मनिष्ठा की अनुपम वृत्ति को सम्पूर्ण रीति से विकसाने की और उस का यथार्थ उपयोग करना सीखने की मनुष्यमात्र की एक अति पवित्र और महान् फर्ज है। ऐसा समझो के एक अनुपम धर्म है; क्योंकि मनुष्य समाज के सम्पूर्ण सुखों, विजय और स्वसुधारणा का यह सब

से अगत्य का मार्ग, पंथ या सर्वोत्तम साधन है। जीवन सफल करने में अन्तरात्मा वृत्ति; अनुकूल वर्तन यह एक महान् पवित्र सूत्र-नियम है।

हम ने पहिले सूचित किया है ऐसे विश्व की अन्दर सत्य का अस्तित्व सर्वत्र है एवं सब कोई उसके अनुसार आचरण करनेके लिये बंधाये हुए हैं। सत्यसे अलग होना अनुचित है, कुदरती नियम से विरुद्ध है। इस सत्य का अनुभव करने के लिये मनुष्यमात्र को आन्तरीय सत्य यथार्थ समझने के लिये अन्तरात्मा रूप प्रधान अथवा विधातृ (विधाता) कार्य करने वाली शक्ति अर्पण करने में आई हुई है। जिसकी अनुमति लेकर, मान देकर पवित्रता से वर्तन करने सब कोई बंधाये हुए हैं। इस वृत्ति का कार्य विधान दर्शाने का या आज्ञा करने का नहीं है। सब कोई सत्य और असत्य, भला और बुरा स्वअन्तःकरण से जान ही सकते हैं। तदन्तर यह अनुसार अपना बर्ताव रखे कि नहीं वह उसकी कर्म करने की स्वतन्त्रता और दूसरी वृत्तियों के बलाबल पर आधार रखते हैं।

हमारा प्रत्येक शब्द, वचन, विचार, भावना, क्रिया, प्राणादि को धारण (अवलम्बन) करने की क्रिया और सम्पूर्ण वाणी या क्रियारूप वर्तन चालचलन जो कुदरत के नियमानुकूल होंगे तब तो समझना की यथार्थ ही हैं। और कुदरत के नियमों या सिद्धान्तों विरुद्ध होगा तो अवश्य समझना कि कुदरतके नियमों का भंग करनेके लिये उसकी यथायोग्य सजा, दण्ड मिलेंगे ही और मिलना ही चाहिये। हमारा शुभाशुभ सर्व कर्मों का शुभाशुभ फल अवश्य मिलता ही है।

"अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्" यह सिद्धान्त सचमुच सम्पूर्णां से सत्यता से पूर्ण है। कर्म के और आत्मनिष्ठा के ईस सिद्धान्त का सर्वव्यापक और सर्वदेशीय परन्तु अत्यन्त सूक्ष्म और सर्वशक्तिमान् सत्ता का प्राबल्य कोई भी तत्त्वज्ञान की व्याख्या से वर्णन न हो सके इतना अधिक महान् और सत्यता से भरा हुआ है। सत्यता से सम्पूर्ण है। ऐसी प्रबल सत्ता को यथाय ग्य समझने की और शिक्षा से संस्कारी बनाकर उपयोग में लेने की कितनी अधिक महत्ता और पवित्र फर्ज हमारे पर है, वह ऊपर किये हुए स्पष्टीकरण से झट समझ में आ सकेंगे, ऐसे हैं।

आत्मसहाय, आत्मबल या आत्मवीर्य की तुलना या बराबरी कर सके, ऐसी एक भी शक्ति परमात्मा बिना सारा विश्व की अन्दर है ही नहीं। Thrice is he armed who has his quarrel just. "नास्ति आत्मसमं बल" स्वयं सरीखा बल है नहीं। यह अनुभव से प्रसारित हुए वाक्य अवश्य यथार्थ हैं। जब अन्दर से कपटी, मैला और द्रोही, द्वेषी मनुष्य भय, लज्जा और शंका पैदा करने वाला अपनी सब शक्तिओं का (blunt) कुंठित करने वाला, अपना आत्मा के आवाज को बन्द करने वाला, आत्मबल को दबाने वाले या तिरस्कार करने वाला आत्मघाती जैसे विश्व में कोई पापी, निर्बल या मूर्ख नहीं है।

महर्षि दयानन्द और महात्मा गांधी जी ने आत्मबल, आत्मसहाय, आत्म निष्ठा, कर्तव्यपरायणता और सत्य निष्ठा आदि आत्मबल की विभूतियों द्वारा जो जो श्रेष्ठ और दुनियां के इतिहास में अनुपम पद को दिलाने वाला कार्यों किये है। उन्होंके जैसा आत्मबल का सबसे प्रबल और प्रत्यक्ष प्रमाण

भूतकाल और वर्तमानकाल के इतिहास में कहां से भी मिलना बिलकुल अशकय है । आत्म बल से क्या क्या हो सकेंगे उसका इस प्रत्यक्ष प्रमाण है ।

प्राचीन ऋषि मुनियों के आतमबल के अनुकरण का इस दो महानुभावों वर्तमान जमानाका नमूना (प्रतिरूप) है । परन्तु जिन आत्मबल हीन, अन्तर के मैला, अन्तरात्मा विरुद्ध वर्तन करने वाला होते है । उन्होंको राज्यसत्ता, सैन्यसत्ता, युद्ध की सामाग्री, अणु बोम्ब आदि असंख्य प्रकार के शस्त्राशस्त्रों की सत्ता भी सबल बनाने समर्थ हो नहीं सकती । सत्याग्रह की निःशस्त्र लड़ाई (संग्राम) में शस्त्रधारी प्रजाओं ने भी अपना मान का खण्डन (नाश) अनुभवे है । यह वृत्तान्त अब जगत से अनभिज्ञ नहीं है ।

आत्म बलवाले मनुष्यों राज्यसभा, समरांगण, या धर्म सभा में सर्वदेश, काल और स्थिति में सिंह समान शौर्य से गर्जते है । मनुष्य के अन्तर आत्मा का आत्मनिष्ठा यह सर्वोत्कृष्ट शुद्ध और पवित्र स्वरूप है । अथवा समग्र आत्म शक्तियों में यह सबसे मुख्य रानी है । जब अन्य सब शक्तियों केवल उसको सम्मत्ति देनेवाली और आधीन रहकर कार्य करने वाली सहेलियों तुल्य है । जब आत्मबल की सत्ता सर्वोपरि, सर्वोत्कृष्ट और सबको अभिवंदनिम है । इस शक्ति कम प्रमाण में होगी तो भी वह प्रबल मनोवेग को भी वश करने समर्थ हो सकती है । और मनुष्य की अन्दर की प्रबल में प्रबल शक्ति भी इस शक्ति को समझाने या फुसलाने बिन अथवा संतोष देने विन उसकी सत्ता विरुद्ध कुछ भी कार्य करने शक्तिमान हो नहीं सकती ।

नं० २१. प्रबल आत्मनिष्ठा

डा० श्री दादा भाई नौरोजी

विशुद्ध आचरण और आत्मनिष्ठ मनुष्य की बुद्धि शक्तियों श्रेष्ट और अद्भुत कठिन कार्यों करने को समर्थ (शक्तिमान) होती है । सर्व मनुष्यों को सर्वावस्था में ऐसी श्रेष्ट शक्ति की सहायता की सम्पूर्ण आवश्यकता है। अपना आत्म विरुद्ध असत्य का पक्ष लेकर न्यायासन सन्मुख भाषण करने वाले वकील, सोलिसिटर या वारिस्टर अन्तर में कितना तिर्बल, निरुत्साही और निःशुन्य हृदय के होते है उसका अनुभव तो ऐसे कार्य करने वाले को ही होता है । इसी अनुसार निग्रह, नीति, और धर्म युक्त मैन्त्रीभाव, स्नेह सम्बन्ध यह अनीति अधर्म और स्वार्थी स्नेह या मैत्री भाव की तुलना में कितना उत्तम प्रकार का उत्कृष्ट, उत्साहक, आनन्ददायक और हर्षोत्पादक होते है उसका अपने आप ही अनुभव करने वाले मनुष्य ही यथार्थ आत्म गत समझ सकते हैं । इसी अनुसार अन्यान्य शक्ति के सम्बन्ध में भी समझना ।

सत्यमेवजयते नानृतम् सत्येन पन्था विततो देवयानः ।
यनाक्रमन्त ऋषयो सत्यकामाः यत्र तत्सत्यस्य परं निधानम् ॥

हमेशा सत्यकाही सर्वदा विजय होता है । असत्य किसी भी समय विजयवंत हो सकते ही नहीं । सर्वदा सत्ययुक्त और न्याय युक्त उद्देशों कभी भी निष्फल होते नहीं । तथैव अशुभ, बुरा दुष्ट उद्देशों कभी भो दीर्घ समय तक टिक सकते नहीं । यदि अन्याय और असत्य का अल्प समय के लिए विजय होता दृष्टिगोचर होवे तो भी वह अल्प समय के लिए ही समझना । कारण असत्य के आधार पर रचाई हुई हवेली थोड़ी भी हवा लगने से तुरन्त धरातल बनने का ही सम्भव है और गिर जाती ही है । Truth will carry at last "Truth crushed to dust Will rise again" for eternal doys are his but falsehood dies unprotected before his worshipers"

इस वाक्यों सचमुच अत्यन्त महत्वपूर्ण है । सर्व सत्य नियमों का समझ बूझकर अथवा अनजान-अज्ञान से भी करने में आता भंगसर्वको यथाकर्म शिक्षा देने सम्पूर्ण रीति से समर्थ है । सर्व प्रकार के असत्य आचरण की अन्दर ही स्वसंहारक शक्ति रूप बीज समाया हुआ है । जब सर्वसत्य सिद्धान्तों की अन्दर स्वबंश वृद्धि और स्वरक्षा का सर्वोत्तम सूत्र संरक्षित हो रहा है ।

"धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः"

शांति प्रद जीवन
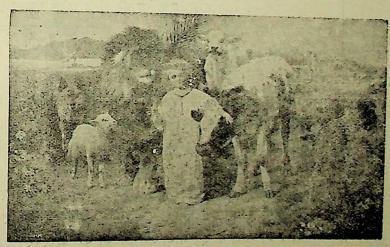
नं. २२ करुणा या परोपकार वृत्ति

kindness or benevolence

परोपकार वृत्ति, करुणा, अनुकम्पा, सहानुभूति, समान सुख दुखानुभव वृत्ति, भलाई, मानवता, आत्मत्याग, या आत्मबलिदान देने की वृत्ति, सहृदयता, कल्याणकारक वृत्ति, जनता के सुख की अभिलाषा आदि भावो का यह वृत्ति की अन्दर समावेश करने में आया है।

स्थान—यह दया या परोपकार वृत्ति का स्थान मस्तिष्क के ऊपर के भागकी मध्य रेखा पर पूज्य भाव की वृत्ति के स्थान के अग्र भाग में जहां से सिरके केश का आरंभ होता है वहाँ से लेकर मस्तिष्क के मध्य प्रदेश पर्यन्त आ रहे है।

लक्षण—यह वृत्ति के निदर्शन का स्वभाविक लक्षण यह है के जब वह अधिक प्रमाण में होती है तब समस्त शरीर और विशेष करके सिर दयापात्र मनुष्य की ओर नमित रहते है। जिन बहुत ही भला और अतीव परोपकारी होते है वे स्वभाविक रीति से कभी सीधा खड़ा रह सकते ही नहीं।

नं० २२. प्रबल दया-परोपकार
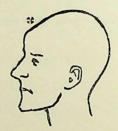
पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर

दया की खामी

अन्वेषक–डा० गॉलने यह शक्ति की खोज अनेक प्रकार के जांच परख पश्चात् की थी। कई एक प्राणिओं जैसे कि कुत्ते न्युफाउन्डलेन्ड डॉग, सुअर, अश्व, कबूतर, पुडकल (फाख्ता) रोवीन विगेरे में यह शक्ति का स्थान प्रपूर्ण प्रमाण में विकसित होते हैं।

मनुष्यजात और समग्र प्राणवाले जगत् सुख दुःखादि के अनेक प्रसंग को कर्मानुसार अनुभव करने के लिए उत्पन्न हुए हैं। इतना ही नहीं किन्तु समग्र प्राण वाले जगत् अरस्परस अनेक प्रकार के ऐसे तो गाढ सम्बन्ध से बंधाये हुए है के जो मनुष्य इच्छे तो समग्र विश्व के सुख अनेक रीति से बढ़ाते, वैसे ही अनेक प्रकार के अनुचित अज्ञानजन्य दोष और संकट हटाने में अनेक रीति से लाभ ले सके ऐसी स्थिति में है। जो मनुष्य में विश्व के इस समग्र सम्बन्धों से सुख दुःख की भावना ही न होती अथवा पशुओं के अनुसार अपना विचारों या अन्तरगत सुख दुःखके भावों अपना मनुष्य बन्धुओं समक्ष (सामने) दर्शाने की उसमें शक्ति न होती और भी अन्य के ऐसे भावों समझने की या अरस्परस सहायता देने की शक्ति न होती तो दया परोपकार की कोई आवश्यकता ही न होती। यदि भावना रहती तो भी वह

निरर्थक ही होती। परन्तु वस्तु स्थिति ऐसी नहीं है। मनुष्य में अन्य के सुख दुख जानने की ऐसे ही अपना दुःखी हृदय को खोल कर अन्य सन्मुख हृदयान्तर्गत भावनाओं दिखाने की और अरस्परस के असंख्य दुःखों अनेक रीति से कमी करने को, ऐसे ही सुखों अनेक रीति से बढ़ाने की शक्ति है। कारण कुदरत के महान नियन्ता परम कृपालु परमात्मा ने अपना गुण कर्मानुसार मनुष्य में भी यह दया की वृत्ति को स्थान इतने लिये ही दिया है कि मनुष्य अपना अनेक प्रसंगो और सहवासो (स्नेह, एकत्र स्थिति) में छूट से स्वतंत्रता से बुद्धिपूर्वक यह वृत्ति का उपयोग समग्र विश्व के कल्याणार्थे कर सके परन्तु ऐसी वृत्ति के अभाव में तो कभी भी अन्य के दुःखों का अनुभव भी कर नहीं सकते, तो फिर कमी करने की तो बात ही कहां रहती ? किन्तु दया और परोपकार वृत्ति द्वारा अनेक प्रकार के दुःखों और असंख्य जीवों की रक्षा करने समर्थ हुए हैं।

दया के अभाव में शारीरबल और विनाशक शक्ति के परिणाम से असंख्य दुःखों उसने बढ़ा दिया होते, इससे यह भूमि के पृष्ट को और समग्र विश्व को एक बड़ा भारी घोर भयंकर नर्क स्थान या कब्र स्थान बना दिया होते, परन्तु दया की पवित्र देवी के प्रताप से अभी वह अनेक प्रकार की होस्पिटल प्रसूति के लिए प्रबंधों, अनाथालयों, स्कूलों, विद्याश्रमों, गुरुकुलों, धर्मोपदेश संस्थाओं या सभाओं, धर्मशालाओं, जलाशयों, अंधाश्रमों, अशक्ताश्रमों, अपंगाश्रमों, विधवाश्रमों, वनिताविश्रामो, सदाव्रतों, कोलेजों, युनिवर्सिटाओं, हिंस निषेधक संस्थाओं, व्यायामशालाओं, पुस्तकालयों और ऐसे असंख्य प्रकार के छोटे बड़े परोपकार के कार्यों अनेक रीति से कर रहे हैं। और विश्व के अनेक प्रदेश में असंख्य दुखी मनुष्य इसी रीति से पीड़ा भोगते प्राणिओं के आत्मा को अनेक रीति के सुख और शान्ति देने शान्ति पाठों पढ़ रहे हैं। ये सर्व प्रताप यह दया की देवी का ही है।

दयाकी देवीकी अद्भुत करुणाके प्रतापसे विश्वमें जो सुख, अनुकूलता, सरलता, उदारता और स्नेह वृद्धि पाकर पोषाइ रक्षित रहे हैं, उसका वर्णन (विवेचन) सम्पूर्ण रीतिसे करने कोई भी समर्थ है नहीं। मनुष्य स्वभावके दूसरा किसी भी प्रदेशमें इस दया, दान अथवा परोपकार वृत्ति जितना सुख किसी भी शक्ति देती नहीं है। मनुष्यके अन्य लक्षणों या शक्तियाँ जैसेकि बुद्धि, सद्वर्तन, नीति, न्याय, श्रद्धा, भक्ति, आशा आदि अपनी अपनी शक्ति अनुसार सचमुच वास्तवमें महत्वपूर्ण है लेकिन "The Greatest of allis charity" परोपकार वृत्ति तो सबसे श्रेष्ठ है।

दया करुणा या परोपकार ये जैसे परमात्मा पिता का एक श्रेष्टतम गुण है उसी प्रकार अमृतपुत्र प्रत्येक जीवात्मा का भी ये खास श्रेष्ट गुण है। मनुष्य स्वभावके समग्र गुण निधि गुणागार रूप महान पर्वत का सबसे ऊंचा में ऊंचा यह शिखर है। जहाँ पहुंचनेके लिये मनुष्य ने अपनी सर्व शक्तियाँ द्वारा प्रयास करना ही चाहिये।

विश्व नियन्ता प्रभुकी इच्छा—सम्पूर्ण विश्वके प्राणी मात्रके सुख और कल्याण ये समग्र सृष्टि रचना का और उसके नियमों का मूल उद्देश है। और वह उद्देश को यथार्थ रीतिसे पूर्ण करनेके लिये अन्य शक्तियोंकी साथही यह श्रेष्ट शक्तिका भी उसको प्रदान करने में आया हुआ है। मनुष्यको अपना

सांसारिक अनेक सम्बन्धों में और प्रसंगों में भी उसका उपयोग करनेकी बारबार आवश्यकता रहती है और ऐसी स्थिति में जो मनुष्यकी संहारक वृत्ति और शारीरबल अर्थात् शौर्य वृत्तिको सर्वदा दाब में रखनेके लिये दया रूप कोई प्रबल शक्ति न होती तो मनुष्य एक क्षण भी सुखसे आरामसे नहीं बैठते अपना भाइयों भाइयों में भी सर्वदा कलह, दुःख, विवाद, नाराजी, लड़ाई, झगड़ा, विरोध, मुकदमा करते ही रहते और कभी भी आराम से, सो सकते नहीं और निद्रा ले सकते नहीं।

परस्पर रक्षा और सहाय—मनुष्यको अपनी अनेक प्रकार की अवस्था (हालत) में संयोगानुसार दूसरों की ओरसे धनकी, सलाह और सद्बोधकी, सूचना सम्मतिकी, तनकी अथवा मनकी सहायता माँगने का अनेक प्रसंग आते हैं। हम कितनी वेर बीमार पड़ जाते हैं, अकस्मात से किसी समय हाथ पांव टूट जाते हैं और एकाएक अचानक दुःख आ गिरते हैं। मोटर, घोड़े गाड़ी की झपट में आजाते हैं, मुख, सिर कुचल जाते, घर पर पहुंच नही सकते, मार्ग में ही रुक जाते और जोर शोरसे रुदन करते, करुणाक्रन्द से होयहाय करने लग जाते हैं। इस तरह का अनेक प्रकार के अकस्मातों—अचानक घटनाओं, दुःखो गरीब ऐसे ही धनाढ्य या राजा सबके सिर पर आकस्मिक आगिरते हैं। शहरके बड़े मकानों में या गांवके घरों में आग लगती है कपड़े आभूषण, पेटीपटारा (बड़ा सन्दूक) धनका भंडार—जवाहिर मणिमाणिकय, चोज वस्तु, सामान, साहित्य, भोज्यसामग्री, गाड़ी, घोड़े, गाय, भैंस विगेरे एकत्रित किये सुखके साधन सामग्री सब अग्निदेव के मुखमें छोड़कर एक वस्त्र भेर अर्ध नंगावस्था में रास्तेकी बीच में खड़ा रहकर बाल बच्चोंका रक्षणके लिये भी शोकातुर हृदयसे करुणाक्रन्दकी साथ हायपीट करता महान धनपतिओंको भी देखनेका प्रसंग अचानक मिल जाता है। अभी हाल में गत् वर्ष में ही कच्छ प्रदेश में भूकंप हुआ था इस प्रसंगमें धनवानों की तमाम संपत्ति-माल असबाब, धन साथ आलिसान (बड़ीभव्य) महेलातों एक सेकण्ड में धरासाई बन गई थो—भूमिको भेंट हो गई थो। उस समय जिन एक विपल पहिले अपना धनके मदसे हजारों को धमकाते थे, घुड़कते थे, डराते थे उन्होंको एक वस्त्र बीन पास में दूसरा कुछ नहीं ऐसी भिखारी जैसी दशा में रास्ता पर खड़ा रह कर विलाप करते हुए और दूसरों की मदद प्राप्ति के लिये प्रार्थना करते हुए अनेकों ने देखे हैं।

ऐसे प्रसंगों में सहाय, रक्षा, अनुकम्पा की या दया तथा परोपकार की भावनाकी कितनी अत्यंत आवश्यकता है? ऐसे प्रसंगों देखने वालों के दिलको कुदरती रीतिसे ही करुणार्द कर देते हैं। और सहायता करने को प्रेरते हैं। इससे दुःखो हृदयको धैर्य तथा बल दोनों मिलते हैं और निराशा तथा शोकके सखत (कठिन) सपाटाओं में दयाकी मृत संजीवनी औषधिका अमृत रस चखने को जीवन-धारण कर रहते हैं। लेकिन ऐसी करुणा वृत्तिके अभाव में तुम्हारे शत्रुओं अलग खड़ारह कर तुम्हारा दुःखको दूरसे ही देखते रहते और कुछ भी सहायता नहीं देते हंसी मजाक कर हर्षित होते। किन्तु यह दयार्द वृत्तिके लिये वे भी वैर-शत्रुता भूलकर ऐसे प्रसंग पर तुम्हारे दुःख से दुःखी होते हैं। इतना ही नही परन्तु अपनी ओरसे अपनी गांठका अन्न वस्त्र या अन्य प्रकार की शारीरिक, मानसिक ऐसे ही आर्थिक सहायता हृदयके सच्चे भावसे देते हैं।

सुज्ञ पाठकों! विचार करो के दया की अमृत वर्षा का कैसा सुन्दर, सुखकर और शांतिदाता

प्रवाह ! करुणा रस की मधुरता लज्जत ऐसे प्रसंग पर चारों ओर सर्वत्र प्रसर रहते हैं। छल कपट और काम क्रोध या वैर विरोध से कलुषित हुआ अंतःकरण और सख्त दिलकी कठिनता ऐसे प्रसंग पर इतनी किस लिये पिघल जाती है ! यह सब किसका प्रताप है ? यह सब प्रताप दया परोपकार या अनुकम्पा वृत्ति का ही है। करुणार्द्र हृदय में से वर्षती अमृत वर्षा का ही ये सब प्रभाव है।

दया की देवी के अभावमें मनुष्य, सभा, संस्था या समाज एक क्षणभी जीवित रह सकते ही नहीं। सब सांसारिक रचना, योजना तडतड टूट जाते। लेकिन हम एक दूसरों को परस्पर सहाय दे सकते हैं, देते रहते हैं, और एक दूसरों के दुःख या विपत्ति, दुर्भाग्य में साथ दइ कमी कर सकते हैं।

उपनिषदों में कहा है कि "त्रयौ धर्मस्य स्कन्धाः १ यज्ञो, २ अध्ययनम् ३ दानमृइति" धर्म के तीन स्तंभ हैं। १. यज्ञ २. अध्ययन ३. दान। ये सचमुच वास्तव में यथार्थ ही है। दया ये धर्मका मूल है। इसलिये रामायण के रचयिता कवि श्री तुलसीदास जी ने कहा है कि—

दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान
तुलसी दया न छोड़ना, जब लग घट में प्राण

श्री शान्ताबहिन गोरधनदास शाह
उपमंत्राणी आर्यसमाज टंकारा (सौराष्ट्र)

श्रीमती शान्ताबहिन जी,

आपकी अन्दर धार्मिक वृत्तियों-भक्तिभाव और दया परोपकार जैसे उत्तम गुणों अच्छे हैं। इसलिए किसी भी मनुष्य और प्राणी का दुःख देखकर आपका दिल द्रवित हो जाता है, उनका कष्ट निवारणार्थे आप सर्वदा उद्यत रहती हो। यथाशक्य सब प्रयत्न कर छूटती हो, सहायता देती ही रहती हो। ऐसे सेवा धर्मका अच्छी रीति से पालन करती हो। तदुपरान्त दृढ़ता, स्वमान, सौन्दर्य, संयम, संगीत, स्नेह, सद्भाव, व्यवस्था, बुद्धि आदि शक्तियों संस्कारी होने से आपका आचरण विशुद्ध और चरित्र विमल है।

दया की वृत्तिके परिणाम से अन्यकी ओर दयार्द होकर जैसे दया के पात्र को सुखी कर सकते हैं, ऐसे हम अपने आप भी सुख प्राप्त कर

श्रीमती पुष्पावती बहिन

अहमदाबाद कांकरिया रोड आर्यसमाज द्वारा संचालित डी० ए० वी० स्कूल के आचार्य श्री धर्मेन्द्रनाथ की धर्मपत्नी श्री पुष्पावती बहिन दया, परोपकार, यशाभिलाष, बुद्धि, स्मृति, सौजन्य आदि गुणों से विभूषित होने के कारण दुःखी जन की सेवा अच्छी रीति से करती है।

सकते हैं। दूसरों का भला करने से हम हमारी यह वृत्ति को आचरण करने का प्रसंग देने से यह वृत्ति संतोष पाती है, इससे हम को आत्म-सन्तोष और सुख दोनों प्राप्त होते हैं। किसी समय हम को अन्य की ऐसी वृत्ति की आवश्यकता होगी तब उसका दर्शन होवे यह सचमुच सुखप्रद है। परन्तु अपने आप दान देना या दया दर्शाना यह इससे भी अधिक उत्कृष्ट है। सब सद्गुणों का भूषण दया या परोपकार वृत्ति है। इसलिये महान् मनुष्यों ने कहा है कि—"परोपकाराय सतां विभूतयः" सत् मनुष्योनी समग्र विभूतियों सर्व शक्तियों परोपकारार्थे ही होती है।

जिस व्यक्ति में यह दया या करुणा वृत्ति का स्थान प्रपूर्ण रीति से विकसित होता है। वे दयार्दता की बहुत ही तीव्र और सम्पूर्ण भावना से भरपूर होते हैं। वे स्वाभाविक रीति से हमेशा भला करने का स्वभाव युक्त होते हैं। दान देने में वे आनन्द मानते हैं। दूसरों को सुखी करने के लिये अपना सर्वस्व समर्पण कर देते हैं। अन्य के दुःख या संकट देख सकते नहीं। इसलिये उस में से उनको मुक्त कराने का सब प्रयत्न करते हैं। निःस्वार्थ वृत्ति से सर्वदा परोपकार वृत्ति की वर्षा सर्वत्र बरसाते हैं। करुणा के भडार रूप होते हैं।

दयाकी साथ तर्कशक्ति और मननशक्ति की प्रबलता के लिये यथार्थ परोपकार को समझते हैं। इसलिये जन समाज की सुधारणा या उन्नति अर्थे महान् और उदात भावों को आचार में रखते हैं। जिस लिये सर्वदा परोपकार चलता ही रहे। ऐसी तदबीर जोड़कर प्रबन्ध करते हैं।

मननशक्तियों के प्राबल्य से सांसारिक अयोग्य रीति रिवाज और लोकाचार से होते अनेक क्लेशों तथा दरिद्रता आदि दुःखों का सर्वदा विचार किया करते हैं और जनसमाज को वैसे दुःखों में से छुड़ा कर सुखी बनाने का रास्ता की खोज करते हैं।

मैत्रीभाव की प्रबलता के लिये आगतस्वागत, अतिथि सत्कार, सेवा सुश्रूषा करने का स्वभावयुक्त होते हैं ।

संहारक या विनाशक वृत्तिकी सामान्य दशा के लिये दुःख या मृत्यु देख नहीं सकते और अन्याय तथा फांसी की सजा सम्बन्ध में नाखुशी दर्शाते हैं ।

धनाभिलाष की सामान्य दशा में अर्थात् निर्लोभ वृत्तिके परिणाम से आवश्यकतानुसार यथाशक्ति द्रव्य आदि का दान करते हैं । गरीबों की ओर से योग्य कर्ज भी ऋणी की इच्छा विरुद्ध बलपूर्वक लेने को इच्छते नहीं ।

जिनमें दया की वृत्ति सामान्य प्रमाण में होती है । वे अन्यान्य शक्तियों की प्रबलता के प्रमाण में सामान्य रीति से यह वृत्ति को काम में लेते हैं । सामान्य रीति से शायद दान भी देते हैं किन्तु वह बहुत ही कम प्रमाण में ही होता है । तर्कशक्ति और मननशक्ति की प्रबलता से ऐसे मनुष्यों सामान्य रीति से परोपकार करने की ओर विशेष रुचि रखते नहीं किन्तु परोपकार वृत्ति की निर्बलता से स्वार्थ वृत्तिओं को आधीन होकर दूसरों के सुखों की परवाह करते नहीं ।

न्यूनता—जिन में यह वृत्ति बिल्कुल न्यून प्रमाण में होती है, वे मनुष्य जातिके या अन्य प्राणियों के सुख के लिये परवाह नहीं करते, तो सुख बढ़ाने की तो आशा ही कैसे रखनी ? स्वार्थ सिवाय किसी भी समय ऐसे लोगों थोड़ा भी त्याग देने इच्छते नहीं । मनुष्य समाज के दुःखों प्रति बिल्कुल बधिर कठिन हृदय के हो जातें हैं । दया करुणा या अनुकम्पा अथवा सहानुभूति का एक भी भाव ऐसे पुरुषों के हृदय में दैवयोगे मतलब कदाचित् होते हैं ।

विकाश—यह दया या परोपकार वृत्ति का यथार्थ विकाश के लिये—

१. दाता दिल के होना ।

२. स्वार्थ वृत्तिओं को दाब में रखो और कमी करो ।

३. प्राणी मात्र प्रति प्रति और करुणार्द भाव से वर्ताव करो ।

४. दुःखी, रोगी और पीडितों की योग्य सेवा करने तत्पर हो जाओ ।

५. प्राणो के दुःख से दुःखी और सुख से सुखी होने की आदत रखो ।

६. दुःखी हृदयों के दुःखो दूर करो, उनकी आवश्यकताओं उदार होकर पूर्ण करो ।

७. सबकी साथ भलाई या अच्छी भावना से और सद्वर्तन से वर्ताव करो । बोलने में भी मधुर वाणी और नम्र वर्तन को धारण करो ।

८. जिन्दगी के छोटे छोटे प्रसंगों में भी भलाई के कामों पर ध्यान दिओ ।

९. भाव और वर्तन में प्रत्येक प्रसंग पर आवश्यकतानुसार करुणार्दता का उपयोग कर तुम्हारी अन्दर की यह भावना को योग्य प्रमाण में विकसा दो ।

१०. करुणारस प्रधान काव्यो, नाटको या कहानीग्रों ग्रथवा वृत्तांतो पढो, श्रवण करो, दर्शन करो व उसका ग्रभ्यास करो।

११. दया ग्रौर परोपकार वृत्ति से होते महान कार्यों ग्रौर फायदा का बार बार विचार करो व इस वृत्ति के ग्रभाव में जन समाज की स्थिति कैसी हो जाय उसके भयंकर परिणामों की भी तलाशी करना।

१२. दयार्द होना यह मनुष्य का एक पवित्र कर्तव्य है ऐसा समझकर ग्राचरण करो।

निग्रह—यह वृत्ति के ग्रति शीघ्र प्रवाह को भी रोकने सीखने की ग्रावश्यकता है इतने लिये निम्न लिखित हकीकत पर ध्यान देग्रो।

१. धनादि पदार्थो देने में विवेक बुद्धि काम में लेग्रो, उसका ग्रनुचित प्रयोग न होवे वे ध्यान में रखो।

२. ग्रमुक ही रुपये की मर्यादा निश्चित कर वही ग्रनुसार खर्च करो।

३. मर्यादा से विशेष कभी भी दया के काम करने प्रवर्तो नहीं।

४. दया या परोपकार वृत्ति को न्याय, तर्क ग्रौर तुलना शक्तियों को ग्राधीन रखकर बर्ताव करो।

५. दया के पात्र की योग्या योग्यता की घटित चौंकसी करने के पश्चात् श्रद्धापूर्वक दान करने प्रवृत्ति करो।

६. कितने ही भिक्षु को गरीबाई की बनावट करके धनादि पदार्थो एकत्र कर रखते हैं ग्रौर व्यभिचार, शराब या मादक पदार्थो पीछे उसका उपभोग करते हैं, वैसा उपयोग तुम्हारे द्रव्य का तो नहीं होता वही ग्रवश्य ध्यान में रखो।

दया की वृत्ति विकाश या यथार्थ शिक्षा यह सचमुच एक पवित्र में पवित्र फरज ग्रथवा कर्तव्य है। ईश्वर की सृष्टि के सम्पूर्ण कार्यों में सर्वत्र दया ग्रौर परोपकार विश्वव्यापो महान् योजना से प्रवृत्ति रहे हैं। क्या तब मनुष्य भी ग्रपना पिता की ऐसी कल्याणकर्ता इच्छा में ग्रपनो शक्ति ग्रनुसार बन्धाये हुए नहीं है ? हम प्रतिक्षण ग्रनेक प्रकार के सुखों जीवन पर्यन्त जो परमात्मा की कृपा से प्राप्त करते हैं ग्रौर ग्रानन्द भोगते हैं, उसका स्वल्पांश भी हमारा जाति भाइयों वैसे ही जगत् के ग्रन्य प्राणियों के लिये ग्रर्पण करने क्या हम बन्धाये हुए नहीं ? हमारा ग्रपना सुधार ग्रौर भलाई के कारण भी यह वृत्ति को विकसित करने की ग्रत्यन्त ग्रावश्यकता है, इतने लिये दया ग्रौर करुणायुक्त हृदय से परोपकार करने की सर्व दशा में ग्रावश्यकता है।

दुनिया के किसी भी प्रदेश में हम गमन करें किन्तु गरीबों और दुःखी दिल के मनुष्यो ऐसे ही दयालु और परोपकारी मनुष्यो हम का सर्वत्र मिल जाते हैं। मनुष्य का जीवन ही एक दूसरे की साथ जोड़ाया हुआ है कि जिससे हम को भलाई के कामों करने का मौका मिलते ही रहे। किन्तु हम हमारी पवित्र फरजों को जगत् के अनेक व्यवसायों को पीछे अलग रख देते हैं।
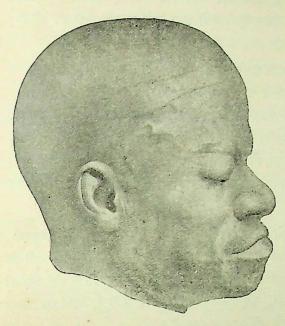
दया, परोपकार और वात्सल्य स्नेह की प्रबलता से अपना प्राण को भी परवाह किये बिन जलती आग में कूद पड़ दूसरों के बच्चों को रक्षा करने वाले महात्मन्

परोपकार की बड़ी बड़ी संस्थाओं अपनी शक्ति अनुसार परोपकार के कार्यो करती होगी किन्तु हम को स्वयं परोपकार की वृत्ति से कार्य करने की आवश्यकता है। इतने लिये भूखे को अन्न, वस्त्रहिन को वस्त्र, दरिद्र को शक्ति अनुसार दान, रोगी को योग्य औषध, मूर्ख और बेसमझी को योग्य उपदेश, आलसी को उद्योग, पापिओं और अधर्मियों को धर्मज्ञान, अशिक्षित और विचारहीन प्रजाओं में शिक्षण और सद्ज्ञान आदि अनेक कार्यो आवश्यकतानुसार परोपकार वृत्ति से ही कर सकते हैं। और ऐसे परोपकार के कार्यो करने की अत्यन्त आवश्यकता है।

व्यक्तिगत दान, पुण्य या दर्शाने में आती दया विशेष प्रमाण में तथा विस्तृत विस्तार में पुरता फायदा तो न कर सके तो भी दया परोपकार करने का प्रत्येक मनुष्य का एक पवित्र धर्म है। यह धर्म का सब मनुष्य यथावत् पालन करेंगे तो सारे संसार में सुखानन्द फैला दे।

मनुष्यो मन, वाणी वैसे ही शरीर आदि अनेक साधनों से युक्त है। जिसमें से सब कोई अपनी अपनी शक्ति अनुसार, कोई मनसे, कोई शरीर से तो कोई धनसे एक दूसरे को सहायक हो सकते हैं। इतना ही नहीं किन्तु अनेक प्रसंगों में उन्हों को सुधार भी सकते हैं।

मनुष्य समाजकी अन्दरसे प्रत्येक प्रकार के दूर्गुण, दुष्ट कर्म या बुरा और अनुचित आचार, लोकाचार जनरीति दूर करने के लिये प्रत्येक व्यक्ति ने अपने से बन सकता प्रयत्न करना ही चाहिए। और सुख भोगने की सर्व शक्तियों को उसके यथार्थ रूप में विकसित करनी चाहिए। यह महान प्रयोजन की सिद्धि अर्थे अत्यन्त विस्तृत प्रमाण में मनुष्यकी परोपकार वृत्तिका उपयोग होने की आवश्यकता है। व्यक्तिगत दया या दान से दुःखों के मूल कारणों निर्मूल हो सकते नहीं। उसके लिये तो हमारे सर्व दुःखोंको उत्पन्न करने वाला मूल को ही काटने की आवश्यकता है। दृष्टांत रूप से—कितनेक दीन, गरीब,

अधम, निर्धन हालतके और मादक वस्तु का व्यसनी पुरुषोके स्त्री बच्चों को हम अन्न, वस्त्र या अन्य साधनों दई उन्हों की गरीब स्थिति में सहायता देसकेंगे और बड़ा बड़ा फंड द्वारा ऐसे अनेक कुटुम्बोंका रक्षण या पोषण कितनेक अंश में कर सकेंगे, किन्तु इससे ऐसी बुरी दशा होने के मूल कारणों दूर हुए ऐसे नहीं समझना ।

उचित दया, उचितदान या दानका यथार्थ उपयोग तो दरिद्रता, दुःख, व्यसन, तथा अयोग्य वर्तन से बुरी दुःखी दशा लाने वाले मूल कारणों को दूर करने के लिये योग्य रीति से करना चाहिये कि जिसके परिणाम से अनेक अनाचार को परम्परा (अन्वय) का बड़ा व्यापार बन्ध हो जाय । ऐसे दुर्गुणी माता पिता को ही सुधारने की सबसे पहिले आवश्यकता है । कारण वे जो सुधर जाय तो हम उनके बच्चों को जो कुछ रुपये पैसे, पदार्थ, सामग्री देते हैं उसकी अपेक्षा उसके समझदार माता पिता बहुत ही अच्छी संख्या में धन और साधनों एकत्रित कर सकेंगे और पत्नी बच्चों की साथ रहकर कुटुम्बोंके अनेक सम्बन्धों का आनन्द प्राप्त कर सकेंगे ।

इतने लिए समझदार और विद्वान वर्गने ऐसे ऐसे बड़े दुर्गुणों, नुकसान करने वाला रीतिरिवाजो, और भी अनुचित लोकाचार को तथा विनाशित, नष्ट भ्रष्ट करने वालो फेशनों के और सिनेमा सृष्टिके रंग को निर्मूल करने तुरन्त तैयार होजाना चाहिये और जैसे बन सके वहाँ तक जल्दी से ऐसे बन्धनों को बुद्धिपूर्वक, युक्तिप्रयुक्ति, लेखो, पुस्तकें, पेम्फलेटों, वर्तमानपत्रों द्वारा और जाहिर व्याख्यानों तथा उपयोगी संस्थाओं द्वारा उसको दबाने की—नाश करने की आवश्यकता है ।

जब जगत में निष्पक्षपात रीतिसे मनुष्यों को यथार्थ धर्म और कर्तव्यका यथार्थ उपदेस करने वाला महात्मा पुरुषो अनेक रीतिसे उपदेश करते हैं तभी सुख और शान्ति होती है । अन्यथा अन्ध प्रचार और इसलिये परिणत होते दुःखों दिन प्रतिदिन बढ़ते ही रहते हैं ।

धर्म गुरुओं. धर्माचार्यों साधु सन्यासीओं कोई एक मन्दिर, मठ, या आश्रम में बैठा रहने तथा पूजा अर्चना और ऐश्वर्य सम्पत्तिकी भेंट स्वीकार करके अनेक प्रकारके उपभोग, आनन्दों भोगने के लिए उन्हों को सन्मान युक्त पद पर नियुक्त किया नहीं है । किन्तु लोगों को उपदेश देनेकी और सद्धर्म-वैदिक धर्मका प्रचार करने की उन्हों का पवित्र में पवित्र और सर्वोत्कृष्ट कर्तव्य है । उसका यथावत् पालन नहीं करने से वे ईश्वर के अपराधी, पापी और जनसमाज में निन्दा, अपमान और घृणा के पात्र बनते हैं ।

जगत में विद्वता युक्त, नम्रतायुक्त और सत्य तथा निष्पक्षपात धर्मका उपदेश करने वाला असंख्य साधु पुरुषोंकी सर्वदेश, सर्वकाल और सर्वधर्म के लोगों को अत्यन्त आवश्यकता है ।

बाल्यकाल दया, परोपकार की शिक्षा देनेका सबसे योग्य समय है । कारण शैशवकाल में जैसे संस्कार मिला होगा वैसे ही काम बड़ा होने पर भी मनुष्यों करते है, इसलिये—

१. बच्चों की साथ दया--ममता, स्नेह और सौजन्य से वर्ताव करो ।

२. बच्चोंओ को हमेशा उदारभाव की शिक्षा देना, उनकी उदारता का योग्य प्रतिफल देना.

३. बच्चोंओ को छोटे छोटे समाचार या चीज वस्तुओं मित्र वर्ग में पहुंचाने जैसे कार्यों जो उनको पहिले से ही करना पसन्द है, वैसे कार्यों आनन्दपूर्वक स्नेह भाव से सौंपना।

४. उन्होंको खाने की वस्तु का भाग कर, सब साथ मिलकर समान हिस्से बांटकर खायें, ऐसी आदत डालना। सब साथ मिलकर खाने से क्या फायदा होता वह समझाना।

५. एक दूसरे को परस्पर सहाय करने सीखा दो।

६. स्वार्थ वृत्तिकी प्रवलता से कुछ देने में पीछे हट जाय, दे न सके तो उसके अशुभ परिणामों दर्शाकर और स्वार्थवृत्ति से क्या नुकसान होता है वह दिखा दो।

७. मायालुवर्तन से बच्चोंओ में माया, दया और परोपकार वृत्तिको उत्तेजित कर सकती है इस लिये आप उसके पर जो कुछ उपकार करोगे और मायालु वृत्तिसे वर्त्ताव करोंगे इतने ही प्रमाण में वे तुम्हारा वर्तन का अनुकरण-करना जल्दी सीख लेंगे।

८. करुणा वृत्ति के कार्य को उत्तेजित करने वाले अनेक प्रकार के खेल तमाशा विनोद के प्रसंगों स्वयंम खडा करो और बालकों को वृत्ति का निरीक्षण करो।

९. बच्चों को पशुवध देखने रोक दिओं।

१०. घर में भी ऐसे पशु पक्षीओं की हिंसा न होने देनी चाहिए।

११. मद्य (मदिरा) मांस और प्रत्येक प्रकार के व्यसनों का त्याग करने सिखाना।

१२. प्राणी पशु, पक्षी, जन्तुओं प्रति-माया और ममताकी भावनासे वर्ताव करना सिखाना और वह प्राणीओं के उपयोग, सौन्दर्य, रचना और कार्य आदि से वाकिफ—जानकार कराना।

पशुवध, क्रुरता, मांसाहार और कसाईखानाओं— दुनिया में मांसाहार का प्रचार अनेक वर्षों हुए इतना अधिक बढ गये है और दिन प्रतिदिन बढ़ता जाते हैं कि उसकी कोई सीमा ही नहीं है। युरोप, अमरीका, आस्ट्रेलिया, अफ्रिका और एशियाके समग्र भागोंके चारों खंड में (महाद्वीप में) मात्रभारत की बस्तीका मात्र हिन्दुओंकी कम बहुत जाति और उसमें भी खास करके गुजरात, सौराष्ट्र, कच्छ और भारत के थोड़ासा प्रदेशोंको बाद करतो तो भी पृथ्वाके समग्र विभागो में मांसाहार का छूट से प्रचार है। खुल्ली रीति से अनेक कसाइखानाओं में रात दिन की परवाह करे बिना प्रतिदिन गाय, भैंस, घोड़े, बकरे मेढे, पाडा, बैल बछडा और असंख्य प्राणीओं का बध सर्वदा चालु ही रहता है। ये सिवाय शिकारके शौकोनों वध करतेहैं वह तो बिलकुल भिन्न है। तदुपरान्त हाथीदांत, काचबेकी ढाल और अन्य प्रकार के व्यापार रोजगार निमिते करने में आता पशुवध की तो कोई गिनती ही नहीं, मात्र खूब सूरत, मनोहर रोम (मुलायमबाल) प्राप्त करने के लिये और लंदन जैसे सुप्रसिद्ध शहरके रस्ताओं पर ठाठ बाठ रीतिसे और पूर्ण अभिमानसे फैशनेबल मूड में अपना प्रेमी साथ घूम सकें ऐसी मिथ्या आडंबर यकत कामवासनाओं की तृप्ति करने पीछे प्रति वर्षमात्र रुँआँ वाले प्राणीओं की करने में आती हिंसा की संख्या इतनी तो जबरदस्त, भयंकर, मस्तक घुमा दे, अस्थिर कर दे और कंपन, घृणा, थरथराहट पैदा हो जाय ऐसी है जिससे समझु, सहृदयी मनुष्य का हृदय करुणा रसकी आर्दता से वर्षों के वर्षो तक स्रवते रहे तो भी वह शान्त हो सके नही।

रुँआं वाले प्राणियों की संहार संख्या यूरोप और अमरीका की हर साल की संख्या देखेंगे तो वह हजारों की गिनती में से लाखों की गिनती में पहुंच गई हुई देखने में आती है। जिस की प्रतिवर्ष की संख्या दे सकते हैं किन्तु विषय लम्बाण भय से छोड़ दिया है।

एसे प्रकार की निर्दयता के परिणाम से दया और परोपकार वृत्ति का बिल्कुल विनाश ही हो जाता है। इससे ऐसी प्रजाओं अन्त में एक दूसरों का बिना संकोच गला काटने तैयार हो जाते हैं। उसका प्रेत्यक्ष प्रमाण पाश्चात प्रजा ने दिखाये हुए अति क्रूर और भयंकर युद्धों-संग्रामों तथा चलता रहता अणुबोम्बों के प्रहारों अब जगत की समग्र प्रजा को विदित ही है।

अमरीका और रशिया की पास जगत् की समग्र मानव जाति का नाश हो जाय इतना अधिक अणु-बोम्ब का संग्रह एकत्र हुआ है, तो भी अणुशस्त्रों के प्रयत्न, परख दूसरी प्रजाओं का विरोध होने पर भी प्रतिदिन चलते ही रहते हैं।

इस अण शस्त्रों के उत्पादकों मानव जाति का नाश करके पीछे किस के पर अपना अधिकार अथवा स्वमित्व भोगेंगे ? अधिकार किस के पर चलायेंगे ? और किस प्रकार का सुख प्राप्त करेंगे ? उसका बुद्धि से कोई विचार करते होंगे या नहीं ? ऐसा अधम और अति भयंकर, अति दुःखदायक परिणाम दया की देवी के विनाश के कारण से ही आया हुआ है। इसलिए भाइयों और बहिनों जो आपको सुखी होना होगा, मनुष्य शरीर द्वारा सृष्टि के अलौकिक आनन्दों भोगना होगा तो सद्भाव और स्नेह भाव से तथा पूरा भक्तिभाव से आपके अन्तर में दया-परोपकार का पवित्र धर्म स्थापित करो।

मनुष्य, पशु, पक्षी, जीव, जन्तु आदि देह में,
सुख दुःखादि अनुभव समान होता सर्व में;
मदांध बन न मारना बचा लेना जीव को,
अरे दिल दया धरो पीड़ा करो न प्राणीको। १

रचा अंश ईश्वर ने दर्श सब शरीर के,
हम से लाख बात से वो अल्प भी न बन सके,
विचार से अधिक ठीक भय दिल रखको,
अरे दिल दया धरो पीड़ा करो न प्राणी को। २

करो न पदाघात प्राणी को गरीब मान के,
किसी भी समय हो न खुश मित्र जीव मार के,
हिंसा की विशेष बात करो न तारीफ को,
अरे दिल दया धरो पीड़ा करो न प्राणी को। ३

बनाने वाला एक ईश हम का ही उनका,
उनको भी मिला हुआ उदार प्यार ईश का;
प्रभु ने दिये हुये समान सुख सब को,
अरे दिल दया धरो पीड़ा करो न प्राणी को। ४

बल से बहुत बोझ भर ऊपर से मार मारते,
गरीब जीव बापड़ा का कष्ट न विचारते;
करो कभी न क्रूरकर्म पापका पहिचान को,
अरे दिल दया धरो पीड़ा करो न प्राणी को। ५

करते अधर्म कर्म जन्तु पांव पांख तोड़ के,
पिरोते कांटा में करते बुरा खेल खेल के;
सकेत ताक करते विनाश बाण खींच को,
अरे दिल दया धरो पीड़ा करो न प्राणी को। ६

पञ्चम् प्रकरण

प्राविण्यप्रदायक शक्तियों

The self perfecting or semi-
intellectual sentiments.

साहित्य संगीत कलाविहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः ।
तृणं न खादन्नपि जीवमान स्तद्भागधेयं परमंपशूनाम् ।।

---

२३. कलाकौशल्य
२४. सौन्दर्य प्रेम
२५. औदार्य भाव
२६. अनुकरण शक्ति
२७. हास्यविनोद वृत्ति

प्राविण्य प्रदायक शक्तियों के समूह की अन्दर वर्णन करने में आने वाली मस्तिष्क की अन्दर की मानस शक्तियों, मनुष्य की पशुवृत्तियों और बुद्धि तथा धार्मिक शक्तियों का यथायोग्य प्रमाण में मिलन कर मनुष्य को उन्नत बनाते हैं । इतने लिए इस शक्तियों का स्थान मस्तिष्क की अन्दर पशु-वृत्तियों तथा गृहभावनाओं और नैतिक तथा बुद्धि शक्तियों की बीच में कुदरत ने स्थापित किए हूए हैं ऊपर नैतिक और धार्मिक शक्तियों का विभाग आया हुआ है जब नीचे स्वार्थवृत्तियों के स्थान हैं ।

जिस व्यक्ति में इस समूह वाली शक्तियाँ अधिक अंश में विकसित हुई हैं वे इन्द्रिय की आधीनता स्वभाव की सर्व प्रकार की निर्दयता, खाने पीने पीछे की तकलीफ और विषय वांच्छना आदि पशु-वृत्तियों की आधीनता को सर्वथा घृणा की दृष्टि से देखते हैं ।

ऐसे मनुष्यों सृष्टि रचना का सौन्दर्य, कलाकौशल्य की उत्तमता और वृद्धि तथा जो कुछ कुदरत में अथवा मनुष्य कृति में अच्छा सुन्दर और प्रशंसा करने योग्य होगा उसको चाहते हैं, उसकी तारीफ करते हैं । गुण गाते हैं और प्रशंसा करके अन्य में भी उसकी वृत्तियों विकसित होवे ऐसा देखने इच्छते हैं । जिस व्यक्ति में पूर्णता से इस प्राविण्य प्रदायक शक्तियों विकसित होती है वैसे मनुष्य उत्तम प्रकार की चाल-चलन और सादगी को पसन्द करते हैं ।

जिन्हों में इस शकितयो कम प्रमाण में होती हैं वे कुदरत की सुन्दरता और मनोहरता प्रति बेपरवाह होते हैं । जैसे उसका उपयोग भी कर सकते नहीं । सामान्य हालत का घर, जैसा तैसा फरनीचर और बिलकुल सामान्य प्रकार की स्वीकृति करने वाला होते हैं । स्वभाव सख्त, शिक्षा, विनय

और नम्रताहीन अथवा कृत्रिम विनय वाले, जिन्दगी का सुधार पसन्द नहीं करने वाले और कला हुन्नर के शौक की तथा प्राविण्य प्रदायक उच्च गुणों की खामी वाला होते हैं।

विकास—ऊपर दर्शाई हुई प्राविण्य प्रदायक मानसिक शक्तियों को विकसित करने के लिए जिस व्यक्ति में जिस विषय की न्यूनता होगी वह पर खास ध्यान रखकर विकसित करनी चाहिये। और ये प्रयोजन की सिद्धि के लिये निम्न लिखित सूचनानुसार वर्तना चाहिए।

१. चतुर, रसज्ञ, संस्कारी और बुद्धिमान् मनुष्यों के संग में रहो।

२. चित्रकला प्रदर्शक स्थानों और यन्त्रिक कौशल्य प्रदर्शक प्रदर्शनों का सूक्ष्म अवलोकन करो।

३. सृष्टि सौन्दर्य के लिए वाटिका बाग, बागीचे में सायं प्रातःकाल वायु सेवनार्थे जाते रहो और वहाँ के वृक्ष, वनस्पति, पुष्प, लत्ता, पशु पक्षी आदि का अवलोकन देखभाल कर उनके सौन्दर्य प्रति मन लगाओ।

४. उत्तम प्रकार के साहित्य, काव्यों, नाटकों, हास्य रस युक्त गद्यों और उच्चकोटि के सुधारक और विद्वान् लेखकों के निबन्धों, या लेखों तथा सचित्र पुस्तकें वगैरे पठनपाठन पर ध्यान दिओ।

५. अनेक प्रकार के छोटे बड़े हथियारों का उपयोग करते सीखने की भी उतनी ही आवश्यकता है।

६. छोटे बच्चों में उपरोक्त शक्तियाँ विकसित करने के लियें कलाकौशल्य, अनुकरण, सौन्दर्य और संगीत का शौक बाल्यकाल में से ही स्कूलों में और घर की अन्दर सहजता से शामिल कर सकने जैसे हैं। वे अनुकरण से सब विषयों जल्दी सीश लेते हैं, इस लिये स्कूलों के शिक्षण में ऐसे विषय अवश्य सम्मिलित करना चाहिए। अनुकरण, हास्य, संगीत, किनरगार्डन, ड्रोइङ्ग, पेईन्टींग, वोटरकलर आदि के आरम्भ बचपन में से हो घर में करना चाहिए, लड़कियों के लिये भी ऐसे ही होना चाहिए।

नं० २३ कलाकौशल्य अथवा शिल्पवृत्ति

कला के शिल्पशकित (Construction) जिसकी अन्दर अन्वेषक बुद्धि, प्रवीणता, दक्षता, होशियारी, हस्तकौशल्य, कार्यज्ञता, यान्त्रिक शकित, हाथ से कार्य करने की चपलता, बिगड़ा हुवा यन्त्रको सुधारने की, यान्त्रिक साधनों उपस्थित करने की, यथायोग्य जोड़ने की फीट करनेकी. चलानेकी, हथियारों का उपयोग करनेकी, भवन निर्माण करने को और निरन्तर नया नया अन्वेषण करने की शकितका समावेश हुवा है। सारांश जिसमें हाथ और चक्षु आदिकी मुख्यता आवश्यकता होगी वैसे समग्र कार्योका यह एक ही शक्ति में समावेश हुआ है।

स्थान—इस शकितका स्थान मस्तिष्कमें गणित शकितकी ऊपर और संगीत के स्थानकी पीछे तथा द्रव्याभिलाष की शक्तिके अग्रभाग में यथायोग्य रीति से स्थित थके हुए हैं।

योजना कला
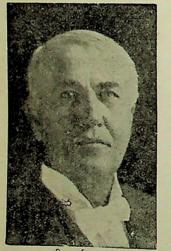
श्री एडीसन

चौड़ा भरा हुआ पुष्ट व्यक्तिमें यह भाग ऊपर चढ़ता दिखाई आता है। जब ऊंचा और लम्बा सिरवाला व्यकित में वह भाग फैला हुवा दिखाता है। जिससे वह अवयय होते इससे देखने में कम दिखाता है प्रसिद्ध आर्टिस्टों में यह स्थान विशेष वृद्धि पाया हुआ दिखता है। यह अवयव के सम्बन्ध में डा० गॉल कहते हैं कि:—

इस शकित की अधिकता के कारण बीवर, शशक, नकुल अपना खोखला खोदते हैं। पक्षीओं घोंसला बनाते हैं, मधुमक्षी का कैसा सुन्दर, स्वच्छ और नापका नियम ध्यान में रखकर अपना धर बनाती है? मनुष्यो भी वही शकित के आधार से झोंपड़े, महेलों, मन्दिरों, नौकाओं, एन्जिनों, रेल्वेगाडी. बैलगाड़ी, घोड़े गाड़ी, मोटर, तार, टेलीफोन रेडिया, खिलौना, विमान, बरतन, वस्त्र और प्रत्येक प्रकार के यन्त्रों, यान्त्रिक साधनों इत्यादि बनाते हैं।

चित्र, लेखन, कोतरकाम की (नक्काशीकामकी) अद्भुत शिल्पकारी (कारीगरी) के असंख्य नमूनाओं इस शकितको ही एहसानमंद--आभारी है।

महान बुद्धिशाली मनुष्यों में भी जिसका यह कौशल्यका स्थान अच्छा विकसित नहीं होता वे

बुद्धिमान् होने पर भी एसे यान्त्रिक कार्यों के लिए स्वाभाविक निपुणता कभी प्राप्त नहीं कर सकते ।

उपयोग—कुदरत के महान् और सर्व रीति से सम्पूर्ण कार्यालय में इस शकितका अनेक विध उपयोग करने में आया हुवा हम सर्वत्र देखते हैं । मनुष्यों भी वही शकित के कार्यका अनुकरण कर अपना घर, घरकी चीज वस्तु और हथियार इत्यादि साधनों बनाने में वही शकित को उपयोग में लेते हैं ।

प्रत्येक पुष्प, फल, वृक्षपान और वनस्पति के शाखा, टहनी, बेल, लत्ता, पत्ता, पर्णकी रचना में हम यह अद्भुत शकितका कार्य प्रकट रीति से प्रवर्ति रहा हुआ देखते हैं । प्रत्येक वृक्ष की रचना, उसके मूल, शाखा, टहनी और पर्णका कार्य, रस प्रसरने की विधि और पोषण क्रिया विगेर प्रत्येक अंग और उनके सम्बन्धों अद्भुत प्रकार की कुदरत की शिल्पशक्तिके असंख्य नमूनाओं उपस्थित करते हैं ।

मनुष्य तथा प्राणी वर्ग के शरीर यन्त्रकी रचना भी वही शकितका प्रत्यक्ष प्रमाण है । प्रत्येक प्राणी के अस्थि, चर्म, मांस, भेद, मज्जा, हृदय, फेफड़ा, जठराग्नि आदि अवयवों और उनके युक्तियुक्त और बुद्धिपूर्वक करने में आया हुआ सम्मेलनोंको अलगकर पूछताछ करोकि यह सब किसने किसलिये और कैसे संयुकत किये हुए है ? ऐसे प्रकार के यन्त्रों बनानेकी शकित किसी बुद्धिशाली व्यकित में सचमुच है ? यह सब कौन शिल्पकार ने बनाया है ? इस सम्बन्ध में थोड़ासा विचार तो करो ! खोज तो करो ! उसको अन्दर की केश वाहिनीओं, ज्ञानतन्तुओं के प्रवाहो रुधिराभिसरण और पचनेन्द्रियके अवयवों और स्थानों तथा हलन चलन और मननके लिए मस्तिष्क आदि अवयवोंकी अत्यन्त सूक्ष्म अगम्य और अकल्प्य रचना कौन शिल्पकारने किये हुए है, उसकी किंचित् तलाशी तो करो ? जिसकी अन्दर एक परमाणु जितनी भी वस्तु विन उपयोग की है नहीं । जिसमें एक बाल जितनी भी न्यूनता है नहीं । जिस अजीब प्रकार की अद्भुत कला कौशल्यका एक सचमुच अगम्य और अतकर्य नमूना है । ऐसे यह सर्व प्राणीमात्र की शरीर यन्त्रों की रचना किसने की होगी ? थोड़ा विचार तो करो ? क्या ऐसे असंख्य शरीर की रचना किसी भी प्रकारके यान्त्रिक ज्ञानबिना हुई होगी ? कया यह मानने योग्य है ? यह अद्भुत रचनाका एक सहस्रांस भी कया हम यथार्थ रीतिसे समझने समर्थ है ? हम समझने समर्थ नहीं है इससे कया कुदरती अद्भुत शिल्प शकित की श्रेष्ठता, प्रतिष्ठा, ऐश्वर्य, प्रभाव, शोभा, गौरव कुछ कम हो जाते हैं ? कभी नहीं ।

सारा विश्वकी अन्दर अनंत प्रकारके निरन्तर चल रहा हुआ सब कार्यों पर ईश्वरकी महान् शिल्प शकितकी मुहर सर्वत्र लगी हुई देखने में आती है । हमारी शारीरिक सर्व शकितयों यह विषय का प्रत्यक्ष प्रमाण देती है । हमारे शरीर के प्रत्येक अवयव अपनी शक्ति, वृद्धि, ह्रास और कार्य द्वारा मनुष्य मात्र को पुकार कर कह रहे हैं कि हम तो एक मात्र वह विश्वकर्मा परमात्मा की कृतिको आधीन रह प्रवर्तित हो रहे हैं।

ऐसे ही प्रकार की विश्वकर्मा की कार्य शक्ति के परिणामसे पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र और तारेगण (नक्षत्रमंडल) अपनी अपनी अनन्त कक्षा (ग्रहमार्ग) में अनन्त आकाश में अकल्प्य गतिसे निरन्तर

विमान-वायुयान अनुसार दौड़ रहे हैं। उनके परिमाण-कद और भार-बोझ को घुमाने में कितनी अमाप्य शक्ति का उपयोग प्रति सेकन्ड होता है। उसकी गिनती मानव शकित से अकल्प्य और अनाप्य तथा अविज्ञेय है।

सारा विश्वकी अन्दर एक परमात्मा सिवाय कोई एक भी ऐसी वस्तु या शक्ति नहीं है कि जिसकी तुलना हमारे मन साथ हो सके। इस मन रूप शकित का वर्णन करते सब शब्द खाली होते हैं। सब दृश्यों सम। जाते हैं। महान मस्तिष्क शास्त्रीओं ही किंचित् अंशमें इस मनकी शकितयों के सौन्दर्य को जान सकते है। और वर्णन कर सकते हैं। इस विश्वकी अन्दर अनन्त शक्ति और अगाध सामर्थ्ययुक्त परमात्माकी अनुसार मनुष्यका इस मन आत्मा-जीवात्मा-रूह--Soul भी एक अजर, अमर, नित्य परन्तु परिच्छिन्न और एकदेशीय है, अकल्प्य शक्ति और सामर्थ्यवाला पदार्थ है। जिसका भिन्न भिन्न शरीरों में भिन्न भिन्न कर्मानुसार अनेक रीति से संयोग द्वारा वह सुख दुःखका अनुभव करता है। मनुष्योंको अपना सुखके लिए अनेक प्रकार के साधनों घर, वस्त्र, लोह, लक्कड़, औजार बलतन आदि पदार्थों की आवश्यकता रहती है, इतने ही लिये परमात्माने इस शिल्पशकितका उसके मस्तिष्क में संपूर्ण युकित-पूर्वक यथा योग्य स्थान पर स्थापित की है। उसके परिणाम काष्टशिल्प, लुहार, ईंटोंका काम करने वाला, एन्जिनीयर, चित्रकार आदि सर्व अपनी आवश्यकतानुसार अपने हथियारों को उपयोगमें लारहे हैं। किसान कृषि कार्य कर रहे हैं। एन्जिनियरों रेल, स्टीमर आदि द्वारा अनेक प्रकारके सामानकी देश विदेशमें लाना लेजाना का कार्य कर व्यापार के महान सूत्रसे रुधिरा भिसरणकी क्रिया प्रमाणे सर्वको सजीवन कर रहे हैं।

यान्त्रिको नये नये यन्त्रोंका अन्वेषण कर मनुष्योंके परिश्रमकी बचत कर रहे हैं। पानी, वायु, विद्युत आदि देवो भी यह मानव शकितकी सन्मुख खड़े रहकर हाथजोड़कर प्रार्थना कर रहे हैं। विद्युत अपनी शकितसे प्रकाश दे रही है। वायु अपनी पीठपर बैठाकर अनेक माइलों तक प्रवास करा रहा है। पानी पाँच पाँच मंजिल पर चढ़ मनुष्यकी तृषा शान्त करने दौड़ता है। इतनाही नहीं किन्तु अपना स्वरूपका त्याग करने को भी मनुष्यके सामान को वनाना, सुधारना, लाना लेजाना और रखना छोड़ने का उग्र कार्य कर रहा है। कहो तब इसके बाद कया बाकी–शेष रहता है? इस शिल्प विद्या या कलाकौशल्य शकितके प्रताप से कितने अधिक महान कार्यों की परंपरा चल रही है? इस सब बना-वट शिल्प शकित के अस्तित्व और विकास की तथा जरूरियातकी प्रत्यक्ष प्रमाणितता दरसा देते हैं—समझा देते हैं। कहोगेकि यह एक ही शकितके प्रताप से कितने अगणित लाभों और आनन्दों तथा असंख्य सुखों मनुष्य समाज प्राप्त कर रहे हैं उसकी कोई गिनती हो सकती है? मनुष्य कृत वस्तुओंके अभाव में मनुष्य कैसी पशुतुल्य हालतमें आगिरते? प्रजाओंकी प्रगति का आधार कार्यशकित और कलाकौशल्य ऊपरही विशेष करके टिक रहा हुआ है।

इस कार्य शकित के अभावमें कोई घर वना सकते नहीं। एक कपड़ेका टुकड़ाभी नहीं बना सकता।

एक हथियार भी आज अस्तित्वमें नहीं आया होता। तब शारीरिक सुखाकारी के साधनोंकी तो ऐसी हालत में बातही कया करनी ?

लेखन कला, लिखनेका साहित्य आदि किसीभी पदार्थ या साधनके अभाववाली स्थिति में मनुष्यकी दशा समूची गंवार वन्य पशुवत हो गई होगी। चबाना, कुचलना, निगलजाना वह भी यान्त्रिक क्रियाओंही हैं। वह शकितके कार्य बिना किसीभी कार्य न हो सके। संक्षेपमें कला कौशल्यके दुनियाकी सर्वप्रकारकी क्रियाओं तुरन्त बन्ध हो जाये तो परिणामे विनाश तथा मृत्युही उपस्थित होजाय यह निःसंशय है।

हरेक प्रकार के मालमत्ता, मिलकियत के मूल्य उसके बुद्धियुक्त उपयोगसे ही होना है। खेतमें कपास बोना वह शारीरिक कार्य है वही अनुसार उसकी गंठरी बांधना, जहाजमें चढ़ाना, सूतकातने तथा कपड़े बुनने का कार्यालयमें भेजना, वहाँ उसका बुनावट का काम करना, रंगना, धोना, छापना, विदेश चढाना काटना, सीना, ओढना, पहिनना विगेरे कार्योंकी परम्परा एक प्रकारकी शिल्पवृत्ति है। प्रत्येक विषय या पदार्थके सम्बन्धमें इसी अनुसार समझ लेना।

ऐसी रीतिसे हमारी अन्दर परमाामाने प्रदान किये इस कलाकौशल्यके हम कितने विशेष प्रमाण में आभारी है ? हमारा अनन्त सुखोंका यह एक ही शकितका विकास ऊपर कितना बड़ा भारी; विशाल और अतिशय आधार है ? यह अब स्वाभाविक रीति से झट समझमें आसके ऐसे है।

प्रत्येक व्यकित अपनी अपनी शकित, स्थिति और संयोगोंके प्रमाणमें कुदरतके महान कार्यालयमें कार्य कर रहे हुए हैं। और उससे प्रत्येक कार्य करनेवाला शिल्पकार माननीय बनते हैं।

प्रत्येक नया अन्वेषण कर जन समाज को प्राप्ति, लाभ पहुँचाने वाला, कलाकोशल्य जानने वाला मान और पूजा के योग्य है। परन्तु मानसिक कार्य कर पुस्तकें-ग्रन्थों लिखने वाला, तथा समाचार पत्र द्वारा जन समूह में मानसिक सुधार का कार्य करने वाला मननशील मनुष्यों सब से अधिक मान देने योग्य है। कारण मन दुनिया में सर्वोत्तम वस्तु है कि जिस की सहाय से शब्द, अर्थ और वाक्य की संकलना द्वारा महान् विचार प्रकट हो सकते हैं।

ऊपर सूचित की हुई सर्व प्रकार की क्रिया या कलाकौशल्य को काम में लाने वाला अवयव मस्तिष्क की अन्दर है। वे कोई व्यक्ति में विशेष, कोई में साधारण ऐसा न्यूनाधिक प्रमाण में होता है।

प्रपूर्ण—जिन लोगों में इस कला कौशल्य का स्थान अच्छी रीति से विकसित होता है वे अद्भुत प्रकार के यान्त्रिक कौशल्य और रचना शक्ति वाले होते हैं। सुधारना, दुरुस्त करना, तोड़ना, फोड़ना, पलस्तर या अस्तर करके योग्य अनुकूल, जैसा होना चाहिये वैसा ठीक करने के कार्य में वैसे व्यक्ति कुशल-निपुण होते हैं। उन्हों में अनुकरण, आकृति, माप और स्थान ज्ञान आदि शक्ति की विशेषता

होगी तो उन्हों में आर्टीस्ट के लिये प्रथम श्रेणी के गुणों होते हैं। वे चित्र काम खुदाई-नक्काशी काम में बहुत ही निष्णात साबित होते हैं। रंगज्ञान की अधिकता से अच्छा पेइन्टर हो सकते हैं, बन सकते हैं। सौन्दर्य की अधिकता से मनपसन्द कार्य कर सकते हैं। तर्क और बुद्धि शक्ति की सहाय से नया अन्वेषण या सुधारा कर सकते हैं। भूगोल और स्थल ज्ञान की मदद से देश-भूमि अन्वेषक होते हैं और अनुकरण की प्राबल्यता से भिन्न भिन्न नमूना प्रमाणे आबेहूब (जैसा स्वरूप हो वैसा) नमूना उतार सकते हैं। बुद्धि शक्ति की अधिकता से बहुत ही उत्तम प्रकार का लखाण और वाक्य रचना कर सकते हैं, पुस्तकें लिख सकते हैं। वकतृत्व शक्ति की अधिकता से अच्छे प्रभावशाली व्याख्यान दे सकते हैं।

साधारण और न्यून—जिन्हों में इस शक्ति सामान्य अथवा न्यून प्रमाण में होती है उन्हों में उतने ही प्रमाण में कार्यकुशलता और हथियार चलाने की बुद्धि होती है जिस से अच्छा काम कर सकते नहीं लखाण भी बहुत ही हलका करते हैं। अच्छा शिल्पकार हो सकते नहीं।

स्वाभाविक कलाकौशल्य का कार्य तथा लक्षण

श्री कृष्णलाल पीठवा तथा श्री गोवरधनदास पीठवा

टंकारा निवासी आर्य श्री कृष्णलाल पीठवा तथा श्री गोवरधनदास पीठवा दोनों भाइयों बहुत छोटी उम्र में से सब प्रकार की मशीनरी का कार्य बिना पढ़े, निष्णातों की ओर से किसी भी प्रकार की, कुछ भी तालीम लिये बिना अपना अन्तर आत्मा की स्वाभाविक स्वयं स्फूरणा से कर रहे हैं। कोई भी मशीन फिट करते, चलाते, टूट, फूट हुआ हो तो सुधारते, एसे किसी भी प्रकार के यन्त्र सम्बन्धी कार्य अपनी दस बारा वर्ष की आयु में से कर रहे हैं। अब फाउन्टनपेन, पेनसील, चांदी तथा अन्य धातु और कचक को बनाते हैं, सीने गुन्थने का मशीन, संगीत के लिए वाद्य आदि किसी भी उपयोगी साधन बहुत ही सुन्दर बनाते हैं।

संगीत की शिक्षा किसी की ओर से लिये बिना अपनी स्वाभाविक मानसिक शक्ति से संगीत और साथ में वाद्ययन्त्र भा अच्छी रीति से जानते हैं। अच्छी रीति से गाना गा सकते हैं और बाद्य बजा सकते हे। उन्होंने अपने लिये भाषा की भी अनोखी रचना की है।

स्वाभाविक कला कौशल्य की शक्ति कैसे शिल्पकार बनाती है उसका अनुभव सिद्ध यह प्रमाण है। हमारा सम्पूर्ण विश्वास है कि खोज करने वाले महानुभावों को ऐसे कितने ही प्रमाण मिल जायेंगे।

विकास—इस कला कौशल्य की शक्ति को विकसाने के लिये—

१. हथियारों का उपयोग करने सीखो।

२. हरेक प्रकार के कार्यों अपने आप ही करो।

३. उत्तम प्रकार का लखाण लिखने का प्रयत्न करो।

४. जिस कार्य का करना सिर पर लेओ वह दक्षता और बुद्धिमत्ता से करो।

५. यन्त्रों की तलाशी करो और अन्वेषण शक्ति को संस्कारी बनाओ।

६. हुन्नर उद्योग प्रदर्शनों देखते रहो।

७. कला और हुन्नर के प्रत्येक प्रकार के कार्य पीछे मन लगा कर कार्य शक्ति को प्रोत्साहित करो।

८. पाठशालाओं की अन्दर की छोटे छोटे शिल्प वृत्ति के कार्यों अभ्यास पाठ रूप में बालकों-बच्चों को दिया करो।
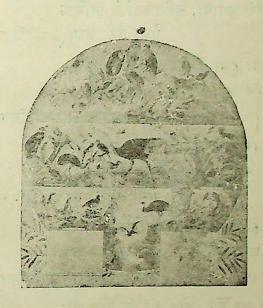
सम्पूर्ण कलाज्ञ परमात्मा की कला.

कला अपरिमित प्रभु, इसमें पहुंचते नहीं मुझ चित्त;
ऐसी तेरी कला अपरिमित जी.

ईश्वर तू कौनसा हथौड़े, ऐसी रचते हिकमत जी;
बच्चों में प्रभु मात पिता की, आती है कहाँ से सूरत,
ऐही तेरी कला अपरिमित जी। १

अणु में सारा वट समाया, इसके मुख औंधा निर्माण जी,
चिउंटी के आन्त्र कैसे बनाया, सृष्टिकर्ता से निर्मित;
ऐसी तेरी कला अपरिमित जी। २

जन्म पहिले दूध पैदा हुआ, ईश्वर को जुमत जी;
मयूर के अंडा में रंग जादुगर, कैसे भरा भगवत्;
ऐसी तेरी कला अपरिमित जी। ३

अणु अणु में ईश्वर स्वरूप, दिखाते व्यापक व्याप्त जी,
तो भी प्रभु हम नहीं समझते, आप के सुचरित,
ऐसी तेरी कला अपरिमित जी। ४

ऐसो रोति से अनेक विध, रचना अगणित जी;
अहा प्रभु म कैसे समझूंगी, सामर्थ्थ तेरा अद्भुत;
ऐसो तेरी कला अपरिमित जी। ५

तेरे चरण में सिर धर कर, जोड़ कर द्वि हस्त जी;
प्रार्थना करती प्रभु सामर्थ्य दो, भक्ति बुद्धि साथ सत्;
ऐसी तेरी कला अपरिमित जी। ६

नं॰ २४. सौन्दर्य प्रेम

Ideality.

सौन्दर्य प्रेम—उच्च प्रकार की पसन्दगी, संस्कारिता, पवित्रता, स्वच्छता, विनय, उत्तम चाल गृहस्थाइ, रम्यकल्पना शक्ति, माधुर्य, सौन्दर्य का शौक, पुष्प, सुवास, अत्तर, वस्त्र आदि अन्य आवश्यक पदार्थ का उच्च प्रकार का शौक, उच्च प्रकार की नीति, रीति या प्रीति और मन की भावना और लावण्यता आदि सब भावों का समावेश इस सौन्दर्य प्रेम की अन्दर होते हैं।

उपयोग—सृष्टि में और सृष्ट पदार्थों में सर्वत्र समा रहा हुआ सौन्दर्य को अनुभव में लाने का और कल्पना द्वारा अन्य को दर्शाने का कार्य इस वृत्ति का है सृष्टि में जो कुछ है वह सब सुन्दर है। किन्तु किसी को कुछ तो किसी को कुछ सुन्दर दिखाता है। सारी कुदरत की शाला सौन्दर्य तथा भव्यता का महान् भंडार अथवा सागर है।

सृष्टि रचना की उत्तमता, उसकी अन्दर के पदार्थों की उपयोगिता, वसन्त के सुवासित पुष्पों का परिमल, ग्रीष्मकाल के पदार्थों के उत्पन्न की पूर्णता, सूर्य और चन्द्र के अस्तोदय, समुद्र के ज्वार भाटा, चढ़ाव, उतार, अनन्त और अव्याहत आकाश में अनन्त दूर पर आया हुआ असंख्य गोलाओं उस की रचना, क्रिया और गति, खलखल करती रूपहरी चांदी के रंग की, मन्द मन्द गति से बहती नदियों, सुन्दर रंग बेरंगी अनेक विध पक्षीयों, उनके भिन्न भिन्न स्वर के मृदु, कोमल, तीव्र और कुतूहलोत्पादक (अद्भुत) ध्वनि, वाटिका उपवन और वनस्पति वर्ग के अनेक प्रकार के रूप, रंग, गुण और प्रभा (चमक) तथा अनेक प्रकार के छोटे, बड़े, मृदु और क्रुर स्वभाव के, भिन्न प्रकार के और विविध गुण, कर्म, स्वभाव के असंख्य प्राणियों से बिछा-ढांका रहा हुआ इस भूमितल तथा समुद्र पट पर के जल-चल प्राणियों। संक्षेप में इस विश्व के समग्र पदार्थों में किसी को किसी प्रकार का अवर्णनीय सौन्दर्य समाया हुआ है। किन्तु इस सब पदार्थों की अन्दर मनुष्य का आत्मा या मन भूमि पर के समग्र पदार्थों की सुन्दरता में सब से अग्र स्थान भोगते हैं। उसके स्वभाव, शक्ति, सामर्थ्य तथा आन्तर शक्तियों के सौन्दर्य की साथ विश्व के अन्य कोई भी पदार्थ का मुकाबिला हो सके ऐसे है नहीं।

कुदरत की अन्दर सर्वत्र फैला रहा हुवा उपरोकत सौन्दर्य का अनुभव देने वाले, लेने वाले या ग्रहण करने वाले मानस अवयवों मनुष्य के मस्तिष्क में इतने लिए ही परमकृपालु परमात्मा पिता ने स्थापित किये हुए हैं। कारण उसके बिना मनुष्य मात्र की अन्धवत प्रवृत्ति हो जाती।

सौन्दर्य की शक्ति के प्रताप से मनुष्य पवित्र होकर संस्कारी बनते हैं। उसका वर्तन उच्च प्रकार का बनते हैं। पूर्णता और सौन्दर्य को पाने के लिए, शारीरिक, मानसिक और नैतिक पूर्णता को प्राप्त करने के लिए यथाशकय सब प्रयत्न करते हैं। पाप से, दुखसे, दुर्गुणों से और दुर्व्यसनों से बचने और

सद्गुण, सदाचार तथा सद्वर्तन को सेवन करने में, पचाने में सुख मानकर ऐसे अनुकूल आचरण करते हैं। पशुवृत्तिओं की अधमता का त्याग कर एक कदम आगे बढ़कर उन्नत बाजू तरफ उनका लक्ष्य जाता है।

बुद्धि और तर्क शक्ति की ऊपर तथा नैतिक और धार्मिक वृत्तिओं के अग्रभाग में इस वृत्ति को स्थान देने में आया हुवा है। वह बताते हैं कि मनुष्य के आचरणों ऊपर यह शक्ति की बहुत ही पवित्र करने वाली असर होती है। मनुष्यों की पशुवृत्तिओं को वह नम्र बनाकर पवित्र करती है। विषय वासना को दबाते हैं। वाद विवाद करने वालों को भी नम्र और विवेकी बनाते हैं। सदाचार की बुद्धि और प्रगति करने में इस वृत्ति अद्भुत सहाय देतो है। यह उसकी अनोखी विशेषता है। इतने लिये इस वृत्ति को यथार्थ रीति से विकसित करनी चाहिए। और इतने लिये कुदरत की लीला (रचना) सृष्टि सौन्दर्य और भव्यता का मनन कर मानसिक शक्तिओं को उनकी प्रशंसा करने और प्रेरनी चाहिए।

भूगोल, खगोल, वनस्पतिशास्त्र प्राणीशास्त्र, शारीरशास्त्र, धर्मशास्त्र, और नीति शास्त्र आदि

सूर्य
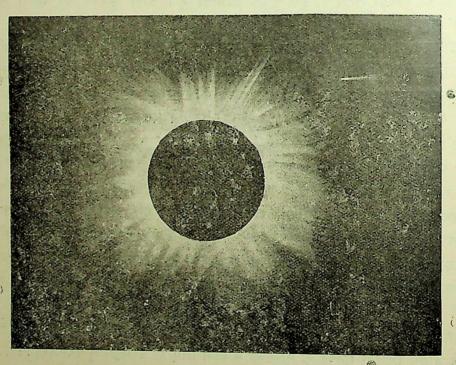
अनेक विद्याओं में भिन्न भिन्न प्रकार का सौन्दर्य समाया हुवा है। अनुकूलता और रुचि प्रमाणे उसमें के प्रत्येक की भव्यता तरफ मन को लगाने सिखना चाहिए। सूर्य चन्द्र के उदयास्त, संध्या समय पर रंग बेरंग का दिखता आकाश, पक्षीयों के सुन्दर रूप रंग आकार और सुर, मयूरोका नृत्य, नदी, वन,

वाटिका के सुन्दर दृश्यों, समुद्र के ज्वार भाटा की भव्यता, अनन्त आकाश में उड़ते अनन्त प्रज्वलित प्रकाशित गोलाओं, वर्षा ऋतु के भव्य और गंभीर घटनाओं, मेघ धनुष्य और विद्युत के चमकार, स्त्री पुरुषों के सामाजिक सम्मेलनों, उनके स्वभावों और मनोगत भावों मस्तिष्क शास्त्र के गूढ सिद्धान्तों और गुप्त भावों आदि सर्व प्रकार के अभ्यास में या अवलोकन में अनेक प्रकार की भिन्न भिन्न स्वरूप की भव्यता और सौन्दर्य समाया हुवा है। उसका अभ्यास करो, अन्वीक्षण और अन्वेषण करो और आश्चर्य से विस्मित करने वाला विषयो तरफ मनको प्रेरो और आत्मा को उन्नत बनादो। इस विषय में उच्च प्रकार का साहित्य अति उत्तम सहाय दे सकते हैं। दृष्टि से देख नहीं सकते ऐसे भावों का वर्णन अच्छे विद्वान कविओं और लेखकों अपनी रचना और लखाण द्वारा दे सकते हैं और पाठक महानुभावों को घर बैठे मिल जाते हैं। सारांश में कुदरत में और मनुष्य कृति में, मनुष्य स्वभाव में अथवा दूसरा कोई भी स्थल से, जहाँ जहां सौन्दर्य, भव्यता और रमणीयता देखने में आ जाय वहाँ से उसका ग्रहण करलो, उसका मनन करो, प्रशंसा करो और आत्मा को विशुद्ध और उन्नत भावों से भर दो, पूर्ण बनादो। विशेषकर कुदरत के अभ्यास का शौक इस सम्बन्ध में जितने साधनों संपूर्ण रीति से मिल सकते हैं इतने दूसरा कोई से नहीं मिल सकते। अनेक आत्माओं के लिएइस कुदरत का अभ्यास तो मानो एक पेकबंध किया हुआ पुस्तक सरीखा हो जाता है।

कुदरत का अभ्यास करना यह भी बहुत ही मनुष्यों समझ सकते नहीं कारण उनको कुदरत की कृति को अच्छी तरह देखभाल करने चक्षु नहीं है, विचारने के लिए विचार-मनन रूप चक्षु नहीं है। समय नहीं है ऐसा वे मानते हैं। ऐसे मानने वालों का दुर्भाग्य ही समझना।

नैतिक सौन्दर्य को हमेशा अधिक पसन्द करो। उचित प्रविणता और सत्य सौन्दर्य, नीति में ही समाया हुआ है। वर्तन में से हर एक प्रकार की कठोरता, कठिनता, कुटिलता और निर्दयता हमेशा दूर करने तत्पर रहो। मनुष्य स्वभाव के सौन्दर्य तरफ हमेशा प्रीतिभाव से देखना और सर्वत्र प्रशसा करना।

सौन्दर्यप्रेम

श्री० जोसफ वीबी०

प्रपूर्ण-जिन स्त्रीओं या पुरुषों में सौन्दर्य का स्थान अधिक प्रमाण में विकसित होता है, वे उच्च प्रकार की इच्छावाले उत्तम स्वभाव वाले, उच्च भाव और पूर्णता को चाहने वाले, अपूर्णता को धिक्कारने वाले होते हैं। पशु, पक्षी कीट, पतंग आदि प्राणी और मनुष्य की अन्दर समाइ रहा हुआ शारीरिक और मानसिक सौन्दर्य की प्रशंसा करने वाले होते हैं। कला, कवित्व और वकतृत्व शकित सम्पन्न, स्वभाव शान्त तथा शान्तिप्रिय और कल्यनामय संसार में विशेष करके रहने वाले होते हैं। उनकी कल्पना शक्ति तीव्र होती है, प्रत्येक शब्द तथा वाक्य बहुत ही मृदुता तथा माधुर्य पूर्ण अजीब ढब से बोलते हैं।

उनकी भावनाओं और विचारों भी उन्नत, विशुद्ध और मनोहर होते हैं। जहां से भी कुछ अच्छा देखने में आ जाय वहीं सौन्दर्य की प्रशंसा करने तत्पर हो जाते हैं। और विशेष करके कुदरती रचना के विशेष अंश में चाहने वाले तथा प्रशंसा करने वाले होते हैं। स्वभाव के सुन्दर और मनोहर होते हैं।

साधारण—जिन्होंमें इस शक्ति सामान्य प्रमाण में होती है वे बातचीत और चाल चलन में स्वाभाविक सुन्दरता रहित होते हैं। सुसंस्कारी नहीं होते। तथा जिन्होंमें इस शक्ति न्यून प्रमाण में होती है वे रीति रिवाज सिवाय के, सुन्दर स्वभाव की खामी वाले और कोई भी प्रकार के सुन्दर टेस्ट से रहित होते हैं।

दुरुपयोग—प्रत्येक वस्तु प्रमाणे इस सौन्दर्य के शौक की भी श्याम अंधेरी दिशा है। अर्थात् यह शक्ति का दुरुपयोग भी हो सकता है। "अति सर्वत्र वर्जयेत" यह सिद्धान्त यहां भी उचित अनुभव देता है। नोवेलो का अति पठन जो भावनाओं, विचार शक्ति और वर्तन को एक जहर जैसी विषमय असर करता है, और अनेक युवान तथा युवतीओं के जीवन कलुषित बनाकर जीवन के स्वाभाविक नौका को दुर्गुण और दुर्वासना के समुद्र में डुबा देता है। वह इस वृत्ति के दुरुपयोग का ही परिणाम है। ऐसे प्रकार के बांचन से "मस्तिष्कशास्त्र" बहुत ही विरुध है। विषयवासना को बढ़ाने वाला और पशुवृत्ति को ही केवल पोषण देने वाला, उत्तेजित करने वाला ऐसे अधम प्रकार के पठन से युवान और युवती के दोनों वर्ग ने सावधान-जागृत रहने की खास आवश्यकता है। ऐसे पठन से अकाले प्रेमवृत्ति और काम वासना जागृत होकर आरोग्य, आयुष और आनन्द को कमी करने में इस सौदन्दर्य के शौक का अधिक अंश में दुरुपयोग होता है। और जहाँ बुद्धि, विचार, तुलना और समझ शक्ति की न्यूनता होती है वहां ऐसे प्रसंगों अनेक बार बनते हैं। और ऐसे बनना यह स्वाभाविक है। हमारा ब्रह्मचर्याश्रम के बहुत ही कटु और कठिन दिखाता किन्तु परिणा में अमृतरूप लाभदायक साबित होते, इतने लिए सख्त नियमों का आचरण कराने की हमारा प्राचीन काल के पूर्वजों एक धार्मिक कर्तव्य समझते थे। जिसका महत्व आजकल के फेशन फिशियारी के और मौज शौक के समय में हम समझ न सकते, अथवा समझते तो भी उसका अनुकरण न कर सकते, यह हमारे दुर्भाग्य है। किन्तु उससे यह नियमों को उपयोगिता कुछ भी कम नहीं होती।

निग्रह—इस वृत्ति को दाब में रखने की भी आवश्यकता है। कारण कि ऐसे करने से उसके अनिष्ट परिणामों से बच सकते हैं। पोशाक और फेशन की पीछे मर्यादा से ऊपर करने में आता खर्च, गदा मनुष्यों तरफ अतिशय तिरस्कार से देखने की टेव ऐसी कितनी एक हकीकत में मर्यादा बाहिर न जाओगे यह ध्यान में रखने का है।

सौन्दर्य के शौक को विकसित करने के लिये निम्नलिखित नियमों ध्यान में रखो—

१. सर्व प्रकार का नाखुशी उत्पन्न करने वाली और गदी आदतों को दूर करो।

२ कसम और तम्बाकू खाने की, तम्बाकू सूंघने की, बीड़ा, सिगरेट, हुक्का पीने की या चाय, काफी, भांग, गांजा, शराब आदि पीने की टेव कभी भी नहीं डालना।

३. साले, बदमाश, धूर्त, लुच्चा, दगाबाज, गधा, मूर्ख, नालायक ऐसे और दूसरे कितने ही असभ्य

शब्दों का बात चीत में या अन्य प्रसंग में भी उपयोग करना सदंतर बंध करो। बहुत ही पुरुषों में ऐसी आदत विशष अंश में देखने में आती है। ऐसे मनुष्यों ने बुरी आदत को और असभ्य भाषा को ध्यान पूर्वक रुकने की आवश्यकता है।

४. सबकी साथ माया, ममता युक्त स्वभाव से वर्ताव करो। सख्ताइ से सर्वदा दूर रहो।

५. सर्व सुधार का गहरा मूल मानसिक सुधार है, उस पर ध्यान दिओं।

६. आन्तरिय शुद्धि और पवित्रता विना बाह्याडंबर या फेशन कुछ काम की नहीं इतना ही नहीं किन्तु कितनी एक वेर मानसिक बुरी आदतें बाह्य सजावट को भी लज्जित करने वाली होती है। उसको तत्क्षण ध्यान पर लेकर तुरंत रोक दिओं।

७. जहां वहाँ थूकने की आदत भी रुकनी चाहिए।

८. अच्छा स्वच्छ और सभ्य वस्त्र परिधान करो। बहुत ही भभकदार (दिखावे वाले) और शृंगारी वस्त्र पसन्द नहीं करो। हमेशा सादा पोशाक बहुत ही पसन्द करने योग्य है।

९. आचार विचार और सभ्यता तथा बर्तन की पवित्रता और संस्कृति की तरफ हमेशा ध्यान दिओ और विकसाने दिओं।

१०. हुन्नर उद्योग, कला और चित्रकला का शौक रखो और तुम्हारे बालकों में भी ऐसी वृत्ति को विकासने के लिये तालीम देना और साधनों पूर्ण करना।

११. कुदरत की सर्व शोभा और सौन्दर्य के लिये स्तुति और प्रशंसा की भावना को पुष्ट करो, और मन को सृष्टि रचना की लीला के महत्वपूर्ण विचारों से पूर्ण करो।
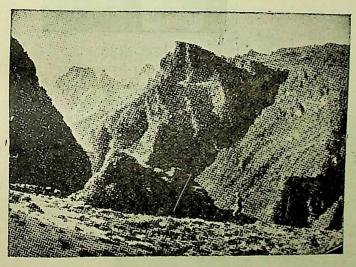
१२. सूर्य और चन्द्रमा के अस्तोदय, पहाड़, पर्वत, झरनाओं, नदीयों, पक्षीयों, ग्राम्य पशुओं तथा सुन्दर, सुवासित विविध प्रकार के पुष्प, फलों विगेरे का अवलोकन और उपयोग करने का शौक बढ़ाओ।

नदी

१३. बच्चों की अन्दर सौन्दर्य के शौक की हमेशा वृद्धि करते रहो। गंदा वस्त्र या मैला हाथ, पैर, मुख हो तो वह साफ किये बिना और स्वच्छ कपड़े पहिने सिवाय उनको बाहिर जाने नहीं दिओं।

१४. बच्चो स्वच्छ, सुन्दर, सभ्य, चतुर, विवेकी और पवित्र रहकर अपनी चारों ओर भी स्वच्छता, सुन्दरता, सफाई और नियम को पसन्द करें ऐसा शिक्षण बाल्यकाल में ही उत्साह से दिओ।

१५. कुदरत के सौन्दर्य प्रति उनका बारम्बार ध्यान खींचना। उसके प्रशंसा करनी सीखा दो।

१६. प्रत्येक प्रकार की स्वभाव की या वर्तन की कठोरता, निष्ठुरता को शीघ्र युक्तिपूर्वक दूर करो। नम्रता, विवेक, मृदुता, सरलता और स्वभाव माधुर्य आदि गुणों विकसाओं। जैसे बन सके वहां तक असभ्य वर्तन और भावों से बालकों को बचाओ। आचार विचार और वर्तन में हमेशा शुद्ध, स्वाभाविक और सरल प्रकृति वाले बालकों बन सके वैसा ही शिक्षण देते रहो।

संक्षेप में—सर्व जगह और सर्वावस्था में अच्छा, भला और सौन्दर्य युक्त होगा उसका ग्रहण करने सर्वदा तत्पर रहो और हमेशा तुम्हारे मानसिक सुखों में और बच्चों के चरित्र सुधारने में इस वृत्ति अनेक रीति से वृद्धि करेंगे यह स्पष्ट अनुभवोगे।

सुभाष
सुपुत्र जगन्नाथ
देहली

बुद्धिशाली और सौन्दर्य प्रिय बालको

वारपालसिंह
सुपुत्र चौधरी नारायणसिंह
मालिक सम्राट् प्रेस, देहलो

कुदरती सौन्दर्य, सुबासित कुसुम वाटिका.

०. २५. औदार्य अथवा महानुभाव-वृत्ति

Sublimity

औदार्य—इस शक्ति अथवा वृत्ति से कुदरत की अनन्तता, अपरिमितता, व्यापकता, सर्वशक्तिमत्ता, अपारत्व, अनादित्व, महत्व, गाम्भीर्य पूर्ण आदि महत्वपूर्ण विचारो का ग्रहण होता है।

स्थान—सौन्दर्य शौक के स्थान की बराबर पीछे ही मानो कि वही शक्ति क प्रपूर्ति के लिए ही इस शक्ति हो, ऐसे इस वृत्ति का स्थान आया हुआ है। सौन्दर्य प्रीति की पीछे तथा सावचेती के अग्र भाग में और आशा तथा गोपन शक्ति के अवयव की बीच में इस औदार्य वृत्ति के अवयव का स्थान है।

उपयोग—इस शक्ति का उपयोग कुदरत की अन्दर सर्व व्याप्त फैली रही हुई परमात्मा की अपरिमित और अनन्त शक्ति, और सामर्थ्य का अनन्त आकाश का और अनादि काल का, असंख्य पदार्थों का और प्रकृति के अनन्त स्वरूप का सामान्य रीति से अनुभव करने के लिए योजना की हुई है। मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष, वनस्पति, अनेक प्रकार के जीव जन्तु और कुदरत के खजाने के असख्य और अपरिमेय गुण, कर्म और स्वभाव युक्त अचल तथा चलनशील पदार्थों या वस्तुमात्र का भव्य ख्याल इस शक्ति से मनुष्यों प्राप्त करते या अनुभवी सकते हैं। इस अपरिमित और अनन्त शक्ति के अनुभव से मनुष्य का आत्मा महत्वपूर्ण गांम्भीर्ययुक्त भावों से रसतस होकर उन्नत भावों का अनुभव करते हैं। जिस को हम औदार्य कहें यही इष्ट है।

इस शक्ति के अभाव में कुदरत के अनेक सत्य अंशों का या अनन्त आकाश, अमाप्यकाल और अनन्तदिशा और सर्व सामर्थ्ययुक्त परमात्मा की कोई भी शक्ति का ख्याल भी हमारा आत्मा में आ सकने का सम्भव रहता नहीं। सौन्दर्य के शौक की शक्ति करते इस औदार्य शक्ति का यह स्थल से ही भेद दिखाता है। कुदरत के ऐसे महत्वपूर्ण भावों का हृदयगम करने के लिए मनुष्य की अन्दर वैसी ग्राहक शक्ति का अवयव अवश्य होना ही चाहिए। जिस यह औदार्य शक्ति से हम को प्राप्त हुआ है।

प्रपूर्ण—जिन्हों में यह शक्ति अति पूर्ण रीति से विकसित होती है। उन्हों के हृदय हमेशां उच्च विचारों से परिपूर्ण होते हैं। नक्षत्र मंडल से पूर्ण अन्तरीक्ष, महान पर्वतों, समुद्र की अनन्त उर्मिओं (लहरों) वायुदेव के अनन्त शक्ति युक्त सपाटाओं, बीजलीओं के चमकाराओं तथा मेघ गर्जना के भयंकर धड़ाकाओं और ऐसी ऐसी कुदरत की शक्तियों के महान कार्य का अवलोकन द्वारा ऐसे प्रकार के व्यक्ति अपना हृदय को महान भावों से हमेशां पूर्ण करते हैं। कुदरत में या सृष्टि में जो कुछ भव्य

और आकर्षक होगा, वह देखकर वे बहुत ही खुश खुश हो जाते हैं। जंगलों, झरनाओं, मैदानों, अन्नपूर्ण क्षेत्रों, पक्षीगणों विगेरे को देख कर ऐसे व्यक्ति के हृदय आनन्द पूर्ण हो जाता है।

जल प्रपात

ऐसे व्यक्ति में जो पूज्य वृत्ति का स्थान अधिक रीति से विकसित होगा तो वैसे व्यक्ति सर्व शक्तिमान, अनन्त निर्विकार, निराकार, अजर, अमर, नित्य, शुद्ध, मुक्त स्वभाव आदि महान गुण युक्त परमात्मा की अत्यन्त भक्तिभाव से उपासना करते हैं। और कुदरत में सर्वत्र व्यापक सत्ता को सर्व स्थल पर और सर्वावस्था में देखते हैं, अनुभवते हैं। इतना ही नहीं किन्तु वे हमेशां विचार द्वारा परम पिता परमात्मा के सानिध्य में ही रहते हैं। उन्हों की बुद्धि शक्तियों जो तीव्र होगी तो कुदरत की प्रत्येक रचना का सूक्ष्म अभ्यास कर बहुत ही विस्तृत भावों को धारण कर सकते हैं। और तत्वज्ञान के गूढ़ विषयों का अन्वेषण कर, ग्रहण कर समझने की तथा अन्य व्यक्तियों को औदार्य भाव वाली शैली में समझने की अद्भुत शक्ति धराते हैं।

यह शक्ति का उत्कट-प्रबल विकास साथ सौन्दर्य का स्थान भी स्वाभाविक रीति से विकास पाया होगा तो सौन्दर्य, औदार्य और पूज्य भाव तथा बुद्धि आदि चारों शक्तियों का सम्मिलन होने से एक ऐसे अति उत्तम प्रकार के भक्तिभाव, पूज्य वृत्ति स्तुति और उपासना को जन्म देते हैं। जिस के आनन्द की पास सारा भूमिमंडल का साम्राज्य भी हीन हलका हो जाता है, कुछ मूल्य का नहीं ऐसा समझा जाता है। ऐसे व्यक्ति सहज ही में समाधि लाभ प्राप्त करते हैं। इतने लिए ही उपनिषदों में कहा है कि—

समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत्।
नशक्यते वर्णयितुं तदागीरा स्वयं तदन्तः करणेन गृह्यते।।

जिन्हों में यह शक्ति अधिक कम प्रमाण में विकसित होती है वे उतने ही प्रमाण में उपरोक्त भावों का अनुभव कर सकते हैं।

साधारण—जिन्हों में सामान्य इस शक्ति होती है और पूज्य भाव भी विकसित नहीं होता वे कुदरत तथा उसके नियामक परमात्मा सम्बन्धि इतने उच्च भावों कल्पीया अनुभवी सकते नहीं।

न्यून—जिन्हों में न्यून प्रमाण में इस शक्ति होती है उन्हों में उपरोक्त विषयों समझने की या ग्रहण करने की खास खामी होती है। उन्हों ने यह अति उत्तम शक्ति को विकसित करने के लिये उत्साह पूर्वक बन सकता सब प्रयत्नों करना चाहिए।

विकास---यह अति आवश्यक की और उम्दा प्रकार की वृत्ति के विकास के लिए नीचे लिखा हुआ उपायों योजने की आवश्यकता है।

१ ऊंचा पर्वत की चोटी पर जाकर तलेटी प्रदेश का अवलोकन करो, पर्वत और जंगलों के महत्व की प्रशंसा करो।

२. वायु दलों की गति, वर्षा से होते लाभों और महान कार्यों तथा परिवर्तनों, वायुमंडलों के कार्य तथा शक्ति का विचार करो।

३. विद्युत की शक्ति तथा मेघ गर्जना के गांभीर्य पर ध्यान दो।

४. समुद्र और महासागर की सीमा और कार्य तरफ मन को प्रेरो।

५. ज्वालामुखी और उसके कार्यों तथा शक्तियों का विचार करो।

६. खगोल के अभ्यास तरफ तथा आकाश के अनन्त सागर में घूमते चन्द्र, सूर्य, ग्रहोपग्रह आदि की गति, स्थिति, व्यवस्था, दूरता और महत्वता के अभ्यास और अवलोकन पीछे मन को लगाओ।

७. कुदरत और उसके नियामक के सम्पूर्ण गुणों और धर्मों को प्रत्यक्ष करने के लिए ठीक समय ले कर विचार और मनन द्वारा प्रयत्न करो। उस को ही उपासना या योगाभ्यास का रूप दो।

निग्रह—यह शक्ति को दाब में या अंकुश में रखने की कोई प्रसंग में आवश्यकता नहीं। कारण कि उसका दुरुपयोग होने का सम्भव नहीं। किन्तु कितनी वेर इस शक्ति की अधिकता के लिए तथा स्वभाव की नम्रता के लिए भाषा और आचरण में हद उपरान्त की नम्रता या अतिशयोक्ति आ जाती है। जिस को निग्रह में रखने की आवश्यकता है।

नये उठते युवको, लेखकों और व्याख्याताओं और कितने एक पुस्तकें लिखने वाले भी इस वृत्ति का ऊपर प्रमाणे अतियोग करते हुए देखने में आता है। उन्होंने यह वृत्ति को ध्यानपूर्वक दाब में रखना चाहिए।

वेद उपनिषद और गीता आदि ग्रन्थों के ईश्वरीय सत्ता का वर्णन देने वाला महान् भावों में प्राचीन ऋषियों की उदार भावना का सर्वत्र दर्शन होता है। ऐसे महान ग्रन्थों का उपासना के समय हमेशां स्वाध्याय के रूप में उपयोग करने से यह वृत्ति का अनेक रीति से विकास हो सकता है।

औदार्य वृत्ति के औदार्य, गाम्भीर्य और भिति ऐसे तीन विभाग हैं।

औदार्य शक्ति से कुदरत की अनन्तता, अपरिमितता, व्यापकता, सर्वशक्तिमत्ता, अपारत्व, महत्व-दर्शाने के लिये और समझाने के लिए सारा ब्रह्मांड का चित्र पृ० १८४ पर दिया है, इस पर से पाठक-गण परमात्मा की अपार और असीम रचना का ख्याल कर सकेंगे।

ब्रह्मांड का दर्शन

इस ब्रह्मांड के भोगता हम हैं। इस लिये उसको, उसके कर्ता को और कर्ता के नियमों को हम ने समझना चाहिए। वह समझने वाली हमारी संस्कारी बुद्धि, नीति, भक्ति, सत्य, सदाचार, आदि आत्म शक्तियों ही हैं। इस लिये आत्मा ने स्वयं पवित्र पुरुषार्थ द्वारा आत्मज्ञान बढ़ाने के लिये सर्वदा उद्यत् रहना चाहिये। यही सच्चा धर्म और कल्याणकारी ध्येय है। सुखानन्द की प्राप्ति भी आत्मज्ञान के प्रताप से ही होती है। प्रभु मुझे बल बुद्धि दीजिए।
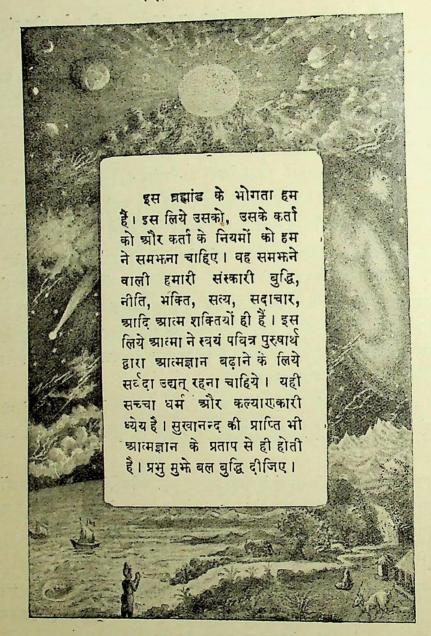
नं० २६. अनुकरणशक्ति

Imitation

अनुकरण—अनुवर्तन. दूसरों का देख कर वह अनुसार करना, नकल करनी, खेल करना, नाट्य-कौशल्य, हाव भाव से जैसा वेष होना चाहिए वैसा ठीक-ठीक बना कर करके बता देना, किसी की नकल करनी अथवा नमूना प्रमाणे नमूना-प्रतिरूप बनाना, अन्य के वाणी, बोली, वर्तन, कार्य और चालचलन आदि देखकर वही अनुसार करना इत्यादि हरेक प्रकार की सर्व प्रवृत्तिओं का यह अनुकरण शक्ति में समावेश होता है। क्षारोरिक अनुकरण अथवा चेष्टाएं, मानसिक अनुकरण अथवा भावदर्शन और शाब्दिक अनुकरण ऐसे यह शक्ति के तीन विभाग हैं।

नं० २६ अनुकरण शक्ति

स्थान—दया या परोपकार वृत्ति के कोने पर तथा अध्यात्म-रति के अग्र भाग में और सौजन्य वृत्ति के पीछे इस वृत्ति का स्थान आया हुआ है। सौन्दर्य प्रेम और कला कौशल्य शक्ति की निकट में होने से अरस्परस दोनों अवयवों को सहायकारक हो सकते हैं।

अन्वेषण—इस शक्ति के स्थान का अन्वेषण करने वाले डॉ० गॉल महाशय लिखते हैं कि "मैं गूंगा-अवाक् और बधिर मनुष्यों की एक सस्था में गया था। वहाँ एक कस्टींगर नाम का व्यक्ति था उसका मस्तिष्क की तलाशी करने के लिए खास में गया था, कारण वह व्यक्ति सब का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर रहा था। वह अपने डायरेक्टर के, डाक्टर के और संभाल रखने वाले सब ही मनुष्यों के ऐसी तो अजीब रीति से, तादृश चेष्टाएं नकल और खल करता था कि सब के मन उसको देख कर अत्यन्त आनन्द पाता था। यह व्यक्ति के सिर तरफ ध्यान देते ही मुझे आश्चर्य के साथ मालूम हुआ कि उसका यह अनुकरण शक्ति के स्थान वाला भाग अत्यन्त विकास पाया हुआ था। तद्पश्चात् मैं मेरे अवलोकन की वृद्धि के लिए और विश्वास दृढ़ करने के लिए अनेक घरबारी, पाठशालाओं, विद्यार्थीयों या जिन्हों में अनुकरण शक्ति विशेष अंश में दिखाई देती थी उन्हों के सिर तलाशी के कार्य पीछे लगा रहा। अन्त में मेरा विश्वास दृढ़ हुआ कि अनुकरण शक्ति के लिए अवश्य एक अवयव मस्तिष्क की अन्दर है और वह यही स्थान है ऐसे सतर्क निश्चित किया।

गॉल

एक स्त्री की अन्दर यह अनुकरण शक्ति का स्थान इतना अधिक प्रबल था कि वह कोई भी मनुष्य, पशु, पक्षी या जन्तु के आवाज का अनुकरणमात्र एक ही बार श्रवण करने की साथ कर सकती थी। दूर होता मेघगर्जना का आवाज को स्वभाविक रीति से ही ग्रहण कर अनुकरण द्वारा सहज में वैसा ही आवाज निकालती। यह शक्ति अन्य हरेक शक्ति के प्रतिनिधि का कार्य करती है, और बोलने की शक्ति को (वाचा और वक्तृत्व को) मदद करती है।" कोम्ब

कितनेक पक्षीओं जैसे कि मलबारी और जंगबारी तोता, मैना में आवाज का अनुकरण और नकल करने की शक्ति सचमुच अद्‌भुत प्रकार की होती है। हरेक प्रकार के शब्द या आवाज सुनने की साथ ही वे उसका अनुकरण करते हैं। बॉम्बे जैसे शहरों की अन्दर हम को ऐसे प्रत्यक्ष प्रमाण मिलते हैं। पिंजरे की अन्दर के तोता "पाटी वाले, पाटी वाले" (मजदूर, मजदूर) ऐसे आवाज करते हैं और मजदूर दौड़ता ऊपर आता है। ओम् तत् सत् ऐसे वाक्यों का यथावत् उच्चारण करता है। पल में कौवा को, पल में मैना की, क्षण में रास्ता पर दौड़ती मोटर की तो पल में कुत्ता के भूमने की नकल करता है। प्रत्येक पशु, पक्षी या अन्य प्राणी के आवाज की, युद्ध के ब्यूगलों की, रेलगाड़ी की सीटी की नकल आबेहूब (बराबर-समान) करता है। यह देखने से "Mocking birds" नकल करने वाले पक्षीओं, गाने वाले पक्षीओं में सर्व से उत्तम है। और सद्‌गृहस्थों के घर में अवश्य रखने योग्य है।

उपयोग—लिखना, पढ़ना, गाना, हिलना, चलना, खेलना, पहिरना, ओढ़ना आदि सब क्रियाएं हम यह अनुकरण शक्ति के परिणाम से ही सीखते हैं। मुख अथवा सिर हिला कर 'हां' अथवा 'ना' कहने के सूचनों मुख्यतया सब व्यक्तियों में एक सरीखा ही होना है। कारण सब अनुकरण द्वारा वही अनुसार करते हैं। अक्षरों भी एक शक्ल के इतने ही लिए लिख सकते हैं। और लिखना चाहिए कि जिस से मनुष्यों का बड़ा समुदाय इस का लाभ ले सकेंगे। वाचन और लेखन का शिक्षणमात्र यह अनुकरण शक्ति की ही एक प्रकार की शिक्षा है।

नाटक द्वारा जन समूह को सुधारने के लिये अनेक दृष्टांतों, इतिहासों, उपदेशों और सुधार के पाठों जन समाज को बहुत ही सरलता से दे सकते हैं। सद्वर्तन, सद्धर्म और सद्भावनाओं की स्थापना करने में नाटकों, चल चित्रों अधिक मदद रूप हो सकते हैं, और वैसे ही और उद्देश्यों से नाटक कम्पनियों तथा सिनेमागृहों की स्थापना आवश्यक है। किन्तु द्रव्याभिलाष की प्रबल इच्छा श्रेष्ठ उद्देश्यों को लोकाभिरुचि के अनुकूल विचारों दर्शाने के लिये प्रेरते हैं। स्वार्थ और तृष्णा यही बड़ा देव बन कर सर्वत्र पूजाता देखने में आता है। यह अति चिन्तनीय दुःखद है। नाटकों—नाटय कला का और तिरस्कार की घृणा की दृष्टि से देखने की आवश्यकता नहीं। किन्तु उसकी अन्दर जो कुछ अयोग्य होगा उसकी ही मात्र टीका कर जाहिर में उसे सुधारने का, उसको असर को पवित्र और निर्दोष बनाने का प्रयत्न करना चाहिए।

यह अनुकरण शक्ति का स्थान कुदरती रीति से ही नैतिक वृत्तियों के मध्य में ही आ रहा है, यह दर्शाते हैं कि नाटक, नृत्य और अनुकरण द्वारा सुन्दर, सभ्य और नैतिक तथा धार्मिक भावनाओं का प्रचार होवे तथा मनुष्य के वर्तन को सुधार कर उन्नत और सभ्य बना दे वैसे ही विषयों का अनुकरण

मुख्यतया करने की तथा वही प्रजा सन्मुख रखने की आवश्यकता है।

मनुष्य को नैतिक बनाने के लिये, वैसे ही कला कौशल्य में सहायभूत होने का महान कार्य के लिए ही यह शक्ति का उपयोग करना है। इतने लिये हम से बन सके उतने मंगल प्रसंगों कुटुम्ब में, सभा में और जन समाज में यह अनुकरण शक्ति को उपयोग में लाने के लिये व्यवस्था करनी चाहिए।

मनुष्य को जीवन पर्यन्त यह शक्ति की जरूर पड़ती है। क्षुधा और तृषा प्रमाणे उसका कभी भी नाश हो सकना नहीं। इस से यह शक्ति को यथार्थ रूप में पोषण देकर विकसाने की आवश्यकता है। व्यापार रोजगार, यान्त्रिक शक्तिओं, वाचन, लेखन, संगीत, व्याख्यान और अन्वेषण आदि कार्यों में यह अनुकरणशक्ति व्यापक रीति से मदद दे रही है। उसके अभाव में प्रत्येक मनुष्य ने अपने स्वयं अन्वेषण कर सब नये सिरे से प्रारम्भ करना पड़ते। और एक व्यक्ति की खोज या कृति दूसरों को कुछ उपयोगी या लाभदायक होने का सम्भव ही न रहता। यह शक्ति के अभाव में मनुष्य मनुष्य रहता या नहीं यह खास विचारने जैसा है। मनुष्य की अपनी शिक्षा, विकास और प्रगति का मुख्य भाग यह अनुकरण शक्ति को ही आभारी है। ऐसी एक महान शक्ति जो मनुष्य समाज के सुख, आनन्द और प्रगति में इतने अंश से सहायभूत होती है उसको यथावत् विकसाने की कितनी विशेष आवश्यकता है? इतने लिये अन्य की अन्दर जो कुछ अच्छा हो उसकी हम ने नकल करनी चाहिये और ऐसे करने में बहुत ही सम्भाल और विवेक बुद्धि काम में लेनी आवश्यकता है।
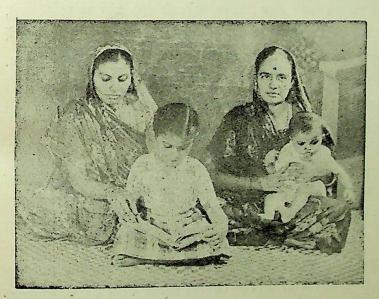
माता शिक्षा दे रही है

बाल शिक्षण—यह शक्ति के अभाव में कोई भी बालक कोई भी विषय शीघ्र सीख नहीं सकता। इतने लिये कुदरत ने यह शक्ति बच्चों में विशेष अंश में रखी हुई है। शिक्षा-बोध और मुख की बातें करते वे देख कर और सुनकर विशेष शिक्षा पाते हैं। कारण कि बाल्यकाल में मात्र नेत्र द्वारा अवलोकन शक्ति और कर्ण द्वारा श्रवण शक्ति मुख्यतया कार्य कर रही होती है। वे जिस भाषा सुनते हैं वह अनुसार बोलने सीखते हैं। जिस अक्षरों का नमूना वे सम्मुख रखेंगे वह देख कर उसी के अनुसार वे लिखते हैं, चित्र निकालते हैं। यह सब अनुकरण का ही प्रताप है। बच्चों की सन्मुख माता पिता और वडीलों ने अपना आचार विचार और बर्ताव के सम्बन्ध में खास ध्यान रखना चाहिये। अपने बच्चों को जैसे प्रकार के करने की इच्छा

होगी वैसे प्रकार कां वर्तन और आचार, विचार माता पिता ने गर्भाधान संस्कार होवे पहिले ही सेवन करने की और धारण करने को आवश्यकता है। बच्चों अनुकरण से ही सब सीखते हैं। इसमें किसी को संशय है ही नहीं। तुम गाली देओगे और बुरे वचनों, निन्द्य शब्दों बोलोगे तो बच्चों भी ऐसे ही बोलेंगे। तुम नम्र और विवेकी बनोगे तो बच्चों भी इसी रीति से करेंगे। तुम चाय, बीड़ी या दूसरा कोई व्यसन वाले होयेंगे तो बच्चों भी वैसे व्यसन वाले बनेंगे। तुम जैसी रीति से हंसोगे, बोलोगे या आचरण करोगे वह सब की नकल वे कर दिखायेंगे। इसलिये माता पिता सावधान रहो और ध्यान दिओ कि बच्चों जैसा देखें वैसा ही करते हैं। वे आप का ही अनुकरण करते हैं। इसलिये जो कुछ चेष्टा या कर्म आप करो अथवा बोलो वह बराबर विचार करके करो कि जिस से आपका अनुकरण कर आप के बच्चों को या आपको पछताने का कारण न रहे। तुम्हारे आचार, विचार और वर्तन के लिये तुम स्वयं किसी भी प्रकार बर्ताव करने स्वतन्त्र नहीं है। किन्तु बहुत ही सम्भाल से बर्ताव करने बन्धाये हुए हो। तुम हमेशा अच्छा आदर्श अनुकरण करने जैसा दृष्टान्तों ही प्रजा सन्मुख रखो कि परिणाम में उसे लाभ ही होवे। बच्चों को तुम्हारे आचार, विचार और वर्तन शब्दों और सद्बोध करते सहस्रगुन प्रबल शिक्षा देते हैं।

सूक्ष्म अवलोकन करनेवाले तुम्हारे बच्चोंके हावभाव और वर्तन तथा विचारोंको देखकर तुरतही आपके घरका रीतिरिवाज और वर्तन का अनुमान कर सकेंगे। एक बुरा दृष्टात हजारों उपदेशको पलवारमें नष्ट, भ्रष्ट कर देते है। इसलिये सबसे प्रथम आपने अपनाही दोष और दुर्गुण दूर करो, सुधारो और आपके बच्चा आपके मुंहसे उच्चारण किये बिना आपका अनुकरण करग। अंग्रेजीमें कहते हैं कि—Do unto others as you would that they should do unto you. आप जैसे अन्यको आपके प्रति होने इच्छते हो वैसे आप स्वयम् हो जाओं" वह अक्षरशः सत्य है। बच्चोंको बिना कारण अथवा आपका अनुकरण करनेके कारणके लिये कभीभी धिक्कार धब्बा नहीं दो। उनको योग्य अनुकरण करनेके स्थानो दर्शावो। अतएव वे वह अनुसारही करेंगे।

प्रपूर्ण—जिन्होंमें यह शक्ति अधिकतया विकसित होगी, वे अच्छ अनुकरण करनेवाला और नाटयकार हो सकते हैं। दूसरोंके हुन्नर, उद्योग, कला अथवा कृतिका वे स्वभाविक रीतिसे अनुकरण कर सकतेहै। उन्होंकी अनुसार वर्ताविभी कर सकते हैं। आनंदकी अधिकताके लिये ताद्रश्य चितार खडा कर देते हैं। नाटय कौशल्य और भावदर्शन वृत्तिभी अच्छे अंशमें उन्होंमें होती है। हावभावको यथावत रीतिसे प्रदर्शितकर सकते हैं। व्याख्यानभी उत्तम रीतिसे देसकते है, अथवा उसकी नकलकर सकते हैं। देखा हुआ तथा सुना हुआ जल्दी करके दिखा देते हैं। अवलोकन, इतिहास और स्थानज्ञान की अधिकतासे तथा सौन्दर्य प्रेम, तुलना और भाषा आदि शक्तियोंकी सहायसे उत्तम पंक्तिके व्याख्याता हो सकते हैं। खुश दिल और निग्रह शक्तिकी सहायसे स्वयम् हंसे बिना अन्यको बहुत हंसाकर आनन्द दे सकतेहै और आप गहिरा सागर जैसा दिखाव धारण कर रहते है। कला कौशल्यके स्थानका अधिक विकासके प्रतापसे तथा आकृति, कद, रंग, स्थान और तुलना आदि शक्तियोंके प्रतापसे और सुस्वभाव की सहायसे उत्तम प्रकारके इन्जिनीयर, आर्टीस्ट या शिल्पकार होसकते हैं। हथियारोंका उपयोग करना

जल्दी सिखतेहै। सीनेका, भरनेका, गूंथनेका काम और खुदाई—नवकाशीका काम भी अच्छाकर सकते है। स्थैर्यके अभावमें प्रत्येक विषयके जाननेवाला बनतेहै किन्तु एकभी परिपूर्ण करते नहीं। इसी रीति से अनेक प्रकारकी शक्तियोंकी सहायसे विविध प्रकारके कार्यों करतेहै।

साधारण—जिन्होंमें यह शक्ति साधारण होती है वे बहुतही साधारण अनुकरण करतेहै। किन्तु कोई दूसरी शक्ति प्रबल होगी तो उसके सम्बन्धका अनुकरण ठीक रीतिसे करते हैं।

यह शक्ति जिन्होंमें बिलकुल कम होती है वे बहुतही मुश्केलीसे अनुकरण कर सकते हैं। पढ़ने, लिखने या बोलने भी पुरीरीति से सिख नहीं सकते।

विकास—हरेक व्यक्तिकी अच्छी चाल चलन, आचार विचार, वर्तन, हुन्नर, कला, अभ्यास, वांचन, लेखन आदि सम्पूर्ण अच्छा विषयका पूर्ण रीतिसे अनुकरण करो। जैसे वे होगा वैसे होजानेका प्रयत्न करो, जिस रीति से वह करते होगे वह अनुसार आवश्यकतानुसार करते सिखो।

यह अनुकरण शक्तिके यथार्थ उपयोगसे अपने वर्तन और विचारों तथा हमारे बच्चों के भी आचार विचार बहुतही सरलतासे सुधार सकते हैं। बोलने चलने को अच्छी रीति रसमको विकसित करनेके लिये अच्छा वकताओं का अनुकरण करो। "यद्यदा चरति श्रेष्ठः तदत्त देवेतरोजनः" यह गीता का वाक्य सचमुच गहन अर्थ सूचक है। हरेक जाहिर और प्रजाप्रिय होने उत्सुक प्रसिद्ध पुरुषोंके सिर पर एक गंभीर प्रकार की फरज और जिम्मेवारी–उत्तरदायित्व समाये हुए है। यह इससे स्पष्ट होता है। कारण कि सामान्य जनसमूह हमेशा उन्होंके नेता लीडर या अग्रगण्य व्यक्ति का ही अनुकरण करते हैं। दृष्टान्त रूपमें पू० महर्षि दयानन्द सरस्वती, महात्मा गान्धीजी, भारत के बड़े प्रधान पं० जवाहिरजी लोकमान्य तिलकजी, श्री गोखलेजी और दूसरे अनेकोंके महान कार्य और आत्म त्याग हमारे देश के अनेक युवको के जीवन में नवीन बल और उत्साहकी प्रेरणा दे रहे हैं। उसका कारण सिर्फ आदर्श दृष्टान्त और युवानों की अन्दर की यह अनुकरण वृत्ति ही है।

अपने अयोग्य वर्तन या दृष्टान्त से अपनी प्रजा को तथा अन्य को बुरा दृष्टान्त न मिल जाय इतने लिये प्रत्येक व्यक्तिने, स्त्री ऐसे ही पुरुष ने अपने आचार विचार और वर्तन पर बहुत ही ध्यान रखकर आचरण करने की आवश्यकता है।

भला, सभ्य, सच्चा सद्गुणी और सदाचारी विद्वान पुरुषों ऐसे ही विदुषी स्त्रीयों के दृष्टान्तों का हमारे सर्वदा अनुकरण करना चाहिए। किन्तु कम भाग्य से पाखंडी और सफेद कपड़े में प्लेटफोर्म पर अधिकार जमाने वाले पलीक पुरुषों के हम भूल से अनुयायी हो जाते हैं। हरेक युवान ऐसे ही युवती अपने आदर्श के अनुकरणीय दृष्टान्त के लिए कोई भी व्यक्ति की पसन्दगी करने में बहुत ही सम्भाल से कार्य लेने की आवश्यकता है। बच्चों के सम्बन्ध में यह अवश्य ध्यान में रखना है कि "यन्नवे भाजने लग्नः संस्कारो नान्यथाभवेद्।"

निग्रह—यह वृत्ति का अयोग्य रीति से अथवा किसी की भावना दुखाने के लिये उपयोग न होवे यह खास ध्यान में रखना है। इसी रीति से अधम प्रकार के शारीरिक, मानसिक या वाचिक कार्यों का अनुकरण करने मन न खींचाये उसकी सम्भाल रखनी अत्यन्त आवश्यक है।

नं० २७ हास्यविनोद अथवा खुश स्वभाव

mirthfulness

हास्य विनोद—आनन्द, मजाक, मसखरी, कटाक्ष, हसी मसखरी करने का स्वभाव, कसमयका और अयोग्य हो वैसे बर्तन का सभ्य भाषा में, सभ्यता से प्रतिकार करना इत्यादि भावों को दर्शानेवाली यह वृत्ति है।

नं० २७ हास्यविनोद
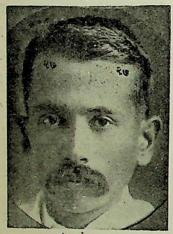
श्री मोहनलाल

स्थान—कपाल (मस्तक) के अग्र भाग के कोने पर के अंत के भाग में यह वृत्ति का स्थान आया हुवा है। वह स्थान की जो यथायोग्य वृद्धि होगी तो (खोपरी का अग्रभाग-चक्षु के ऊपर का) कपाल का आकार लम्बा, चौड़ा दिखता है। तर्क शक्ति के स्थान की कोरतरफ, सौन्दर्य के स्थान के अग्र भाग मे और सगीत शक्ति की ऊपर यह हास्यविनोद का यथायोग्य अवयव आया हुआ है।

अन्वेषण—श्रीमान डाक्टर गॉलने यह शक्ति का स्थान की खौज की थी वह कहते हैं कि—

"In all persons I heve examined eminentey endowed with this faeulty. I have foundthe anterior Superior lateral parts of the forehad considerably prominent in a segment of a sphere. It carries with it an irresistible propensity to ridicule every thing. sparing neither friend nor foe" There is no longer any doubt that this talent is indicated by this organism

Dr. Gall

हास्यविनोद की यह वृत्ति युक्त प्रत्येक व्यक्ति के जिसकी मैंने यथावत् तपास (तलाशी) कि है उनके ऊपर के कोने पर को कोर के ओर का भाग देखने में वृद्धिवाला एक गोल आकृति में मरोड लेता दिखाई देता है। प्रत्येक वस्तु या व्यक्ति तरफ मित्र अथवा शत्रु को परवाह किये बिना अप्रतिहतहास्य करने की स्वाभाविक वृत्ति यह स्थान की वृद्धि दर्शाति है। इस स्थान में यह हास्य वृत्ति को दर्शाने वाला मस्तिष्क का मुख्य स्थान है इसमें अवजरा भी शंका नहीं।"

डॉ गॉल

स्परझीयम नामका मस्तिष्क शास्त्री ने कहा है कि जिन हास्य, रस और विनोद युक्तवार्ताओं, पुस्तकों या लेखो लिखने वाला होते है वे सबके मस्तिष्का यह स्थान स्पष्ट रीति से विकसित होता है।

ज्योर्ज कोम्बका भी स्परझीयम के विचारको मिलताही अभिप्राय है ।

हरेक स्वाभाविक शक्ति की भावना का दुरुपयोग, व्यर्थ उपयोग या अतियोग करने से हास्य को पात्र होते हैं दृष्टान्त रूप पितृस्नेह या मातृस्नेह की वृत्ति प्रजा के पालन पोषण के लिए सर्जाई हुई है अथवा निश्चित हुई है परन्तु जब एक विवाहित स्त्री जिसको बाल-बच्चो रूप स्वसंतति होने पर भी उसकी ओर मातृ स्नेह या स्नेह वृत्ति का उपयोग नहीं करते और अपना आश्रय में रखा हुआ कुत्ता बिल्ली बन्दर या तोता तरफ इतना अधिक और असीम प्यार रखती होगी, या उसका
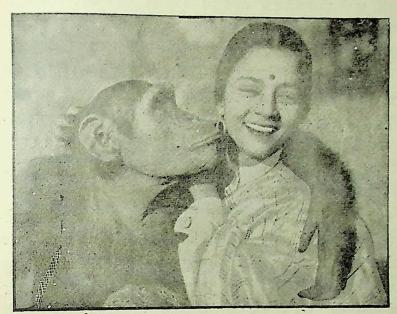
पशु प्रति का प्रेम

लालन, पालन, पोषण और रक्षण करने पीछे स्वसंतति की संभाल लेने का वह भूल जाय और अपना प्यारा प्राणी को खिलाने, पिलाने, पहिराने, ओढाने और लेटानेकी चिंता में ही लग रहती है तो उसने यह मातृस्नेह की वृत्ति का दुरुपयोग अथवा अस्थाने योग किया कहलाता है । और परिणामें वह सभ्य वर्ग में हंसी को पात्र होती है और स्वाभाविक रीति से ऐसे होना ही चाहिये । ऐसी दशा में लोगो भी मजाक कर कहते हैं कि कम अक्ल ? कुत्ता की और तोता की इतनी अधिक सम्भाल और परवाह रखती है तो वह अपने बच्चों को क्यों नहीं सम्भालती ?

यूद्ध, विवादन और विवाह समान गुण, कर्म, स्वभाव वाले का हमेशा मान, प्रतिष्टा देते हैं । किन्तु जब एक बलवन्त और एक निर्बल अथवा एक युवान और एक वृद्ध युद्ध करने लगे ऐसे ही एक विद्वान और एक अज्ञान विवादन करने लगे तब वह अनुचित और हास्यास्पद लगता है । इसी रीति से एक श्वेन बाल वाला वृद्ध मनुष्य एक युवति के जिस उसको किंचित् भी चाहती नहीं उसका मन आकर्षित करने अनेक प्रकारके नम्रता और विनय आदि इलाज, वर्ताव दर्शाकर स्नेह परिशीलन के लिये युवावस्था के भावों प्रदर्शित करते हैं तब उसकी हालत सचमुच हास्यपात्र होती है ।

इसी अनुसार हरेक शक्ति, गुण या वृत्ति का व्यर्थयोग, अतियोग या हीनयोग हास्यको ही पात्र बनते हैं । मर्यादा बाहिरकी फेशन, वस्त्र की या बाल की मरम्मत, अस्वाभाविक अथवा कृत्रिम

मनोभावों या भाषा, अति विशेष विनय या नम्रता, अति पतली कमर का शौक इत्यादि अनेक प्रकार के अति और अस्वाभाविक कर्तव्यों से हसी को पात्र ही हो जाते हैं। ऐसी अयोग्य प्रकार की वर्तणुक (चालचलन) और भूल भरा हुआ भावों को सुधारने में यह हास्य वृत्ति की खास आवश्यकता और उपयोगीता है। अर्थात् मनुष्यको सुधार कर पूर्णता को पहुंचाने के लिये यह वृत्ति की अवश्य आवश्यकता है। इतना ही नहीं किन्तु वह लाभकारक तथा उपकारक है।

तर्क शक्तिको कोर में ही आया हुआ उसका स्थान तथा चारों ओर के अवयवों की परिस्थितिं ध्यान देने योग्य है। तो भी तर्क शक्ति की साथ मिलकर सत्य को अन्वेषण कर, असत्य की भूल और न्यूनता की खोज करने में हंसते हंसते हास्यद्वारा सत्य को प्राप्त कराने में यह वृत्ति अधिक आश्चर्यजनक कार्य करती है। यह दृष्टि से हास्यरस वे सचमुच जन समूह को सुधारने का एक प्रबल साधन हो सकता है। प्रजा की या राजा की जाहिर भूल या अयोग्य रुढियों को हास्य रस के मुलायम तीरों से जितने अंश में सुधारी सकात हैं, वैसा दूसरा सुधारक साधन एक भी है नहीं।

अच्छी शकल की आफत का तमाशा में फेशन की फिशियारी की हास्य रस द्वारा जो दुर्गति करने में आई हुई है वह अन्य तदबीरों से भाग्ये हीं हो सकती। "Fashions must fall and we must look to wit as their sharp-shoter" अनुकरण और सौजन्य शक्ति की निकट में ही यह हास्य वृत्ति का स्थान है। वे यही दिखाते हैं कि हास्य वे एक प्रकार की सुधारक वृत्ति है। केवल उसका योग्य रीति से प्रयोग होना चाहिये। सब रीति से ऐसी आवश्यक शक्ति को यथार्थ रीति से विकसित करनी चाहिये यह स्पष्ट ही है।

हास्य और आनन्द को कितनेक लोक धर्म विरुद्ध और पाप मानते हैं। किन्तु प्रत्येक शक्ति का यथा योग्य स्थान पर प्रयोग करके लाभ लेना उसमें किसी प्रकार का पाप नहीं है, काम; क्रोध, लोभ और मोह मनुष्य के स्वाभाविक दूषण या अपराध नहीं किन्तु ये सब शक्तियाँ है। जिसका यथार्थ रीति से यथा स्थान पर उपयोग करने में ही उसकी उपयोगीता—लाभ है। योग्य रीति का हास्य और आनन्द अच्छा स्वास्थ्य, दीर्घायुष तथा विश्रान्ति देते हैं। laughing promotas health" यह एक कहावत है और वह सत्य है। गंभीर और फूला हुवा मुँह रख कर सारा दिन बैठे रहने से स्वास्थ्य और पाचनशक्ति को हानि होती है। तब हास्य विनोद से पाचनशक्ति और रुधिराभिसरण बढ़ते हैं। इतना ही नहीं किन्तु मन आनन्द में--प्रसन्न प्रसन्न रहने से शरीर और मन दोनों की आरोग्यता (स्वास्थ्य) में वृद्धि होती है। प्रत्येक शक्ति का यथायोग्य उपयोग करने में ही मनुष्य की पूर्णता समाइ हुई है। आनन्द अथवा हास्य का भा यथायोग उपयोग करने की अत्यन्त आवश्यकता है। तो भी हम हास्य को विकसित न करें तो वह परिणाममें हमारी तनदुरुस्ती (स्वास्थ्य) को हानि करता है।

बच्चों की अन्दर यह शक्ति साधारण रीति से अच्छा प्रमाण में होती है, तो भी उसको अधिक अंश में विकसाने की आवश्यकता है। उनको घर में या पाठशाला में भय दर्शाकर बड़ा मनुष्य की रीति

पूर्वक चुपचाप बैठा रखना यह अत्यन्त अनुचित है। उनको बारम्बार और खुला हृदय से हंसने दो, और हंसाये रखो। उनको खेलने, कूदने में से रोकना नहीं। किन्तु उनका खेल, कूद, तमाशा में साथ में मिल कर आनन्दपूर्वक हंसो और खेलो। आप का और बच्चों का स्वास्थ्य और बुद्धि को सुधारने में तथा आनन्द देने में यह शक्ति बहुत ही मदद करेंगे। उनकी कोई भी निर्बलता या अज्ञान के लिये घृणा दर्शा कर हंसने से वे निराश हो जाते हैं। इसलिए उनको आनन्दयुक्त स्वभाव से हंसता मुख से जो कुछ कहना हो वह कहो, और आनन्द साथ त्रुटि, अपराध का दर्शन करा दो बुद्धि और हास्य युक्त सूचनाओं से अनेक रीति से उनकी शक्ति को आगे बढा सकोगे। वृद्धावस्था के गाँभीर्य और समझयुक्त भावों बच्चों को प्रथमावस्था-बाल्यकाल में धारण कराने की बिलकुल आवश्यकता नहीं। अध्यापक महानुभावो ? यह बाबत तरफ कृपा करके अवश्य ध्यान दो।

जाहिर प्रजा की नाशकारक रूढ़ियों और रिवाजों का युक्ति युक्त और बुद्धि पूर्वक हास्य करने से सुधार का कार्य भी सरलता से और अनजान रीति से होता रहता है।

जिन्हों में यह हास्य वृत्ति पूर्णतया विकसित होती है वे हमेशा हंसमुख, अन्य को हंसाने वाले, सुन्दर स्वभाव के और सहनशील होते हैं। यह वृत्ति की साथ अन्य शक्तियों के सम्बन्धों और क्रियानुसार तथा मनुष्य स्वभाव प्रमाणे हास्य अनेक प्रकार का होता है। बल्कि यह शक्ति प्रत्येक व्यक्ति में कम अधिक प्रमाण में होती है। ऐसे आवश्यकतानुसार उसको विकसित करनी और दाब में भी रख सकाती है।

भाषा, तुलना, अनुकरण और मैत्री भाव के स्थानों की वृद्धिवाला मनुष्य जन मंडल में रम्यवाजित्र प्रमाणे अनेक रीति से आनन्द देते हैं। सौन्दर्य प्रेम की न्यूनता से अधिकांश हलका प्रकार का हास्य होता है। तर्क शक्वि को न्यूनता से बुद्धि विनाका हास्य स्फुरता है। प्यार शक्ति की अधिकता से स्त्री जाति साथ पुरुष को हंसने में और पुरुष जाति साथ स्त्री को हंसने में अधिक आनन्द मिलता है। सौन्दर्य प्रेम और शौर्य की अधिकता से चाल चलन, वस्त्र और पहिरने ओढ़ने की न्यूनता, फेशन तथा निर्वलता प्रति कटु हास्य स्फुरता है।

तुलना और तर्क शक्ति को परिणाम से अन्य की गलती सहास्य दिखाई सकती है। विनाशक शक्ति और बल की अधिकता से बच्चों को तथा अन्य को चिढ़ाने-खिझाने में तथा कटाक्षमय भाषा या हास्य में आनन्द आता है। परन्तु परिणा में वहुत ही दुश्मनों (शत्रुओं) बनते हैं।

जिन में साधारण रीति से यह वृत्ति विकसित होती है वे गम्भीर कम बोलने वाले, मान अधिकार की संभाल रखने वाले तथा थोड़ा गर्म मिजाज के होते हैं। मैत्री भाव की अधिकता से मित्रो साथ ही हंसते हैं। अनुकरण और सौन्दर्य की न्यूनता के लिये हंसने में पीछे रहते हैं और हास्य का कारण भी नहीं समझते। बल तथा यश की अभिलाशा से किसी के हास्य से जल्दी चिड़ाते हैं। ऐसे व्यक्ति ने अपनी हास्य वृत्ति का विकास करना चाहिए।

विकास—यह शक्ति का विकास के लिये आनन्दी स्वभाव के स्त्री पुरुष के परिचय में रहो। हास्य रस के नाटकों पढ़ो तथा देखो। हास्य विनोद में भाग लेते रहो। हास्य के प्रत्येक प्रसंग को पकड़

लो। गंभीरता का त्याग करो। हंसना यह पाप है यह विचार को दूर करो। हास्यपूर्ण वार्तालाप में रोकाओ।

निग्रह—देश, काल, वस्तु स्थिति, सोमा और मनुष्य की सहन शक्ति आदि ध्यान में रखकर हास्य करने प्रवर्तो। विचार किये बिन, कारण सिवाय, समय बिना और अस्थाने हंसते पहिले पूर्ण विचार करो।

गुजराती साहित्य की अन्दर मनुष्य की यह हास्य वृत्ति को विकसाने ऐसे भद्रंभद्र, हास्य मन्दिर और मिथ्याभिमान नाटक जैसे ग्रन्थों आधी सदी पर रचाया था। तद्पश्चात किसी किसी नवलिका की रचना और वर्तमान पत्रों में तथा किसी किसी सामायिकों में टुचका (छोटा सा दिल बहलाने वाला वर्णन) गपशप अपाये हुए देखने में आता है। वह यह हास्य वृत्ति का ही प्रताप है।

हास्य रस और नाटकों–नाटकों की अन्दर एक कुशल और होशियार विदूषक से जो कार्य हो सकता है, वही कार्य मनुष्य जीवन में हास्य वृत्ति करती है। मनुष्य की खोपरी रूप नाट्य भुवन यह अनेक प्रकार के मानस शक्ति रूप पात्रों को अपना पार्ट (वेश) भजवाने का (जैसा हो वैसा करने दिखा देना) एक योग्य मंदिर है। जिसमें सर्व ने अपनी अपनी शक्तियों को विकसित कर अपने अपने सुपुर्द कार्य यथावत् करने का है। कारण कुदरत ने बुद्धि पूर्वक ऐसी महान व्यवस्था कि हुई है। संस्कृत साहित्य में यह हास्य वृत्ति के कार्य की नौ रस में के एक रस की गिनती करने में आई हुई है।

पशु के मुहँ की साथ मिलता मुहँ वाले मनुष्य
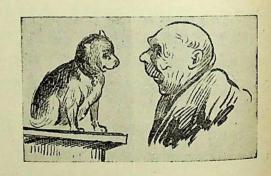
पशु जैसा मुख और वर्तन देखकर बुद्धिमान मनुष्य को स्वाभाविक रीति से जरा हंसी आ जाती है और कहते हैं कि देखो तो परमात्मा ने कैसी शक्ल बनाई है। आकृतिर्गुणान् कथयति।

बुद्धि शक्तियों और अवलोकन शक्तियों.
षष्ट प्रकरण

---

१. अवलोकन शक्ति समूह

२८. अवलोकन सक्ति (Obsepvation)
२९. आकृतिज्ञान या पहिचान (Fopm)
३०. मापज्ञान (Size)
३१. गुरुत्वज्ञान (Weight)
३२. रंगज्ञान (Colour)
३३. व्यवस्था अथवा क्रमज्ञान (Order)
३४. गणितज्ञान (Calulation)
३५. स्थलज्ञान (Loeality)

२. मेधास्मृति अथवा धारणात्मक शक्तियों

३६. ऐतिहासिकज्ञान (Eventuality)
३७. समयज्ञान अथदा ताल (Time)
३८. स्वर अथवा संगीत शक्ति (Tune)
३९. वक्तृत्वशक्ति (Language)

३. मननात्मक शक्तियों

४०. तर्कशक्ति (Causality)
४१. तुलनाशक्ति (Comparision)
४२. प्रेरणाशक्ति (Lntution)
४३. सौजन्यशक्ति (Agpeeableness)

४. अभाव प्रत्ययालंबनावृत्ति

४४. आराम अथवा निद्रा (Rest)

बुद्धिशक्तियों और अवलोकनशक्तियों का समूह

समग्रबुद्धि शक्तियों का स्थान मस्तिष्क के अग्र विभाग (Frontal Lobe) में आ रहे हुए हैं। मस्तिष्क का अग्र विभाग पुरःकपाल और आँख की ऊपर के अस्थि ऊपर अवलंबि रहे हुए हैं। मनुष्य के चक्षु प्रदेश की ऊपर के अग्र कपाल का बाल पर्यन्त का विभाग बुद्धिशक्तियों का स्थान है।

मानस शास्त्रानुसार यह बुद्धिशक्तियों के स्वाभाविक कार्यानुसार तीन मुख्य विभाग करने में आये हुए हैं। हम सृष्टि सम्बन्धी सब पदार्थों के रूप, रंग, गुण, संख्या और व्यवस्था आदि गुण, कर्म, स्वभाव का ज्ञान मुख्यतया हमारे नेत्र, नासिका, त्वचा श्रवण और स्वाद आदि इन्द्रियों द्वारा प्राप्त करते हैं। यह सब इन्द्रियों में चक्षु सर्व से अग्रगामी और एक साथ पदार्थों के अनेक गुणों का ज्ञान देने वाला मुख्य साधन है।

आत्मा को बाह्य जगत के पदार्थों का अवलोकन करने का वह अमूल्य साधन है, इससे अवलोकन शक्तियों का प्रथम विभाग जिस में नं० २८ से ३५ तक की शक्तियों के अवयवों का समावेश होता है। वह सब अवयवों आँख की ऊपर और भ्रमर की नीचे के मस्तिष्क के प्रदेश में यथायोग्य और स्वाभाविक रीति से क्रमवार आ रहे हुए हैं।

जब मेधा स्मृति, ताल, समयज्ञान और संगीत आदि के अवयवों मध्य कपाल की अन्दर यथायोग्य रीति से सुस्थित हैं। यह मध्य विभाग की अन्दर स्थित थये हुए अवयवों का कार्य विशेष करके अवलोकन शक्तियों और इन्द्रिय द्वारा प्रत्यक्ष किये हुए विषय के ज्ञान को स्मृति में स्थित करने का या धारण कर रखने का है। जिस में नं० ३६ से ३९ तक के बुद्धि शक्तियों के अवयवों का समावेश होते हैं।

जब इन्द्रिय द्वारा प्रत्यक्ष किये हुए तथा धारणात्मक शक्तियों द्वारा स्मृति में स्थापन किये हुए विषयों पर मनन, विचार, तुलना और तर्क आदि द्वारा परिणाम दर्शी होना, या खोज करके सत्य खींच लेना, वह नं० ४० से ४३ तक की शक्तियों का खास कार्य है। और उनका पद बुद्धि शक्तियों में सब से उच्च होने से कपाल के सर्वोत्तम स्थान में वह शक्तियों को स्थान देने में आये हुए हैं। बुद्धिशक्तियों को ऊपर प्रमाणे की परिस्थिति सर्वथा स्वाभाविक और बुद्धिपुरःसर है, और ऐसी व्यवस्था करने में परमात्मा का अद्भुत बुद्धि सामर्थ्य समाया हुआ है। ऐसे किसी भी बुद्धिशाली मनुष्य जल्दी स्वीकार करेंगे।

जब अतिम की अभाव प्रत्ययालंबना वृत्ति है। जिस में स्वानुभूति सिवाय के सर्व मानस सम्बन्धों तुरन्त बन्द हो जाते हैं। यह वृत्ति को योगदर्शन में निद्रा कही हुई। जिस एक प्रकार की तमस् गुण वालो समाधि कह सकायेंगी। यह वृत्ति का स्थान मस्तिष्क के अग्र, मध्य, पश्चिम और पार्श्व विभागों जिस स्थान में मिला हुआ है वहाँ आया हुआ है।

नं० २८ अवलोकन शक्ति

Observation

अवलोकन शक्ति द्वारा समग्र दृश्य पदार्थों की दार्शनिक परीक्षा, वारीक अवलोकन और वर्णन हो सकता है। देखने की स्वाभाविक इच्छा को तृप्त कर सकाती है।

स्थान—कपाल के मध्य प्रदेश के नीचे के भाग में दोनों भ्रमर के अन्दर के आखिर की कोर के विच में और नासिका के मूल की बराबर ऊपर यह शक्ति का स्थान आया हुवा है। जब यह शक्ति विशेष प्रमाण में विकसित होती है तब आंख का भ्रमरों नासिका प्रदेश की ओर नमित, झुकती दिखाती है। और दोनों भ्रमरों की विच का यह शक्ति के स्थान वाला भाग उसकी न्यूनाधिकता के प्रमाण में उन्नत हुवा और आगे बढ़ता दिखाता है। किन्तु जब यह शक्ति की न्यूनता होगी तब आंख की भ्रमरों के अन्दर का आखिर भाग सीधा और बहुत नजदीक आया हुवा दिखाता है। प्रत्येक बच्चे की बाल अवस्था में यह स्थान विशेष वृद्धिवाला होता है।

अवलोकन शक्ति का स्थान दर्शक

वैद्यराज केशवलाल

खोज डा० स्परभीयम ने यह शक्ति के स्थाज की खोज की थी।

उपयोग—पत्येक वस्तु का प्रथक प्रथक स्वरूप जानना, देखना, वारीक अवलोकन द्वारा परीक्षण करना यह इस वृत्ति का खास कार्य है।

यह वृत्ति मनुष्य की अन्दर प्रत्येक पदार्थों को देखने और जानने की वृत्ति को प्रबलता से उत्तेजिक करते हैं। यह क्या है ? मुझे वह दिखाओ ? ऐसी जिज्ञासा को उत्पन्न करते हैं। कला, हुन्नर, दार्शनिक तत्वज्ञान और विद्या के समग्र विषयों की अन्दर योग्य सुधारा, वधारा करने का कार्य यह शक्ति द्वारा ही बनने शक्तिमान हुवा है। बाह्य पदार्थों का ज्ञान प्राप्त कर मन को साधनों पूरा पाडने का (पूरा करना—ला देने का) मुख्य द्वार यह अवलोकन शक्ति ही है। प्रत्येक वस्तु के उपयोग गुण और उत्पन्न होने का कारण आदि को हम जान लेवे वह पहिले वह वस्तु के अस्तित्व और प्रत्यक्ष दर्शन की सर्वत्र जरूर है। वह कार्य अवलोकन द्वारा होता है।

पदार्थों का अस्तित्व जानने के पश्चात उनकी अन्दर के सामान्य और विशेष रूप, रंग, संख्या आदि विषयों की सरखामणी या मुकाबिला करने का बन सकते हैं। और जैसे जैसे अधिक अधिक पदार्थों का अवलोकन करने में आता है, ऐसे ऐसे स्मरण शक्ति को स्मृति रखने के लिए, बुद्धि शक्ति को

विचारने के लिए, तुलना शक्ति को समालोचना करने के लिए ओर अन्यान्य शक्तियों को अपना अपना कार्य करने के लिए विशेष क्षेत्र और खोराक मिलते जाते हैं ।

अवलोकन शक्तियों के समग्र समूह की मध्य में ही यह अवलोकन शक्ति का स्थान आया हुवा है। वह स्पष्ट रीति से दर्शाते है कि यह शक्ति का कार्य सचमुच अति अगत्यका है । ध्यान देने योग्य है । और दर्शेन्द्रिय की बराबर मध्य में और जैसे बन सके ऐसे निकट आई हुई उसकी स्थिति यह दर्शाति है कि दोनों नेत्रों का यथार्थ उपयोग कर उसने अपना कार्य करना है । जब समग्र बुद्धिओं के अवयवों की नीचे आई हुई उसकी स्थिति मानसिक मकान का मूल आधार ही होगा ऐसे स्पष्ट दर्शाते हैं। कारण कि यह शक्ति बिना उनको सब रचना और विचार तमाम निरर्थक है ।

विशेष विचार करने से सम ज्ञानेन्द्रियों आँख, नासिका, कान, मुख और जिह्वा तथा कपालस्थ बुद्धि शक्तियों का समग्र समूह यह एक ही शक्ति को मूल में रखकर उसकी ऊपर अवलंबित रहा होगा, उसकी ही उपासना करता होगा, ऐसे स्पष्ट ज्ञात होता है, और वह यथार्थ ही है । यह अवलोकन शक्ति का विकास की और शिक्षण की कितनी अधिक आवश्यकता है, वह उसकी परिस्थिति कुछ भी बोले बिना हमको प्रबलता से सूचवती है ।

यह अवलोकन शक्ति की तीव्रता से कितना बारीक अवलोकन, उपयोगी विषयों का ज्ञान और अमूल्य शिक्षण तथा सूचनाओं प्राप्त कर सकते हैं । और भिन्न भिन्न मानसिक शक्तियों को मनन आदि कार्य के लिए साधन, सामग्री और विचार शक्ति को विकसाने के लिए कितनी सहाय और साधनों अर्पण कर सकते हैं उसका ख्याल बेपरवाह रीति से अवलोकन करने वाला को कदाचित हो आ सकते हैं । न्यूटन, मारकोनी, एडीशन, डारविन आदि महा पुरुषों का महत्व विशेष करके यह शक्ति को ही आभारी था ।

डारवीन

यह विश्व अनेक आश्चर्यजनक और अद्‌भुत पदार्थों के सग्रह रूप अति विशाल और रमणीव अजीब घर है। उसके जल, स्थल और अन्तरिक्ष आदि तीन लोक, अनेक प्रकार के भिन्न भिन्न स्वरूप, गुण और रूप, रंग युक्त अनेक पदार्थों से परिपूर्ण है। उसका ज्ञानप्रद और आनन्ददायक अवलोकन और परीक्षा अनेक प्रसंग पर उपयोगी होते हैं। कुदरत की अनेक आश्चर्यमय रचनाओं के असंख्य और अपरिमित कार्यों हमारी अन्दर और बाहिर सर्वत्र विश्व व्यापक रीति से प्रसरी रहे हुए हैं। कितनी वेर तो हम उसके अमूल्य रत्न रूप भंडार को हमारा चरण नीचे सर्वदा अज्ञानता से पदाक्रान्त करते रहते हैं। अ हा हा !! मनुष्यों जो यह सब रचना को यथायोग्य अवलोकन और विचार द्वारा समझ कर यह अनन्त भंडार में से आवश्यक और उपयोगी ज्ञान ग्रहण करें तो कैसा उत्तम लाभदायक ओर सुखदायक यथार्थ अवलोकन द्वारा जैसी असर होती है ऐसी दूसरों से नहीं होती ।

हम जो कुछ प्रत्यक्ष देखते हैं वह शीघ्र याद रख सकते हैं। शब्द द्वारा या वर्णन द्वारा मिला हुआ ज्ञान वस्तुओं का मात्र अपूर्ण दर्शन ही दे सकते हैं। आँख और कान बीच में जितना अन्तर है इतनी ही अपूर्णता या अन्तर प्रत्यक्ष दृष्ट या अवलोकन द्वारा प्राप्त ज्ञान और वर्णनात्मक शब्दमय ज्ञान में है। वस्तु के प्रत्यक्ष अवलोकन द्वारा मिला हुआ ज्ञान शब्दमय या चित्र द्वारा दर्शाया हुआ ज्ञान करते कम समय में भी अधिक गहरा-गाढा और दीर्घकाल पर्यन्त चालू रह सके ऐसी मुहर लगा देते हैं—टिक रहे ऐसा संस्कार स्थापित कर देते हैं। बालकों ऐसे ही युवान और वृद्धों भी यन्त्रशास्त्र, पदार्थशास्त्र, मस्तिष्कशास्त्र खगोल और भूगोल आदि के महान सिद्धान्तों को प्रत्यक्ष अवलोकन द्वारा जितनी जल्दी से और सरलता से सीख सकते हैं इतना कार्य मात्र पुस्तकों द्वारा उतने समय में कभी भी नहीं हो सकता, यह स्पष्ट है। सचित्र पुस्तकों का चित्र बिना के पुस्तकों की समानता में अधिक चाह पूछ होती हैं। उसका खास कारण भी अवलोकन शक्ति की तृप्ति का मानसिक सिद्धान्त ही है। एक प्रविण और निष्णात चित्रकार की ब्रुश उसके चित्र द्वारा कितनी एक वेर बड़े पुस्तकों करते भी गूढ़ सिद्धान्तों को सरलता से समझाने में विक्षेप विजयी साबित होते हैं।

अवलोकन शक्ति विकसाने का प्रकार इतने लिए मानसिक सर्व शक्तियों का विकास के लिए अवलोकन शक्ति को विकसाने की अवश्य आवश्यकता है। और इतने लिये प्रत्येक प्रसंग पर और प्रत्येक विषल तरफ तथा महान कुदरत की ओर आपकी दृष्टि हमेशा खुली रखो। बारीक अवलोकन करने की आदत रखो। थोड़ा थोड़ा देखना यह ठीक नहीं, किन्तु बराबर ध्यान देकर चौकसी करने की आदत डालना, परीक्षक स्वभाव के होना।

आंख तो सबको होती है, किन्तु उसका यथायोग्य उपयोग कर देखने वाला तो बहुत ही कम होता है। ऐसे देखने वाला में तुम्हारी गिनती न होवे, और "आंख होने पर भी अंधेरारे" यह भजन को प्राप्त न हो जाओ वे अधिक ध्यान में रखो। गुजराती पुरानी पाँचनमाला में "फकीर और ऊंट के वृतान्त को याद रखो। और चर्म चक्षुओं साथ तर्क शक्ति और मनन शक्ति रूप आँखों को भी कार्य में लगा दो। आँखों यथायोग्य देख सकने की स्थिति में होने पर भी एक मनुष्य कुछ भी ध्यान अपनी समीप से पसार होती वस्तुओं पर यथार्थ रीति से देते नहीं। जब अन्य व्यक्ति अपनी आंखों द्वारा बारीक अवलोकन कर उतने ही समय में पांच पचास वस्तुओं को देखकर, जाँच पड़ताल और निरीक्षण कर प्रत्येक वस्तु के गुण, कर्म, स्वभाव, स्थिति, रूप, रंग आदि जानकर अपने ज्ञान और शकित दोनों को पुष्ट बनाते हैं। कितनेक घूड की अनुसार बिना समझे देख ही रहते हैं। जब कितनेक मात्र दृष्टिपात की साथ वस्तु के स्वरूप को समझने लगते हैं। इस एक अवलोकन करने की निरंतर की आदत का परिणाम है। जिसको सब कोईं अभ्यास द्वारा विकास वधारा या सुधारा कर सकते हैं। जन स्वभाव का निरीक्षण वह एक अति आवश्यक और ज्ञान वर्धक विषय है। जन समाज मंडल की सभा में वा किसी भी जगह आप जाओ वहाँ वहाँ आपको मनुष्यों के भिन्न भिन्न मुखा कृतिओं, विविध हाव भाव और बोलने, चलने, उठने, बैठने आदि की अनेक प्रकार की रीत भाव के जो असंख्य नमूनाओं दृष्टि समक्ष आ जाय

वह सर्व का बारीक निरीक्षण कर नोट (स्मरण पुस्तक) करो। उनको तुलना करो, उनके मुख पर के चिन्ह अथवा सामुद्रिक लक्षणों की तलाशी करो उसकी समालोचना और तुलना करो, उनकी भाषा और आवाज आदि की श्रवण युगल (युग्म) से नोट करो, उनकी आंख के संकेत का अवलोकन करो, और उस पर से उनके आचार, विचार और वर्तन पढ़ने सीखों। मनुष्य के प्रसंग में हम अनेक स्थलों में अनेक समय आते हैं। उनका मस्तिष्क शास्त्रानुसार अवलोकन और परीक्षा करो। मनकी सम्पूर्ण शक्तियों को यथार्थ रीति से विकसित करने में इस शास्त्र का कार्य सचमुच अनुपम है। और जिनको यह विषय का थोड़ा बहुत भी ज्ञान होता है उनको हरेक व्यक्ति के मुख पर के लक्षणों और मस्तिष्क के स्थानों देखने की एक स्वभाविक आदत हो जाती है और उसके परिणाम स्वरूप अवलोकन शक्ति को बहुत अच्छे प्रमाण में विकसाने का अभ्यास हो जाता है।

बच्चों की अन्दर यह अवलोकन शक्ति अति विशेष प्रमाण में होती है। कारण शैशव काल का अधिकांश ज्ञान वे यह द्वार से ही प्राप्त करते हैं। कोई नया बनाव, प्रसंग, घटना या नयी चीज वस्तु देखने में या सुनने में आये कि वे कैसे हर्षित और उत्साह युक्त बनकर "यह क्या ? वह क्या ? यह ऐसा क्यों है ? वह क्या करता है ? आपकी पास क्या है ? मुझे दिखाओ ? मुझे दो ?" इत्यादि प्रश्नों की परम्परा चलती है ? अनेक प्रश्नों पूछने लग जाते हैं। सचित्र पुस्तकों बच्चों को बहुत ही पसन्द आते हैं। और उसके द्वारा अतिसरलता से शिक्षा दे सकाती है। उसका यही कारण है कि उसके द्वारा अवलोकन शक्ति का मुख्य द्वार अच्छी रीति से विकसित कर सकाता है। सम्पूर्ण शिक्षा का कार्य या सारी शिक्षण पद्धति यह शिक्षण के महत्व के कार्यानुसार विचार पूर्वक रचानी चाहिये। प्रत्यक्ष अवलोकन यह ज्ञान प्राप्ति का मुख्य द्वार है। वर्तमान काल की शिक्षा पद्धतिओं में तदनुसार सुधारा होने की आवश्कता है। और दिन प्रतिदिन यह वस्तु शिक्षा के संचालकों को समझाती जाती है, और अब-इन दिनों आचार में रख भी जाती है, यह संतोषदायक है।

लड़के और लड़किओंकी हरेक पाठशाला की अन्दर भूगोल, भूगर्भशास्त्र, खगोल शास्त्र, वैद्यक शास्त्र, मस्तिष्क शास्त्र, पदार्थ विज्ञान, प्राणीवर्ग और वनस्पतिबर्गका इत्यादि प्रत्येक प्रकार का ज्ञान देने के लिए तद् तद् विषय के बड़े बड़े नक्शा बच्चों के अवलोकन के लिये यथार्थ रीति से और यथा योग्य स्थान पर इच्छित समये देख सके ऐसी हालत में, समझ सके ऐसी वर्णनात्मक भाषा में खुल्ला ही रहना चाहिये। पाठशाला के कमराओं में प्रत्येक विषय की जानकारी सचित्र दे सके ऐसे भिन्न-भिन्न विषय के तख्ताओं क्रमसर रख देना चाहिये कि जिसे बालकों तद् तद् विषयक सामान्य ज्ञान किसी भी समये अवलोकन मात्र से प्राप्त कर सके। और अपने से ज्ञान में अधिक जानने वाले बन्धु तथा बहिनों को किसी भी समये अमुक बाबत अथवा विषय पर प्रश्न पूछकर बिना विलंबे अपनी ज्ञान की पिपासा को तृप्त कर सकते हैं। शिक्षा देने की ऐसी पद्धति से शिक्षा के कार्य में दस गुणा कम समय और मिहनत में फायदा होने का सम्पूर्ण सम्भव है।

अवलोकन शक्ति का कार्य—जिन्होंमें यह वृत्ति प्रपूर्ण रीति से विकसित होती है, उन्होंमें देखने की, जानने की, निरीक्षण करने की और खोज तलाशी करने की अति उग्र जिज्ञासा होती है । वे हमेशा कुछ कुछ देखने जांच पड़ताल करने के पीछे उत्सुक होते हैं । और जहाँ तक बारीक अवलोकन द्वारा सम्पूर्ण हकीकत से वाकेफन होवे तब तक आराम से बैठते नहीं । तुलना और प्रेरणा शक्ति के प्राबल्य साथ अवलोकन शक्ति की तीव्रता से प्रत्येक मनुष्य के हावभाव और वचन या बोलने पर से उनके आचार, विचार और वर्तन को सहज समय में समझ सकते हैं । जिस सामान्य अवलोकन करने वाले कभी नहीं जान सकते । ऐसे मनुष्यों सचित्र पुस्तकों को विशेष पसन्द करते हैं ।

बाजार की अन्दर के प्रत्येक पदार्थ खिलौने या नमूनाओं की ओर सूक्ष्मता से देखते हैं । और चारों ओर सर्वत्र ध्यान देते रहते हैं । धन लाभ की आकांक्षा की अधिकता से लाभ के सर्व मार्गों तरफ अच्छा ध्यान देते हैं । वात्सल्य भाव की अधिकता के लिये बालकों तरफ बहुत ठीक, उचित दृष्टि और सम्भाल रखते हैं । बुभुक्षा की खाद्यभिरुचि की विशेषता के लिये खानपान के पदार्थों के स्वाद और खाद्य पदार्थों तरफ विशेष ध्यान देते हैं और भोजन सामग्री की परीक्षा कर सकते हैं । इतना ही नहीं किन्तु एक समय देखने के बाद उत्तम प्रकार के खाद्य पदार्थों भी अपने आप बना सकते हैं । आत्मनिष्ठा की अधिकता के लिये सत्य, नीति, सत्य धर्म को सत्वर स्पष्ट समझ लेते हैं । और बुरा भला, सच्चा झूठा की परीक्षा कर सकते हैं । आकृति ज्ञान के प्राबल्य से एक समय देखे हुए मनुष्य को हमेश के लिये स्मृति पट पर रख सकते हैं । सौन्दर्य प्रेम और क्रम की अधिकता से उच्च प्रकार के टेस्ट (शौक) को सुशोभित और सुव्यवस्थित चालचलन या रीति रिवाज को ऐसे ही अव्यवस्थित बदसूरत, बेडोल, बेढंगा स्थिति को तुरंत परख लेते हैं । ऊपर दर्शाई हुई और ऐसी दूसरी अनेक शक्तियों की साथ मिलकर असंख्य प्रकार के मिश्रित कार्यों यह अवलोकन शक्ति के परिणाम से होती है । खगोल शास्त्र, भूगर्भशास्त्र, रसायनशास्त्र, शरीरशास्त्र, मस्तिष्कशास्त्र, जतुशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र और पदार्थ विज्ञान की महान खोज-अन्वेषण का सब आधार यह अवलोकन शक्ति पर अवलंबो रहा हुआ है । टेलेस्कोप, माइक्रोस कोप, थीओडोलाइट, स्क उटोस्कोप, बाइनोकयुलर और मेग्नीइंगग्लास आदि अनेक साधनोंमात्र यह एक अवलोकन शक्तिकी तीव्र इच्छा को तृप्त करने का साहित्योही हैं ।

साधारण—जिन्होंमें यह अवलोकन शक्ति साधारण प्रमाण में होती है, वे मुख्य मुख्य प्रसंग में योग्य वस्तुओं ओर ही खास ध्यान देते हैं । बाकी सब वस्तुओं का सामान्य रीति से अवलोकन करते हैं । जिन्हों की अवलोकन शक्ति खामी वाली होती है, ऐसे मनुष्यों ने यह शक्ति को विकसाने की आवश्यकता है । स्थलज्ञान की शक्ति अधिक होने से ऐसे मनुष्यों निवास स्थान, मुकाम, पता बहुत याद रख सकते हैं । किन्तु विशेषकरके उन्होंका अवलोकन बहुत ही साधारण प्रकार का होता है ।

न्यूनता—जिन्होंमें यह शक्ति न्यून प्रमाण में होती है, वे मात्र अपने पर आई हुई फरज के लियें किसी पदार्थ का अवलोकन करते हैं, किन्तु उन्होंमें स्वाभाविक रीति से अवलोकन करने की आदत की खामी होती है ।

सामान्य रीति से जंगल में घूमने वाले कृषक, गडरिया और छोटे गाँव के लोगों की अवलोकन शक्ति अधिक तीव्र होती है ।

नं० २९ आकृति ज्ञान अथवा पहिचान

आकृतिज्ञान—आकार, मिलते हुए और भिन्न भिन्न जाति के स्वरूपों, मनुष्योंकी मुखाकृतियों तथा चेहराओं और तेपर के भावों के आकार विकारों और पहिचान आदि यह आकृति ज्ञानकी वृत्ति द्वारा जानने में आते हैं। इसलिये यह वृत्ति को "आकृति ज्ञान" ऐसा नाम रखने में आया हुआ है।

श्री नरभेराम कालीदास

नं० २९ आकृतिज्ञान

स्थान—दोनों आँखों के अन्दर के कोने पर यह शक्ति का स्थान है। यह शक्ति की खामी होगी तो आँखों बहुत नजदीक होती है। और यह शक्ति जब पूर्ण प्रमाण में होगी तो दोनों आंखों की बीच का अन्तर अधिक दिखता है।

खोज—यह शक्ति के स्थान की खोज डॉ० गोल ने की थी। एक समय वियेना की अन्दर एक छोटी लड़की का सिर देखने के लिये उनको निमंत्रण दिया था। यह लड़की प्रत्येक व्यक्ति की याद और पहिचान बहुत ही अद्‌भुत जैसी रीति से रख सकती थी। तलाशी करते हुए उसे मालूम हुआ की वह लड़की की दोनों आँखों एक सीधी लाइन में बाह्य भाग तरफ बाहिर पड़ती थी Shurzaim.

"वनस्पति शास्त्र का महान अन्वेषक क्युवीयर तुलनात्मक शरीरशास्त्र के अभ्यास में बहुत ही आगे बढ़ा था उसका कारण मात्र आकृतिज्ञान का उसका अवयव प्रपूर्ण रीति से विकसित था, ऐसे डॉ० कोम्ब जनाते है, ज्ञान करते हैं।

एक ही मधुमक्षिकाओं के घरकी दस से पन्द्रह हजार मधुमक्षिकाओं एक दूसरे को पहिचान सकते हैं। ऐसा मिस्टर स्परभीयम कहते हैं। डाक्टर गोल कहता था कि उसके में आकृति ज्ञानका अवयव खामी वाला (न्यून) होने के लिए उसने बारम्बार देखें हुवे मनुष्यों के चेहरा, रूप, आकार भी वह भूल जाता था। और एसा प्राय: बनते हैं कि कितने मनुष्यों को अपने देखे हुए मनुष्य को दीर्घ समय बाद भी पहिचान सकने में विलंब लगता है। जब कितने एक बिलकुल भूल ही जाते हैं।

उपयोग—यह शक्ति का उपयोग कुदरत की अन्दर के भिन्न भिन्न स्वरूप को पहिचान लेने का है। आकृति बिना कोई भी प्राकृतिक पदार्थ को दृष्य का अस्तित्व हो सकते नहीं। कुदरत अपने भिन्न भिन्न प्रकार के अनेक स्वरूपों को धारण करने पर भी, जो मनुष्यकी अन्दर पदार्थों के पृथक् पृथक् स्वरूप और स्थिति को जानने के मूल (मुख्य) साधन रूप "आकृति ज्ञानका" अवयव नहीं होते तो उसकी सब रचना व्यर्थ ही थी। अपने जात भाइयों को दिन में हजार बार देखते तो भी एक बार

याद न रख सकते । परिणामें पहिचान सम्बन्धी व्यवहार ही बन्ध हो जाते । परन्तु हम प्रत्येक वस्तु, प्राणी, पदार्थ तथा मनुष्य को उसके मूल स्वरूप से सामान्य और विशेष का विवेचन द्वारा जान सकते हैं, पहिचान सकते हैं । वह यह "आकृतिज्ञान" के अवयवका ही परिणाम है । कुदरत अपने सम्पूर्ण नमूनाओं की अपार संख्या मात्र एक ही क्रम से, एक ही जातिके, एक ही प्रकार के, एक ही सामान्य आकृति वाले बनाते हैं । वट, आम्र, इमली, पीपल, नीम, रायण, महुवा आदि वृक्ष हमेशा अपनी जात के अन्य वृक्षों समान ही होते हैं । ऐसे ही गाय, भैंस, शेर, सिंघ, श्वान, गीदड़, कबूतर, मैना (सारिका) शुक, कौवा, कोयल इत्यादि को पृथक् पृथक् जाति का समुदाय अलग अलग स्वरूप और आकार का होता है । किन्तु उनकी प्रत्येक जाति के व्यक्ति का नमूना, आकार और रूप, रंग आदि अपनी जाति को लगभग नौ सौ निन्यानवें अंश मिलता ही होते हैं । "समान प्रसवात्मिका जाति" यह जो न्याय का लक्षण है वह बहुत ही यथार्थ है । ऐसी रीति से प्रत्येक पदार्थ या प्राणी, वृक्ष या मनुष्य में अपनी जाति को मिलता आता कितने साधर्म्य या समान गुणों या समानता होते हैं । जिस जाति के लक्षण रूप समझाते हैं । जिसको सामान्य रीति से सर्व कोई अति सरलता से जान सकते हैं । किन्तु प्रत्येक जाति में प्रत्येक व्यक्तिगत आकृति या स्वरूप में जिन विशेष भावों होते हैं, उनको यथार्थ रीति से जानकर, ध्यान में रखकर समयान्तरे भी पहिचान सकने में यह शक्ति का सामर्थ्य समाया हुआ है । दुनिया के प्रत्येक देश और काल की भिन्न भिन्न प्रजाओं को हस्त, नासिका, कर्ण, आँख, पैर, उदर, सिर, मुख, चिबुक, भ्रमर, बाल आदि अवयवों प्रत्येक को समान स्थान में और समान ही है, तथापि सारे विश्व में सम्पूर्णांशे आकृति या स्वरूप में मिलती जुलती आती हो ऐसी दो व्यक्ति मिलनी कठिन है, अप्राप्य है । निश्चित आकृति या स्वरूप को धारण करना यह कुदरत का स्वभाव ही है और वह बहुत ही उपयोगी और आवश्यक है ।

वनस्पति शास्त्र, शंखशास्त्र, हस्तरेखाशास्त्र, सामुद्रिकशास्त्र, रेखागणित ये सब शास्त्रों क्या बताते हैं ? दूसरा कुछ नहीं, मात्र अलग अलग आकृति और स्वरूपों का एक पद्धति सरका अभ्यास है । वाँचन लेखन और मात्राओं आदि की अन्दर भी यही आकृति ज्ञान के अभ्यास और पहिचान की आवश्यकता होती है । अलग अलग अक्षरों का अनुसन्धान कर शब्दों की होती रचना भी एक जात की आकृति ज्ञान की ही अवस्था सूचवती है । वांचन ये शब्द के स्वरूप को पहिचान लेने का एक प्रकार ही है ।

छोटे बालकों जिन्हों में यह शक्ति अधिक विकसित होती है, वे वांचन, लेखन और अक्षर की साथ मात्रा जोड़ना, समझना जल्दी और युक्ति से सीखते हैं, उसका यही कारण है । चित्रकाम, प्लान तथा नमूना प्रमाणे पेटर्न बनाने में भी यह शक्ति की आवश्यकता है । इस अनुसार "आकृति ज्ञान" की शक्ति का असंख्य रीति से उपयोग हो सकते हैं ।

जिन्हों का यह स्थान सोजन (अंग का फूलना) या ऐसी कोई बीमारी से बिगड़ गया हो विकृत हो गया हो वे अनेक प्रकार की लम्बी, चौड़ी अजीब आकृतिओं और भूत पिशाच आदि के भयंकर कल्पित दिखावा देखते हैं । आमाशय की अन्दर के सोजन के लिये मस्तिष्क को अन्दर का क्षुधा का

अवयव बि गड़ते हैं। तदुपरान्त वह दर्शन तन्तु की और आकृति ज्ञान के प्रदेश से इतना अधिक नजदीक है कि उसकी असर दोनों पर होती है। स्वप्नों की अन्दर के विविध और अजीव प्रकार के दिखावा यही कारण को आभारी है।

जिन्हों में आकृति ज्ञान का अवयव अच्छी रीति से विकसित होता है, वे अपने बचपन के साथी सहपाठीओं, मित्रों, स्नेहीओं और दीर्घसमय पीछे देखने में आते मनुष्यों को भी जल्दी पहिचान सकते हैं। एक समय देखे हुये वस्तु, प्राणी या मनुष्य के हाव भाव, स्थिति और मुखाकृति का ज्ञान दीर्घ काल पर्यन्त याद रख सकते हैं। जिनके नाम भी याद न होंगे ऐसे मनुष्य को भी देखने मात्र से तुरन्त पहिचान सकते हैं। ग्रांम या नगर के रस्ता, मकान, स्थान, पत्ता भी जल्दी खोज करके पहिचान सकते हैं। सौन्दर्य प्रेम की अधिकता के लिए सुन्दर रम्यस्थलों और पदार्थों या व्यक्तिओं को देखना उन्हों को बहुत पसन्द है। यही अनुसार अन्यान्य (दूसरी, दूसरी) शक्तियों की साथ सयुक्त होने से अनेक प्रकार की यह अवयव की असर है।

विकास—यह शक्ति का विकास की आवश्यकता है। अलग अलग आकारों, नमूनाओं और भिन्न भिन्न स्वरूप के पदार्थों को बारम्बार देख, तलाशी कर याद रखने से यह शक्ति विकसित कर सकाती है। सी० आई० डी० सिपाहीओं एक समय देखे हुए अपराधी को किसी भी समय भी फिर पहिचान सकते हैं। उसका कारण उन्हों की मनुष्य के मुख-चेहराओं बराबर खोजकर देखने की और याद रखने की आदत ही है। नाटक, जुलूस और थीएटरों में टिकट कलेक्टरों की अन्दर भी यह शक्ति अच्छी होती है।

निग्रह—बहुत छोटी उम्र के बच्चों को ६ या ७ वर्ष की आयु पहिले खास कारण सिवाय अक्षरों लिखने का या पहिचाने का कार्य सौंपना नहीं। उन्हों की आकृति ज्ञान की शक्ति यथायोग्य पुष्ट होने बाद और पहिचानने की जिज्ञासा अच्छी रीति से उत्पन्न होने बाद शिक्षा जल्दी लाभप्रद होती है।

हरेक जाति के पंखीयों में यह शक्ति के अवयवों उन्हों के मस्तिष्क के अन्य प्रदेशों के प्रमाण करते अच्छी रीति से विकसित होते हैं। उससे वे अपने घोंसला और परिचय वाले स्थाकों को बहुत जल्दी से और सरलता से पहिचान सकते हैं। वही अनुसार प्रत्येक पशु गाय, भैंस, घोड़े, कुत्ता इत्यादि प्राणीओं की दोनों आंखों बिचका अन्तर मनुष्य करते अधिक विशेष हैं। जिस ऐसे दर्शाते हैं कि उन्हों का आकृतिज्ञान मनुष्य करते अनेक गुण अधिक है। यह शक्ति द्वारा वे मालिक का घर और निवास स्थान सरलता से पहिचान सकते हैं।

नं०. ३० माप अथवा प्रमाण ज्ञान

माप अथवा प्रमाणज्ञान-आँख से देखकर माप करना, माप या प्रमाण को याद रखना, समूह रूप में पड़े हुए अनाज के थैलाओं या पेटिओं देखकर कितनी जगह में समा सकेंगे उसका अनुमान कर देना। लम्बाई, चौड़ाई, गहरा, कोने ऊंचाई और उसके परस्पर के फर्क, अन्तर तथा दूर निकट आदि के मन से अटकल निकालने की शक्ति का 'यह माप और प्रमाण ज्ञान" में समावेश करने में आते हैं।

स्थान-अवलोकन शक्ति के स्थान की दोनों ओर किन्तु जरा नीचे जहाँ नासिका के मूल और भ्रमर के अन्दर के भाग के मिलाप से जहाँ कोना बन जाता है वहाँ आया हुआ है। जिसका यह स्थान बड़ा होता है उन्हों की भ्रमर का अन्दर के कोना का भाग छपर की तरह लटकता हो रहते हैं।

डा० स्परझीयम कहते हैं कि—Its organis Placel at the iuternal corner of the Superciliary arch, on both Sides of observation It is import ant to Geometricians. architects, Carpenters, mecranician- Portrait paintr and all who measure dippenning, It moasures. the Size of the heavenly bodies and of terrestrial objects and with locality gives conceptions of perceptives.

Speurzaim.

"Maguitude. Size length breadth. thickness depth distance being Strictly Speakind, referableto extention this faculty is probably that of Shace in general."

Sir. G. S. MACKELLZIO.

परमात्मा की रचना को अन्दर माप या प्रमाण सिवाय का कोई पदार्थ है नहीं। प्रत्येक वस्तु को कुछ को कुछ माप-लम्बाई, चौड़ाई या ऊंचाई आदि का सापेक्ष होते ही है। प्रकृतिका यह एक खास गुण है, और वह गुण का ज्ञान कराने वाला "प्रमाण ज्ञान" की एक स्वाभाविक शक्ति है कि जिसके बिना जल के एक बिंदु और महासागर, तथा राई और पर्वत की बीच का अन्तर कभी भी अवगत हो सकते नहीं। इतना ही नहीं किन्तु लम्बाई, चौड़ाई और ऊंचाई या गहरा का ख्याल देने का कुछ साधद ही नहीं रहते। किन्तु उपरोक्त शक्ति की और कुदरत का पदार्थों के वैसे गुणों के अस्तित्व को लिए ही हम प्रत्येक वस्तु के सर्व प्रकार के माप और मान जानते या अनुभवी सकते हैं।

कुदरत का कोष सर्वत्र अपरिमित और अमाप्य हैं। उसका विस्तार भी जैसे अनन्त और अपार है वैसे अमाप्य और अपरिमेय हैं (जो नापा न जाय वैसे और बहुत हैं) अनन्त, अपार, अपरिमित, आदि अनादि जैसे ईश्वर के गुणो है, वैसे उसके कार्य भी अनन्त और अपार है। दृष्टान्त रूप में सूर्य, चन्द्र और पूछलतारा तथा नक्षत्रों की बीच का अन्तर कितना बड़ा महान हैं? वही अनुसार सूर्य, ग्रहो

और तारा आदि का मान, तौल, बोझ अथवा माप आदि भी कितने महान और अविज्ञेय तथा अपरिसंख्येय है ? क्या समुद्र के अगाध जल कभी मापीसकाय ऐसे हैं ? या अनन्त आकाश की अन्दर घूमते अगणित गोलाओं की कभी गिनती, ऐसे ही मापका निर्णय या भार आदि निकाल सके ऐसे हैं ? परमात्मा की रचना सर्वत्र अपार, अनन्त और अपरिमित हैं । तो भी अमारी शक्ति के प्रमाण में उनका माप, प्रमाण या मानकर हमारे उपयोग के लिये ज्ञान प्राप्त करना यह आवश्यक है । और इतने लिये ही यह "प्रमाण ज्ञान" के अवयव का उपयोग है ।

प्रपूर्ण—जिन्हों में यह शक्ति का स्थान अच्छी रीति से विकसित होता है, वे आंख से देखते ही अनेक प्रकार के माप यथावत् ले सकते हैं । अथवा देखने मात्र से माप सम्बन्धी जल्दी से भूल चूक का अन्वेषण कर सकते हैं । अच्छे शिल्पकार की भी भूल जल्दी पकड़ सकते हैं । और वस्तुओं की ऊंचाई लम्बाई, चौड़ाई या अधिक कम आकार मात्र देखते ही बराबर विश्वास पूर्वक कह सकते हैं । उन्हों का यह विषय का अनुमान हमेशा सत्य ही होता है । ऐसे व्यकित में जो कला कौशल्यका स्थान अच्छा विकसित होगा तो यान्त्रिक प्रवन्ध बहुत ही सुन्दर उच्च प्रकार के कर सकते हैं । और प्राय: तो माप लेने के यन्त्रो की भी आवश्यकता नहीं रहती । प्रत्यैक वस्तु की अन्दर सप्रमाण को अधिक प्रिय गिनते हैं । जब सब प्रकार की प्रमाण हीनता अथवा बदशकल, बेढंगा का अनादर करते हैं । शिल्पशास्त्री और यन्त्रशास्त्रीओं का यह स्थान अच्छी रीति से विकसित होता है ।

साधारण—जिन्हों में यह शक्ति सामान्य होती है वे चर्म चक्षुओं द्वारा देखकर माप, प्रमाण या दूरता का मामूली अनुमान कर सकते हैं । किन्तु उन्हों की अटकल (अन्दाज) उचित सच्चा साबित नहीं होता ।

न्यून–जिन्हों में यह शकित न्यून प्रमाण में होती है, वे हमेशा माप और मान के साधनों ऊपर ही आधार रखते हैं । उसके बिना उन्होंका कार्य बिलकुल रोक ही जाते हैं ।

विकास—प्रत्येक व्यक्ति ने अपनी अन्दर की यह शक्ति को उसके यथार्थ रूप में विकसाने के लिये जहाँ जहाँ कैसा, कितना, कितना लम्बा, कितना चौडा या संक्षेप, अल्प, अधिक इत्यादि प्रमाण या माप के प्रसंगों उपस्थित होंगे अथवा मिले वहाँ वहाँ अपनी शक्ति से अनुमान कर देखने की अवश्य आदत डालने पर ध्यान देना । बहुत ही सूक्ष्म और सम्पूर्ण रीति से गहरी निगाह से देखनें की और अनुमान द्वारा माप लेने की आदत डालो, यथार्थ माप लेओं, याद रखो, तथा फिरसे मैं कभी भूल नहीं हीं करूं ऐसा संकल्प कर बराबर मनमें स्थिर करों ।

इस विषय में प्रशिया के लोगों की शिक्षा पद्धति बहुत ही उच्च प्रकार की है । वो अपने बच्चों

को खेत या जंगल या पहाड़ पर ले जाते हैं, और यह शक्ति को विकसाने के लिए यथायोग्य अभ्यास, मुहाविरा कराते हैं। जैसे कि अमुक खेत या वृक्ष अमुक स्थान से कितना दूर है। यह हरेक विद्यार्थी को पूछते हैं, और प्रत्येक के प्रत्युत्तरों की नोट करते हैं। तद् पश्चात् सत्य माप निकाल कर देखने में आते हैं, और फिर से एक बार सबको अपनी शक्ति को प्रयत्न और परीक्षा करने देने का समय देने में आता है। यही अनुसार अनेक प्रकार के वजनदार या हलकापन में निर्णय करने की आदत डालने में आती है। किसानों, व्यापारीओं, जंगल में काम करने वालाओ, गोदामकीपरों, तथा स्टीमर भरने वाले सुपरिण्टेण्डेटों में यह शक्ति विशेष विकसित होती है इसी प्रकार चित्रकार, नकशा बनाने वाला, कुम्हार, लुहार, काष्ट शिल्प आदि सब कारीगर वर्ग में यह स्थान विशेष विकसित होता है।

त्रिकोनमिति, मौडिल ड्राइंग और सर्वेयर-भूमायक कार्य वह यह शक्ति को विकसाने का मुख्य विषय है। इसलिए छोटे बच्चों को खेल, लीलाद्वारा और स्कूल में भी उसका शिक्षण देना ही चाहिए।

नं० ३१. तोल अथवा वजन

Weight.

वजन—तौलना, बजन करना, समान बजन रखना, गुरुत्वाकर्षण शक्ति के नियमाधिन बर्ताव करना, बर्ताना, प्रत्येक वस्तु के मध्य बिन्दु को सम्भालना, हलना, चलना, स्केटींग, अश्वारोहण या साईकलींग आदि में इसी रीति से वृक्षारोपण में मध्यविन्दु को समतुलीत रखना इत्यादि सर्व कार्यो यह एक ही गुरुत्वज्ञान को आभारी है।

व्यग्र होना, गिर जाना, सिर घूमना, जी घबराना, चकरी आना आदि क्रिया यह शक्ति की निर्बल या अस्त ब्यस्त हालत का परिणाम है।

स्थान—प्रमाण ज्ञान के अवयव से दूसरे नंबर नासिका के ऊपर के भाग से लगभग आधा इंच दूर पर, और रंग ज्ञान के अवयव को आगे तथा भ्रमर के नीचे के प्रदेश में यह गुरुत्वज्ञान शक्ति का अवयव आया हुआ है। रंगज्ञान के अवयव और गुरुत्वज्ञान के अवयव को बराबर खोजकरने के लिए आँख के मध्य बिन्दु में से एक सीधी रेखा भ्रमर तक खींचोगे तो अन्दर के भाग में गुरुत्वज्ञान का अवयव और बाहिर के भाग में रंगज्ञान का अवयव बराबर विभक्त होकर स्थान मुकरर होयेंगे। इस गुरुत्वशकित का अवयव प्रमाण ज्ञान के अवयव करते जरा छोटा है।

चेम्पायन

भारी वजन उपाड़न वाला

विश्व की अन्दर की प्रत्येक प्राकृतिक वस्तु पर गुरुत्वाकर्षण का विश्वव्यापी कार्य निरन्तर चलता है। हमारा शरीर भी प्राकृतिक ही है। इस लिये वही नियम को आधिन है। जो ऐसे न होते तो हम वही गुरुत्वाकर्षण शक्ति को असर से एक पत्थर प्रमाणे स्तब्ध होकर एक ही स्थान पर जैसे के वैसे, ज्यों के त्यों पड़ ही रहते। योग्य तलाशी करते मालूम होते हैं कि हमारे स्नायुओं हम को यह कार्य में मदद करते हैं। कारण कि उसकी सहायता बिना गति सम्बन्धी होई भी कार्य हमारे से हो सके ऐसे नहीं हैं। प्रत्येक कार्य में उसकी आवश्यकता रहती है। उसके बिना प्राण भी धारण हो सकता नहीं। खाना, पीना, पहिरना, ओढ़ना और पचनादि तथा रुधिराभिसरणादि की सर्व क्रिया उसको आधिन है। गुरुत्वशकितमात्र उसको अपने नियम में रख कर कार्य करने प्रेरती है।

गुरुत्व प्रकृति का स्वभाव या धर्म है। उसके बिना विश्व की अन्दर के प्रत्येक पदार्थ कैसे भी दशा

में जहीं के वहीं, वैसा के वैसा, ज्यों का त्यों स्थिर ही हो जाते। मकान, मीनारे जैसे कार्यों तो कभी हो सकते ही नहीं ! कारण पदार्थों किस के आधार पर एक दूसरे ऊपर टिक रहें ? विश्व की अन्दर के प्रत्येक पदार्थ के परमाणु यह शक्ति के अभाव में सम्मिलित रह सके नहीं और ऐसी दशा में प्रत्येक पदार्थ का स्वरूप छिन्न-भिन्न हो अनन्त आकाश में अस्त व्यस्त हो जाते। समुद्र, नदी, नाला, वायु, वर्षा इत्यादि से होते महान आश्चर्यजनक और महत्वपूर्ण फेरफारों यह गुरुत्व शक्ति के अभाव में कभी हो सकते ही नहीं। वर्षा का गिरना, ऋतुओं का बदलना, पृथ्वी का उसकी कक्षा में घूमना, दिन रात के चक्र का निरन्तर समयानुसार बदलना, नदीओं का बहना और शरीरस्थ रुधिर का फिरना आदि विश्व की समग्र क्रियाओं यह एक गुरुत्व शक्ति को अनेक रीति से आभारी है। प्रत्येक पदार्थ की अन्दर के परस्पर के परमाणुओं का आकर्षण जिस को (Cohesion) कहने में आता है और जिस के बिना एक भी पदार्थ की स्थिति या स्वरूप बन्धा सकता ही नहीं, वह भा यह शक्ति का ही स्वरूप है।

मनुष्य की अन्दर यह गुरुत्वशक्ति के नियमों का ज्ञान प्राप्त कर; की जो स्वाभाविक शक्ति है वह द्वारा वो उसके पर अधिकार प्राप्त कर उसको अपने अनन्त कार्या कराने प्रेरी सकते हैं।

खगोलस्थ सब ग्रहोपग्रह, सूर्य, चन्द्र और नक्षत्रों की अपनी अपनी कक्षा की अन्दर अतुलित गतियों का कारण भी वही शक्ति है। कुदरत की अन्दर के लघु में लघु परमाणु से लेकर एक महान सूर्य पर्यन्त के समस्त (तमाग) पदार्थों पर उसको सम्पूर्ण सत्ता (अधिकार) है। विश्व के समग्र गोलाओं को गति देकर यथार्थ नियम और पद्धतिसर अनन्त आकाश में चलाने, घूमाने वाली अपार सामर्थ्य और अपरिमित्त सत्ता अधिकार वाली यह कर्मशक्ति है। विद्युत्-प्राण और रश्मि-आत्मक अश्विनो नामाभिधारी (Electrons) का ही यह सब प्रभाव है। और सूर्य वे समग्र विद्युत् शकित का एक अनन्त और सम्पूर्ण कोष है। यह बात अभी सर्वत्र निर्विवाद (विवाद रहित) प्रमाणित हुई है। जब मनुष्य की अन्दर के हस्तपादादि बाह्य और हृदय-रक्त, आन्त्रादि आन्तर अवयवों को भी स्नायु के कार्य द्वारा यथावत् चलाने वाली वही विद्युत् शकित है। वही प्राण वायु है। गुरुत्व मध्य बिन्दु और गुरुत्वाकर्शण शकित, लघुत्व, गुरुत्व, हलका, वजनदार वे सब यह एक ही शकित के कार्य या असर का ज्ञान ग्रहण करने वाला यह गुरुत्व ज्ञान का खास अवयव है।

प्रपूर्ण—जिन्हों में यह गुरुत्वज्ञान अच्छी रीति से विकसित होता है वे अपने स्नायुओं पर सम्पूर्ण निग्रह दबाव रखते हैं। किसी भी प्रकार का मुश्किल, कठिन स्थान पर या रस्सा पर भी वे चल सकते हैं। उत्तम प्रकार से अश्वारोहण कर सकते हैं। स्थिर पाँव वाले होते हैं, (Mountaineer) कभी भी फिसल जाते नहीं—घिसट पड़ते नहीं। तैरने में समतोल शरीर रखने में, घुड़ दौड़ का खेल की अन्दर आश्चर्यजनक अंग व्यायाम करने में और ऐसे ऐसे अनेक कार्यों करने में उन्हों के स्नायु पर उन्हों का पूर्ण प्रभाव होता है' और जो करने लक्ष्य में लेवे वह सफलता पूर्वक कर सकते हैं। कलाकौशल्य का स्थान भी जो अच्छा विकसित होता तो ऐसे व्यकितयों भवन निर्माण करने का कार्य अच्छा कर सकते हैं: हस्त चालाकी आदि के तमाशा भी कर सकते हैं। पर्वत और विषम पहाड़ की चोटी पर घूमना,

फिरना विशेष पसन्द करते हैं। अजाविक—बकरी और बकरियों के छोटे बच्चे विषम स्थान वाले उच्च प्रदेश में भी निर्भयता से चढ़ जाते और घास खाते देखने में आते हैं, उसका कारण यह शकित हो है।

जिस में आकृति और प्रमाण ज्ञान का अवयव अच्छा होगा, वह उत्तम प्रकार की निशानबाजी कर सकते हैं। और यश की अधिक अभिलाषा के परिणाम से शरीर को समतुलित रखने की अनेक जोखमकारी (शरीर को हानि पहुंचाने वाली) क्रियाओं और व्यायामों भी कर दिखाते हैं। नट, नर्त की और व्यायाम करने वाले यह बाबत का स्पष्ट प्रमाण देते हैं। उनका बांस ऊपर चढ़ना, रस्सा पर चलना, सिर में थाली रख कर औंधा सिर और ऊपर पैर रख कर अधर फिरना तथा बांस की सोटियों पर बहुत ही ऊंचे घूमती थाली को या घूमता लक्कड़ के टुकड़ा को खूब ऊपर चढ़ा कर वहीं की वहीं सोटी पर ले लेना आदि कार्यों देख कर किस को आश्चर्य नहीं होता ? परन्तु बेचारा गरीब लोगों की निर्धन और अज्ञान देश में मूल्य ही कहां से होवे ?

साधारण--जिन्हों में यह शकित साधारण प्रमाण में होती है, व सामान्य समतूला रख सकते हैं। किन्तु ऊंचा पर्वत पर चढ़ते समय उन्हों का दिल घबराता है। शरीर को समतोल रख सकते नहीं। शरीर को नुकसान कर दे ऐसा व्यायाम करते नहीं। ऊंची दीवार पर चल सकते नहीं, रपट जाने में देरी नहीं लगती, जल्दी से घिसट पड़ते हैं। प्राय: औंधा मुख जमीन पर गिर जाते हैं। ऊपर से नीचे दृष्टिपात करते सिर फिरने लगता है, चक्कर आता है और समय पर गिर भी जाते हैं। अर्थात् शरीर को अपने स्वाधीन रख सकते नहीं।

सावधानी का अवयव अच्छी रीति से विकसित होगा तो बहुत सम्भाल रखने वाले और उसके परिणाम में डरपोक बन जाते हैं। हिम्मत रखकर वृक्ष पर चढ़ने का या ऊंचे से कुए में कूद पड़ने का काम कर सकते नहीं। हिंडोला पर बैठकर अच्छी रीति से झूल सकते नहीं।

न्यून--जिन्हों में यह शक्ति न्यून प्रमाण में होती है उन्हों को जहाज, नौका में चढ़ते वमन होता है, गाड़ी में चक्कर आता है, सिर घूमता है, शरीर ठंठा हो जाता है, और अपना शरीर की समतुला सम्भाल सकते नहीं। किन्तु व्याकुल होकर गठरी (पोटली) या बंडल जैसा बनकर लेट जाने में भी आराम से रह सकते नहीं। ऐसे लोगों ने अपनी अन्दर यह शकित को अवश्य विकसाने की आवश्यकता है।

विकास—काष्ठ के पटिया पर से सरकना, स्केटींगरींग में जाना, तैरने सीखना, ऊंचे से कूद कर

नीचे पड़ना, टेकड़ी पर चढ़ कर दौड़ना, नीचे आना, भिन्न भिन्न प्रकार के अंग व्यायाम करना, लकड़ी छत्री, बड़ी लाठी अंगुली पर रखते सीखना, घोड़े सवारी का अभ्यास रखना, जलयान का प्रवास करने बारम्बार जाना, गोलीबार करते सीखना, धनुष बाण का उपयोग करना, टेनीस खेलना । ऊपर दर्शाये हुए अनेक प्रकारों में से कोई भी जात का व्यायाम करने की आदत डालना ।

बालकों की अन्दर यह शकित को बचपन में से विकसाने की आवश्यकता है। इस लिए जब से वे ठीक रीति से चलने सिख ले तब से उनको योग्य दाब में रखकर छूट से हरने फिरने दो, शकितनुसार उनको नाच, कूद, दौड़ और व्यायाम करने की तथा हिंडोला पर झूलने की छूट दो । योग्य अवस्था में कुस्ती खेल की होड और दौड़ने की या कूदने की स्पर्द्धा में छूट से उतरने दो । माताओं ने अपने बच्चों की ऐसी प्रवृत्ति में रोक नहीं करनी, परन्तु योग्य मर्यादा में योग्यता देख कर उनके उत्साह को बढ़ाना चाहिए ।

वडीलोने अपने गाँव या मोहल्ला के बच्चों को तथा अखाड़ा के सभ्यों को आमन्त्रण देकर, ऐसे प्रत्येक प्रकार के शारीरिक व्यायाम और खेल, क्रीडा को उत्तेजन, उत्साह देकर पारितोषिक देना चाहिए ।

कुश्तो बाज

नं०. ३२ रंगज्ञान (colour)

रंगज्ञान-भिन्न भिन्न रंग के मिलान, विकास और पहिचान करने का ज्ञान या परीक्षा, रंग का शौक, रंग की अन्दर की भिन्न भिन्न असंख्य छायाओं का निरीक्षण या मुकाबला और मिश्रण करने की शक्ति, रंगा हुआ चित्र, वस्त्र या रंग रंगीला अनेक प्रकार के पुष्पादि के स्वाभाविक शौक आदि का ग्रहण यह "रंगज्ञान" की अन्दर करने में आये हैं।

स्थान—स्थान का वर्णन गुरुत्व शक्ति के प्रकरण में दे दिया है। पृष्ट (२०८)

डा० गोल कहते हैं कि "मैंने खास मार्क कर, निरीक्षण से देखा है कि सब रंगारा की भ्रमरों का मध्य पीछे का अग्रभाग धनुषाकार बांका हुआ और अन्त के भाग की ओर ऊपर जाता, बाह्य भाग अर्ध धनुष के जसा होता है। मेरा सब प्रवास समय में मैंने देखा है कि रंग परीक्षा का यह अवयव

उत्कृष्ट रंगज्ञान

सुप्रसिद्ध राजा रावबर्मा

है। सब प्रसिद्ध चित्रकार और पेइन्टींग के शौकीन स्त्री पुरुष की भ्रमर का मध्य प्रदेश खास वृद्धिगत होता है। जब जिन चित्रकार्य में वैसे प्रवीण नहीं होता उनकी भ्रमर का लगभग नासिका के मूल से मध्य तक का विभाग बिलकुल सीधा होते हैं। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रीओं में यह अवयव अच्छे प्रमाण में विकसित होता है। स्त्रीओं की भ्रमरों भी अधिकाँश धनुष जैसी बांकी होती है। इसलिये रंग रंग का पदार्थों और रंगा हुआ वस्त्रो बहुत ही पसन्द करते हैं। तथा रंगीन पुष्पों को अत्यन्त चाहते हैं।"

डा० स्परझीयम कहते हैं कि—"यह स्थान भ्रमर के मध्य प्रदेश में आया हुआ है" डा० फाउलर कहते हैं कि--खानगी में ऐसे ही जाहिर प्रसंग में मैंने हजारों मनुष्यों को यह स्थान की कमी वाले देखे हैं, और "उन्हों में भिन्न भिन्न रंग परखने की शक्ति की बिलकुल न्यूनता है, ऐसे मैंने सूचित भी किया है, और उसमें एक भी समय मेरी गलती नहीं हुई।"

उपयोग --प्राकृतिक पदार्थों की अन्दर के अनेक प्रकार के रंग रंगों को और उसके संयुक्त भावों को यथावत् जानना अथवा परखना ये यह शक्ति का खास काम है। कुदरत की अपार रचना में वृक्ष पर्ण, पुष्प, फल, सूर्य के प्रकाश, आकाश, वायु, बादल, उषा में और दोनों सन्ध्या समय के पूर्व और

पश्चिम आकाश में नदी, नाले, पहाड़, पर्वत, खेत तथा जंगलों और पशु, पक्षीओं आदि में भी सर्वत्र रंग रंग का वसंत वायु छाया हुआ देखने में आते हैं। पृथ्वी पर फैला हुआ घास पान रूप विस्तृत गलीचा की मनोहर और रमणीय रचना में भी आनन्ददायक हरित वर्ण मनुष्यों के चर्म चक्षुओं को सर्वत्र शान्ति और अनुपम सुख दे रहा है। सन्ध्या समय के सुनहरी रंग, विद्युत प्रकाश, असंख्य प्रकार के उत्तर महासागर तरफ के सूर्योदय (Aurora borealis) के प्रकाश के दृश्यों और मेघ धनुष की अद्भुत सौन्दर्य युक्त पचरंगा चित्र रचना कुदरत के महान निपुण, कुशल, होशियार, चित्रकार की प्रवीण पेइन्टर की अद्भुत रंगज्ञान शक्ति का अनुपम प्रमाण देते हैं। स्वस्थ नैरोग्य सूचक और मनोहर बालकों के गुलाब के रंग के कपोल और रक्त ओष्टों क्या कम रमणीयता दर्शाते हैं? कुदरत के सम्पूर्ण अंगों में रंग, रूप और सौन्दर्य भरा हुवा परिपूर्ण हैं। उसके बिना कुदरत की सुन्दरता तमाम निरस, शुष्क, निस्तेज, निःसत्व, निःसार, मन्द, उदास हो जायेंगे। परन्तु अनेक विध रंग रंग की, चित्र विचित्र रंगरंगोली स्थिति का अस्तित्व और उसको ग्रहण करने वाली मनुष्य की अन्दर की यह रंगज्ञान की शक्ति और उसका अरस्परसका सम्बन्ध मनुष्यों को अनेक प्रकार के सुख, आनन्द और उत्साह देते हैं।

चित्रकला और उत्तम प्रकार का चित्र काम प्रत्येक अवस्था और समय के लोगों में एक उत्कृष्ट प्रकार के शौक का स्थान बन रहा है। न्युझीलेन्डर्स अपनी त्वचा को रंग से रंग रंगते हैं। हिन्दीओं अनेक बार रंग का उपयोग करते हैं। ग्रीक और रोमन लोगों भी चित्र काम के उतने ही शौकीन था। और वर्तमान काल में तो यह विद्या का शौक इतना अधिक बढ़ गया है कि प्रत्येक देश की प्रजा उत्तम प्रकार के चित्र काम के प्रदर्शनों (कारीगरी का दिखावा) और रौनकदार पेइन्टींग या चित्रो पीछे प्रतिवर्ष लाखों रुपये खर्चने में अधिक आगे बढ़ती ही जा रही हैं। समग्र भूमंडल के लोगों में खुशबू वाले, सुवासित और सुन्दर रंगरंगीला पुष्पों का शौक सब मंगल प्रसंगों में विशेष ही हो रहा है, ये सबसे प्रबल प्रमाण है।

तदुपरान्त प्रत्येक रंग जुदा जुदा प्रकार के गुण, अवस्था और लक्षणों को भी स्पष्टता से दर्शाते हैं। आंख और बालके रूप और रंग मनुष्य स्वभाव के चोकस (उचित) लक्षणों बताते हैं। यह तो मुखसामुद्रिक शास्त्र का एक सिद्धान्त ही है। प्रत्येक साग, भाजी, तरगारी, पान पत्ता और फलका हरितवर्ण उसकी अपकव दशा बता देती है। जब पीला पकव थया हुआ पकवावस्वा को तथा स्वादिष्ट दशा को प्रकटता से दर्शाते हैं। लाली वाले फलो या फूलों में खट्टापन (Acidity) विशेष अंश में होते हैं। लाल रंग तीव्रता, रजोगुण, श्याम रंग शक्ति, घनत्व तथा तमोगुण दर्शाते हैं।

परमात्मा सम्पूर्ण पदार्थों को अन्दर और बाहिर अनेक प्रकार से और अनेक रीति से रंग रंगीला बनाकर अपनी मूक परन्तु ठीक सतर्क भाषा में प्रत्येक पदार्थ की उचित अवस्था और गुणादि दर्शाते

हैं। सिर्फ उसका सूक्ष्म अभ्यास और अवलोकन करके सर्व भावों से सम्पूर्ण रीति से विदित होने की आवश्यकता है। प्रकृति अपनी अन्दर के उत्तम पदार्थों को सर्वांग सुन्दर बनाते हैं। जब कठोर हलका, नीचा प्रकार के फल, फूलका रूप, रंग भी ऐसी ही प्रकार का रफ, बदसूरत, बेडौल होते हैं। उत्तम प्रकार के मिश्रभाव वाले फल हमेशा उत्तम स्वाद वाले होते हैं। अनेक प्रकार के पक्षी, मयूर, शुक्र, सारिका आदि को रंग रंगीला, पंचरंगी या अनेक प्रकार के मिश्र रंगों से सुन्दर सुखद मनोहर बनाने में कुदरत कुछ न्यूनता नहीं रखती।

जिन व्यक्ति की अन्दर यह शक्ति प्रपूर्णता से विकसित होती है, वह रंग का अति शौक और रंगों के परीक्षक होते हैं, अपनी आंख से रंगों को याद रखकर उन्हों की मिलनता, फेरफार या भिन्नता को तुरन्त हो जान सकते हैं। सुन्दर रंगीन चित्रो या वस्त्रालंकार को देखकर अत्यन्त खुशी होते हैं।

कलाकौशल्य, अनुकरण, आकृति और प्रमाण ज्ञान के अवयवों जो अच्छी रीति से विकसित होंगे, और उसके परिणामें मस्तिष्क के दोनों पार्श्व अच्छी रीति से भरा हुआ होंगे तो चित्रकाम में सर्वांगे निपूण साबित होते हैं। रगीन चित्रों, फोटे, नकशा और पेइन्टींग बहुत ही उत्कृष्ट प्रकार का वे बना सकते हैं। सौन्दर्य प्रेम अधिक होने के लिये सुन्दर चित्रो और पेइन्टीगों एकत्र करने का और देखने का कार्य स्वाभाविक रीति से ही उन्होंको पसन्द होता है। सुन्दर रंगीन पुष्पो तथा फलों और रमणीय प्रदेशो देखने बहुत ही चाहते हैं।

साधारण—जिन्हों में यह शक्ति साधारण प्रमाण में होती है उन्होमें रंगों परखने की शक्ति साधारण होती है, खास अभ्यास द्वारा विशेष परीक्षा कर सकते हैं, किन्तु उसके अभाव में ऐसी शक्ति की न्यूनता ही होती है। आ कृति, प्रमाण और कला कौशल्य शक्तियों अच्छी होगी तो वस्तु का स्वरूप स्केच अच्छा कर सकते है, परन्तु रंग भरने का कार्य उन्होंसे यथार्थ नहीं बन सकते।

न्यून—जिन्होंमें यह शक्ति न्यून प्रमाण में होती है वे सादा मूल रंगों साधारण रीति से जान सकते हैं, किन्तु वस्त्रों के, बालके आँख के मिश्र रंगों की वे ठीक परीक्षा और पहिचान नहीं कर, सकते। रंग ज्ञान की उन्होंमें खास न्यूनता ही होती है।

विकास—यह रंग ज्ञान की शक्ति का विकास के लिये रंगो के मूल तथा मिश्र स्वरूप और पृथक् पृथक् छायाओं का अभ्यास करो। रंगीत वस्त्रों लेने का और पहिरना तथा आत्मीयजनको पहिराने का शौक बढाओं। ऋतु ऋतु अनुसार भिन्न भिन्न रंग के वस्त्रों की खरीदी करो। अनेक प्रकार के रंगीन पुष्प, पक्षीओं, रमणीय प्रदेशों, सन्ध्या समयके और ऊषा कालके सुन्दर दृश्यों का बारम्बार अवलोकन करो। उत्कृष्ट प्रकार के चित्र, पेइन्टींग कामकी योग्य प्रशंसा और अनुकरण करते सीखो।

अन्य शक्तियों की अनुसार यह शक्तियों अभ्यास द्वारा अच्छी रीति से विकसित कर सकाती है

ग्रौर ऐसे ग्रभ्यास को बढ़ाने में प्रकृति सिद्ध पदार्थों, वृक्ष, पर्ण, पुष्पलत्ता ग्रौर फ़लों ग्रादि के रंगों के नमूने सर्व स्थल पर ग्रापकी सामने सर्वदा परमात्मा की दिन रात खुल्ली रहती शाला में शिक्षण दाता बनकर दे रहे हैं। ईश्वर ने बनाये हुए ग्रनन्त ग्रौर ग्रनुपम नमूनाग्रों सर्वत्र प्रतिक्षण प्राप्त हो सके उतने ग्रौर सर्वांग सम्पूर्ण है। बालकों, युवानों को यह प्रयोजन की प्राप्ति ग्रर्थे वनस्पति शास्त्र के ग्रानन्ददायक ग्रभ्यास की ग्रवश्य ग्रावश्यकता है। उनकी पुष्टी के लिये ग्रपना घर की पास छोटा उपवन बनाकर—मोगरे, चमेली, चम्पे, कमल कृष्ण कमल केतकी, केवडा, गुलाब, गुलदावली, गेंदा, जाई, जुही, डोलर, रातराणी, सूर्यमुखी ग्रादि ग्रनेक विध पुष्प के छोटे पेड़ उत्पन्न करना, ग्रपने स्वय· पालन पोषण कर विकसाना चाहिए। शारीरिक तथा मानसिक व्यायाम, ग्रानन्द, ग्राराम, शान्ति· उन्नति ग्रौर विकास के लिये वैसे साधनों विकसाने की ग्रावश्यकता है।

बालकों में यह शक्ति विकसाने के लिए उन्हों को बाग बनाने के ग्रौजारों ग्रौर पुष्प के छोटे वृक्ष गाडने के लिए मिट्टी या धातु के छोटे कुण्ड, जिस में मिट्टी भर कर पेड़ बोना जाता है, तथा सचित्र पुष्प वृक्षों का ज्ञान दे वैसे पुस्तकों का साधन देना चाहिये।

देवियों की ग्रन्दर रंगोली पुरने का, चित्र काम, पेइन्टींग काम, बाग में काम करने का शौक बढ़ाना चाहिए, ग्रौर ऐसा शिक्षण के लिए साधनों की व्यवस्था कर देनी चाहिए।

नं० ३३. व्यवस्था शक्ति

Order

व्यवस्था--पद्धति, प्रबन्ध, बन्दोबस्त, कार्यक्रम, नियम, प्रत्येक वस्तु यथायोग्य स्थान पर रखने की आदत आदि शब्दों से सूचित होते समग्र भावों का और कर्तव्यों का ग्रहण यह शक्ति की अन्दर करने में आये हुए हैं। यह शक्ति के अतियोग या मिथ्या योग से मनुष्य बहुत ही अमुक पद्धति का या रिवाज का गुलाम बन जाता है। थोड़ी सी अव्यवस्था देखकर व्यग्रचित्त हो जाता है। प्रत्यक वस्तु को उसके यथायोग्य स्थान पर रखने के लिए इतना अधिक अत्याग्रहि हो जाता है कि व्यवस्था और क्रम पीछे तबियत को बरबाद कर देता है।

नं० २८ से ३५ तक की शक्ति सुन्दर हैं

राजेश्वरसिंह सुपुत्र चन्द्रमोहन शास्त्री
मालिक सम्राट् प्रेस देहली।

स्थान—रंगज्ञान के अवयव की पीछे उसके बाह्य भाग की ओर यह शक्ति का स्था नहै।

अन्वेषण—यह शक्ति के स्थान की खोज डॉ० गोले की थी। डा० स्परभीयम यह विषय में कहते हैं कि—

"Some Persons and leven children, hke to see every piece of furniture, every dish at table, every article about their business in its proper place and are displeased by disorder. this faculty gives physical order as to books etc.

SPURZEIM.

डॉ० कोम्ब कहते हैं कि—

"James had this organ arge and observed his appointments punctually, wrote with neatness and care, kept his account with invariable regularity, dressed neatly and regulated every thing with particular care. its large development produces square appearance at the external angle of the lower part of the forehead- Combe.

उपयोग----व्यवस्था, क्रम और पद्धति ये कुदरत का एक विश्वव्यापी सिद्धान्त है। उसकी मुहर कुदरत के प्रत्येक कार्य पर हमेशा लगी हुई प्रत्येक स्थल पर देखने में आती है। ऊपर आकाश के सूर्य मंडल में और नीचे सूर्य मंडल की सपाटी तथा समुद्र के अधोभाग (तलवा) में भी उपरोक्त

व्यवस्था, क्रम और पद्धतिपुरःसरता का सम्पूर्ण साम्राज्य सर्वत्र फैला रहा हुवा है। प्रत्येक वस्तु के लिये पृथक् पृथक् योग्य स्थान और वैसे ही स्थान में वह सब पदार्थ की याग्य देशकाल, समय और ऋतु अनुसार कुदरती रीति से ही व्यवस्था करने में आई हुई है। आकाश का प्रत्येक तारक, प्रत्येक सूर्य, प्रत्येक ग्रह, उपग्रह अपनी अपनी नियमित कक्षा में नियमित रीति से ही फिरते हैं। प्रत्येक पशु, प्राणी, वृक्ष, वनस्पति और मनुष्य का प्रत्येक अवयव उसके नियत स्थान में ही स्थित करने में आये हुए हैं। अधोभाग में पैर, ऊपर के भाग में अग्रगामि मस्तिष्क और कपाल में आंखों हैं। आंखो पाँव या पीछे के भाग में नहीं होती परन्तु कपाल की बराबर नीचे हो उनकी उपस्थिति है, यह सब व्यवस्था, क्रम और पद्धति सिवाय दूसरा क्या दर्शाते हैं ?

हस्त, पाद, जड, मूल, डाली, टहनी, त्वक्, (चर्म) पर्ण, पुष्प, फल और उदर, रस, रुधिराभिसरण आदि के प्रत्येक अवयव अपना अपना यथायोग्य नियमित और निश्चित किया हुआ स्थान में होने चाहिए और रहने चाहिए। यह कुदरत का क्रम, व्यवस्था, और उचित, बुद्धियुक्त पद्धति है। और वह अनुसार निरन्तर कार्य करने और वर्त्ताव करने में ही कुदरत का बुद्धिचातुर्य है। पर्वत, पहाड़, नाला, समुद्र, समीर, बादल आदि बड़े से बड़े और सूक्ष्म से सूक्ष्म परमाणु और पदार्थ के लिए भी कुदरत ने अपनी विश्वव्यापी सत्ता से यथायोग्य स्थान और क्रम स्थापित कर रखे हैं। व्यवस्था, क्रम और पद्धति पुरःसरता के अभाव मे प्रकृति के महान, विस्तृत और रमणीय विश्वरूप कार्यालय में अव्यवस्था, क्रमभंग और विश्वव्यापी अस्तव्यस्त हालत का ही सर्वत्र दर्शन होते। अत्र, तत्र, और सर्वत्र "Grand chaos of confusion worse confounded" जैसी दशाही हो जाती, और उसके परिणाम से प्रत्येक पदार्थ की सम्पूर्ण उपयोगीता, रमणीयता और सौन्दर्यका तो विनाश ही दृष्टिगोचर होते। परन्तु नैसर्गिक नियम, पूर्ण पद्धति, रमणीय रचना, कौशल्ययुक्त क्रम और विश्वव्यापी व्यवस्था सब जगह देखने में आते हैं।

ईश्वर की सम्पूर्ण व्यवस्था समझने, अनुभव और अनुकरण करने के लिए मनुष्य के मस्तिष्क में भी व्यवस्था शक्ति का स्थान स्थापित किया हुआ है। जिस द्वारा मनुष्यों सृष्टि के नियमों और व्यवस्था समझते और ग्रहण करते हैं। कुदरत की अनुसार मनुष्यों के प्रत्येक प्रकार के उद्योग, काम-काज, व्यवसाय, व्यापार रोजगार और सब प्रकार के व्यवहार में भी ऊपर प्रमाणे ही व्यवस्था और क्रम की आवश्यकता रहती है। उसके परिणाम से कुकर्म, अन्याय, दुराचार, बदमाशी, ठगई, चोर, धोकेबाज, धूर्तता, छल, कपट, असत्य और असंतोष से बचकर मनुष्यों अनेक प्रकार का अपना संसार व्यवहार रूप व्यापार, सुखपूर्वक चला सकते हैं। कोई भी मनुष्य-कृषि कार्य करने वाला कृषक या औषधि विक्रेता गांधो, व्यापार करने वाला बनिया राज्यकार्यभार करने वाला राजपूत, संरक्षण करने वाला क्षत्री, सैनिकों के अध्यक्ष सेनाधिपति या गौपशु आदिका पालन करने वाला ग्वाल, गडरिया, वैसे ही कार्य कुशल कार्यालय वाले या समुद्र प्रवास करने वाला इत्यादि कोई भी व्यक्ति, समाज या संस्था अपना

कार्य किसी भी प्रकार की व्यवस्था, क्रम या पद्धति बिना कभी भी हितकर, लाभप्रद रीति से और समय तथा धनादिका अधिक व्यय किये सिवाय कर सके ऐसे नहीं बन सकते, और कर सके ही नहीं। यह हकीकत तमाम स्पष्ट हैं।

किसी भी कार्य करने में सरलता, सुगमता, समय और द्रव्य लाभ आदि विषयोंका विचार और सुखपूर्वक वह उद्देशों को पूर्ण करने के लिए व्यवस्था, क्रम या पद्धति की सर्वत्र आवश्यकता है। व्यवस्था को प्रत्येक कार्य में से दूर करो, अतएव समय और साधन का दुरुपयोग और कार्य का विनाश स्वाभाविक रीति से ही हो गया समझो। धन्धा रोजगार करने वाले लोगों, कारीगरों और व्यवहार कुशल मनुष्यों उपरोक्त सिद्धान्त को बराबर जानकर हमेशा तदनुकूल वर्ताव करते हैं। कारण वे उसकी किंमत और योग्यता को यथार्थ रीति से समझते हैं।

गृहस्थाश्रम में भी यह गुण की अत्यन्त आवश्यकता है। किन्तु उनकी ओर लोगों का ध्यान बहुत ही कम रहता है। गृहस्थाश्रम को सुखी बनाने की इच्छा रखता प्रत्येक मनुष्य ने अपना कुटुंब और घर में प्रत्येक कार्य के लिए क्रम, व्यवस्था और पद्यति नियत करने की बहुतही आवश्यकता है। देवीयों ने भी अपना गृहकार्य करने में व्यवस्थित होनेकी खास आवश्यकता है।

धर में एक वस्तु यहां, और दूसरी वस्तु वहां, यह कहां, वह कहां, ऐसे जो सारा दिन चलता ही रहता होगा, व्यवस्था या किसी भी प्रकार की पद्धति न होगी तो अनेक प्रकार का नुकसान और माथा फोड (सिरपच्ची) को जन्म मिलता है। इतना ही नहीं किन्तु प्रत्येक समय की ऐसी धांधल से बहुत ही हानि होती है। प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक कार्य के लिए नियत स्थान और नियत समय निश्चित कर वर्ताव करने से अनेक प्रकार के लाभ और अनुकूलता रहते हैं। इसलिये बहिनों ने इस विषय में अवश्य चिन्ता, परवाह रखने की आवश्यकता है।

जिन्हों में यह शक्ति प्रपूर्णतया होती है वे प्रत्येक बाबत में पद्धतिसर कार्य करने वाले, नियमानुसार चलने वाले, नियत नियम को आधीन रहकर वर्तात्र करने वाले, कार्यक्रमज्ञ, उचित क्रम को लग रहने वाले, व्यापारी रीति से कार्य करने वाले और दरेक काम में व्यवस्थित होते हैं। सौन्दर्य का शौक होंगे तो ऐसे मनुष्यों व्यवस्थापुरसर काम करने के पीछे और अति चौकसाई, सावधानी और कर्तव्य ज्ञान के पीछे अपना स्वास्थ्य खो देते हैं। प्रत्येक कार्य में योग्य पद्धति को चिपट रहने वाले होते हैं।

जिन्हों में व्यवस्था शक्ति साधारण होती है, वे साधारण रीति से व्यवस्था पसन्द करते हैं और जिन्हों में यह शक्ति न्यून प्रमाण में होती है वे पद्धति और व्यवस्था सिवाय के होते हैं।

यह शक्ति का कार्य विशेष कर व्यवस्था परखने का और चाहने का हैं। किन्तु वह अनुसार करने का काम सामान्य है, कारण कि कार्य करने के लिये उद्योग शक्ति और बल के स्थान की आवश्यकता है। जब प्रमाद रोग या बेपरवाही आदि कारण के लिये व्यवस्था जानने वाले भी व्यवस्था दिखा सकते नहीं।

विकास—१. तुम्हारे दरेक वर्ताव में नियमित रहो।

२. प्रत्येक कार्य व्यवस्थासर और क्रमसर करते सीखो।

३. प्रत्येक वस्तु के लिये स्थान निश्चित करो और प्रत्येक का उसके स्थान में रखो

४. व्यवस्था और पद्धति पर प्रत्येक प्रसंग में ध्यान दो।

५. गृहव्यवस्था के सम्बन्ध में चौकस रहो।

निग्रह—१. कामव्यवस्थासर करो परन्तु थकित होने पर चिड़ाना नहीं।

२. व्यवस्था की पीछे अति लग रह जीवन, बल और सुन्दर स्वभाव को बिगाड़ना पसन्द नहीं करो।

बाल शिक्षण—बालकों की यह शक्ति विकसाने के लिये प्रत्येक बालक को उनके पढ़ने के साधन, छत्री, जूती आदि साधन के लिए स्थान नियत कर दिखाना, उसकी व्यवस्था स्वतन्त्रता से बालक अपने आप ही करले। अभ्यास, स्नान, सन्ध्या, खाना पीना और वायु सेवनार्थे बाहिर जाना, सब व्यवस्थित रीति से करें उस पर ध्यान रखो।

नं० ३४ गणितज्ञान या गणनाशक्ति

Computation or Calculation.

गणितज्ञान—संख्या, जोड़, बाद, गुण, भाग, मुखगणित, आदि के उपयोग करना, हिसाब करना, रकमों का एकीकरण, बाद, गुण, भाग के हिसाब सीखना, सिखाना इत्यादि यह गणित ज्ञान में समाने नं० २८ से ३४ प्रपूर्ण में आये हुये हैं।

प्रा० ज० म्रा० बाज

स्थान—व्यवस्था के स्थान की बाहिर और भ्रमर के बाह्य कोने की नीचे यह शक्ति का स्थान है। जब यह स्थान विकसित होता है, तब भ्रमर बराबर सीधो लम्बाई में वह प्रदेश में से प्रसार होती है। किन्तु जब न्यून होता है तब बाहिर से भ्रमर कम बनती और नीचे झुकती आँख के बाह्य कोने की लाइन तक पहुंचती दिखाती है।

अन्वेषण--डा० गोलने यह शक्ति के स्थान की खोज की थी।

डा० स्परभीयम कहते हैं कि—"Negroes do not excell in arithmetic as their heads are narrow at this organ. Spurzheim.

उपयोग—यह शक्ति का उपयोग जोड, बाद, गुण और भाग आदि रूप अनेक प्रकार की वस्तुओं की गणना या संख्या स्थापित करने के लिए है। संख्या और वस्तुओं का समवाय सम्बन्ध है, और ये सम्बन्ध को जाने बिन मनुष्य का एक भी कार्य आगे नहीं बढ़ सकता। अनेक प्रकार को लेन देन के लिये गणित के ज्ञान की सर्वत्र आवश्यकता रहती है। कुदरत की अन्दर की यह संख्या व्यवस्था और उसको गणित द्वारा जानने की मनुष्य की अन्दर को गणित ज्ञान की यह स्वाभाविक शक्ति, ये दोनों के यथार्थ मिलने से मनुष्यों के असंख्य प्रयोजनों की यथार्थ सिद्धि होती है। उसके बिना एक और दस, इसी रीति से हजार और लक्ष बिच में क्या फर्क है ये कैसे मालुम हो सकते, और ऐसी शक्ति के अभाव में व्यवहार, व्यापार, रोजगार की समग्र प्रकार को लेन देन के सम्बन्धों का निर्णय कौन रीति से होते ये समझ में या कल्पना में भी नहीं आ सकता। गणित शक्ति और उसके चोकस स्थान के कारण हम असंख्य सुख, लाभ और अनुकूलता भोगते रहते हैं, ये किसी में अनजान नहीं।

प्रकृति के समग्र गुण गण की गणना, पदार्थ विद्या Natural philosophy द्वारा निश्चित करने में आई है और उसी द्वारा आकृति संयोग विभाग आदि कार्यों और आकर्षण आदि का भी विवेचना (वर्णन) करने में आये हुये हैं। किन्तु उसकी अन्दर रंग, गन्ध, संख्या देश, काल और

आत्मा आदि की गणना तो की हुई नहीं। वैशेषिक दर्शन में इस सम्बन्ध में बहुत ही उपयोगी विचार जिसमें संख्या और पदार्थों के गुण और स्थिति रूप में गिनती करने में आई हुई है।

गणना ये वस्तुओं का स्वाभाविक गुण है और गणित ज्ञान प्राप्त करने के लिए मनुष्य के मस्तिष्क में उसका खास अवयव है। यह शक्ति के गुण या शक्ति द्वारा हिसाबों की शुद्धता, ईमानदारी, लेना, देना, चुकाना जल्दी से और सरलता से हो सकते हैं। स्लेट या कागज पर लिखकर हिसाब करते हैं, परन्तु विशेष शीघ्रता से मानसिक गणित द्वारा अनेक कार्यों का शीघ्र निर्णय ला सकते हैं। परन्तु जिन्हों में यह शक्ति की न्यूनता होती है, वे गणित या सख्या के सम्बन्ध को जानते नहीं। इसलिये बहुत ही धीरे धीरे वैसा कार्य कर सकते हैं,और उसमेंभी भूल रहती है। अनेक बार गड़बड़ करदेते हैं।

ज्योर्ज कोम्ब जिस एक महान प्रसिद्ध व्याख्याता, धारा शास्त्री और विचार शील पुरुष था, वह अपनी टोकोटो और पैसे का भी हिसाब कर सकता नहीं।

जिन्हों में यह शक्ति प्रपूर्ण रीति से विकसित होती हैं, वे उत्तम प्रकार के गणितशास्त्रज्ञ हो सकते हैं। कुछ भी भूल किये बिन बड़ी बड़ी संख्या के जोड़, बाद, गुण या हिसाब आदि कार्यों अत्यन्त शीघ्रता से कर सकते हैं। मुखाग्र गणित के हिसाबों (लेखा) जल्दी से गिन देते हैं। आकृति ज्ञान, प्रमाणज्ञान, कार्यकौशल्य और अनुकरण शक्ति अच्छी विकसित होगी तो वैसे मनुष्यों अच्छे सरवेयर और सिविल ऍजिनियर का कार्य कर सकते हैं। सब प्रकार का गणित काम उत्तम रीति से करने की शक्ति रखते हैं। धारणात्मक शक्ति के मिलने से व्यापार, रोजगार में कार्य कुशलता और अच्छा व्यवहारिक ज्ञान दिखाते हैं। श्री प्राँजपे जैसे गणित शास्त्रीओं इस बाबत का प्रत्यक्ष प्रमाण देते है।

साधारण—जिन्होंमें यह शक्ति साधारण होती है, वे स्वभाव से अच्छे गणितज्ञ होते नहीं, किन्तु अभ्यास से अच्छा ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। नये कलर्क या हिसाब लिखने वाले कोषाध्यक्ष दीर्घ समय अपना कार्य अच्छी रीति से कर सकते हैं। वह यह हकीकत की साक्षी देते हैं।

विकास—जोड, बाद, गुण, भाग आदि गणित के सर्व विषयों का क्रमवार अभ्यास करना प्रति दिन के व्यवहार में बारम्बार उसका मन में और स्लेट द्वारा उपयोग करना। प्रत्येक वस्तु खरीदते समय शेर, मण, कलशी, खांडी आदि वजनपरके दर अथवा कीमत अनुसार हिसाब करना। भिन्न भिन्न पदार्थों के पृथक् पृथक् भाव जानकर हिसाब करना और लाभ, नुकसान को भी गिनती करना। इसी रीति से मील, गज, फुट आदि माप का और पाई, पैसे, रुपये गिनी दस रुपये दस गिनी हजार रुपये आदि अर्थ सम्बन्धी ध्यान पूर्वक हिसाब करना। गणित सम्बन्धी प्रत्येक संख्या को मनोबल से याद रखना। हिसाबों की गिनती करने के लिये मित्रवग में स्पर्द्धा रखना। कारण उसके द्वारा यह शक्ति अच्छे प्रमाण में शीघ्र विकसित हो सकती है।

यह शक्तिकों सुधारने में याद शक्ति से बहुतही अच्छी सहायता मिल सकती है। और उसका भी विकास होता है। छोटे बालकों को छोटी उम्रमें से पैसे, आने और वस्तुओं का हिसाब की मुखाग्र गिनता कराने की आदत डालने से उन्होंका गणित ज्ञान और यादशक्ति अच्छे प्रमाण में विकसित होती है। ऐसे तर्क शक्तिको भी पुष्टि मिलती है। परन्तु बिलकुल छोटी उम्र में यह कार्य भार रूप नहीं करना चाहिये। आनन्द, विनोद साथ ज्ञान देने की शिक्षण पद्धति हमेशा स्वाभाविक और कुदरती है।

———

नं० ३५ स्थलज्ञान अथवा भूगोल

Locality

स्थलज्ञान—भूगोल ज्ञान, स्थल वृतान्त, प्रवास करने की प्रीति, प्रवास समय का अवलोकन और वस्तु स्थिति के ज्ञान जैसेकि मकान, हवेली, राजभवन, बाटिका, उपवन, फुलवारी, बागीचे इत्यादि स्थानकी खोज करने की शक्ति, समुद्र यात्रा, होकायंत्र (जलयानके लिये मार्ग सूचकयंत्र) का ज्ञान आदि शक्तियों का यह स्थलज्ञान में समावेश करने में आये हुए हैं।

स्थान---प्रमाणज्ञान और गुरुत्व ज्ञान के अवयव की ऊपर भ्रमर की अन्दर के प्रदेशकी लगभग ¾ इंच जितने भाग ऊपर उच्च प्रदेशकी ओर फिरता और जरा बाहिर की ओर फैलाता यह शक्तिका अवयव है। केप्टन कुक की अन्दर यह स्थान अत्यन्त अधिक प्रमाण में विकास पाया हुवा देखने में आता है। इस व्यक्ति हमारी पृथ्वी को चारों ओर प्रवास करने वाला प्रथम पुरुष था। उसका प्रवास का और कार्यका इतिहास भी उतना ही अभ्यास करने योग्य है। श्री कुकके चेहरा पर से अवलोकन, आकृति, प्रमाण, व्यवस्था और गणितज्ञान के समग्र अवयवों सम्पूर्ण रीति से स्पष्ट विकसित हुवा दिखाते हैं। उसका लम्बा नाक कार्य शक्ति और ऊंचा लम्बा कपाल व्यवहारिक कौशल्य और बुद्धि शक्ति दर्शाते हैं। कोलम्बस, गेलेलीओ, न्यूटन, लापलास आदि में भी ऐसे ही चिन्हों स्पष्ट देखने में आते हैं।

अन्वेषण---डॉ० गोल ने अपने पुस्तक में यह शक्तिके अद्भुत कार्यके अनेक प्रमाण दिए हुए हैं। जिसमें कबूतरों और कुत्ताओंकी स्थान ज्ञानकी शक्ति और एक देश से दूसरे देश दूर पर ले जाने में आये हुए तो भी मूल घर की ओर छः छः महीनों के बाद भी वापिस लौट आने के वृतान्तो और वर्णन दिए हुए हैं। गायों, भैंसों, घोड़े और जंगल की अन्दर के जंगली शेर, सिंहादि प्राणीओं दूर दूर देशोमें घूमकर वापिस घर तरफ अकेले पहुंच जाते हैं। उसका कारण वह सर्व पशुओं की अन्दरस्थल ज्ञानका अवयव खास विकसित होता है यही है। डा० कोम्ब कहते है कि कितनेक मनुष्यों में मस्तिष्क शास्त्रानुसार अवयवों का अवलोकन करने की स्वाभाविक शक्ति होती है, जब कितनेक को बहुत ही मुसोबत पड़ती है। उसका कारण दूसरा कोई नहीं, किन्तु प्रथम में स्थानज्ञान और आकृतिज्ञान के अवयव अच्छे विकसित होना चाहिए। जब दूसरे में उसकी न्यूनता होनी ही चाहिए।

उपयोग—प्रत्येक वस्तु की स्थिति और स्थान याद रखना तथा जान लेना ये यह शक्ति का मुख्य कार्य है। कुदरत में प्रत्येक वस्तुके लिए निश्चित स्थान निर्माण हुवा ही है। आकाशके स्थान बिना कोई भी वस्तु कभी रह सकती नहीं। हमारी, इसी रीति से सम्पूर्ण विश्वके प्राकृतिक पदार्थों की

स्थिति और गति होने में मूल आकाश ही कारण भूत है । आकाश, स्थान, स्थल या खाली जगह ये सब एकार्थ वाचक शब्दों हैं । अनन्त विश्व में इस प्रकार का आकाश अनन्त और सर्व व्यापी है। टेलेस्कोप और माइक्रॉसकोप द्वारा हम अत्यन्त दूर के पदार्थों को और अत्यन्त सूक्ष्म में सूक्ष्म, (समीप) अन्तर के पदार्थ को देख सकते हैं । किन्तु वह तो मात्र अनन्त आकाश के अपार सागर में एक बिन्दुवत भी नहीं हो सकता । ऊपर, नीचे, आगे, पीछे, मध्यमें सर्वत्र आकाश आकाश और आकाशही प्रसरा हुवा है । परन्तु परमातमा ने उसको यथावत जानने-समझने की शक्ति अपने प्राणीओं को न दी होते तो मनुष्य अपना मार्ग भूलकर हरेक वस्तु या मार्ग पीछे अनन्त आकाश में घूमते ही रहते । तो भी बेचारे को घरका पता लगता ही नहीं । आंखों देखती है कि जलयान पूर्व तरफ जाता है, तो भी कम्पास के अवलोकन द्वारा या सूर्य, चन्द्र और तारे के निरीक्षण द्वारा मन ऐसा कहते हैं कि "नहीं, वह जहाज पूर्व में नहीं जाता किन्तु पश्चिम में जाता है ।" यहाँ किसको सत्य मानना ? आँख को, चक्षु इन्द्रियको या मनको ? दृश्य जान या वास्तविक ज्ञान को यह जगह स्थानज्ञान (Locality) और होकायन्त्रका (दिशासूचक) यंत्र का) साधन ऊपर अथवा कहो कि मन ऊपर ही आधार रखकर चलना पड़ता है। कारण वह जो बताते हैं ये नियम पूर्वक का सत्य मार्ग है, जब इन्द्रियों धोका भी खिलाती ऐसा बनता है ।

जिन्हों में यह स्थान ज्ञान का अवयव या शकित अच्छी रीति से विकसित होती है । वे प्रत्येक जगह अथवा स्थल और उसके चारों ओर के दृश्यों तथा सम्बन्धी को यथावत् याद रख सकते हैं। गाढा जंगल में और पर्वतों की कन्दराओं में और महासागर में भी मार्ग नहीं भूलते । प्रवास करने के बहुत ही शौकीन होते हैं, और हमेशां उत्सुकता से प्रवास इच्छते हैं । जो कुछ देखते वह सब विगतवार याद रख सकते हैं भूगोल और खगोल का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। कार्य कौशल्य की अधिकता से यन्त्र को खोलते और फीट कर सकते हैं । तथा अवलोकन, इतिहास, तर्क और प्रेरणा शक्ति की प्रबलता से भिन्न भिन्न मनुष्यों तथा प्राणीओं और देखने योग्य स्थानों देखने का बहुत ही पसन्द करते हैं। यह शक्ति सर्व प्रकार के उद्योग, व्यापार, रोजगार करने वाले, पदार्थ विद्या का शौक धराने वाले सर्व साइन्टीस्टो, वनस्पतिविद्या तथा प्राणीमात्र की शरीर रचना का अभ्यास करने वाले विद्यार्थियों में खास होने की आवश्यकता है।

जिन्हों में यह शक्ति साधारणतया होती है, वे अधिक समय देखे हुए स्थलों को याद कर सकते हैं, किन्तु वह स्थान पर जाना हो तो जगह भूल जाते हैं । भूगोल का अच्छा ज्ञाता हो सकते नहीं । अनजान देश या सकड़ी आड़ी गली कूचाओं में अकेला जा सकता नहीं । वापस लौटते समय रस्ता की तलाशी कर सकते नहीं । ऐसे मनुष्यों ने स्थान ज्ञान को विकसाने के लिये भूगोल का अभ्यास करने की खास आवश्यकता है ।

जिन्हों में यह शक्ति बिलकुल न्यून प्रमाण में होती है वे स्थान खोजने के काम में निकाम; निरुपयोगी, बेकाम के साबित होते हैं। प्रवास करने का साहस नहा करते । अनेक बार देखे हुए स्थल को भी सहज में भूल जावे हैं।
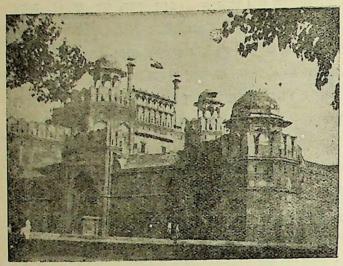
दिल्ली का लाल किला

विकास—गाँव, नगर या देश के मोटा रस्ताओं में से या गली में से पसार होते समय कोने पर के संकेत चिन्ह, झडे, कण्डील, स्तम्भ के नम्बरों याद रखो। जंगल में फिरते समय टेकडा, पहाड़ी, वृक्ष और वनस्पति के दृश्यों याद रखो। आकाश के नक्षत्र मंडल को पहि-चानते सीखो और मन में क्रमवार स्थिर कर याद करते रहो, देखते रहो। समुद्र या रेलवे द्वारा प्रवास करो। प्रवास या परदेश गमन से मनुष्य की बुद्धि का विस्तार अवलोकन शक्ति का सुधार, पहिचान और वक्तृत्व आदि का विकास और नये नये प्रकार की शिक्षा के और ज्ञान प्राप्ति का अनेक रीति के और असंख्य प्रकार के साधन प्राप्त हो सकते हैं। उसके जैसा मनुष्य के मन को विकसाने वाला एक भी उत्तम साधन नहीं। किन्तु प्रवास करने वाला व्यक्ति ने वैसा शिक्षण ग्रहण करने के लिये अपनी समग्र शकितयों का यथार्थ उपयोग करना चाहिए।

यस्तु संचरति देशान् यस्तु सेवेत पण्डितान् ।
तस्य विस्तरिता बुद्धिस्तैल बिन्दुरिवाम्भसि ॥

यह जो कहा है वह बिलकुल यथार्थ है।

तदुपरान्त (अतिरिक्त) नकशाओं और चित्रयुक्त पुस्तकों द्वारा देश और नगर का या भूगोल का अभ्यास करने से भी अधिक ज्ञान प्राप्त कर सकाते हैं। भूगोल और खगोल का ज्ञान देने वाला उत्तम प्रति के नकशाओं, यान्त्रिक साधनों और कोतर काम–खुदाई, नक्काशी काम किए हुए पृथ्वी इसी रीति से नक्षत्र मंडल के गोलाओं द्वारा ज्ञान देने की रीति अति उत्तम और प्रशंसा करने योग्य है। वस्तुमात्र की स्थिति का प्रत्यक्ष तादृश दर्शन देने वाले "निदर्शक" साधनों से जैसा आबाद, पक्का शिक्षण दे सकाते हैं, वैमा शिक्षण वर्णनमात्र से कभी नहीं दे सकाता। बाल हृदयों पर प्रत्यक्ष दर्शाने वाला साधनों या नकशा द्वारा ही प्रत्येक विषय की ऐसी गहरी छाप पड़ती है कि वह कभी जाती नहीं, निकलती नहीं. भूलाती नहीं। ये सिवाय बारीक खुदाई काम देश, प्रदेश या विदेश के दृश्य दिखाने वाले नकशाओं सूक्ष्मदर्शक शीशाओं द्वारा (Magnifying glasses) दिखाने से बालकों को आनन्द साथ ज्ञान मिले ये बिलकुल स्वाभाविक है।

तालाब, सरोवर, सरिता, खाड़ी, किनारा, आखात, महासागर, उपसागर, समुद्रधुनी (दो बड़े समुद्रों को मिलाने वाला छोटा और पतला जल भाग) टेकड़ा, पहाड़, पर्वत, गिरीशिखर, तरेटी, घाटी

सपाट प्रदेश, जलतापर्वत, उष्णझरे, न्यागरे जल प्रपात चन्द्र की सपाटी, शनिश्वर के चन्द्रो, बोम्बे, देहली के रास्ताओं, बोम्बे देहली और इंग्लेन्ड के दृश्यों आदि का जो दृढ़, पक्का ज्ञान ऐसे साधनों द्वारा दे सकाते हैं वैसा दूसरे किसि से इतनी सरलता और सफलता पूर्वक नहीं दे सकाता।

अति छोटी वय के बालकों को भी दिशाओं, घर के कोने और अलग अलग वस्तुओं और अडोसी पडोसी, निकटवर्ती घर इत्यादि कहां, कैसी रीति से और कौन दिशा में आये हुए हैं? ऐसे प्रश्नों पूछ कर उसके योग्य प्रत्युत्तर देने का सीखाने से यह शक्ति विशेष प्रमाण में शीघ्र विकसित हो सकती है। नदी, पहाड़, पर्वत या ग्राम बाहिर आई हुई वाटिका, बाग बागीचे में फिरने ले जाकर उनको अपने स्वयं रस्ताओं का अन्वेषण करने का सौंपना। ऐसे करने से उन्हों की स्थल ज्ञान की पुष्टि और उत्साह मिलते हैं और परिणाम यह आता है कि वह संस्कारी बनती है।
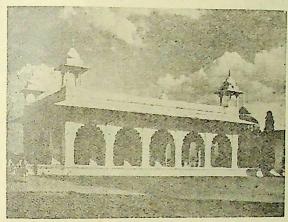
दीवानखास दिल्ली

भूगोल विद्या प्रमाणे भूगर्भ और भूस्तर विद्या का शौक भी यह शकित की साथ हमारी अनेक शकितयों को विकसाने में अधिक उत्कृष्ट सहाय दे सकते हैं। उसके द्वारा हमारी पृथ्वी का अनेक वर्ष का भूतकाल का इतिहास, उसकी स्थिति और परिवर्तन आदि की तथा समयान्तर की अवस्था का ज्ञान मिलते हैं। जुदे जुदे प्रकार के कोल से, पत्थर, मिट्टी और रेताल प्रदेशों हीरा, मणि, माणिकय, मौक्तिक, प्रवाल, नीलम, पुखराज आदि के खान वाले स्थलों, तेल के कुओं, भूतकाल में दब गये हुये महान जंगलों की परिवर्तन हुई कोल से रूप हालतों आदि का अभ्यास विविध रीति से ज्ञान देते हैं। बालकों का भी प्रत्यक्ष अवलोकन द्वारा ऐसे विषय का शौक लगाना राजभवन, दुर्ग आदि संरक्षक और विजय स्तम्भ जैसे प्रजा का सामर्थ्य बताने वाले स्थलों बताना इससे उन्हों की शक्ति खीलती ही रहेंगी; प्रफुल्लित बनती रहेंगी ये ध्यान में रक्खो।
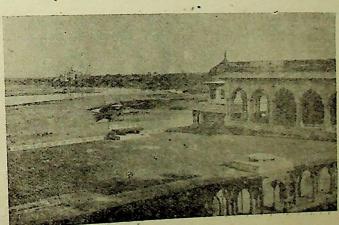
दिवानेखास आगरा

नं॰. ३६ इतिहास शक्ति अथया स्मृति

Eventuality

—o—

ऐतिहासिक (इतिहास) शक्ति-होनहार, प्रसंग, घटना, वृत्तान्त और संयोगों याद रखने की शक्ति देखने में, जानने में या सुनने में आते प्रसंग या वृत्तान्तों की स्मृति, इतिहास का शौक, भूत तथा वर्तमान काल में चलते प्रसंगों पर ध्यान, भूत भविष्य और वर्तमान जानने की इच्छा, जिज्ञासा आदि समग्र शक्तियों का समावेश यह इतिहासिक शक्ति में करने में आये हैं।

स्थान—यह शक्ति के अवयव का स्थान कपाल के मध्य प्रदेश में अवलोकन शक्ति के स्थान की बराबर ऊपर, और स्थान ज्ञान के दोनों अवयवों की बराबर बिच में आया हुआ है। यह शक्ति का सम्पूर्ण विकास होगा तो मध्य कपाल परिपूर्ण रीति से भरा हुआ लगता है। कितनी वेर चारों ओर के अवयवों अच्छी रीति से विकसित होंगे तो वह देखने में न्यूनता वाला दिखाता है किन्तु सूक्ष्म तलाशी करने से उसकी यथार्थ स्थिति मालुम हो जाती हैं।

अन्वेषक डॉ॰ गोल कहते हैं कि—"My numberless observations leave not the Slightest doubt that Educability is a fundamental faculty. whose organ is in the infeiior anterior middle of the forehead"

डॉ स्परझीयम कहते हैं कि—This faculty recoghises the activity of every other and in turn acts upon all, Desires to experience, and would taste, Smell See, hear and touch, loves general instruction and the practical pursuit of knowlebße, is often styled good Sence is essential to editors Secretaries historians and teachers, ontributes essentially to consciousness, and perceives the impressions made by the external senses, which it changes in to notion conception and ideas and gives attention. Its Sphere is great and expressed by verbs.

SPURZHEIM.

भावार्थ—यह शक्ति अन्य प्रत्येक शक्ति को प्रेरणा देती है, और परिणाम में प्रत्येक शक्ति द्वारा अपने आपको भी मदद मिलती है। अनुभव करने की इच्छा होती है और इसलिए शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध आदि विषय को ग्रहण करती है। सामान्य शिक्षण और ज्ञान पीछे प्रयत्न पूर्वक लगती है अतएव मनुष्य योग्य बुद्धिशाली मनाते हैं। वर्तमान पत्र के अधिषतिओं, सेक्रेटरीओं, इतिहासी को और अध्यापकों, उपदेशकों, लेखकों में स्मृति शक्ति की खास आवश्यकता है। ज्ञानेन्द्रियों को इससे खास मदद मिलती है। बाह्य ज्ञानेन्द्रिय द्वारा जो ज्ञान और असर मिलती है। उसको जानकर, अनुभव कर अमुक विचार के रूप में बदलया पलट देते हैं। यह शक्ति का कार्य क्षेत्र अति विशाल है।

यह इतिहासिक ज्ञान के अवयव की कपाल के मध्य प्रदेश में सर्व बुद्धि शक्ति के अवयवों से घेराई हुई परिस्थिति, मानसशास्त्र की स्पष्ट भाषा में यही दर्शाते हैं कि अन्य सर्व अवयवों ने उसको अनुसरण कर कार्य करने का है, तथा यह अवयव ने प्रत्येक की साथ अपना सम्बन्ध रखने का है। और प्रत्येक अवयव ने अपना अनुभव की एक कापी यह स्टोर हाउस (भंडार गृह) में रखने की है। और आवश्यकता होवे तब ये ही भंडार गृह में से वापस प्राप्त करने की आवश्यकता है। मनन शक्ति और तर्क शक्ति भी यह स्मरण शक्ति के अभाव में सम्पूर्ण सत्य को अन्वेषण करने समर्थ नहीं होती। यही यह शक्ति की या यह ऐतिहासिक ज्ञान के अवयव का उपयोग और श्रेष्टता प्रभाव दर्शाते हैं।

जिन्हों में यह शक्ति प्रपूर्ण होती है वे बुद्धिशाली, समझवाले, अति कुशल, चतुर और सम्पूर्ण रीति से स्मृतिशील होते हैं।

वकतृत्य शक्ति और अनुकरण शक्ति की अधिकता से वार्तालाप करने में और व्याख्यानों देनें में सबसे अच्छा काम करते हैं। ज्ञान की उत्तम प्रकार की पिपासा उन्हों में होती है और उसके परिणाम से वर्तमान पत्र पुस्तकों या जो कुछ मिल जाय वह पढ़ते ही रहते हैं। एक बार देखा या सुना हुवा कभी भूलते नहीं। अन्वेषण करना और प्रयोगों देखना तथा करने का भी पसन्द करते हैं। सिद्धान्त और सत्य घटना को जल्दी मस्तिष्क में उतार सकते हैं और स्मृतिस्थ कर सकते हैं। गणित तथा वैश्यवृत्ति की अधिकता के लिए व्यापार रोजगार और उद्योग, धन्धे में हमेशा सावधान और ध्यान देने वाला प्रत्यक्ष साबित होते हैं। सामाजिक, धार्मिक और साँसारिक भावना के प्रावल्य से समाज और धर्म सम्बन्धी तथा स्नेही मित्र और सम्बन्धी वर्ग को और उन्होंके सब प्रसंग को याद करते हैं। खास करके ऐसे व्यक्ति वांचन, व्याख्यान, संवाद और जाहिर पत्रो आदि पढ़कर सब हकीकतो से वाकिफ (जानकार) रहने हमेशा तत्पर (उद्युक्त) होते हैं। अनुकूल विषयके उत्तम अभ्यासी-निष्णात भी हो सकते हैं। अष्टाविधान, शताविधान आदि स्मरण शक्ति के अद्भुत कार्यो यह मेधा शक्ति की प्रबलता और योग्य विकास का ही परिणाम हैं।

साधारण---जिन्होंमें यह शक्ति साधारण प्रमाण में होती है, वे खास हर रोज के अगत्य के विषय को स्मुति में रखते हैं, किन्तु विगतवार वर्णन पूर्वक प्रत्येक विषय की जानकारी रखते नहीं। अधिकांश भूलकणे होते हैं और बातचित या वृतान्त में अधिक विस्तार या विगत दे सकते नहीं। प्राय: जरूर का कहने का होगा वह भी भूल जाते हैं। आधा पाधा याद रखते हैं, और दिल में होंगे वह ओष्ट पर नहीं ला सकते। भूतकाल के प्रसंगो सम्बन्धी भी खास सविस्तार हकीकत याद नहीं रख सकते। फक्त साधारण विचार या कल्पनाको ही ध्यान में रखते हैं।

जिन्होंमें यह शक्ति न्यून प्रमाण में होती है वे अत्यन्त शिथिल, भूलकणे, और स्मृतिहीन होते हैं। ऐसे मनुष्योंने अपनी यह शक्ति खास विकसाने की आवश्यकता है।

विकास---मानसिक सुधारणा का प्रथम सोपान अवलोकन शक्ति है जिसका वर्णन हमने पहिले दे दिया है। यही सुधारणा का यह अति अगत्य का दूसरे सोपान है, जिसकी सुधारणा, शिक्षा या
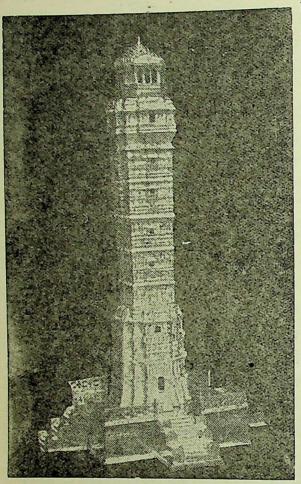
विकसाने के लिये खास ध्यान रखकर नीचे दर्शाए हुए सूचनों आचार में उतारने की आवश्यकता है।

चित्तौड़ का विजय स्तम्भ

१. जो कुछ बनाव (प्रसंग) बन जाय वह यथोचित आपके मन में ग्रहण करो।

२. जो कुछ पढो, देखो या श्रवण करो उसमें जो कुछ जरूरी हो उसको बारम्बार याद कर स्मरण शक्ति या ऐतिहासिक शक्ति द्वारा मस्तिष्क में बराबर बैठा दो।

३. जिस जिस शक्ति द्वारा जो कुछ आप करने चाहते हो वह उद्देशपूर्वक वह वह शक्ति सन्मुख बारम्बार रजु करो।

४. इतिहास, वृतान्तो या धर्म ग्रन्थों में से जो कुछ अच्छा और ग्रहण करने योग्य आप पढो उसका प्रतिदिन के जीवन में संग्रह करो।

५. संक्षिप्त कथा, वार्ता और किस्साओं, वर्णनों पढो और याद करो और छोटे छोटे दिल-पसन्द, रसिक श्लोको सहित बालकों और युवक वर्ग की पास ऐसी वार्ता करते रहों।

६. आप की जिन्दगी के प्रसंगों बारम्बार स्मृति पट पर लाना और वह पर मनन करना।

७. धर्म, नीति, सदाचार, ब्रह्मचर्य आदि के श्लोकों, सूत्रों या मन्त्रों वेद, उपनिषद्, गीता आदि के अध्यायों को वा स्तोत्रो को कंठाग्र रखो।

८. छोटे बच्चों को भी वैसे श्लोकों, पद्यो, छन्दों आदि मुखाग्र कराना और प्रसंगानुसार बाजे-बाद्यों साथ गवाने का भी रखो। जिस से आनन्दपूर्वक मुखाग्र हो जायेंगे।

९. शकय हो वहां तक सर्व प्रसंग में स्मृति शकित को पूर्ण व्यायाम दो।

१०. उत्तम प्रकार के साहित्य के वांचन का शौक रखो।

११. हमारा देश का गौरव के लिये हमारा संस्कार और संस्कृति की रक्षा के कारण हमारे पुनित पूर्वज ने दिये हुए बलिदान की स्मृति में उपस्ति हुआ विजय स्थानों का इतिहास पढ़ो।

निग्रह—अधिक वांचन नहीं रखो। जिन्दगी के दुःखी और कष्टप्रद प्रसंगों पर बिलकुल ध्यान नहीं दो वा स्मृति पर ला कर दुःखी नहीं होना। कारण इससे नुकशान होता है। मस्तिष्क की शकितयों का अतिशोक--दुःख या विलाप करने से क्षय होता है। अति जागना, अतिनिद्रा, अतिचिन्ता, अति-पश्चाताप, अतिक्लेश, अतिसंताप, अति विलाप, अतिसोच, अतिलोभ, अतिमोह, अनि भय और क्रोध आदि का त्याग करो। सब विषयों में अति वर्जितम्।

नं० ३७ समय ज्ञान Time.

समय—समयज्ञान, समयसूचकता, इतिहासिक प्रसंगो की तारीख आदिका ज्ञान, मिनिट, पल; क्षण, घटा, दिन, पक्ष, मास, ऋतु, वर्ष, युग, युगान्तर, भूत, वर्तमान, भविष्य वा व्यतीत काल का ज्ञान, समय समय के फेरफार, संगीत और मृदंग, ढोलक, पखावज की अन्दर के ताल-माप तथा ज्योतिष शास्त्र के अभ्यास का शौक इत्यादि का यह समयज्ञान की शक्ति में समावेश करने में आये हैं।

स्थान—यह शक्ति के अवयव का स्थान व्यवस्था शक्ति के अवयव की लगभग आधा इंच ऊपर स्वर ज्ञान के अवयव के अग्रभाग में तथा मेधा-स्मृति और स्थलज्ञान के अवयव की बाजु में और तर्क-शक्ति के अवयव की नीचे आया हुवा है।

डॉ० स्परझीयम कहते हैं कि—"Time perceives the duration, simultaneousress, and succession of phenomen, is one of the essential attributes of music, some musicians havtng great facility, other great difficulty, in playing to time and is situated between Eventuality, Locality, order, melody and causality and often acts in their connection

SPURZHeIm.

उपयोग—समय और ताल (माप) ये दो दर्शाने में या बतलाने में खासकर यह शक्ति का सर्व-सामान्य रीति से उपयोग होता है। प्रत्येक वस्तु पदार्थ या प्राणी की साथ भूत, वर्तमान और भविष्य का सम्बन्ध जोडाये (संयुक्त हुए) हैं। प्रत्येक प्रसंग-घटना अमुककी पीछे, पहिले या एक ही समय में अर्थात् तीन में से कोई एक समय की अन्दर बननी ही चाहिए। जिन्दगी यह भी अव्याहत घटनाओं और कार्यो का समुदाय (समूह) मात्र है। इस कार्यो और घटनाओं बनने के लिए अमुक समय की तो आवश्यकता ही है। बाल्य, युवा, वृद्ध और मृत्यु पर्यन्त की दशाओं भी अमुक समय को ही सूचित करते हैं। मिनिट, घंटा, दिन, रात, मास, ऋतु वर्ष और युग युगान्तर आदि रूपों यह मात्र एक ही सर्वव्यापी अनन्तकाल के एक रस और नित्यकाल के मात्र मानुषिक व्यवहारार्थ करने में आये हुए स्थूल या सूक्ष्म विभागो ही हैं। उसके बिना कोई भी व्यवहार या प्रसंग की यथार्थ स्मृति अर्थात् अमुक समये अमुक प्रसंग बना, ऐसा याद रह सकने का बिलकुल असम्भव है। किन्तु कुदरत की अन्दर समय की ऐसी सुव्यवस्था और मनुष्य की अन्दर वह व्यवस्था को जानने की; समझने की, अनुभवने की समय ज्ञान की शक्ति और उसका मस्तिष्ककी अन्दर ठीक-उचित अवयव ऐसे तीनों मिलकर मनुष्य के सब व्यवहारों की यथार्थ नोंध लेने में या रखने में अति अगत्य की सहाय देते हैं। हम भूतकाल के प्रसंग जान सकते हैं, नोट ले सकते हैं। वे

कब कौन साल में बन गए इत्यादि अनुभवी सकते हैं, वह द्वारा वर्तमान समय को सुधार सकत हैं और भविष्यका चिन्तन कर सकते हैं।

यजुर्वेद में जो कहने में आया है कि "येनेदंभूतं भूवनं भविष्यत्" जिस अमृत मन द्वारा यह भूत, भविष्त् और वर्तमान आदि तीन कालका ज्ञान सम्पादन (प्राप्त) कर सकाता है वह हमारा मन कल्याणकारी संकल्प करने वाला हो।" इस वाक्य अत्यन्त महत्वयुक्त प्रार्थना से पूर्ण है। भूत और वर्तमान को तो सब कोई जान सकते हैं। परन्तु भविष्त् घटनाओं को जानना और अनुभवना यह मनुष्य का महत्व दर्शाते हैं उसमें ही मानसिक शक्ति की उत्कृष्टता और प्रेरणा शक्ति का प्रावल्य समाया हुवा है। यह समय ज्ञान की शक्ति द्वारा वर्तमान काल की दोनों ओर अर्थात् भूत और भविष्यकाल के हजारों वर्ष पर्यन्त के कार्यों का निर्णय मनुष्य कर सकते हैं और करते हैं। ज्योतिष की गिनती और ग्रहण (सूर्य, चन्द्र आदि पर पृथ्वी की छाया) तथा धुम केतुओं के दर्शन आदि का भावी ज्ञान यह शक्ति को ही आभारी है।

प्रपूर्ण—जिन्हों में यह समय ज्ञान का अवयव अच्छी रीति से विकसित होता है, दिन का किसी भी समय स्वाभाविक रीति से ही कह देते हैं। इच्छित समये ही निन्द्रा में से जाग उठते हैं। इतिहासिक वृतान्तों की साल तारीख उन्हों को झट याद आ सकते हैं। बने हुए प्रसंगों के समम का अन्तर भी अच्छी रीति से समझ कर याद रख सकते हैं। निर्माण किये हुए समय नहीं चूकते। अपना सब व्यवहार समयानुसार रखते हैं। ताल से गाते, बजाते और नृत्य आदि कर सकते हैं और सब काम नियमित रीति से करने तत्पर रहते हैं।

साधारण—जिन में यह शक्ति साधारण होती है, इनको घटनाओं की तिथि साधारण याद रह सकते हैं, कारण उनकी स्मृति समय ज्ञान के लिए बहुत ही साधारण होती है। ठीक पद्धति पूर्वक गाना बजाना नहीं हो सकते।

न्यून—जिन्हों में न्यून प्रमाण में यह शक्ति होती है, वे चाहा हुआ, विचारा हुवा समथ पर कार्य कर सकते नहीं, विचारों अव्यवस्थित होते हैं, प्रसंगों की यादी नहीं रहती। नियमितता की खामी वाले होते हैं। ऐसे व्यक्ति ने यह शक्ति विकसाने की खास आवश्यकता है।

धिकास—प्रत्येक कार्य के लिए समय निश्चित करो और निश्चित किये हुए समय पर ही नियत कार्य करो। खाना, पीना, बैठना, उठना, सोना, पढ़ना, लिखना, घूमने को जाना, व्यायाम करना, निद्रा या आराम लेना इत्यादि सम्पूर्ण आवश्यक कार्यों के लिए समय नियत करने की अ.वश्यकता है। नियमितता जैसा सुखकर और आयुषवर्धक दूसरा कोई नहीं। अनियमितता जैसा जीवन को कम करने वाला और अव्यवस्थित बनाने वाला दूसरा एक भी दुर्गुण नहीं। Time is money. समय ये ही सुवर्ण है। गत समय करोड़ों (कोटि) रुपये खर्च करने पर भी पुन: वापिस नहीं मिलता यह सचमुच सत्य ही है। जब ऐसे है तो समय का सद्उपयोग करने सीखनाय ह कितना विशेष आवश्यक है ? यह कितनी जरूरी, ध्यान देने योग्य और उपयोगी शक्ति को थिकसित करने के लिए प्रति दिन के कार्य के लिए समय नियत करने की जरूर है। परन्तु विशेष करके बुद्धि शक्तियों और नैतिक

शक्तियों का विकास पर प्रथम ध्यान देने की जरूर है, इतने लिए दिन का अमुक समय तो वाँचन लेखन, अध्ययन, सन्ध्या, वंदन, हवन, ईश्वरोपासना, स्वाध्याय आदि के पीछे (selfculture) समय लगाने की सबसे प्रथम आवश्यकता है ।

छोटे बालकों को सोने का, बैठाने का, खेलने का और दूध पिलाने का समय निश्चित करने की आवश्यकता है। कारण उसके पर उनका स्वास्थ्य का सब आधार है ।

खास करके प्रतिदिन के कार्य में भी समय नियत करने की और वह अनुसार वर्ताव करने की अत्यन्त आवश्यकता है ।

घड़ी देखे बिना समय का निर्णय करने के लिए अन्दाज लगाने से समय का ज्ञान प्राप्त करनें की शक्ति का विकास हो सकता है । उसके लिए भी अभ्यास करना चाहिए । सूर्य चन्द्र नक्षत्र आदि की उन्नति या अस्तोदय का तथा छाया का अवलोकन करने से भी यह ज्ञान में अच्छी वृद्धि कर सकाती है ।

संगीत की अन्दर, वैसे ही मृदंग, ढोलक या ऐसे प्रकार के वाद्य की साथ ताल प्रमाणे नृत्य करने से या करतल ध्वनि करने से भी ताल शक्ति को विकसित कर सकाती है । परेड की अन्दर एक साथ चलने से या एक समान रीति से सब साथ में मिलकर सस्वर व्यायाम करने से भी यह शक्ति को विकसित कर सकाती है।

नियमितता ये प्रत्येक कार्य की कुन्जी है, और प्रत्येक कार्य के लिए समय निश्चित कर वह अनुसार दृढ़ता से आचरण करना ये यह शक्ति को विकसाने की पद्धति है । समयज्ञान और ताल ये यह शक्ति के दो विभाग है ।
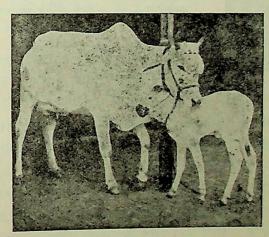
नं० ३८. स्वर अथवा संगीत शक्ति

TUNE

संगीत शक्ति—गाना, बजाना, गाने का अथवा गान सुनने का शौक और सुनकर आलाप करने की वृत्ति होनी, यह शकित का मुख्य कार्य है।

स्थान—कपाल, (ललाट) की बाजु के अन्त के नीचे के भाग में गणित शक्ति की ऊपर और ताल तथा समय (Time) के स्थान की पीछे तथा व्यवस्था (Order) के स्थान से थोड़ा बाहिर के भाग में लगभग पौना इंच ऊपर आया हुआ है। जब यह स्थान पूर्ण रीति से विकसित होता है, तब लमने का नीचे का अग्र भाग संगीत शास्त्री श्री० बर्वे की अनुसार भरा हुआ होता है।

प्रसिद्ध गाने वाले गायकों के आंख के बाह्य कोने पर का ललाट का भाग बढ़ा हुआ मालूम पड़ता है उसका कारण यह संगीत शक्ति का विकास ही है।

अन्वेषण—यह संगीत शकित का स्थान की खोज डोक्टर गोल ने की थी।

श्री हीरालक्ष्मी अम्बालाल मणीयार

आप की अन्दर संगीत शक्ति अच्छी है, इनके साथ समय और ताल, स्मृति, उद्योग, यशाभिलाष, महत्वाकांक्षा, आत्मीयजन प्रति स्नेह आदि गुण अच्छे प्रकार से होने से आप एक आदर्श गृहिणी है।

उपयोगिता—यह शक्ति का उपयोग सर्व प्रकार के संगीत और वाद्य में अनेक रीति से कुदरत में सर्वत्र हुआ है। भिन्न भिन्न प्रकार के पक्षीओं के गान और स्वरों भी यह शकितका अलग स्थान होने का प्रमाण देते हैं। मनुष्य की अन्दर की अवलोकन शकित या अनुकरण शक्ति जितनी ही यह शकित अगत्यता धराती है।

प्रत्येक व्यक्ति को न्यूनाधिकता से यह शकित की भेंट मिली होती ही है। यह शकित की सहायता से मनुष्य सर्व प्रकार के उदात्त, अनुदात्त स्वर षड्ज, ऋषभ, गाँधार, धैवत, पंचम, मध्यम और निषाद आदि इसी रीति से अन्य अनेक प्रकार के स्वरों और आलापों कर सकते हैं। राग (गान का सुर) भैरव, मालकौंस, मेघ, दीपक और हिंडोल। प्रत्येक राग की पाँच रागिनी भी है।

भूत, वर्तमान और भविष्य काल के लोकों, जंगली, सुधरा हुआ, अर्ध सुधरा हुआ, किसी भी प्रकार

की हालत, देशकाल या अवस्था में भी, यह स्वर अथवा संगीत शकित का आनन्द लेते आये हैं और भविष्य में लेयेंगे।

छोटे छोटे जन्तुओं, तमरे, मच्छर, मकिख, भ्रमर जैसे प्राणीओं भी अपने आनन्द उत्साह का गीत यह शकित द्वारा नदी, नाले, वाटिका, बाग, बागीचे की अन्दर वैसे ही सर्वत्र फैला रहे हैं। हारमोनियम सितार, दिलरुबा, बीन, सारंगी, फीडल, पीयाना, ओरगन आदि वाजित्रों की योजना, ऐसे ही मृदंग, ढोल, नगारा, नौबत, दुंदुभि, सहनाई, जलतरंग वाद्य, बांस तरंग वाद्य आदि की रचना भी केवल संगीत शकित के शौक की पुरती के लिये ही करने आई है।

राजकाज और राज्यारोहण जैसे उत्तम प्रसंगों में उत्साह और आनन्द को प्रेरने में तथा महान युद्ध के प्रसंगों में वीर योद्धाओं में क्रोध, गुस्सा, युद्ध कौशल्य, बहादुरी और पुरुषातन को प्रेरने के लिए यह संगीत और नाद शकित का अति उच्च प्रकार से उपयोग करने में आता है। यह उसके उपयोगिता का जबरदस्त (बलवान) पुरावा है।

ईश्वर के प्रेमी भक्तों, कुदरत के महान प्रशंसकों, कवियों, विलासी. कामाभिलाषी मनुष्यों भी यह संगीत शकित के निर्दोष परन्तु प्रबल और मनोहर, मन को मोहित करने वाला पाश (बन्धन) से बचने नहीं पाये। कुदरत की अन्दर सर्वत्र फैला हुआ यह नाद ब्रह्म का आनन्द सर्वावस्था में अपनी उपयोगिता धराती है। यह नाद ब्रह्म का आनन्द अपनी मानव प्रजा को, इसी रीति से सम्पूर्ण प्रजा को देने के लिये परमात्मा ने पूर्ण कृपा कर प्रत्येक प्राणी के मस्तिष्क में भी वह नाद ब्रह्म का अनुभव करने के लिये खास स्थान और अवयव दिया हुआ है। जिस को हम स्वर या संगीत शकित कहते हैं। इस शक्ति के या शक्ति के स्थान के अभाव में मनुष्य या अन्य प्राणी एक शब्द भी वाहिर निकालने या व्यक्त करने कभी भाग्यशाली हो सकते नहीं। लेकिन कुदरत की अन्दर यह नाद शब्द ब्रह्म या संगीत शकित की मदद से अति उच्च प्रकार के भाव, आनन्द तथा उत्साह को प्रेरने वाली भावनाओं का असंख्य रीति से हम अनुभव कर कर्ण को पवित्र करते हैं, ये कुछ कम लाभ नहीं।

प्रपूर्ण—जिन्हों में यह शक्ति प्रबलता से कार्य कर रही होगी, उन्हों में अजीब प्रकार की शकित और संगीत को समझने की तथा सुनने की अद्‌भुत प्रकार की बुद्धि होती है। अनुकरण शकित की सहाय से ऐसे मनुष्यों सुने हुए सर्व प्रकार के स्वर, नृत्य और गीतों का फौरन अनुकरण कर सकते हैं। पशु, पक्षी, गाय, घोड़े, भैंस, आदि के आवाजों का भी अनुकरण कर एक अच्छे "Mimic" का कार्य अद्‌भुत रीति से कर सकते हैं। वे अन्तर से सर्व प्रकार की अवस्था के गीतों ऐसी तो ठीक रीति से गाते हैं कि हास्य, शौर्य, करुणा आदि अनेक भावों को सहजतया मनुष्य हृदय में प्रेरी उत्तेजीत कर सकते हैं। अनेक प्रकार के वाद्यो का भी बहुत ही अच्छी रीति से उपयोग कर उन्हों को अपने संगीत की सहायता में ले सकते हैं। संगीत को फकत कान से एक बार सुन कर सीख लेते हैं। संगीत पर उन्हों का पूर्ण प्रेम होता है और स्वाभाविक रीति से हमेशां गाते ही रहते हैं। स्वर सम्बन्धी अति

उच्च प्रकार का ज्ञान रखत हैं। बेसुरा आवाज की शीघ्र परीक्षा कर सकते हैं, और वैसे स्वरों सुनकर शोकाकुल होते हैं और गुस्से भी हो जाते हैं। सौन्दर्य प्रेम की अधिकता हो तो उत्तम प्रकार के नाटय प्रयोगों कर सकते हैं। शौर्य शकित और शारीरिक बल की अधिकता हो तो शौर्योत्पादक वीर रस युक्त संगीत को विशेष पसन्द करते हैं। प्यार की अधिकता हो तो प्रेम और सहानुभूति के तथा स्नेह रस के गायन गाने का विशेष पसन्द करते हैं।

संगीत शास्त्री प्रो० भातखंडे

नं० ३७,३८ प्रपूर्ण ताल और स्वर

भकित और श्रद्धा की अधिकता से बहुत ही उच्च प्रकार के भकित रस पूर्ण भजनों गाने प्रेराते हैं। तथा नीति शकित के प्राबल्य के परिणाम से नीति, सदाचार तथा सद्वर्तनशील शुद्ध-भाव युकत भजनों गाने का पसन्द करते हैं। यह अनुसार अन्य शकितयों की सहाय से यह संगीय शकित की अनेक प्रकारकी माधुर्य युक्त तथा सौन्दर्य प्रद प्रवृत्ति होती हैं। भाषा तथा सामाजिक विशुद्ध भावनाओं की अधिकता से स्नेह की उच्च भावनाओं वाले गीतों में प्रवृत्ति होती हैं। पितृ स्नेह की अधिकता से बालकों के भूला के गीतों तथा बाल भाव प्रदर्शक संगीतकों विशेष पसन्द करते हैं हास्य की विशेषता से हास्य युक्त गीतों गाते हैं ऐसी रीति से असंख्य शकितयों के सम्मेलन (सम्मिलन) से असंख्य भावों वाला संगीत स्फुरता है।

प्रत्येक शक्ति, प्रत्येक भाव और प्रत्येक अवस्थानुसार भिन्न भिन्न रूप से भिन्न भिन्न प्रकार से स्फुरती संगीत माधुर्य और उत्साह शक्ति, मनुष्य के आत्मा को अनेक रीति से उत्कृष्ट बनाते हैं। संगीत ये अन्तरात्मा की स्वाभाविक स्फुरणा या स्वाभाविक भाषा है। "Music is the language of the innersoul" यह बिलकुल यथार्थ ही हैं।

स्त्री, पुरुष, बालकों या साधु सन्तों ने यह शक्ति को अच्छी रीति से विकसित करनी चाहिए। मनुष्य की अन्दर बसी हुई सम्पूर्ण शक्तियों को सम्पूर्ण अंश में विकसाने की जो अद्भुत शक्ति संगीत की समाई हुई है उसकी तुलना अन्य कोई शक्ति साथ हो सके ऐसी है ही नहीं।

लड़ाई के गीतों लड़वैयाओं (योद्धाओं) की अन्दर उत्साह) शौर्य और बहादुरी को प्रेर कर उन्हों को मृत्यु सन्मुख खड़े कर देते हैं, यह संगीत का ही प्रताप है। प्रजाकिय गीतों, स्वदेश भूमि पर का प्रेम और स्वदेशानुराग को प्रेरने में कितना महत्व का कार्य करते हैं वह देशभावना वाले मनुष्यों बहुत ही अच्छी रीति से समझते हैं। स्वदेशानुराग और स्वदेश भक्ति पूर्ण संगीत के लिए प्रजाओं का आचार विचार और कर्म को सुधारने का बदलने का कार्य भी अत्यन्त सरल हो जाते हैं, यह बात अब जग प्रसिद्ध है। मातृ स्नेह भी संगीत द्वारा ही उत्तम रीति से दर्शा सकाता है। माताओं पालने में बच्चों को सुला कर गीत गाती है यह मातृस्नेह और संगीत शकित के संयुक्त कार्य सिवाय दूसरा क्या सूचवते हैं। कठिन में कठिन हृदय में से भी करुणा की वर्षा वर्षाने की अद्भुत शकित यह संगीत की

अन्दर समाई हुई है। मनुष्य की सब शारीरिक तथा मानसिक क्रियाओं में संगीत द्वारा अद्भुत प्रकार का सामर्थ्य प्रेरी सकाता है। परमपिता परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना, उपासना, उपकार और उनके प्रति का भक्तिभाव तथा अन्तर श्रद्धा आदि अनेक उत्तम भावों संगीत द्वारा ही यथार्थ रीति से प्रदर्शित कर सकाते हैं।

चित्र में ३८ अंक संगीत का स्थान दिखाते हैं

श्रीमती अंगुरादेवी प्रधाना
आर्य स्त्रीसमाज सातारामं बाजार दिल्ली.

आप की अन्दर सुन्दर संगीत शक्ति तथा वाद्य बजाने की शक्ति, धार्मिक-वृत्ति,बल, बुद्धि, दृढ़ता, स्थैर्य,धैर्य,यशोभिलाष, उद्योग, निर्भयता, स्वातन्त्र्य सम्भालने की शक्ति, दूसरों पर आपका प्रभाव डाल कर आप का कार्य सफल बनाने की, आपका ध्येय पूरा करने की शक्ति आदि उच्च गुण का प्रतापसे आप एक सच्ची भारतीय देवी तथा आदर्श गृहस्थीनी बन सकी है।

उपदेश, व्याख्यानों, वक्ताओं और पार्लमिन्ट के लेकचरों भी जिस कार्य नहीं कर सकते वही कार्य संगीत के यथार्थ उपयोग से कर सकाते हैं।

मनुष्य अपने अन्तरात्मा-परमात्मा की साथ वार्तालाप करने की अवस्था को भी उन्नत संगीत द्वारा अनुभवते हैं। हर्षाश्रुओं से पूर्ण नेत्र युक्त प्रार्थना का और दिव्य आनन्द का अनुभव भी यह संगीत शकित ही दे सकती है। ज्ञान, विज्ञान वैराग्य, नीति और धर्म के सिद्धान्तों को मनुष्य के हृदय में सहज रीति से उतारने में कवि, काव्यों और संगीत शास्त्रीओं तथा बाल्यावस्था में से संगीत द्वारा देने में आता शिक्षण जैसा उपयोगी हो सकता है, उसकी तुलना अन्य कोई भी शक्ति नहीं कर सकते। परन्तु जब यह निर्दोष और पवित्र शक्ति का दुरुपयोग करने में आता है, तब मनुष्य की पशु-वृत्तियों, कामवासनाओं और अधम वृत्तियों को उत्तेजिक करने में, बहकाने में भी मददगार होती है, अधम प्रकार के नाटकों, अधम और पशु वृत्ति वाले कवियों विषय वासना के गीतों रचकर, मनुष्य के आत्माओं की अनेक रीति से अधोगति करने में सहायभूत बनते हैं। विषयी पुरुषों, विषयी गीतो ही गाने का पसन्द करते हैं। गणिकाओं अपने अनेक प्रकार के हावभाव और सुन्दर संगीत द्वारा सिर्फ विषयवासना और कामवृत्तियों को पूर्ण रीति से उस्काने का अपना कार्य साधते हैं। यह संगीत शकित के बुरा उपयोग का ये प्रत्यक्ष पुरावा है। कुदरत के अन्य पदार्थों या वस्तुओं की अनुसार यह संगीत शकित का भी अच्छा वैसे ही बुरा उपयोग हो सकता है। उसका सब आधार उसके उपयोकता उपयोग करने वाले ऊपर अवलम्बी रहा हुआ है। इतने लिय यह संगीत जैसे उत्तम, रहस्यपूर्ण, अन्वेषक सुबोधक और पवित्र करने वाली तथा मनुष्य के आत्मा को उन्नत तथा उच्च भावनाओं से प्रेरने वाली यह दिव्य शकित का उपयोगहमेशां उत्तम कार्यों में ही होवे यह खास सम्भालनेका है।

सङ्गीत की सहचरी नृत्यकला
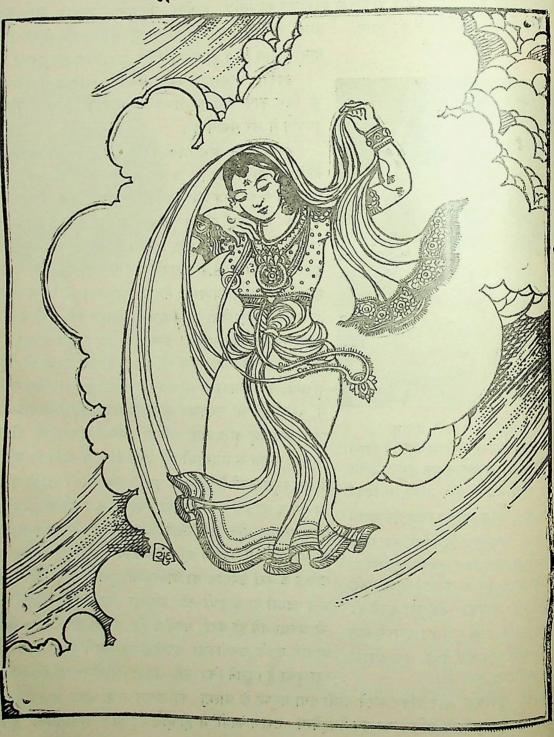
नं० ३९ सुभाषित या वकतृत्व शक्ति

Eloquence or Language

--:÷:—

वकतृत्वशक्ति-बातचित करने की शक्ति, धारावाहिन् बोलने की शक्ति, भाषा का छूट से उपयोग करने की बुद्धि, हाव भाव और नेत्र तथा वक्र के विकारादि से मन के भाव प्रकट करने की योग्यता, अलग अलग भाषाओं सीखने की और बोलने को शक्ति, व्याकरण को शुद्धि, शब्द सामर्थ्य, शब्द का धारण करने को शक्ति आदि शब्द उपयोग में आतो समग्र शक्तिओं का यह वकतृत्व शक्ति में समावेश होता है। यह शक्ति के दो विभाग है १ वकतृत्व और २ शब्द स्मरण शक्ति।

भारत के बड़ा प्रधान पू० पण्डित जवाहरलाल नेहरू जी में प्रपूर्ण वक्तृत्व शक्ति

जिन्हों में यह शक्ति अच्छे प्रमाण में होती है उन्हों का आँख की नीचे की पलक वाला प्रदेश पूर्ण भरावे दार होता है।

वर्तमान समय में मुख्यतया अच्छे वकताओं और व्याख्याताओं, प्लीडरों और बेरीस्टरों में यह लक्षण सर्वत्र देखने में आते हैं। खास कर सारा भारत में वैसे ही युरोप, अमरिका आदि पृथ्वी पर के सब देशों में अपनी अद्भुत वकतृत्व शक्ति के परिणाम से श्रोताओं के हृदयों को आकर्षित कर अपने अधिन बनाने वाले भारत के बड़े प्रधान सन्मानित पं० जवाहरलाल जी नेहरु की मुख मुद्रा पर का सम्पूर्ण अंश से विकसित यह शक्ति का स्थान उपरोक्त लक्षण का सबसे प्रबल पुरावा देते हैं। इसी रीति से विदेशी विदुषी देवी एनी-बीसेन्ट की मुख मुद्रा पर का यह स्थान प्रबल था।

हमारे आर्य जगत के सन्मानित पं० रामचन्द्रजी देहलवी का भी वकतृत्व शक्ति का स्थान बड़ा अच्छा है। ऐसे हमारे विशेषत: अग्रगामी पथ प्रदर्शकों भी अपनी अन्दर की यह शक्ति का प्रताप दिखाते हैं।

अन्वेषण—यह शक्ति के स्थान की खोज डो॰ गोलने की थी वह कहते हैं कि–"I went to Strasbury Where those who learned easiest by heart had large fiaring eyes, yet in other respects were only indifferent Scholars. I could not avoid the inference that eyes thus formed, indicated an exallent verbal memory I afterwards Said to myself if memory has its external mark, why Should not each of the other faculties Should also have theirs ! This gave the first inpulse to my researches. aud occasioned all my discoveries. Dr. GALL.

कुदरत की अन्दर सर्व वस्तुओं और प्राणीओं अपने अन्तर्गत भावों, आकार इंगित, हंसी अथवा भाषा द्वारा प्रकट करते हैं। सूर्य गर्मी से अपनी स्थिति जाहिर करता है। जल अपनी शीतलता से शीतलत्व दर्शाता है। वही अनुसार वृक्ष वनस्पति और औषधियों अपने गुण और स्वभाव से अपना स्वरूप प्रकट करते हैं। जब प्राणीओं और मनुष्य अपनी अन्दर की भय, लज्जा, शका, संकोच धिक्कार, प्रशंसा और स्नेह आदि की सर्व प्रकार को भावनाओं अनेक प्रकार के नेत्र और मुखादि के विकार या चेष्टा द्वारा, वैसे ही भाषा रुपी साधन द्वारा प्रकट करते हैं और जहाँ भाषा का अधिक उपयोग हो सके ऐसे न हो वहाँ मुखादि अवयवों के स्नायुओं अपनी अन्तर स्थिति को हमेशां उचित रीति से प्रदर्शित करते हैं। ऐसी रीति से विचारो और अन्तर्गत असरो या भावों प्रकट करने की कुदरती यह भाषा जंगली ऐसे ही सुधरा हुआ वर्ग के लिए सामान्य है। उन्हों को मस्तिष्क शास्त्रानुसार व्यक्त करने के कुदरती भिन्न भिन्न स्थानों भी एक समान ही है। भक्ति, श्रद्धा, भय, प्रेम, उष्ण, शीत, क्षुधा, तृषा आदि सम्पूर्ण भावों प्रत्यक व्यक्ति की मुख मुद्रा और स्नायुओं की स्थिति से जान सकते हैं। यह भी एक जाति की कुदरती भाषा है। प्रत्येक पशु और पक्षीगण भी अपने अपने समुदाय की भाषा अच्छी रीति से समझ सकते हैं। एक दुखी कुत्ता एक छोटा बच्चा की अनुसार ही अपने दुःख की भावना प्रदर्शित करता है। गोली से मार डालने में आता पक्षी, दुख प्रदर्शित करने और दया को उश्काने के लिए, दुख युक्त पैना मन्द आवाज निकालकरअपने जाति भाइओं को चेतावनो देते हैं--चेतावते है। अच्छे कुत्ते अपने मालिक की सुख, दुख, आनन्द आर गुस्सा की भावनाओं का बहुत सरस रीति से अनुभव करते है और मालिक के हाव भाव को भी समझ लेते हैं। गाय, घोड़े, भैंस, कुत्ते आदि चतुष्पाद प्राणीओं, कौवा, शुक, सारिका, मयूर आदि सब पक्षीगण और छोटे छोटे जन्तु भिन्न भिन्न रीति से अपने अन्तर्गत मनोभावों को कम ज्यादः अंश में प्रकट करते है। मनुष्य के आश्रय में बसे हुए पशु और पक्षीगण को भिन्न भिन्न नाम देने से अपने नामको वे सुनकर पहिचानते हैं—समझ जाते हैं और मालिक जो आज्ञा करते या फटकार, धुडकी देते वह सब समझ लेते हैं और उसी तरह वर्ताव करते हैं।

परन्तु ऐसी कुदरती भाषा को लिखित अक्षरों और शब्दों का रूप देकर उसका अनेक रीति से

सुप्रसिद्ध वक्ता सुरेन्द्रनाथ

उपयोग करने का यह वकतृत्व शक्ति का कार्य अत्यन्त महत्व का है। सामान्य रीति से नीचा वर्ग के और बिन संस्कारी लोको सिर्फ उसका बोलने में उपयोग करते हैं। जब सुधरा हुआ संस्कारी और शिक्षित वर्ग में ये ही भाषा को लेखन का रूप देकर लखाण द्वारा व्यकत करने का प्रचार हैं।

नाम, सर्वनाम, विशेषण, क्रियापद, अव्यय आदि भाषा के या शब्द के मुख्य विभागों सर्व भाषा की अन्दर सामान्य है। मनुष्य कुदरती रीति से ही भाषा का उपयोग करने वाला प्राणी है। वह अपना विचारो द्वारा अन्तर्गत भावों, ज्ञान और उपयोगी विषयों अन्य की सामने रखने के लिये उपस्थित हुए हैं। भाषा के अभाव में ऐसी कोई प्रकार की परस्पर की समझ या वाँचन लेखन का साधन रह सके नहीं, तो पीछे वह अपना विचारो अन्य की पास कैसी रीति से प्रकट कर सके ! भाषा की अन्दर के प्रत्येक शब्द और अक्षर का उपयोग बन्ध करो, नये शब्दों बनावो नहीं और पीछे देख लो कि मनुष्य समाज और समग्र समाज की कैसी दुर्गति होगी ! बाद में पुस्तकें लिखना पढ़ना बन्ध हो जायेगा, तत्पश्चात् कागज, कलम, दावात, पाटी, पेन आदि साधनों की भी क्या आवश्यकता ! व्याख्यानों भी पीछे कौन, कैसे देएंगे ! सुनने वाले भी क्या सुनेंगे ? पीछे पत्र व्यवहार भी कैसे चलेंगे ? जिह्वा की भी क्या आवश्यकता रहतो यदि ऐसे वास्तव में बन जाये तो हमारी स्थिति कितती दुःखद, भयंकर, ऐकान्तिक और विवश अशकत हो जाय ? परन्तु परमपिता परमात्मा ने हमारे पर करुणा करअपनी अद्भुत बुद्धि सामर्थ्य से हमारे वार्तालाप और बोलने चलने का व्यवहार अबाधित रीति से चालु रखने के लिए यह वकतृत्व शक्ति और लेखन शक्ति का प्रदान किया है कि जिसके द्वारा हम हमारी आवश्यकताओं, भावनाओं और विचारों को अनेक भाषा में, अनेक रीतिसे, सर्व देश और काल में यथेच्छ रीतिसे प्रकट कर सकते हैं। यह भाषा अथवा वकतृत्व शक्ति की दोनों पांखो-भाषा और लिपि द्वारा मनुष्यके विचारो, बहुतायतसे उत्तर ध्रुव प्रदेश में से दक्षिण ध्रुव सुधी के कोई भी प्रदेश में, जाति, देशखंड और समग्र भूमंडल के समुद्रो और महासागर को दूसरी सीमा तक भेज सकाते हैं, हजारो मील दूर पर के मनुष्य हृदयों पर रख सकाते हैं और उन्होंको उत्तेजिक कर सकाते हैं।

साम्राज्यो भी यह शक्तिके अद्भुत पराक्रम की पास प्रायः भयभीत हो जाते हैं। और कितनी बेर खास धारा धोरणों द्वारा उसको अंकुश में रखने की आवश्यकता पड़ती हैं। ग्रामोफोन, टेलिग्राफ, टेलिफोन और रेडियो आदि सब बात चितके साधनों इस वकतृत्व शक्तिके एक प्रकारके अंगभूत कार्यों करने वाले यन्त्रो हैं। मनुष्यों क्षुधा, तृषा, आत्मरक्षण और पोषण बिना जैसे जीवित रह सकते नहीं, इसी रीति से यह वकतृत्व शक्ति के दोनों अंग, भाषा और लेखन बिना मनुष्य समाज के समग्र व्यवहारों भी दीर्घ समय कभी भी जीवन धारण नहीं कर सकते ये बिलकुल स्पष्ट हैं।

उपरोक्त शाब्दिक या लिखित भाषा प्रमाणे ही मनुष्यकी मुखमुद्रा पर भी एक प्रकार की कुदरती भाषा छाई (बिछा) रही हुई है। जिस कोई भी भाषा से भी अन्तर्गत भावों को तादृश रीति से दर्शाते हैं। जिसको "physiognomy of the face" मुख सामुद्रिक शास्त्र कहने में आता है।

अपूर्ण—जिन व्यक्ति में यह शक्ति पूर्ण रीति से विकसित होती है, वे अपने मनोगत भावों को संपूर्ण रीति से यथावत प्रकट कर सकते हैं। असरकारक रीति से वे बोल सकते हैं, लिखा हुआ या पढ़ा हुआ शीघ्र कंठाग्र कर सकते हैं। व्याख्यान के रूपमें बोल सकते हैं। भिन्न भिन्न भाषाओं सिख सकते हैं। अनुकरण शक्ति की अधिकता के कारण उत्तम हाव भाव दर्शा सकते हैं। सौन्दर्य के शौक की अधिकता से बोलने में बहुत ही सभ्य, संस्कारी, समझदार, विवेकी और रसमय होते हैं। अवलोकन, तुलना और ऐतिहासिक शक्ति की सहायता से बहुत ही सुन्दर उच्च प्रकार का वकतृत्व विकसा सकते हैं। प्रेमभावना की अधिकता से मधुर, मन्द, स्नेहोत्पादक और उल्लासक वाणी में बोलते हैं। बल तथा विनाशक शक्ति की अधिकता के लिए सख्त, काट डालने ऐसा, कड़ुवा, कटु और कर्ण को अप्रिय लगे दुःख होवे ऐसा बोलते है। नैतिक सामर्थ्य की अधिकतासे नीतियुक्त होगा वही बोलते हैं। गुप्त रखने की शक्ति के अभाव में जैसा होगा वैसा स्पष्ट कहते हैं। गोपन शक्ति की अधिकता होगी तो कभी स्पष्ट या सरल नहीं बोलते।

ग्रन्थकारों या पुस्तके लिखने वाले को भाषा ज्ञान, बुद्धिचातुर्य और ज्ञान की अधिक आवश्यकता होती है। जब व्याख्यताओं को शब्द शक्ति तथा वकतृत्व शक्ति दोनों की एकी साथ जरूरत रहती हैं।

साधारण—जिन्होंमें यह शक्ति साधारण होती है वे कम बोलते हैं। बोलने समय जरूरी शब्द नहीं मिलते। भाषा या व्याकरण का भी कुछ ठिकाना (उचित व्यवस्था) नहीं रहते वैसे व्यक्ति ने यह शक्ति को वार्तालाप, पत्रव्यवहार और वांचनद्वारा अधिक विकसानी चाहये।

यह वकतृत्व शक्तिके परिणामसे विदेशी भाषाओं भी बोलने जल्दी सिख सकाती है। परन्तु शब्दो की रचना वांचन की अन्दर आकृति ज्ञान के स्थान की मदद लेनी पड़ती है। कारण कि शब्द या अक्षरों के भिन्न भिन्न स्वरूप और आकार आदि वही द्वारा याद रख सकाते है। भाषा के नियमों या सिद्धान्तो स्मृति पट पर रखने के लियें (eventuality) स्मृति शक्ति की आवश्यकता पड़ती है। शब्द के भिन्न-भिन्न अर्थों को अवगत करने में तुलना शक्ति की आवश्कता होती है। यही अनुसार अन्यान्य शक्तियों अपना अपना कार्यानुसार मदद देकर यह भाषा और लेखन की शक्ति को विकसाने में अनेक रीतिसे सहायभूत होती है।

सुभाषित—(eloQuence) बुद्धि शक्ति और नैतिक शक्तियों पीछे का पद यह सुभाषित शक्ति को देना चाहिए। मनुष्य को भेट करने में आई हुई यह एक उत्तम शक्ति का उत्तम रीति से उपयोग करना ये एक उच्च प्रकार का आनन्द है।

मानसिक शक्तियों की परिपूर्णता वह कुदरत की उत्तम बक्षीस (भेट) है। किन्तु वह शक्ति का बाह्यनिदर्शन तो मात्र यह सुभाषित द्वारा ही हो सकता है। इतने लिए मानसिक शक्तियों को पूर्णतया

विकसाने तथा उपयोगी करने में यह सुभाषित शक्ति की शिक्षा और सुधारणा की खास आवश्यकता है। इतना ही नहीं परन्तु सुंदर, मधुर और सुभाषित ये तो मनुष्य का सचमुच भूषण है।

विकास—परमात्माने अर्पणकि हुई यह अद्भुत शक्ति को विकसाने के लिए प्रत्येक व्यक्ति ने बहुत ही हर्षपूर्वक प्रयत्न करना चाहिए। उसके लिए निम्नलिखित नियमों कितनेक अंश से उपयोगी होंगे।

१. हमेशा बोलने के प्रसंगो का यथावत् उपयोग करो।

२. सभा और सोसायटी सन्मुख सभा क्षोभ होवे तो उसकी परवाह नहीं करो।

३. आपका बन्धु वर्ग सन्मुख बैठा हुआ है, ऐसा समझकर हृदय के शुद्ध भावोंको विशुद्ध भाषामें हमेशा निर्भय रीतिसे प्रकट करो।

४. वादविवाद की (Debating club) सभा में जाते रहो। ऐसी सभा के सदस्य बनो।

५. जाहिर में व्याख्यान देते रहो।

विचारपूर्वक बोलने पर
उपेन्द्रवज्रा छंद

सुवाकय से स्नेह बलिष्ट बनते,
कुवाकय से क्लेश हमेश बढ़ते;
अहा कोई एक विवेक आनी,
विचारसे वीर उच्चार वाणी।...१

सुवाकय से विश्व सब वखाणे,
कुवाकय से कीर्ति जग न जाणे;
पडते चढते जीभ से ही प्राणी,
विचार से वीर उच्चार वाणी।...२

प्रजा देखो तोता घर रखते,
घुग्घू घोंसले सो नहीं सकते;
उच्चारका कारण ये ही जाणी,
विचारसे वीर उच्चार वाणी।...३

भली जीभ से भाई भलाई तोलते,
बुरी जीभ से लोक बुराई बोलते;
गरीब या राजकुमार राणी,
विचार से वीर उच्चार वाणी।...४

सुवाकय से दूध दही घी देंगे,
अमूल्य का मूल थोड़ा सा लेंगे;
कुवाकय से पिलाने पली न पानी
विचार से वीर उच्चार वाणी।...५

मुखसे जो वचन निकलेंगे,
फिर आपको वह नहीं मिलेंगे;
पश्चाताप जैसी होती ही हानी,
विचार से वीर उच्चार वाणी।...६

शस्त्र से हुवा छेद उपाय मिलते,
कुवाकय का घाव कभी न मिटते;
टूटा तूंबा में रहते न पानी,
विचार से वीर उच्चार वाणी।...७

भला बुरा तोपका भडाका,
हवामें होगा ही प्रति धडाका;
कहो तुम कैसे सकाते तानी,
विचार से वीर उच्चार वाणी।...४

पं० रामचन्द्र देहलवी के शास्त्रार्थ महारथी
पदकी मस्तिष्क शास्त्रानुसार समीक्षा

श्री पं० रामचन्द्र देहलवी को शास्त्रार्थ महारथी की पदवी किसने दी ? उन्होंने अपने व्याख्यान से जनता को प्रभावित किया और जनता ने शास्त्रार्थ महारथी की पदवी दी । इनकी वाणी के पीछे ऐसा कौन देव बैठा है ? कौनसी शक्ति बल दे रही है, जो मनुष्य को इतना आकर्षित कर रही है ? यह शक्ति है मेधा–बुद्धि तर्क अथवा विचार शक्ति, तुलना अथवा समीक्षा शक्ति, और स्मृति, वक्तृत्व शक्ति, संगीत, समय ज्ञान, शौर्य, सावधानी, धार्मिक वृत्ति, दृढता, उद्योग, तत्पराणता, स्वदेशानुराग, यशकी अभिलाषा, इतिहास, भूगोल, सौन्दर्य, औदार्य, अध्यात्मरति अनुकरण, आशा, हास्यविनोद, निग्रह, व्यवस्था, वात्सल्य स्नेह आदि शक्तियाँ जन्म जन्मान्तर से इनके पुरुषार्थ से विकसित हुई हैं ।

पं० रामचन्द्र देहलवी सभा में शास्त्रार्थ कर रहे हैं ।

यह सब शक्ति, सम्बन्धी तन्तुओं द्वारा एक दूसरे के साथ सम्बन्ध रखकर प्रसंगानुसार एक दूसरो को पुष्टि देती है और अपने अपने खास विषयका प्रभाव दिखाती है ।

इन शक्तियों के प्रताप से ही रामचन्द्र भाई शास्त्रार्थ महारथी कहलाते हैं ।

सब शास्त्रार्थ महारथी नहीं बन सकता । सब वेरिस्टर और न्वायाधिकारी नहीं बन सकते । सब सुरक्षा करने वाले सेनाधिपति नहीं बन सकते । सब त्यागी और तपस्वी नहीं बन सकते । सब महर्षि दयानन्द और महात्मा गांधीजी नहीं बन सकते । सब संगीत शास्त्री, गणित शास्त्री और अच्छे चित्र-कार या कलाकार नहीं बन सकते । सब तत्वज्ञानी--तत्वअन्वेषक नहीं बन सकते । सब सत्यवादि राजा हरिश्चन्द्र और सती तारामति, सती सीता और राजा रामचन्द्रजी नहीं बन सकते । जिसके अन्दर उस विशेष चरित्र के लिये अनूरूप गुण हों वे ही मनुष्य अपनी अपनी तद् विषयक विशेषता दिखाते हैं ।

दक्षिण प्रदेश की एक अन्धशाला में सात वर्षके एक अन्धा बालक की अन्दर गणित शक्ति का स्थान, इतना अच्छा विकसित है कि व्याज, नफे, तोटे, धनमूल आदि किसी भी प्रकार के हिसाब प्रश्न पूछते ही साथ तुरन्त इनका जबाव दे देता है । इसी रीति से संगीत ज्ञास्त्री प्रो० वर्वे का पुत्र आठ वर्ष की आयु में संगीत शास्त्र के सब सिद्धान्त अपने हस्तगत कर लिया था । संगीत में इतनी विशेषता का कारण इनका मस्तिष्क में संगीत का स्थान विकसित और विस्तृत था ।

पं० रामचन्द्र भाई को शास्त्रार्थ महारथी पद प्राप्त करने के लिए सामर्थ्य देनेवाली मानसिक शक्तियों कौन ही हैं, वे ऊपर दिखाई है। वे कैसी रीति से कार्य कर इनको शास्त्रार्थ महारथी बनाती है, ये निम्न परीक्षा द्वारा देखीए।

प्रथम तो इनके अन्दर वकतृत्व शक्ति अच्छी है, इसके साथ बुद्धि शक्ति, स्मृति मिलने से वे जो बोलते है वह स्वभाविक, वास्तविक, यथाघटीत, विचार पूर्वक बुद्धिगम्य होता है। इनके साथ धार्मिक वृत्ति मिलने से न्याय, नीति, धर्म भावना, प्रभुपरायणता, ईश्वर जैसी कोई महान शक्ति का स्वीकार, ईश्वर भक्ति आदि उत्कृष्टभाव वाणी द्वारा व्यकत करते हैं। साथ में संगीत शक्ति भजनकिर्तन लल-कारती है। दृढ़ता--मक्कमता, स्थैर्य, धैर्य और यशाभिलाष अपना मंतव्य की परवाह करते हैं, मंतव्य की साथ चिपट रहते हैं और अच्छो रीति से अपना विचार की रजुआत करते हैं। यह संस्कारी गुणही शास्त्रार्थ महारथी पददिलाने वाले है।

मनुष्यके चरित्रकी ऐसी विशेषता और न्यूनता का कारण मस्तिष्क विज्ञान से हमारी समझ में आता है, लेकीन मस्तिष्क ज्ञानको समझनेवाले वहुत ही कम है और सब एक ही समान रीति से नहीं समझ सकेंगे। जिनकी अन्दर आत्मनिष्ठा, अध्यात्मरति और धार्मिक वृत्ति से मिली हुई अच्छी बुद्धि शक्ति होगी, वे ही इनका सत्य और प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध हुआ अनुपम ज्ञान को समझेंगे और विना विलंब स्वीकार भी करेंगे।

अच्छे गुण के प्रताप से मनुष्य आदर्श बनते हैं। मस्तिष्क में गुणावगुण का अवयव की अनुसार ही चरित्र दिखाते हैं।

आर्य सन्नारी का चारु चरित्र.

श्रीमती सत्यवती देवी मन्त्राणी आर्य स्त्री समाज
सीताराम बाजार देहली।

आप की अन्दर व्यवहारिक समझ, स्मृति, स्वाद, दया, दृढ़ता, स्वमान यश धार्मिक वृत्ति, कुटुम्बिक स्नेह, कुटुम्ब का सन्मान सम्भालने की भावना, काय शोलता आदि गुण अच्छे होने से आप आर्य स्त्री समाज की सेवा सतत दस साल से कर रही हैं और आदर्श गृहिणी भी बन रही है।

नं० ४० प्रज्ञा तर्क शक्ति अथवा मनन शक्ति

Causality

तर्क शक्ति की अन्दर-कारण, नियम, उद्देश, अर्थ, मतलब, कारण की खोज करने की शक्ति, मनन शक्ति, समझ शक्ति, ग्राहक या अन्वेषक शक्ति, न्याय शक्ति, कार्य कारण विचारात्मक शक्ति प्रत्येक वस्तु को स्थिति और गति आदि के कारण की खोज करने की शक्ति, क्यों ? क्या ? किस वास्ते ? कैसे ? कैसी रीति से इत्यादि मानसिक प्रश्नों उपस्थित कर मनन द्वारा सत्य सिद्धान्त को अन्वेषण करने की शक्ति, प्रज्ञा शक्ति, बुद्धि शक्ति आदि भावों का समावेश करने में आये हैं।

तर्क शक्ति

स्थान—कपाल के बिलकुल ऊपर के कोने के विभाग में, तुलना शक्ति की दोनों ओर यह तर्क शक्ति के अवयवों के स्थान हैं। उसका यथार्थ विकास से कपाल का आकार लगभग लम्बा चौड़ा, उच्च और उन्नत दिखाते हैं। जब अर्ध पागल मनुष्यों, पशुओं और बन्दर की अन्दर इस भाग खास खामी वाला और बैठा हुआ दिखते हैं। एक मनन और दूसरा योजना ऐसे इस शक्ति के दो विभाग हैं।

अन्वेषक डो० गोल ने कहा है कि—"I have long observed that gread philosophers have the anterior Superior part of the forehead Singularly large and prominent as in Socrates Democritus cicero. Bacon montaigue. Galaleoand others" "In proportion as this anterior Superior part of the forehead is developed the human mind is the more expanded and the man raises himself above brutes and his fellows this Organization discovers the relation of causes and effects pursues a long Series of data, embraces a vest field of observation, dlscerns the unknown from the known, the constant from the accidental, determines the laws of phenomena, establishes principles. deduces conclusions

ascends from effects to causes and descends from general laws to facts, enriches nation with new truths Spreading like the beneficent rays of light, breaking the yoke of despotism and destroying the machination of imposture. It is reason which constitutes the true essence of man, a barrier of Seperation between man and brute.

Dr. CALL.

डो० स्परभीयम ने भी कहा है कि:—"It seems to methat the special faculty of the cerebral parts on either side of comparision examines causes, considers the relation of causes and effects; and prompts men to ask 'why'? Its effects are immense. The cultivation of fields inventton of instruments and whatever man produces by art, depend on this faculty. It is the fountain of resources and produces results by applying causes." 'It unhasitatingly infers that God must exist and possess the attributes manifested in his works anb therefore that exists to us that he is our creator and preservor that all his qualities merit our profoundest admiration and that therefore. He is to man the Highest and most legitimate object of veneration and worship. This organ is established"

George combe.

उपयोग—इस विश्व की अन्दर के छोटे बड़े समग्र प्रसंगों के और पदार्थों के एक दूसरे की साथ जो कार्य कारणात्मक सम्बन्ध है, उसको जानना, समझना वा अनुभवना ये यह शक्ति का महत्व का कार्य है। कारणाभावात् कार्या भावः कारण बिना कोई भी कार्य सारे विश्व में किसी भी समय नहीं बन सकता। प्रत्येक कार्य का कारण होना ही चाहिए। बल्कि प्रत्येक कार्य उसके कारण के प्रमाण में ही अच्छा बुरा वा प्रबल अथवा दुर्बल होता है। कार्य कारणात्मक सम्बन्ध बिना, विश्व के इस सर्व व्यापी व्यवस्थापक नियम सिवाय, कुदरत में सर्वत्र अव्यवस्था दृष्टिगोचर होती, हम किसी भी विषय पर आधार ही नहीं रख सकते। अमुक कार्य करने से अमुक ही होना चाहिए ऐसा विश्वास सदन्तर नाश होते, और ऐसी दशा में किसी भी प्रकार की प्रवृत्ति तरफ मनुष्यों का मन प्रवर्तमान हो सके नहीं। किन्तु कुदरत की अन्दर ऊपर दिखाये हुए विश्व व्यापी नियम के आधार पर वर्ताव कर हम हमारे समग्र कार्यों की सविश्वास प्रवृत्ति करते रहते हैं। कुदरत के समग्र कार्यों सकारण होते हैं, और उसके समग्र कार्यो करने के नियमों भी नित्य अनादि और एक समान सर्वदा वर्तमान रहते है। उसको हम सृष्टिक्रम अथवा कुदरतके कानून

(Laws of nature) कहते हैं। कुदरत की अन्दरकी ऐसी उद्देशपूर्वक की प्रवृत्तिओं को और उसके कार्य कारणात्मक सम्बन्धों को यथार्थ रूपमें समजना, इसमें मनुष्यका उचित कर्तव्य और महत्व समाया हुआ है। ऐसे सम्बन्धों समझने तथा अनुभवने के लिए कुदरत ने हमारे मस्तिष्क में ऊपर बतलाया हुवा तर्क या मनन शक्तिका खास अवयव योग्य स्थान पर निर्माण किया हुआ है कि जिसके द्वारा इस सब कार्यों का गुप्त रहस्य हम सकारण समझ सकते हैं। यह अवयव द्वारा कुदरतकी साथ मनुष्यका ज्ञाता और ज्ञेय सम्बन्ध है। वही शक्ति के प्रतापसे मनुष्य भूमि की उत्पादक शक्तिको अनेक रीतिसे विकसित कर सकते हैं। पवन, समुद्र के ज्वार, भाटा (चढाव, उतार) और महासागर को भी अपना ताबेदार बनाकर उनकी ओरसे अपना दूतका कार्य करा सकते हैं। बाष्पको और विद्युतको अपनी आज्ञाकारी, कर्तव्यनिष्ठ अनुचरी बना सकते हैं। वायुदेवकी पीठ पर सवार होकर अन्तरिक्ष के कोई भी प्रदेश में अव्याहत गति कर सकते हैं। भिन्न भिन्न प्रकार की उष्णता, शीतलता, हवा का दबाब और ऋतुओं के परिवर्तन आदि के भाप निकालने वाले यन्त्रो की खोज कर सकते हैं। और वैसे समग्र साधनों द्वारा असंख्य प्रकार से मनुष्य समाज के ऐसे ही अन्य प्राणी वर्ग के सुखोंको ऐसे दुखोंको अधिक, कम कर सकते हैं। मनुष्यकी अन्दरकी यह अन्वेषक शक्ति या मनन शक्ति ने आज दिन तक, जल स्थल और अन्तरिक्ष में कितनी सीमा तक अपनी सत्ता का विस्तार किया है. उस ओर दृष्टि करो, विचार करो और तलाशी से देखो की यह प्रज्ञाशक्ति अथवा बुद्धि शक्तिने इस दुनियां में कैसे कैसे आश्चर्यजनक कार्यो किये है ?
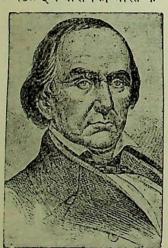
२४॥ इंच परिधिका मस्तिष्क

श्री डेनीयल वेबस्टर

रेल, तार, टेलीफोन, टेलोग्राफ, ट्राम, रस्सा विनाके तार, एकसरेझमोनोप्लेन, बाइप्रोप्लेन, मोटर, स्टीमर, सब्मेराइन, टोर-पीडो, मनवारो, मशीनगनो, ग्रामोफोन, रेडियो, टेलेस्कोप, विमान, टेलविझन, मिल, अनेक प्रकार के यांत्रिक कारखाने आदि के सर्व अन्वेषण फकत इस मनुष्यकी अन्वेषक और मननात्मक शक्ति को ही आभारी है, ऐसे सहज विचार करने से स्पष्ट विदित होता है। मात्र थोड़ा ही मनुष्य की उत्कृष्ट बुद्धि और मनन शक्ति के विकासका उपरोक्त सब प्रताप है।

श्री मारकोनी

तार, टेलीफोन, वायर लेस, टेलीग्राफीका अन्वेषक

परन्तु जो विश्व के समग्र जनमंडल के मनुष्यों योग्य संख्या में यह शक्ति के विकास की ओर यथार्थ ध्यान देतो कितना अधिक अद्भुत और आश्चर्यजनक कार्थ हो सके ! यह प्रज्ञा शक्ति मनुष्य का तीसरा नेत्र है या दिव्य चक्षु हैं।

जिन्होंमें तर्क शक्ति प्रपूर्ण रीति से विकसित होती है, उन्होंमें प्रत्येक घटना के कारण का अन्वेषण करने की अजीब प्रकार की शक्ति होती है। सामान्य मनुष्योंके मस्तिष्क में जिस बात आ नहीं सकती ऐसी हकीकतों में से पदार्थों के अस्तित्व के और कुदरत के नियमों की तजवीज तलाशी और उसके सम्बन्धों के गुप्त भेदों वे प्रेरणा शक्ति की अनुसार जल्दी से जान सकते हैं। तत्वज्ञान की चर्चा में और वादविवाद के लिए बहुत ही उच्च प्रकार की शक्ति धराते हैं। प्रत्येक विषयके गुढ तत्व को जानने की, और सहेतु समझने की प्रबल शक्ति वाले होते हैं। प्रत्येक वस्तु का मूलकारण और उनकी रचना, तथा प्राकृतिक सम्बन्धों की खोज पीछे उन्हों का मन स्वभाव से ही लग रहते हैं। रचना, प्रबन्ध और मानसिक व्यवस्था करनेकी उन्होंमें बहुत ही अच्छी शक्ति होती है। परिणामदर्शी, दीर्घ दृष्टिवाले, मन्त्रवित्, प्रत्येक विषयमें पारदर्शि और परिणामज्ञ होते हैं। हमेशा अपना उद्देशों पूरा करने की विजयवंत योजना कर सकते है। बुद्धिवल की अधिकता के कारण संवाद की ओर विशेष इच्छा रखते हैं। धारधा शक्ति की अधिकता के लिए प्रत्येक वस्तु की स्थिति और सत्य वर्णन तुरन्त ग्रहणकर समझ लेते हैं, और उस पर यथार्थ रीति से, सउद्देश संवाद विवादन कर सकते है। तुलना शक्ति तथा आत्मनिष्ठा के प्राबल्य से नैतिक विषयों की पुष्टि प्रति प्रबलतासे खिंचाते है। और स्वार्थ वृत्तियों का य होगातो अपनी सब शक्तियोंका उपयोग आतमसुख और अपनी अनुकूलता संभालनेके लिए पूर्णरीति से करते हैं।

तत्व वेत्ता

बुद्धि शक्ति प्रबल

प्रेरणा शक्ति तथा तुलना शक्ति की अधिकता से तत्वज्ञान और अध्यात्मक विद्या की ओर विशेष भावना होती है। ऐतिहासिक शक्ति और अवलोकन शक्ति की साधारण हालत

नं० ४० तर्क शक्ति प्रबल
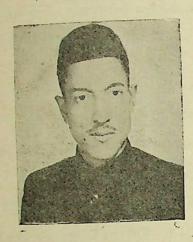
श्री जगन्नाथ जी

बी० ए० एल एल बी० जे० डी०,
प्रभाकर सिद्धान्त शास्त्री

आपकी अन्दर तक शक्ति इतनी अधिक है कि कपाल के ऊपर के भाग में दोनों ओर ऊंचा पर्वत की चोटी समान उन्नत दिखाई देती है। तर्क, तुलना (बुद्धि) की साथ भक्ति, दया, परोपकार, सौजन्य, अध्यात्मरति औदार्य आत्मनिष्ठा आदि उत्कृष्ट गुण पूर्ण प्रमाण में होने से आपका स्वभाव सुमधुर और चरित्र शुद्ध-पवित्र है। इसलिए आप जन समाज में सन्मानित हैं।

में अनुभव की अपेक्षा तर्क शक्ति उपर विशेष आधार रखकर सब बात का निर्णय कर बैठते हैं। वस्तु स्थिति पर आधार नहीं रखते, किन्तु अमुक सिद्धान्तों प्रमाणे ही विचार करके परिणाम कल्पि लेते हैं। ऐसी रीति से अनेक शक्तियों के संयोग से अनेक प्रकार के कार्य करने उद्युत होते हैं। जिन्हों में यह मनन शक्ति साधारण होती है वैसे पुरुषों उद्देश पूर्वक का विचार कम करते हैं। कारण की तलाशी करने की परवाह नहीं करते। अन्य व्यक्ति द्वारा जब सत्य कारण दर्शाने में आता है, तब ही सत्य समझ सकते हैं। मुश्किल विषयों या प्रश्नों का निर्णय नहीं कर सकते। केवल अल्प बुद्धि से थोड़ा ही विचारों करते हैं। ऐसे पुरुषों या स्त्रीओं दीर्घ दृष्टि वाले नहीं होते। अगमचेती कम होती है। मनन शक्ति का काम ठीक नहीं कर सकते। यह शक्ति के अवयव जितने छोटे होंगे इतनी समझ शक्ति कम होती है।

न्यून—जिन्हों में यह शक्ति बिलकुल न्यून प्रमाण में होती है उन्हों में तर्क शक्ति या समझ शक्ति और युक्ति प्रयुक्ति नहीं होती। ऐसे व्यकित को बारम्बार कहने की और समझाने की जरूरत रहती है। स्वयम् पहले से बिना दिखाये कुछ भी कार्य कर सकते नहीं। शायद किंचित करेंगे तो भी वह संतोष कारक रीति से कभी नहीं कर सकते। हमेशा पराधीन रहकर अन्य की सूचनानुसार ही कार्य कर सकते हैं। समझ शकित और वचार शकित की खास खामी वाले होते हैं। संक्षेप में कुंठित बुद्धि के होते हैं, जिसको मन्दधी कहने में आते हैं।

छोटे बच्चों की अन्दर कुदरती रीति से ही यह मनन शक्ति के अवयवों ठीक प्रमाण में होते हैं। किन्तु पीछे की अवस्था में उनको यथार्थ रीति से विकसाने के लिए प्रयत्न होते नहीं। जो इस अवयवों के यथार्थ विकास के लिए उपायों योजने में आये तो जन समाज का बहुत ही बड़ा भाग अच्छी समझ शक्ति वाला होने की साबिती दे इसमें कोई आश्चर्य नहीं।

पूज्य संन्यासी महात्माओं भी धार्मिक वृत्तियों और बुद्धि शक्तियों का ही परिपाक और परिणाम है
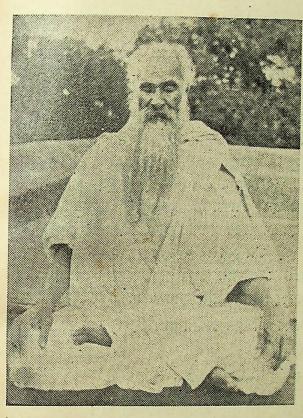
स्व० पू० स्वामी ब्रह्मानन्द जी
आर्योपदेशक पंजाब आर्यप्रतिनिधि सभा
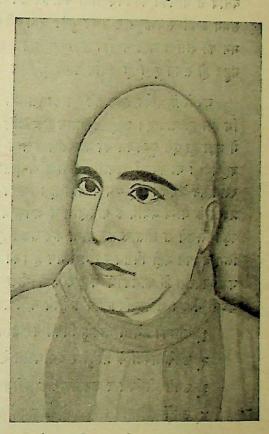
स्व० पू० स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी
उप प्रधान सार्वदेशिक आ० प्र० सभा

वैदिक धर्म कर्मानुसार सन्यास की दीक्षा लेकर अपना आचार से आश्रम धर्म की शिक्षा संन्यासी महात्भाओं देते हैं। और आर्य जाति के धर्म और संस्कार, संस्कृति जनता को सीखाते हैं।

शुद्ध आचार, विचार और सत्यनिष्ट, धर्मनिष्ट, कर्तव्यनिष्ट, न्याय परायण, बुद्धिशाली, समभावी, स्वाध्यायशील, ज्ञानी ऐसे उत्कृष्ट गुण वाले संन्यासी महाराजाओं की मानव समाज को पथदर्शन के लिये आवश्यकता है।

छोटे बच्चों में यह शक्ति बहुत ही अच्छी रीति से विकसाने की आवश्यकता है। बालकों के मन हमेशाँ नया नया देखने की, जानने की, सुनने की और तलाशी करने की जिज्ञासा और उत्सुकता से पूर्ण होता है। इतने लिये वे अनेक बार हजारों प्रकार के प्रश्नों करते हैं। किन्तु अज्ञान माता पिता ऐसे प्रश्नों का प्रत्युत्तर देने के स्थान पर कितनौ वेर गुस्से हो जाते हैं थप्पड़ भी लगा देते हैं। ऐसा वर्ताव से बालकों को निरुत्साही बनाकर उनकी आत्मजिज्ञासा को विलकुल शान्त कर देते हैं। किसी समय अपनी समझनुसार उलट पुलट जवाब देकर छूट जाते हैं। और परिणाम में बालकों के जिज्ञासु मन को शान्ति और सन्तोष दे सकते नहीं। इससे बहुत ही अनिष्ट परिणाम आता है। अध्यापकों भी बहुत ही समय ऐसा ही वर्ताव करते हैं, जिस उनके पद के लिए बिलकुल अयोग्य ही है।

बच्चों के प्रत्येक प्रश्न को पाठशाला में, घर में या बाहिर पत्येक प्रसंग में यथायोग्य प्रत्युत्तर मिलना ही चाहिए। उन्हों का खास एक अधिकार है। और माता पिता, गुरु तथा उम्रमें, पदमें, ज्ञान में बड़ा हो ऐसे पूज्यजन का यह खास कर्त्तव्य है कि बच्चों की जिज्ञासा को तृप्त करनी। यह क्या ? वह क्या ? वो क्या ? इत्यादि प्रश्नों द्वारा होतो इच्छाओं बालकों के ज्ञान के द्वार खुला करने का, खुला रखने का प्रथम चिन्ह अथवा माँग है। जिसका स्वीकार बिना ढील से होना ही चाहिए। कारण ऐसे प्रश्नों के योग्य जबाब के परिणाम से अनेक बालकों छोटी उम्र में भी वहुत ही अच्छा सामान्य ज्ञान पढ़ने लिखने से अतिरिक्त प्राप्त कर सकते हैं। इस तर्क शक्ति अथवा मनन शक्ति को विकसाने के लिए बचपन यही विशेष उत्तम समय है। कारण बड़ी उम्र होने पर आजीविका के व्यवसाय से और घर व्यवस्था के कामकाज में लग जाने पीछे उसके लिए खास समय मिल सकता नहीं। इतने लिए बच्चों में इस शक्ति विकसाने के लिये नीचे दर्शाये हुए नियमों खास ध्यान में लेने की आवश्यकता है।

१. बालकों हमेशाँ प्रत्येक विषय पर प्रश्नो करने लगे ऐसी तालीम दो।

२. उनके प्रश्नों के प्रत्युत्तर यथाघटीत देते रहो।

३. उनसे भी विचार कर उत्तर की खोज करने का रास्ता सीखादो।

४. उन्हों की मनन शक्ति को प्रतिदिन नया नया कार्य मिल जाय ऐसे शिक्षण दो।

विकास–यह शक्ति का विकास के लिये न्याय या तर्क और कायदा-कानून के ग्रन्थों का अभ्यास करो। पढ़ो, विचारो, मनन करो और जो जो विषय में आप को प्रेम हो तद् विषय पर श्रवण, मनन और निदिध्यासन करो। नया विचारो ग्रहण करो। मुसीबतों से बचने के लिए नयी नयी युकितयों की खोज करो। कुदरत अपने उद्देशों पूर्ण करने के लिए क्या क्या योजना करती है, कैसे कैसे उपायो योजती है, उनकी तलाशी करो और उनका अनुकरण करो। प्रत्येक सृष्ट पदार्थ का कार्य कारण सम्बन्धी खोज कर उसकी सूक्ष्म तलाशी और अभ्यास करो। खगोल, भूगोल, भूस्तर, भूमिति, वनस्पतिशास्त्र, प्राणीशास्त्र आदि का अभ्यास करो और तर्क शकित तथा मनन शकित को शिक्षा दो।

संस्कारी मानसिक शक्तियों ही मनुष्य को मानव और देव बनाती है

अहमदावाद कांकरिया रोड आर्यसमाज के मन्त्री श्री अम्बालाल जी का **आदर्शजीवन**—आप की अन्दर बुद्धि शकितयों, अवलोकन शक्तियों तथा स्मृति, संगीत सौजन्य, साहस, स्थैर्य धैर्य निग्रह, दृढ़ता, भूगोल, हास्य, यशाभिलाष आदि शर्कतयों अच्छी हैं, उनकी साथ गृह सांसारिक भावनाओं न्यून होने से आप का जीवन का ध्येय विद्या की वृद्धि तथा परकल्याण करने का ही बन गया है।

श्री अम्बालाल जी

आप जन्म से ब्राह्मण होने पर भी आप का पहिचान आर्य नाम से करा रहे हो। आप की अन्दर ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीनों जाति का सुमेल हुआ है। ब्राह्मण के गुण से विद्या का दान देकर वैदिक धर्म का प्रचार करने की लगन है। क्षत्रिय गुण से अपना और दूसरों का रक्षण कर सकते हैं। वैश्य गुण से नीतिसर व्यापार, धन्धा कर स्वतन्त्रता से अपनी आजीविका चलाते और इस में से दूसरों को सहायता देते हैं।

कर्यव्यपरायणता तो इतनी बलवान है कि जो कार्य दूसरों को अशकय लगता और विचार कर छोड़ देते हैं। उस कार्य की जिम्मेवारी आप लेकर उसको परिपूर्ण और तुन्दर रीति से कर दिखाते हैं। इसमें प्रबलबुद्धि, आत्मनिष्ठा और बल की शकित काम करती है।

स्वाश्रय, बल बुद्धि और स्व पराक्रम के प्रताप से पिता की पूंजी में से कुछ भाग नहीं लिया।

अहमदाबाद कांकरिया रोड आर्यसमाज में चलती हुई डी० ए० वी० स्कूल के आप सँस्थापक तथा संचालक हो और अब हाइस्कूल तथा कालेज बनाने की इच्छा रखते हो।

जीवन में खास विशेषता यह है कि आप कर्तव्यनिष्ठ तथा बालब्रह्मचारी हैं। सारा विश्व को अपना कुटुम्ब समझते हो। "कृण्वन्तो विश्वमार्यम" की भावना पूर्ण करने का कर्तव्य कर रहे हो। यह सब विकसित मानसिक वृत्ति का ही प्रत्यक्ष प्रमाण है।

नं० ४१. तुलना अथवा समालोचक शक्ति

Comparision

तुलना—समालोचना, सम्यक्, विवेक, विवेचना, पृथक्करण, वर्गीकरण, समीक्षा, समझ, तात्पर्य तारतम्य का अन्वेषण करने की शक्ति, क्षीरनीर न्याय से सत्य का शोधन करने की शक्ति, उदाहरण दृष्टान्तों सहित वर्णन करने की शक्ति, अर्थात् सत्यासत्य की विवेचक शक्ति आदि शक्तियों का ग्रहण यह तुलना अथवा समालोचक शकित में करने में आया हुआ है।

कटाक्षमय रचना या व्याख्या और सोफीस्ट्री (Sophystry) इस यह शक्ति के अतियोग या मिथ्यायोग का परिणाम है।

तुलना शकित का दर्शक स्थान.

बुद्धिशाली मस्तक

स्थान—कपाल के उपस्थित मध्य प्रदेश में जहाँ से बाल का आरम्भ होता है, वह स्थान से थोड़ा नीचे, ऐतिहासिक शक्ति के स्थान की बराबर ऊपर और तर्क शकित के दोनों अवयवों की मध्य में (बिच में) यह शकित के अवयव का स्थान आया हुआ है। कपाल के मध्यप्रदेश में से आरम्भ हो कर ऊपर के केश प्रदेश पर्यन्त लगभग प्रसरते हैं और चारों ओर के अवयवों से विशेष विस्तृत हो तो एक (Cone) कोन के आकार का और उसका ऊपर का भाग जब विकसित होगा। तब कपाल का मध्य प्रदेश वाला भाग उन्नत दिखाई देता है। सेक्सपीयर की अन्दर यह भाग खास करके विशाल-विस्तृत दिसता है। उसकी समझ शकित, विचारगांभीर्य, समालोचकशक्ति और समीक्षा करने की शक्ति सचमुच अतुलित थी। यही अनुसार महान कवि कालिदास में भी वह शकित पूर्ण प्रमाण में होनी ही चाहिए। कारण उपमालंकारयुक्त लखाण इस शक्ति का ही परिणाम है।

अन्वेषण—यह शकित के स्थान की खोज डॉ० गोल ने की थी। वह कहते हैं कि—

"All ha,; this middle anterion part of their foreheads developed in to a conical eminence and all my observations only convinced me the mor" "why should nature put this organ in the median line wher eall of the most essential organs are always found ? because the education of the race commences with this comparision which forms images and pictures.

Gall

उपयोग—कुदरतकी अन्दर बहुतही समझपूर्वक वर्गीकरण करने में आया हुवा है। इस वर्गीकरण को यथावत् जानकर प्रत्येक वस्तुके सामान्य, विशेष और समवाय आदि सम्बन्धोंका अनुभव कर वस्तु के स्वरूप का निर्णय करना ये यह शक्तिका महत्वपूर्ण कार्य है। वृक्ष, पत्ता, जड, मूल, फूल, फल, अनाज, मिट्टी, पत्थर, जीवजन्तु पशुवर्ग और मनुष्य पर्यन्तके समग्र पदार्थों की अन्दर जो एक जातका साधर्म्य और वैधर्म्य समा रहा है, उसकी प्रत्यक्ष तुलना या समालोचना यह शक्तिसे होतीहै। कितनेक प्राणीओं जलचर होतेहैं। कितनेक स्थलचर और कितनेक व्योमचर होते हैं। पंख होनेके कारण से सर्व पक्षीओंमें पक्षीत्व यह तो सामान्य गुण अर्थात् साधर्म्य है, जब कितनेक पानीमें क्रीडा करने वाले और कितनेक केवल व्योमचर होते है। इस उन्होंकी अन्दरका वैधर्म्य दर्शाते हैं।

पानी और पत्थर दोनों जड होनेके कारणसे साधर्म्य युकत है। परन्तु पत्थर में कठोरता, कठिनता और जल स्वाभाविक रीतिसे स्निग्ध शीतलतायुक्त और जैसे पात्र में रखो ऐसा स्वरूप धारण करते हैं। जब अग्नि भी जड होने पर भी अपना दाहक (जलाने वाला) गुणसे और तेजोमय स्वरूप से जल ऐसे ही पत्थर दोनों से भिन्नधर्मी है। तो भी जडत्वधर्म में तो सबका साधर्म्य है। यह अनुसार प्रत्येक वस्तुकी अन्दरके गुण, कर्म और स्वभाव आदिकी अन्दरके साधर्म्य वैधर्म्यकी तुलना, समालोचना और विवेचना कर पदार्थों के सत्य स्वरूपको अवगत करना वे इस शक्ति का कार्य है। कुदरतके असंख्य पदार्थों को जानने की ये कूँची है। उसके बिना पशु, पक्षी, मनुष्य या जड पदार्थोके साधर्म्य वैधर्म्य जान सकने का—ज्ञान होनेका अप्राप्य हो जाता। परन्तु मनुष्यकी अन्दर वस्तुओंके स्वरूपका मुकाबिला कर जानने के लिए उपरोक्त तुलना शक्ति और पदार्थोकी स्थिति यह दोनोंका सम्बन्ध ऐसा तो उचित रीति से संयुक्त करने में आया हुवा है कि हम बहुतही सरलतासे प्रत्येक वस्तु की यथार्थ स्थितिकी परीक्षा करने समर्थ हो सकते हैं, और उस पर से कुदरतके सामान्य सिद्धान्तो का निर्णय कर सकते हैं। प्रत्येक प्रकारका अनुमानिक और उपमाज्ञान यह शक्ति द्वारा हो सकते है। इतने लिए ये शक्तिका कार्य अत्यन्त महत्वका और तर्क शक्ति जितना ही अगत्य का है। डो० ओ० एस० फाउलरने कहा है कि—

"two organs of comparision, doubtless exist. the lower one more appropriately connected with Physico-percePtives in comParing physical substances with each other and reasoning thereon while the letter combining more naturally with the moral facultils, reasons from the Physical to the moral world comPares ideas, eriticises and discriminates between them and imparts logical acumen."

अर्थात् यह तुलना शक्ति के अवयवके भी सचमुच दो विभाग है। जिसमें का नीचे का भाग दृश्य और पार्थिव पदार्थोंके गुण दोषका परस्पर मुकाबिला कर विवेचन करने का कार्य करतेहै। जब ऊपर का भाग स्वाभाविक रीतिसे धार्मिक, नैतिक और मानसिक विचारोकी समीक्षा या तुलना कर सत्या-सत्य विवेक और न्याय नीति का कार्य करते हैं।

श्रीमती मोहन देवी
उपप्रधना आर्य स्त्री समाज
सीताराम बाजार दिल्ली

आपकी धार्मिक वृत्तियों बुद्धि शक्तियों, आत्मनिष्ठा, स्थैर्य, धैर्य, दृढता, उद्योग, स्वाद; दया, परोपकार तथा अतिथि सत्कार करने की भावना, कुटुम्ब पर प्रेम आदि गुणो सुन्दर होने से एक संस्कारी आर्यसन्नारी तथा आदर्श गृहिणी बन रही है। समाज की सेवा भी उचित रीति से कर सकती है।

उपरोकत श्री० फाउलर का कथन जो सत्य होगा तो हम स्वाभाविक रीतिसे ही धार्मिक और नैतिक विषयो जैसे कि मनुष्य की भाविन् दशा, आध्यात्मिक जीवन, आध्यात्मिक विचारो, आत्मा और उसकी मृत्यु पोछेकी दशा, आत्लाका अमरत्व आदि विषयो का सम्बन्ध भी ये मनन शक्तियों की साथ निकटता से और निश्चित रीति से जोडाया हुवा है। और उसका निर्णय करनेका काम भी उसे हस्त होना ही चाहिए, ऐसा स्पष्ट दिखता है। अनुमान गम्य सर्व सिद्धान्तों और सत्यज्ञान की शोध खोजका सब आधार ये शक्ति के यथार्थ कार्य ऊपर ही है। प्रथम कोई भी पदार्थका सम्पूर्ण अथवा एक अंग प्रत्यक्ष होने के बाद बाकी के अगोंका ज्ञान अनुमान से निकालना यह ये शक्ति का मुख्य काम है।

दृष्टान्त से समझेंगे—नदी में पानी की वृद्धि–भरा हुआ बाढ देखकर ऊपरकी ओर हुआ वर्षा का, बालकको देखकर उसके पैदा करने वाला माता पिता के अस्तित्वका, घर मकान या हवेली, बंगला की रचना योजना और कारीगीरी (प्रवीणता) देखकर उसके बनाने वाला शिल्पी का और सृष्टि की अद्भुत रचना का प्रत्यक्ष अवलोकन करने पश्चात उसके बनाने वाला महान शिल्पकार विश्वव्यापी विश्वनाथ, विश्वम्भर विभू परमात्मा का ज्ञान होना, वह सब प्रकार के ज्ञान अनुभव गम्य ही है। ऐसे प्रकार के ज्ञान या वृत्ति बिना दुनियाकी प्रवृत्ति यथावत् रीति से किसी भी समय हो सकते ही नहीं। ज्ञान प्राप्ति का तुलना शक्ति एक रास्ता है, और उसका यथार्थ उपयोग करने से कभी भी भूलों होनेका सम्भवही नहीं रहता। कुदरत और उसके महान कार्यों को अनुभवमें लाने की ये एक मुख्य कुंजी है। उसके सामान्य नियमों को समझकर खुल्ला करने वाला ये एक मुख्य व्याख्याता है। इतने लिए ये शक्तिको विकसाने की या शिक्षण देने की खास आवश्यकता है।

विचार ग्रस्त

विकास—जो कुछ आप देखो वह पर योग्य विचारकरो और परिणाम निकालने के लिए समालोचना चालू करो। शोधक (अन्वेषक) और समालोचक वृत्तिसे प्रत्येक प्रसंग, प्रत्येक घटना की ओर देखो और सत्यासत्यकी विवेचना करो। एक घटना या विचार की अन्य घटना या विचार साथ तुलना करो। उसमें की न्यूनता, नादानी, गलती, दोष, एब की विवेचना करो। जो कुछ आप पढो वह भी योग्य विवेचन और समालोचना करके ही वांचनेकी आदत रखो। जिससे विवेचक शक्ति उत्तम प्रकारसे विकसित होयेंगे। न्यायदर्शन गौतमकृत, वैशेषिक, सांख्य, अध्यात्मशास्त्र, वेद वेदान्त आदि का अभ्यास करो। तत्वज्ञानके ग्रन्थो वांचो और उस परसे निर्णय निकालो और आपके निकाले हुए सिद्धान्त को दृष्टान्तो और दलीलो सहित स्नेही या हितवादी वर्गमें समझाने का प्रयत्न करो। मस्तिष्क शास्त्र, मुख सामुद्रिक शास्त्र और शब्दशास्त्र (व्याकरण) इस विषय के लिये एक अनुपम क्षेत्र है उसी द्वारा भी आत्माकी ये शक्तिको विकसाने पर ध्यान दो। बच्चोंकी अन्दर ये शक्ति विकसाने के लिये उदाहरण दलील और प्रत्यक्ष निदर्शन द्वारा प्रत्येक विषय का स्पष्टीकरण करो। उन्होंने अनुभव किया हो ऐसे विषयोंकी साथ अनुकूल हो ऐसे विषयो दृष्टान्त द्वारा समझाने का प्रयत्न करो। दृष्टान्तिक विषयों उन्हों की समझ में जल्दी से आजाते हैं शिक्षण के प्रत्येक कार्य में और बच्चों की ओर से प्रत्येक विषय के प्रत्युत्तर लेते समय ये सिद्धान्तों को उपयोग में लाने पर खास ध्यान दो। उपमालंकार से बालको बहुत ही सरलता से प्रत्येक विषय ग्रहण कर सकते है। बाल हृदयो ऐसी रीति से बहुत ही शीघ्रता से प्रत्येक विषयको जल्दी ग्रहण करेंगे। प्रत्येक विषय का बन सके वहाँ तक प्रयोगिक ज्ञान दो। अर्थात प्रयोग करके प्रत्यक्ष दर्शादो।

उष्णता, वाष्पिकरण, वायु और वर्षाके सिद्धान्तो, अग्नि, जल और बरफ आदि से प्रत्यक्ष दर्शन कराकर मस्तिष्क में उतारो। वही अनुसार सूर्यकी उष्णता से वातावरण के फेरफार, हवा की भिन्न-भिन्न गतियों क्यों कैसे होती है वह भी दर्शादो। इसी अनुसार इतिहास, भूगोल, शारीरशास्त्र, और रसायण शास्त्र विगेर के सिद्धान्तो का साधारण ज्ञान बहुतही सरलतासे और सहज रीतिसे बच्चोंको दे सकाते हैं। इतना ही नहीं परन्तु उन्होंमें आनन्द, उत्साह बढ़ाकर ज्ञान प्राप्तिकी जिज्ञासा हमेशां अधिकतर प्रबल बनाने में सम्पूर्ण सहायता मिल सकती है। परिणाम में बालको प्रत्येक प्रसंगमें तुलना और समीक्षा करने सीखेंगे और प्रत्यक्ष प्रमाण या यथार्थ परीक्षा किये बिना केवल शब्द प्रमाणका विश्वास पर रहकर कोई भी सिद्धान्त या घटनाका तुरन्त स्वीकार नहीं कर बैठते। ये कुछ कभी लाभ नहीं। बालको को शिक्षण देते समय उन्होंकी समझ शक्ति को ध्यान में लेकर बहुतही सरल भाषामें हमारा सब भाव उनकी सन्मुख रखने में खास ध्यान देनेको आवश्यकता है।

विवरण—जिन्होंमें इस तुलना शक्ति प्रपूर्ण प्रमाण में होती है उन्होंमें समालोचक, विवेचक पृथक्करण या वर्गीकरण शक्ति अच्छे प्रमाण में होती है। कालीदास और शेकस्पीयर की तरह उपमालंकारो देनेकी अनुपम शक्ति धरातेहै। (अनुपम शक्ति वाले होते है) सत्यका संशोधन (अन्वेषण) करनेकी उन्होंमें आश्चर्यजनक शक्ति होती है। समीक्षा, टीका या वर्णन करनेका अद्‌भुत सामर्थ्य दिखातेहै। शब्दालंकार, अर्थालंकार और उपमालंकार से उन्होंके हृदयके भावों प्रपूर्ण रीतिसे बाहिर निकलते हैं।

साधारण—जिन्होंमें साधारणतया इस शक्ति विकसित होती है, वे अपना विचारो और प्रमाण बराबर पेश नहीं कर सकते। उन्होंकी तुलना खामावाली और अपूर्ण होती है। अन्यको अपना मनोगत भावों ठीक रीतिसे समझा सकते नहीं। खुश स्वभाव की अधिकताके लिय मसखरी मजाक करने प्रयत्न करतेहै, किन्तु वह खवखतकी निष्फल निवड़ती है। कोई भी खास विषयको प्रमाणित कर सकते नहीं। वार्तचित में और विषयका परिचय कराने में तुलना शक्तिकी खामी वाले दिखाई देते हैं और वस्तु स्थितिका यथार्थ वर्गीकरण या दर्शन करा सकते नहीं।

न्यून—जिन्होंमें यह शक्ति न्यून प्रमाण में होती है, उन्होंमें तुलना, समालोचना या समीक्षा करने की बिलकुल खामी होती है। ऐसे मनुष्यों ने ऊपर दर्शाये हुए नियम प्रमाणे अपनी यह शक्ति को बिकसाने पर खास प्रयत्नपूर्वक ध्यान देने की आवश्यकता है।

निग्रह—किसी भी विषयका विवरण करते समय व्यर्थ प्रयोगो या अति प्रयोगो करनेसे दूर रहना। सिर्फ आवश्यक इतना ही दर्शनों या दृष्टान्तों की पसन्दगी करनी।

नं० ४२. अन्तर्ज्ञान अथवा प्रेरणा

Intution or Human Nature

प्रेरणा अथवा अन्तर्ज्ञान—जनस्वभाव की परीक्षा, सत्य का अन्वेषण करने की स्वाभाविक शक्ति, जनस्वभाव और उन्हों के उद्देश्यों का आकार, इंगित और चेष्टा द्वारा स्वाभाविक रीति से ज्ञान प्राप्त करना, मुख सामुद्रिक शास्त्र का शौक, दूरदर्शी, अग्रदृष्टि, पूर्वज्ञानी, पूर्वविधानी, भविष्यवक्ता इत्यादि स्वाभाविक रीति से जानने की शकित का यह प्रेरणा शकित में समावेश करने में आये हुए हैं। अगम चेती या भावि प्रज्ञा और प्रेरणा ऐसे इस शक्ति के दो मुख्य विभाग हैं।

उत्तम प्रेरणा शक्ति

श्री मगनलाल देव जी आर्य सुखे मेवा के व्यापारी. राजकोट आप प्रमाणिक व्यापारी की साथ वैदिक धर्म के प्रेमी और अतिथि सत्कार भावनासे करते हो, तदुपरान्त साहित्य संगीत के रसज्ञ होने से श्रृंगार, करुणा और भक्तिरस का सोरठी दोहा सुन्दर स्वर में ललकारते हो। आपने वर्षों तक पुस्तकाध्यक्ष का पदपर रहकर समाजकी सेवा भी की है। एक गृहस्थ के योग्य गुणों आप की अन्दर विद्यमान है।

स्थान-तुलना और करुणा—दया शक्ति के स्थान की बिच में समझो कि तुलना शक्ति का अंग ही हो ऐसे उसकी ऊपर की ओर प्रसरण हुआ—फैला हुआ इस शक्ति का अवयव है। ईस स्थान की अति उच्च स्थिति, वे स्थान की अति वृद्धि को पूर्ण रीति से दर्शाते हैं और उसका ही परिणाम से मनुष्य स्वभाव का अवलोकन अच्छी रीति से हो सकता है।

इस शक्ति का परिणाम से मनुष्य सत्य का ग्रहण स्वाभाविक रीति से कर सकते हैं। प्रत्येक पदार्थ और स्थिति का दर्शन इस शक्ति के कारण उसके यथार्थ रूप में सहज विदित हो जाता है। आकृति और रूप द्वारा जैसे हम अक्षरों या शब्दों पढ़ते हैं, वही अनुसार मात्र बाह्य स्वरूप या स्थिति का अवलोकन करने से अन्तर्गत सब भावों को विदित करने में यह शक्ति अद्भुत सहायता देती है।

प्राचीन ऋषियों की अन्दर इस शकित पूर्ण रूप में विकसित होनी ही चाहिए। ऐसा इस से हम को स्पष्ट दिखता है। ऋषयो मन्त्र दृष्टारः "ऋषिओं तो मन्त्र के दृष्टाथा" इस तरह जो कहाता है, इसमें अधिकांश सत्य समाया हुआ है। एक छोटा सा सिद्धान्त पर से कुदरत के बड़ा गहन और सत्य सिद्धान्तों को खुल्ला करना ये यह शकित का सामर्थ्य है। सायन्स, पदार्थ विद्या, विद्युत विद्या, ग्रामोफोन, तार-टेलिग्राफ, टेलिफोन रेडिया, हवाइजहाज, भूगोल, खगोल के विश्वव्यापक सिद्धान्तों की शोध का बड़ा हिस्सा इस स्वाभाविक प्रेरणा शकित को ही आभारी है। वृक्ष पर से फल का गिरना, आकाश में सूर्य चन्द्र और ग्रहों आदि के गोलाओं का नियमित गति की अन्दर घूमना और सर आइसेक न्यूटन द्वारा उसके नियमों की महान और आश्चर्यजनक खोज का जन्म होना, यह भी इस प्रेरणा शकित का प्रताप है। इसी अनुसार

विद्युत, टेलिग्राफ टेलिफोन, ग्रामोफोन ग्रादि का ग्रन्वेषण भी फ्रेन्कलीन, एडीसन ग्रौर मारकोनी ग्रादि ने किया, वह प्रेरणाशकित का सहायता का ही परिणाम है। न्याय परायण वृत्ति से कहना ही पड़ेगा कि वे महानुभावों वर्तमान काल के महान ऋषिग्रों हैं। कारण वे सब विद्युत शकित के मन्त्र दृष्टा हैं।

नैतिक ग्रौर धार्मिक उच्च प्रकार का विशुद्ध जीवन वाले को ग्रध्यात्मिक स्फुरणाग्रों या प्रेरणाग्रों हाती है, ये बात सब कोई जानते हैं। वही ग्रनुसार बुद्धि शकितयों भी विशेष ग्रंश से प्रेरणा शकित की सहाय द्वारा महान कार्यों ग्रौर ग्रद्भुत शोध खोज करने समर्थ होती है। इस प्रेरणाशकित ये ग्रात्मज्ञान की पुष्टि ग्रौर वृद्धि होने के लिये, ज्ञान को प्रवेश होने का मुख्य द्वार है। ग्रनुभव ग्रौर ज्ञान की ये पराकाष्टा ग्रौर निष्कर्ष है। इस कारण उसका स्थान सर्व बुद्धि शकितयों की ऊपर ग्राया हुग्रा है।

ग्रमुक ग्रमुक प्रसंगों में ग्रमुक कार्य करना चाहिए, ग्रथवा नहीं करना चाहिए ऐसा ज्ञान ऐसी शक्ति वाले व्यकित सहजतया प्राप्त कर सकते हैं।

नं० २८ से ४२ ज्ञान भंडार
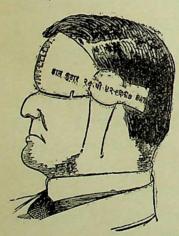
प्रपूर्ण—जिन्हों में यह प्रेरणा शकित की ग्रधिकता होतो है उन्हों का रहन-सहन, ग्राचार-विचार, व्यवहार, कहना, बोलना, कर्तव्य करना ग्रादि सब प्रकार के वर्ताव यथायोग्य होते हैं। सत्य विषय को वे उस के यथार्थ रूप में यथातथ्य जान सकते हैं। मनुष्य स्वभाव के देखाव, वार्तालाप, रीति, रस्मरिवाज, चाल चलन ग्रौर ग्रावाज मात्र से तुरन्त ही जान लेते हैं। स्वाभाविक रीति से वे सामुद्रिक शास्त्र को जानने वाले होते हैं। तुलना शक्ति की ग्रधिकता से वे दरेक क्रिया का परिणाम ग्रौर ग्रसर पहिले से बराबर समझ सकते हैं।

साधारण—जिन्हों में इस शकित साधारण होती है वे मनुष्य के स्वभाव की परीक्षा यथावत् कर सकते नहीं। मनुष्य के भावों ग्रौर वर्तनों सम्बन्धी ग्रनेक समय ग्रनुचित विचार बांध बैठते हैं। परिणाम दर्शी नहीं होते।

न्यून---जिन्होंमें यह शक्ति न्यून प्रमाण में होती है वे जनस्वभाव को बिलकुल पिछानते नहीं। प्रत्येक मनुष्य को वे ग्रपना जैसा ही समझते हैं।

विकास--प्रेरणा शकित को विकसाने के लिये मनुष्य के प्रत्येक कार्य का ग्रौर उद्देशों का सूक्ष्म ग्रवलोकन करो। उन्हों के लक्षणों सामुद्रिक शास्त्रानुसार पढ़नेका प्रत्येक प्रसंग पर प्रयत्न करो। नेत्र

और मुख आदि के विकार पर ध्यान दो। अमुक प्रकार को क्रिया या फेरफार मुखमुद्रा पर कैसे हुआ उसका कारण खोज करके निकालो। संक्षेप में जन स्वभावकी भावनाओं को सामुद्रिक शास्त्र और मस्तिष्क शास्त्र की पद्धति अनुसार तलासी करने का अभ्यास करो! प्रत्येक आवाज, स्थिति, भावना और बाह्य चिन्हको मनुष्य के अन्तर मनकी स्थिति सम्बन्धमें कुछ को कुछ कहने का होता ही है। मात्र मनुष्यने उसका सूक्ष्मतासे अभ्यास करने की आवश्यकता है। कितनी वेर एक छोटासा दिखाता कार्य, तीव्र अथवा मन्द आवाज या धीरे धीरे होती बातें अथवा मुख परके फेरफारो, मनुष्यकी अन्दर चल रहा हुआ बड़ा बड़ा गूढ विचारोको भी स्पष्ट रीति से प्रकट कर देने में साधन भूत होती है।

एक समय एक गृहस्थ एक अनजान खूनी की समीपमें से जा रहा था। चलते चलते उन्हें वह अज्ञात खूनीके मुखमें से निकलता चौकस, चौंकना, सावधानी युक्त आवाज वाले, भारी कसम साथके कितनेक शब्दों रेल्वे पर ले जानेवाला गाडीवानको कहते सुना। वह गृहस्थकी कल्पना, तुलना और प्रेरणा शक्ति की अधिकता से तत्क्षण उसकी वह वर्तावकी समालोचना करनेका प्रारम्भ किया। और वह मनुष्य उस समय पर कौन स्थिति में था वह उसके बोलनेका प्रकार परसे जान लिया। परिणाम में उसे ऐसा लगा कि इस मनुष्य खूनी होना चाहिए। कारण गाडी तुरन्तमें आ पहुंचेगी, ऐसा भय, इस प्रकार की त्वरा का कारण दिखाया नहीं। किन्तु उसकी चालचलन, बैठना, उठना और कपथ लेने की रीति, तथा शब्दो परका वजन, अवश्य निस्सन्देह कोई भयंकर अपराध प्रमाणित करता होगा ऐसा उसकी प्रेरणा शक्तिने कहा। अन्तर में मिला हुआ प्रेरणाका सन्देश सुनकर यह गृहस्थ फौरनही रेल्वे ओफिस तरफ वापिस लौटा, जहाँ वह खूनी अपने मित्रोकी साथ चितासे छुपीछुपी (गुप्त) बातचित करता उसको दिखाया। उन्हें चारों ओरके मनुष्योंको जल्दी खबर देदी। इतना समय में तो वह खूनीको भी कुछ खबर पड़ गई होने से शीघ्र ही अपनी चोरीका सामान-मालमत्ता छुपानेकी कोशिश में लग गया। परन्तु उसका सब वेश-रूप खुल्ला हुआ और गिरफ्तार हो गया।

बाह्य स्थिति देखकर प्रेरणा शक्तिकी सहायसे यह गृहस्थ इतना अधिक जाननेको समर्थ हुआ यह दृष्टान्त प्रेरणाशक्तिका महत्व दर्शाते है। पुलिस, छुपी पुलिस, पुलिस आफीसर, न्यायाधिस, सब अधिकारी वर्ग तथा आचार्यों, अध्यापको और धर्म गुरुओं विगेरेमें यह शक्ति विशेष अंश में होनेकी खास आवश्यकता है।

पूज्य ब्रह्मर्षि विरजान्द महाराज को तो सब आर्य जगत् जानते ही हैं। वे महर्षि दयानन्द के गुरु होने से उनका स्वभाव, लक्षण, वर्तन और ज्ञान आदिसे हम परिचित है। वे अन्तर चक्षु सम्पन्न थे,
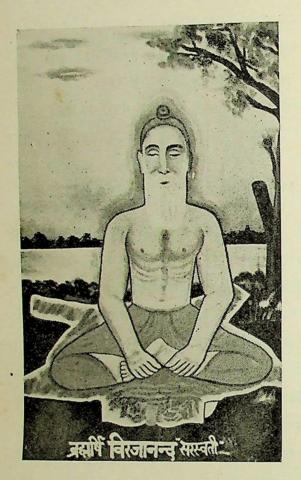
बाह्य नेत्र तो बचपन में से चले गये थ। तो भी विद्यार्थीयों को वेदादि शास्त्र, व्याकरण आदि का शिक्षण देते थे। उन्होंमें इतना विशेष ज्ञान कहां से आया और मस्तिष्क का कोनसा कमरे में से निकलता है? जन्मजन्मान्तर का उनके पवित्र पुरुषार्थ से बुद्धि शक्ति और प्रेरणा शक्ति के कमरे में संचित हुआ था जो ज्ञान प्रेरणा शक्ति द्वारा अन्तर स्फुरण से निकलता है और अज्ञान जनता को ज्ञान रूप अमृत पान कराते हैं।

ऊपर प्रेरणा शक्तिका कर्तव्य तथा लक्षण से हम ज्ञात हुए है, इसमें दुसरी शक्तियों का मिलन या सहकार है। परन्तु इनका सच्चा और स्वतंत्र मूल स्वभाव अति गहन और अजीब है।

हमारी अन्दर बैठा हुआ चेतनदेव जीवात्मा अथवा आत्मा जो हमारा शरीर का संचालन कर रहा है, वह अनेक बिध दिव्य शक्तिका कोष है। इसमें प्रेरणाशक्ति—अगमचेती यह तो एक अद्-भुत और दैवी शक्ति है। इनका प्रभाव, प्रताप, लक्षण और कार्य इतने तो आश्चर्यजनक है कि जिसको स्वयम् अनुभव मिले सिवाय समझना और समझाना अति मुश्किल अथवा सत्य रीति से तो अशकय ही है। कारण जिसकी अन्दर प्रेरणा शक्ति प्रबल प्रमाण में विकसित हुई है, इनको प्रेरणा के प्रतापका अन्तरमें दर्शन यथार्थ रूपमें मिलता ही रहता है यह दर्शन ऐसा है कि हमारे जीवनके साथ सम्बन्धीत सर्व प्रश्नो, प्रसंगो, घटनाओं कैसी बनेंगी, अमुक विषय अथवा घटनाका परिणामकया होगा, कैसा आयेगा, सुख मिलेगा या दुःख गिरेगा, अमुक स्नेही सम्बन्धी बिमारी में से बच जायेगा या इस संसारमें से चला जायेगा, अमुक विद्यार्थी परीक्षामें पास हो जायगा या दो, तीन साल पीछे पास होंयेंगे इत्यादि जीवनकी अनेक घटनाओं सुखदायक या दुःखदायक जैसी या जिस रीति की भविष्य में एक दिन या दस पन्द्रह दिन अथवा साल, दस साल बाद बनने वाली हो या चलता समय में बनने वाली हो उनका स्वरूप पहिले से ही तुरन्त एक विद्युत के चमकार या आंख का पलकार जितना समय में दिखा देती है—जबाब मिल जाता है। इनके लिए नहीं

कुछ विचार करना पड़ता, या नहीं कोई समीक्षा अथवा गिनती करनी पड़ती । किसी भी विषय का आधार बिना अशोच्य, अचिंत्य, अकस्मात हृदय में से किसी भी घटना का स्फुरण अचानक हो जाता है और जो उसे कहना हो वह कह जाती है । हमारे जीवन का प्रसंग का या परिणाम का स्फुट कर देती है । प्रेरणा शक्ति के पराक्रम की विस्मयकारक कितना ही विवरण करने की जरूरत है । परन्तु इस शक्ति के प्रताप, वर्तन और कार्य पुरती रीति से समझाने में एक पुस्तिका बन जाय इतना इनका सामर्थ्य दर्शाने जैसा है, किन्तु लम्बाण हो जानेका भयसे यहाँ पर विशेष नहीं लिया ।

हमारे आत्मा की शक्ति सामर्थ्य कितने गहन, गंभीर और आश्चर्यजनक है जिस को सब मनुष्य नहीं समझ सकेंगे । इनकी पूर्ति में गीता कितता सुन्दर प्रमाण देती है वह देखिये:—

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः ।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोतिश्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित् ॥२९॥

प्रेरणाशक्ति अगम्य पंथ के यात्री को
आत्म दर्शन कराती है
जीवन का गार्ग सफल बनाती है
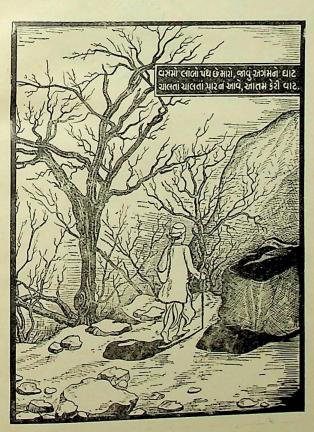
आश्चर्यवत्, पश्यति, कश्चित्, एनम्, आश्चर्यवत्, वदति, तथा, एव, च, अन्यः, आश्चर्यवत्, च, एनम, अन्यः, शृणोति, श्रुत्वा, अपि, एनम्, वेद, न, च, एव, कश्चित् ॥२९॥

हे अर्जुन ! यह आत्म तत्व बड़ा गहन है इस लिये—

कोई महापुरुष ही इस आत्मा को आश्चर्य की ज्यों देखता है अनुभव करता है और वैसे ही दूसरा कोई मनुष्य ही आश्चर्य की ज्यों इस के तत्त्व को कहता हैं और दूसरा कोई ही इस आत्मा को आश्चर्य की ज्यों सुनता है और कोई कोई सुन कर भी इस आत्मा को नहीं जानता ।

प्रेरणा यह एक अद्‌भुत दैवी शक्ति है, जो हमारा भाविन् में बनने का प्रसगों की पहिले से आगाही देती है । कोई भी कार्य का

परिणाम शुभ या अशुभ आयेगा वह पहिले से कह देती है। तदुपरान्त जिस वस्तु का हम को बिलकुल ख्याल ही न होगा वैसी वस्तु, विषय या घटना को अमुक रीति से करो ऐसी आज्ञा भी वह पहिले से देती है। इस लिये जिस मनुष्य में प्रेरणा जैसी दैवी शक्ति संस्कारी और कर्तव्यशील होती है उसके जीवन का संचालन बहुत ही योग्य कार्ग पर और सरलता से होता है। प्रेरणा वाले मनुष्य की समस्त ही प्रवृत्ति, सारे ही काम काज में प्रेरणा योग्य मार्गदर्शन देती है। प्रेरणा के कथन अनुसार जो मनुष्य अपना वर्तन रखे तो प्रत्येक कार्य में उसको सम्पूर्ण सफलता मिले।
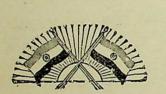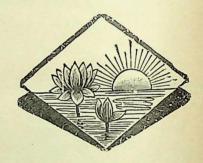
नं०४३. सौजन्य, सभ्यता या स्वभाव माधुर्य
Urbanity or Agreeableness.

सौजन्य—स्वभावमाधुर्य, सभ्यता, शिष्टता, शिष्टाचार, नम्रता, विवेक, भलमनसाई, सुशीलता, समझाने का, समाधान करने का स्वभाव आदि सब प्रकार की सुन्दर चालचलन का यह स्वभावमाधुर्य की वृत्ति में समावेश होते हैं।

सौजन्य शक्ति दर्शक.

स्थान—अनुकरण शक्ति और तर्क शक्ति की बिच में यह शक्ति का स्थान आया हुआ है। यह शक्ति जो विशेष विकसित होगी तो कपाल के ऊपर के कोने के भाग को भरा हुआ बनाकर कपाल को चौकोना आकृति का रूप देते हैं। दया और अनुकरण शक्ति की लगभग नजीक ही और बुद्धि शक्ति के स्थान को भी समीप आया हुआ ये शक्ति का स्थान यह दर्शाते हैं कि मनुष्य ने बुद्धिपूर्वक सर्वत्र बर्ताव कर नैतिक शक्तियों की सहायतानुसार दया, धर्म और नीति से सर्व प्राणीमात्र की साथ भलमनशाही से वर्तना वह खास आवश्यक और यथायोग्य रीति है।

उपयोग—जन समाज में "सहनाववतु सहनौ भुनक्तु सहवीर्य करवावहै तेजस्विनावधितमस्तु मा विद्विषावहै" हम साथ में मिल कर हमारा रक्षण करें, खानपान करें, साथ में मिल कर शरीर, बुद्धि और समाज का बल प्राप्त करें, हमारे विद्या-विज्ञान आदि प्रकाशित रहें अर्थात् दब न जाय और हम सब एक दूसरे, का द्वेष न करें। ऐसे जो प्राचीन ऋषियों के महत्वपूर्ण भावों था और वर्तमान तथा भविष्य की प्रजाओं में भी जिस भावों होना ही चाहिए, वैसे महानभावों पूर्ण करने के लिए इस स्वभाव माधुर्य, नम्रता, विवेक आदि अनुपम साधन रूप मनुष्य की आन्तर शक्ति का स्थान मस्तिष्क में होने की खास अगत्य है। मनुष्य अपने बन्धु समुदाय में एक दूसरे के साथ मिल कर रहने के लिए ही उत्पन्न हुये हैं। कारण उसके परिणाम से ही उसकी अनेक शक्तियों विकसित हो कर रसाल, सरल, नम्र और विवेक पूर्ण होती है। स्वभाव की सर्व प्रकार की कठोरता, निर्दयता, सख्त दिल को दबा कर नम्र और मृदु बना कर विद्या, विनय और विवेक रूप सरल मार्ग पर रखने के लिए स्वभाव माधुर्य रूप कुदरती रोल (रास्ता बराबर सीधा करने वाला भारी चक्कर) घुमाने की निरन्तर आवश्यकता ही है। ऐसा करने से मनुष्य सर्वत्र स्नेह, मैत्री, ऐकयता और सहानुभूति के बलवान शस्त्र प्राप्त कर द्वेष, दुश्मनावट, दुष्टता, वैरवृत्ति आदि दुर्गुणों का बहुत ही युक्ति पुरःसर नाश करने समर्थ होते हैं।

मातृशक्ति ही जगत की दृष्टि है

विविध गुण दर्शक
अमर और चक्षुओं

प्रधाना

उप प्रधाना

१
२
३
४
५
६
७
८

आर्य स्त्री समाज की पदाधिकारिणीयों
सीताराम बाजार दिल्ली
उनके चरित्र दर्शन पीछे आ गया है ।

मन्त्राणी

१. गांभीर्य, २. चिन्ता, ३. विनय, सरलता, पृथक करण, ४. भावना, जोश, ५. स्नेह, मृदुता, मन्दता, ६. बुद्धि, समझ शक्ति, ७. साहस-शौर्य, प्रपंच ८ सरलता ।
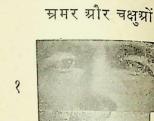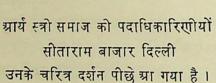
यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:

मातृशक्ति ही जगत् की उद्धारक है
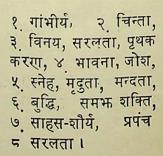
मनुष्य समाज का सब व्यवहार बहुत ही सरलता से चलाने के लिये यह सौजन्य शक्ति का यथार्थ उपयोग करना ही चाहिए। प्रत्येक मनुष्य अन्य गरीब अथवा धनाढ्य की ओर से सभ्य वर्तन की आशा रखते हैं। इस शक्ति के अभाव में एक ही व्यक्ति अनेक को और अनेक व्यक्तियों प्रत्येक के दुश्मन हो जावें। दुनिया में सलाहसंप, ऐकयता या अविद्वेष आदि का नाम निशान भी न रहे। जगत के कार्यों की प्रगति और सुधारणा का सौजन्य वृत्ति एक बलवान् अस्त्र शस्त्र है। स्त्रीओं में यह शक्ति विशेष वृद्धि वाली विकसित होती है, जब सद्गृस्थों तथा सन्नारीओं का तो वह भूषण है।

श्री बुद्धदेव पोपटलाल सेठ
मंत्री आर्यसमाज टंकारा (सौराष्ट्र)
आप सरल स्वभाव के, सौजन्यशील, एकनिष्ट, वैदिक धर्म प्रत्येकी भावना के लिए आप वर्षों से मन्त्री पद पर रहकर उत्साह से सेवा दे रहे हैं। तदुपरान्त आप बरतन के व्यापारी और अच्छे शिल्पकार भी हो।

अपूर्ण—जिन्हों में ये सौजन्य की भावना अधिक प्रमाण में विकसित होगी, वे अपना चालचलन, रीति रिवाज, वार्तालाप और विवेक द्वारा लोगों के मन प्रसन्न कर अपनी तरफ प्रबलता से खींच सकते हैं। दुश्मनों भी उनकी सभ्यता पर मुग्ध हो जाते हैं। उन्हों का बोलना चलना, वार्तालाप करना और अन्य भावनाओं भी मैत्री और दयायुक्त होती है। सर्व स्थल पर वे अपने सौजन्य की अमृत वर्षा से सुख और शान्ति का प्रसार कर डालते हैं। तुलना-शक्ति और जन स्वभाव की विशेष जानकारी के लिये वे स्वीकार न हो सके वैसी हकीकतों भी स्वीकार कर ले वैसे रूप में सामने उपस्थित करते हैं। सौन्दर्य के अति शौक के लिये नम्र, मिलन सार, आनन्दी, हंसमुख, विवेकी दिखाते हैं। दया, आनन्द और सत्यता वह तीनों का मिलन होते हैं, वे सचमुच मैत्री करने योग्य है। श्री गोखले जी ये विषय का प्रत्यक्ष दृष्टान्त है।

न्यूनता—जिन्हों में यह शक्ति न्यून होती है वे अति हर्ष की बातों भी अच्छे रूप में रखने समर्थ होते नहीं। लोगों की अच्छी भावना और मान का आकर्षण ऐसे लोगों भाग्ये ही कर सकते हैं।

विकास—यह सौजन्य की शक्ति को विकसाने के लिए हमेशा मिलनसार, बनो, आप के विचार बहुत ही सभ्य, नम्र और विवेकपूर्ण वाणी से बाहिर निकालने ध्यान रखो। अन्य की सभ्य चालचलन का अभ्यास करो। हमेशा गुणग्राहक वृत्ति रख कर सर्वत्र वर्ताव करो।

नं०. ४४ आराम प्रियता और निद्रावृत्ति

आराम, शान्ति, विश्रान्ति, निवृत्ति, निन्द्रा आदि शब्दों से दर्शाने में आता भावों को ग्रहण, आराम और अभाव प्रत्ययालंबनावृत्ति रूप निद्रा से करने में आते हैं।

मस्तिष्क शास्त्रानुसार वर्तमान समय पर्यन्त अन्वेषण द्वारा समग्र ४४ शक्तिओं और लगभग सौ से अधिक उसके विभागों जानने में आये हुए हैं।

हमारा सारा मस्तक एक ही समय पर हमारी सब शक्तियों से कार्य नहीं लेता और कभी भी ले सके ऐसे नहीं। बुद्धिशक्तियों का कार्य चलता होगा तब गृहभावनाओं या आत्मरक्षक वृत्तियों आराम लेती होती है और आत्मरक्षक वृत्तियों के कार्य प्रसंग पर धार्मिक वृत्तियों शान्त या स्तब्ध होती है। ऐसी रीति से हम निरन्तर मस्तक के अमुक चोकस प्रदेश से ही कार्य लेते हैं। समग्र मस्तिष्क एक साथ में एक संग में सब शक्तियों का कार्य कभी करता नहीं और कर सकता नहीं। परन्तु अभाव प्रत्यया-लंबना वृत्ति या निद्रावृत्ति वह एक ऐसी वृत्ति है कें जिसकी असर द्वारा सब वृत्तियों का कार्य फौरन शान्त होकर विश्रान्ति लेते हैं। सारा दिवस के संकल्प, विचार, तुलना, मनन, खानपान, उद्योग, श्रम, संगीत, गणित, स्मृति, अवलोकन, कला इसी रीति से अन्य अनेक विध कर्म के अव्याहत प्रवाह से थकित हो जाने से, मस्तक को विश्रान्ति लेने की खास आवश्यकता रहती है। कारण ऐसे करने से समग्र मानसिक और शारीरिक शक्यियों को भी अजीव प्रकार की तुष्टि और पुष्टि मिलती है यह हमारा प्रतिदिन का अनुभव है।

पशु, पक्षी, कीट, पतंग और प्राणधारी प्राणीमात्र को ऐसी विश्रान्त या निद्रा रूप (Nature's Soft-Nurse) महादेवी के शरण में जाने की जरूरत है। उसके शरण में हम शरीर की और मन को समग्र शक्तियों और जगत की सब उपाधियो छोड़कर हम उसके दिव्व अंक में हमारा मस्तक झुकाकर पुनः नवीन प्राण धारण करने की जरूरत पड़ती है। ये दशा में हमारा प्राणवायु हमारे शरीर में पूर्ण प्रवाह से बहने लगता है। और समग्र शरीर को आवश्यक साधनों पूर्ण करते हैं, यह बिलकुल स्पष्ट है। उसके प्रभाव से हम बिलकुल नवीन जीवन धारण कर प्रातःकाल में ताजा होकर पुनः जीवन संग्राम में लग सकते हैं। विचार करने से ऐसा स्पष्ट ससझाता है कि यह निद्रा वह एक कुदरत की अद्‌भुत सत्ता आकर्षण या एक अजीब प्रकार की समस्त सृष्टि को थोड़ा समय के लिए पराधीन करने वाली होप्नोंटीक स्लोप या घारण शस्त्र है उसके बिना कोई भी प्राणी सुख से जीवन व्यतीत कर सके ऐसे नहीं। यह वृत्तिका अवयव सावधानी और मैत्री की तथा निग्रह वृत्ति और शौर्य शक्ति की बिचमें आ रहा हुआ है।

प्रपूर्ण—जिन्हों में ये शक्ति प्रपूर्ण प्रमाण में होतीं है वे वहुत आरामप्रिय और लम्बी निद्रा लेते हैं।

साधारण शक्ति वाले साधारण आराम तथा निद्रा को चाहने वाले तथा सजाग होते हैं।

न्यून—जिन्हों में यह शक्ति न्यून प्रमाण में होगी, वे विशेष सजाग जरा आवाज होने पर निद्रा में से तुरन्त जागृत हो जाने वाले, आराम और विश्रान्ति को नहीं चाहते, अविश्रान्तता से कार्य करने वाले और पित्त प्रकृति के होते हैं।

निग्रह-इस वृत्तिको अति गति को और स्वाभाविक गति को रोकने में बहुत ही विचार पूर्वक वर्तने की आवश्यकता है। अति निद्रा या अति जागरण (कमनिद्रा) कोई भी रीति से लाभदायक नहीं। अनेक प्रकार के मानस रोगों का और शारीरिक व्याधियों का कारण अति जागने को अनेक बार आभारी होता है। इसलिए उसकी अति गति को रोकने की जरूरत है। नाटक, सिनेमा या शादी जैसे प्रसंगों में बन सके वहाँ तक जाग रहो नहीं। कारण उससे मस्तिष्क के ज्ञानतन्तु का समस्त समुदाय निर्बल और रोग ग्रस्त हो जाते हैं।

मानसिक शक्तियों के समग्र समुदाय का पुस्तक में क्रमवार विवरण दे दिया है। जिसमें अब तक खोज करने में आई हुई समस्त मानसिक शक्तियों को उसके यथायोग्य समूहानुसार रचनाकर, उन्हों की भिन्न भिन्न क्रियानुसार वर्गीकरण कर समझाने में आये हुए हैं। मनुष्य की अन्दर की मूल शक्तियों अभ्यास से और प्रयत्न से अनेक रीति से और विविध प्रकार से शिक्षा देकर संवृद्ध कर सकाती है। और करनी चाहिए वह मानस शास्त्र का मुख्य सिद्धान्त है। वही अनुसार कोई भी स्त्री अथवा पुरुष की अन्दर की कोई भी न्यून शक्ति को विकसित कर सकाती है, इसी रीति से अति गति वाली शक्ति को संयम में भी ला सकाती है। मनुष्य के हस्त में परमात्मा ने वहुत ही बुद्धि पूर्वक वह जिम्मेवारी सिपुर्द की हुई है। इतने ही लिए मनुष्य को उसके कर्मानुसार उत्तरदाता ठहराने में ईश्वर सम्पूर्ण न्यायी है। फलित ज्योतिष की तरह यह विद्या मनुष्य को मस्तिष्क शास्त्र को आधीन नहीं बनाती। परन्तु "Man is the architect of his own fortune" "आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैवरिपुरात्मनः" और "उद्धरेदात्मनात्मानम्" यह सिद्धान्तों को वहुत ही स्पष्ट रीति से और प्रबलता से साबित करते हैं। इतने लिए यह विद्या का यथा योग्य रीति से अभ्यास कर, प्रत्येक मनुष्य अपने अनेक प्रकार के सामर्थ्य को बढ़ाने में और शक्तिओं को सुधारने के शुभ प्रयास में सफलता प्राप्त कर, अपने आपको इसी रीति से मनुष्य समाज को तथा विश्व के समग्र प्राणी मात्र को आनन्द, सुख और शान्ति देने के अनेक शुभ प्रयत्नों में साधन भूत बनकर, इस विश्व के नियामक परमपिता परमात्मा की पवित्र आज्ञाओं का पालन करने ज्ञानपूर्वक तत्पर होवे और अन्य को भी प्रेरणा देवे ऐसी शुभ इच्छा से मैं यह ग्रन्थ के अति महत्वपूर्ण और विस्तृत विषय को अत्र (यहाँ) पूर्ण करती हूं।

सर्वेजना:सुखिनः भवन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वेभद्राणी पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत्॥

मानस शास्त्र के साथ अनुषंग वेद विचार

--:÷:--

प्राणः प्राण भृतां यत्र स्थिताः सर्वेन्द्रियाणि च ।
यदुत्तमाङ्गमङ्गानां शिरस्तदभिधीयते ॥१॥ (चरक.)

प्रियाऽप्रियाणि बहुलाँ स्वप्नं संबाध तन्द्रयः ।
आनन्दानुग्रो नन्दाँश्च कस्माद् वहति पुरुषः ॥२॥

आर्तिरवर्तिर्निर्ऋतिः कुतोनु पुरुषेऽमतिः ।
रीद्धिः समृद्धिर्मतिरु दितयः कुतः ॥३॥

तद्वा अथर्वणः शिरो देवकोशः समुब्जितः ।
तत्प्राणो अभिरक्षति शिरो अन्नमथोमनः ॥४॥

(अथर्ववेद का १०, सू० २, मं० ६, १०, २७)

आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषणेन च ।
नेत्रवक्त्रविकारेण लक्ष्यतेऽन्तर्गतं मनः ॥५॥

आकृतिर्गुणान् कथयति ॥६॥ (मनु०)

उदीरितोऽर्थः पशुनापि गृह्यते हयाश्चनागाश्च वहन्ति नोदिताः ।
अनुक्तमप्यूहति पण्डितो जनः परेङ्गितज्ञानफलाहि बुद्धयः ॥७॥ (पञ्चतन्त्र)

भावार्थ

१. प्राण धारक प्राणीओंके प्राणो, ऐसेही सब इन्द्रियों के स्थान जहाँ आश्रय कर रहे हैं, ऐसेही जिन सब अंगोंमें सबसे उत्तम अंग है, वह शिर अर्थात् मस्तक है।

२. प्रिय, अप्रिय अनेक प्रकारके स्वप्न, निद्रा, आनन्द, खुशी, नाखुशी इत्यादि भाव मनुष्य कहाँसे और किस कारण, कौन सम्बन्धसे अनुभवते है ?

३. दुःख, सुख, मति, रीद्धि, संवृद्धि, अवृद्धि, रुदन इत्यादि भाव कहाँसे प्रवर्ते है ?

४. अथर्वा अर्थात् जीवात्माका जो इस शिर स्थान है वह अनेक दिव्य शक्तिओंके एकत्र किया हुआ खजाना (कोश) रूप है। उनकी प्राण, अन्न और मन रक्षा करतेहै।

५. आकार, इङ्गित, चेष्टा, गति और भाषण तथा नेत्रवकत्रके विकार आदिसे मनुष्यके अन्तर मनको जान सकाते है (मनुष्यके मनमें कैसे विचार चल रहे है वे समझमें आजाता है)

६. कारण—आकृति–गुणोंको कह देतीहै (दर्शादेती है)

७. बल्कि—शब्द द्वारा किया हुआ अर्थ--इशारा--मतलब वा विषयको तो पशुओंभी समझ सकतेहै। घोडाओं और हस्तीओं कहनेनुसार दर्शायें स्थान पर बोझा (वजन) इत्यादि ले जातेहै किन्तु पण्डित जन बिना कहे भी मतलब (आशय) को समझ लेतेहै। कारण दूसरोंके इङ्गित, आकार और चष्टा द्वारा उनके अन्तर मनका ज्ञान होना यही बुद्धि का फल है।

चित्र नं० १

मस्तिष्क का मध्य से कटा हुआ दर्शन
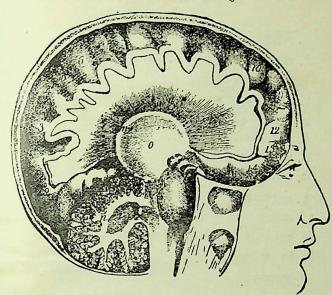
नं० १ से १४ मस्तकका विटलाओ
N अनुमस्तिष्क
M कोरपस केलोभम
O ब्रह्महृदय

चित्र नं० २

मस्तक की अन्दरकी अन्तर जवनिकाओं अथवा हृदयप्रदेश
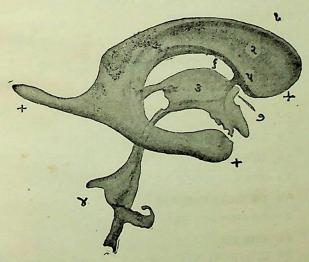
नं० १ और २ प्रथम और द्वितीय जवनिका
1 st& 2 nd ventricle
नं० ३. तृतीय जवनिका (3 rd, ventricle)
नं० ४. चतुर्थ जवनिका (4 th „)
नं० ५. पञ्चम जवनिका (5 th „)
नं० ६. मनोवह स्रोत (Foramen of manro.)
नं० ७. optic Recess का स्थान
+++ ऐसे चिन्ह वाले स्थान हृदय प्रदेशकी तीन अलग अलग दिशामें आये हुए शृगोंको दर्शाते है।

अग्र भागमें आया हुआ वह अग्र शृंग, पिछेके स्थानमें पश्चिम शृंग और दोनों बाजु में आये हुए पार्श्व शृंगो हैं। अग्र शृंगमें अवलोकन और बुद्धिके स्थानों हैं, पार्श्व शृंगोकी चारों ओर आत्मरक्षक वृत्तियोंके स्थान। पश्चिम शृंगमें घर सांसारिक भावनाओं के स्थान और चतुर्थ जवनिकामें समग्र शरीर में कार्य करने वाला स्थान हैं।

चित्र नं० ३

मस्तिष्क का तलिया और ज्ञानतन्तु का समूह

चित्र नं० ३

मस्तिष्क का तलिया की समझ
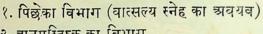
१. पिछेका विभाग (वात्सलय स्नेह का अवयव)
२. अनुमस्तिष्क का विभाग.
३. अनुमस्तिष्क.
४. पीठ डण्डरज्जुका अग्रभाग.
५. कोरपोरा पीरेमीडालीया का तन्तु.
६. पीठ डण्ड रज्जुका तन्तु.
७. कोरपस रेटीफार्म.
८. नवाँ ज्ञान तन्तु.
९. कोरपस एलीवेर.
१०. प्न्युमोग्रेस्ट्रीक ज्ञानतन्तु.
११. ग्लोसोफेरीनजीयल ज्ञानतन्तु.
१२,१३. कोरपापीरेमीडालीया.
१४. श्रवणतन्तु.
१५. मुखाभि गामी तन्तु.
१६;२० प्राणग्रन्थी.
१७. अनुमस्तिष्क का वृद्धि गत विभाग.
१८. टरगेमीनस ज्ञानतन्तु.
१९. छठा ज्ञानतन्तु.
२१. चौथा ज्ञानतन्तु.
२२. क्रुस शेरीब्राइ.
२३. तीसरा गति तन्तु.
२४. पोन्स टरीनी.
२५. कोर पोरा आल्बीसेन्टीया.
२६. इनफनडीबुच.
२७. लोकस परफोरेटस एन्टीरीयर.
२८. ट्रेकटीकस, ओप्टीकस.
२९. दर्शनतन्तु का (चेभ्मम) मध्य बिन्दु.
३०. दर्शनतन्तु.
३१. घ्राण तन्तुका आन्तरमुल.
३२. घ्राण तन्तुका बाह्य मूल.
३३. घ्राण तन्तुका मध्य भाग.
३४. घ्राण तन्तुका विस्तार और कद.
३५. अग्र लोबान्तरगत विभाजक प्रदेश.
३६. सीलवाइ फीसुरा.
३७. अग्रलोब (जिसमें से विशुद्ध रक्त वाहिनी प्रसार होती है)

चित्र नं० ४

मस्तिष्क के तलीया में से निकलते तन्तु

चित्र नं० ६

मस्तक की भूरा रंग की मेंदुकी सपाटी के भागों के पाँच स्तर (तन्तुपट)

चित्र नं० ५

मस्तक के मध्यप्रदेश का दर्शन

बारह तन्तु युग्म

उर्ध्व मूलमधः शाखं अश्वथम्

ऋग्वेद का अन्तिम सूक्त

(सब आर्य नर नारी इन मन्त्रों का उच्च स्वर से पाठ करें)

सङ्गठन की महिमा

सं समिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ ।

इलस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर ॥१

हे सुखों के वर्षक, सब के स्वामी, प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप संसार के सब पदार्थों को अपनी उचित व्यवस्था के अनुसार परस्पर मिलाते हो और फिर उनका वियोग भी आप ही करते हो, आप अपनी शक्तियों से इस धरती पर चमक रहे हो, हे ऐसे महान् सामर्थ्य वाले भगवन् ! आप हमें सब प्रकार के ऐश्वर्य दीजिये।

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।

देवा भागं यथा पूर्वे सं जानाना उपासते ॥२

हे पुरुषो ! तुम परस्पर मिल कर चलो, मिल कर बातचीत करो, ज्ञानी बन कर तुम अपने मनों को भी एक बनाओ, जैसे कि तुमसे पहले विद्वान् देव पुरुष सम्यक ज्ञानवान् और एक मति वाले होकर अपना भाग प्राप्त करते रहे हैं ।

समानो मन्त्रः समितिः समानी,

समानं मनः सह चित्तमेषाम् ।

समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः,

समानेन वो हविषा जुहोमि ॥३

तुम्हारे गुप्त विषयों के गम्भीर विचार मिल कर हों, विचार के लिए तुम्हारी सभाएँ एक जैसी हों, जिन में तुम सब मिलकर बैठ सको, तुम्हारा मनन मिल कर हो, निश्चय मिल कर हो, मैं तुम्हें मिल कर विचार करने का उपदेश देता हूं और तुम को पारस्परिक उपकार के लिये समान रूप से त्याग के जीवन में नियुक्त करता हूं ।

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।

समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥४

तुम्हारे संकल्प और प्रयत्न मिल कर हों, तुम्हारे हृदय परस्पर मिले हुए हों, तुम्हारे अन्तःकरण मिले रहें, जिस में परस्पर सहायता से तुम्हारी भरपूर उन्नति हो ।

ॐ
ब्रह्मांड का दर्शन
इस ब्रह्मांड के भोक्ता हम हैं। इस लिए उसको, उसके कर्ता को और कर्ता के नियमों को हमें समझना चाहिये। वह समझने वाली हमारी संस्कारी बुद्धि, नीति, भक्ति, सत्य, सदाचार, आदि आत्म शक्तियाँ ही हैं। इस लिये आत्मा को स्वयं पवित्र पुरुषार्थ द्वारा आत्मज्ञान बढ़ाने के लिये सर्वदा उद्यत रहना चाहिये। यही सच्चा धर्म और कल्याणकारी ध्येय है। सुखानन्द की प्राप्ति भी आत्मज्ञान के प्रताप से ही होती है। प्रभु! मुझे बल बुद्धि दीजिये।